प्रकाशक :

अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ

जोधपुर

शाखा कार्यालय

नेहरू गेट बाहर, ब्यावर (राजस्थान)

©: (01462) 251216, 257699, 250328

समवायांग सूत्र

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

आवरण सौजन्य

विद्या बाल मंडली सोसायटी, मेरठ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ साहित्य रत्नमाला का ८६ वाँ रत्न

समवायाङ्ग सूत्र

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

अनुवादक

पं. श्री घेवरचन्दजी बांठिया "वीरपुत्र"
न्यायतीर्थ, व्याकरणतीर्थ, जैन सिद्धांत शास्त्री

सम्पादक

नेमीचन्द बांठिया
पारसमल चण्डालिया

प्रकाशक

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर
शाखा-नेहरू गेट के बाहर, ब्यावर -३०५ ९०१
©: (01462) 251216, 257699 Fax No. 250328

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्य सहायक

उदारमना श्रीमान् सेठ जशवंतलाल भाई शाह, बम्बई

प्राप्ति स्थान

१. श्री अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, सिटी पुलिस, **जोधपुर** ☎ 2626145

२. शाखा-अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, नेहरू गेट बाहर, **ब्यावर** ☎ 251216

३. महाराष्ट्र शाखा-माणके कंपाउंड, दूसरी मंजिल आंबेड़कर पुतले के बाजू में, **मनमाड़**

४. श्री जशवन्तभाई शाह एदुन बिल्डिंग पहली धोबी तलावलेन पो० बॉ० नं० 2217, **बम्बई-2**

५. श्रीमान् हस्तीमल जी किशनलालजी जैन प्रीतम हाऊ० कॉ० सोसा० ब्लॉक नं० १०
स्टेट बैंक के सामने, **मालेगांव (नासिक)** ☎ 252097

६. श्री एच. आर. डोशी जी-३९ बस्ती नारनौल अजमेरी गेट, **दिल्ली-६** ☎ 23233521

७. श्री अशोकजी एस. छाजेड़, १२१ महावीर क्लॉथ मार्केट, **अहमदाबाद** ☎ 5461234

८. श्री सुधर्म सेवा समिति भगवान् महावीर मार्ग, **बुलडाणा**

९. श्री श्रुतज्ञान स्वाध्याय समिति सांगानेरी गेट, **भीलवाड़ा** ☎ 236108

१०. श्री सुधर्म जैन आराधना भवन २४ ग्रीन पार्क कॉलोनी साउथ तुकोगंज, **इन्दौर**

११. श्री विद्या प्रकाशन मन्दिर, ट्रांसपोर्ट नगर, **मेरठ** (उ. प्र.)

१२. **श्री अमरचन्दजी छाजेड़**, १०३ वाल टेक्स रोड़, **चैन्नई** ☎ 25357775

१३. **श्री संतोषकुमार बोथरा वर्द्धमान स्वर्ण** अलंकार ३९४, शॉपिंग सेन्टर, **कोटा** ☎ 2360950

मूल्य : ४०-००

द्वितीय आवृत्ति
१०००

वीर संवत् २५३३
विक्रम संवत् २०६४
जून २००७

मुद्रक - स्वास्तिक प्रिन्टर्स प्रेम भवन हाथी भाटा, अजमेर ☎ 2423295

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

जैन दर्शन की यह मान्यता है कि प्रत्येक भव्य जीव अनन्त आत्म शक्ति का धारक है। उसकी आत्म शक्ति किसी भी सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतरागी की शक्ति से कम नहीं है, किन्तु राग द्वेष रूपी विकार भावों के कारण वह शक्ति दबी हुई है। उस शक्ति को वीतराग प्ररूपित विशुद्ध साधना के द्वारा उद्घाटित किया जा सकता है। भूतकाल में अनन्त आत्माओं ने किया, वर्तमान में संख्यात आत्माएं कर रही है और भविष्य में फिर अनन्त आत्माएँ इस मार्ग का अनुसरण कर इस शक्ति को उद्घाटित करेगी। विकार भावों के कारण जो शक्तियाँ दबी हुई थी, उनके पूर्णतः निरस्त हो जाने पर आत्मा की सम्पूर्ण आवृत्त शक्तियों का प्रकाशित होना सर्वज्ञता वीतरागता है। उन वीतराग प्रभु द्वारा प्ररूपित कथन एकान्त निर्दोष एवं संसारी जीवों के कल्याण रूप होता है।

यद्यपि सभी वीतराग प्रभु का ज्ञान समान होता है, वाणी में निर्दोषता होती है, फिर भी उन सभी वीतराग प्रभु की वाणी का संकलन नहीं किया जाता। मात्र धर्म तीर्थ का प्रवर्तन करने वाले अति विशिष्ट अतिशय सम्पन्न तीर्थकर प्रभु द्वारा कथन की गई वाणी का ही संकलन भव्य जीवों के आत्म कल्याण हेतु उन्हीं के विद्वान् गणधरों द्वारा किया जाता है। वही संकलन आगम/आप्त वचन/शास्त्र/सूत्र रूप में मान्य है। वर्तमान में उपलब्ध बत्तीस आगम चरम तीर्थंकर प्रभु महावीर एवं उनके विशिष्ट ज्ञानी पूर्वधारी आचार्यों द्वारा प्ररूपित वाणी का संकलन है।

प्राचीन काल में जब लेखन प्रणाली नहीं थी, उस समय आगमों को गुरु परम्परा से कंठस्थ करके उन्हें सुरक्षित रखा जाता था। पर जैसे-जैसे काल के प्रवाह से स्मृति दोष आने लगा तो इस श्रुत निधि को सुरक्षित रखना आवश्यक हो गया। परिणाम स्वरूप वीर निर्वाण के लगभग ९८० वर्ष पश्चात् वल्लभी (सौराष्ट्र) नगरी में श्रुतपारगामी आचार्य देवर्द्धिगणी क्षमा श्रमण के नेतृत्व में विद्वान् श्रमणों का सम्मेलन बुलाकर, लुप्त होते आगम ज्ञान को लिपी बद्ध किया गया। फिर भी काल दोष, मान्यता भेद, स्मृति की दुर्बलता, सम्यक् गुरु परम्परा बोध की कमी आदि अनेकानेक कारणों से आगम सम्पत्ति जिस रूप में उपलब्ध होनी चाहिए, उस रूप में नहीं है, फिर भी जो सूत्र सम्पदा उपलब्ध है वह मुमुक्षु आत्माओं के मोक्ष साध्य को प्राप्त कराने में पर्याप्त है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बारह अंग सूत्रों के नाम इस प्रकार हैं- १. आचाराङ्ग २. सूत्रकृताङ्ग ३. स्थानाङ्ग ४. समवायाङ्ग ५. विवाहप्रज्ञप्ति-भगवती ६. ज्ञाता धर्म कथाङ्ग ७. उपासक दशाङ्ग ८. अन्तकृतदशाङ्ग ९. अनुत्तरौपपातिकदशाङ्ग १०. प्रश्नव्याकरण ११. विपाक सूत्र और १२. दृष्टि वाद। इनमें बारहवां अंग दृष्टिवाद अभी अनुपलब्ध है। शेष ग्यारह अंग सूत्रों में समवायाङ्ग सूत्र चौथा अंग सूत्र है। नंदी सूत्र में समवायाङ्ग सूत्र की विषय सूची के बारे में निम्न पाठ आया है।

से किं त समवाए? समवाए णं जीवा समासिज्जंति, अजीवा समासिज्जंति, जीवाजीवा समासिज्जंति, ससमए समासिज्जइ, परसमए समासिज्जइ, ससमयपरसमए समासिज्जइ, लोए समासिज्जइ, अलोए समासिज्जइ, लोयालोए समासिज्जइ। समवाए णं एगाइयाणं एगुत्तरियाणं ठाण सयविवड्ढियाणं भावाणं परूवणा आघविज्जइ, दुवालसविहस्स य गणिपिडगस्स पल्लग्गो समासिज्जइ। समवायस्स णं परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा, संखिज्जा वेढा, संखिज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ णिज्जुत्तीओ, संखिज्जाओ संगहणीओ, संखिज्जाओ पडिवत्तीओ। से णं अंगट्ठयाए चउत्थे अंगे, एगे सुयक्खंधे, एगे अज्झयणे, एगे समुद्देसणकाले। एगे चोयाले सयसहस्से पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा। सासयकडणिबद्धणिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति णिदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति। से एवं आया, एवं णाया, एवं विण्णाया एवं चरण करण परूवणा आघविज्जइ। से त्तं समवाए ।

अर्थात् - **प्रश्न** - समवायाङ्ग में क्या विषय है ?

उत्तर - समवायाङ्ग में यथावस्थित रूप में जीव आश्रयण किये जाते हैं अर्थात् जैसा उनका स्वरूप है वही स्वरूप बुद्धि से स्वीकृत किया जाता है अजीव आश्रयण किए जाते है और जीव-अजीव दोनों को विपरीत प्ररूपणा से खींचकर सम्यक् प्ररूपणा में प्रक्षिप्त किये जाते हैं, स्व समय, पर समय और एक साथ स्व समय-परसमय दोनों यथाव्यवस्थित रूप से आश्रयण किये जाते हैं, अर्थात् स्वीकार किये जाते हैं लोक अलोक और लोकालोक उभय सम्यक् प्ररूपणा से कहे जाते हैं। समवाय जीवादि पदार्थों के निश्चय करने वाले सूत्र से एक आदि एक एक की आगे वृद्धि से सैकड़ों स्थानपर्यन्त बढ़े हुए भावों की प्ररूपणा कही जाती है और बारह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार के गणिपिटक यानी अंग सूत्रों का संक्षिप्त परिचय आश्रयण किया जाता है अर्थात् कहा जाता है। समवायाङ्ग की परिमित वाचनाएं और संख्यात इसके अनुयोग द्वार हैं, वेढ छन्दो विशेष-श्लोक, निर्युक्ति, संग्रहणी और प्रतिपत्तियां ये सभी संख्यात है। अङ्ग की दृष्टि से वह समवाय चौथा अङ्ग है। इसका एक श्रुतस्कन्ध, एक उद्देशन काल और एक ही समुद्देशन काल है, पदाग्र से एक लाख चौआलीस हजार पद हैं, संख्यात अक्षर व अनन्त अर्थज्ञान हैं, अनन्त पर्याये हैं, परिमित त्रस अनन्त स्थावर और धर्मास्तिकायादि शाश्वत तथा प्रयोग आदि कृत से निबद्ध है, हेतु आदि से निर्णय प्राप्त जिन प्रणीत भाव इसमें कहे जाते है, प्रज्ञापन प्ररूपण, दर्शन निदर्शन और उपदर्शन से विशेष स्पष्ट किए जाते हैं, समवाय का वह पाठ तदात्मरूप बन जाता है तथा सूत्र के कथानुसार पदार्थों का ज्ञाता व ऐसे ही विज्ञाता होता है, इस प्रकार समवाय में चरणकरण की प्ररूपणा की जाती है, यह समवायाङ्ग चौथा अङ्ग हुआ।

नंदी सूत्र में समवायाङ्ग की जो विषय सूची है वह बहुत संक्षिप्त है, इसमें मात्र एक से सौ तक की संख्या के विषयों का संकलन बताया है, जबकि समवायाङ्ग में सौवें समवाय के बाद क्रमशः १५०-२००-२५०-३००-३५०-४००-४५०-५०० यावत् हजार से २००० से १०००० से एक लाख, उससे ८ लाख और करोड़ की संख्या वाले विभिन्न विषयों का इसमें संकलन किया गया है।

द्रव्य क्षेत्र काल भाव की दृष्टि से भी इसमें विशद वर्णन है, द्रव्य से जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश आदि का, क्षेत्र से लोक, अलोक, सिद्ध शिला आदि का, काल से समय, आवलिका, मुहूर्त्त आदि से लेकर पल्योपम, सागरोपम उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी, पुद्गल-परावर्तन, चार गति के जीवों की स्थिति आदि का, भाव से ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य आदि जीव के भावों का निरूपण किया गया है। इसमें जीव-अजीव, भूगोल, खगोल, गणित, इतिहास आचार आदि शताधिक विषयों का संख्या की दृष्टि से संकलन इस तरह का है कि इसमें चारों अनुयोगों का समावेश हो जाता है।

समवायाङ्ग सूत्र के विभिन्न विषयों का जितना संकलन हुआ है, उतने विषयों का एक साथ संकलन अन्य आगमों में बहुत कम हुआ है। इसलिए ही तो व्यवहार सूत्र में व्यवस्था दी गई है कि स्थानांग और समवायाङ्ग का ज्ञाता ही आचार्य और उपाध्याय जैसे गौरवपूर्ण पद को धारण करने के अधिकारी है क्योंकि इन दो सूत्रों में उन सभी विषयों की संक्षेप में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चर्चाएं आ गयी है, जिनका आचार्य और उपाध्याय पद के लिए जानना अत्यधिक आवश्यक है। ठाणांग सूत्र के तीसरे ठाणे में जो तीन प्रकार के स्थविर बताये हैं। उन में श्रुत स्थविर के लिए स्थानांग एवं समवायाङ्ग सूत्र का ज्ञाता होना बताया है। इस प्रकार विषय संकलन की दृष्टि से प्रस्तुत आगम एक प्रकार का कोष है, जहाँ अनेकानेक विषयों का एक ही स्थान पर संकलन मिल जाता है।

पूर्व में समवायाङ्ग सूत्र का प्रकाशन अनेक संस्थाओं से हो रखा है, जिनकी प्रकाशन शैली (Pattern) भी भिन्न-भिन्न है। हमारे संघ का यह नूतन प्रकाशन है। इसकी शैली (Pattern) संघ द्वारा प्रकाशित भगवती सूत्र के अनुसार है। मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ तथा आवश्यकतानुसार स्थान-स्थान पर विवेचन किया गया है, ताकि विषय को सुगमता से समझा जा सके।

सैलाना से जब कार्यालय ब्यावर स्थानान्तरित हुआ उस समय हमें लगभग ४३ वर्ष पुराने समवायाङ्ग सूत्र, सूत्रकृताङ्ग सूत्र, ठाणांग सूत्र, विपाक सूत्र की हस्तलिखित कापियों के बंडल मिले, जो समाज के जाने-माने विद्वान् पण्डित श्री घेवरचन्द जी बांठिया ''वीरपुत्र'' न्याय व्याकरण तीर्थ, जैन सिद्धान्त शास्त्री के द्वारा बीकानेर में रहते हुए अनुवादित किए हुए थे। जिसमें समवायाङ्ग सूत्र के अनुवाद के समापन की तारीख १७-१-१९५४ संवत् २०१० पोस वदी १३ रविवार दी हुई थी। उन कापियों को देखकर मेरा मन ललचाया कि क्यों नहीं इनको व्यवस्थित कर इनका प्रकाशन संघ की ओर से करवा जाय। इसके लिए मैंने संघ के अध्यक्ष समाज रत्न तत्त्वज्ञ सुश्रावक श्री जशवन्त लाल जी एस. शाह से चर्चा की तो उन्होंने इसके लिए सहर्ष स्वीकृति प्रदान कर दी।

तदुपरान्त इसका मुद्रण प्रारम्भ कर दिया गया। अन्य प्रकाशित प्रतियों एवं सुत्तागमे का सहारा लेकर इसमें आवश्यकतानुसार संशोधन परिवर्द्धन करने के पश्चात् प्रेस काफी तैयार की गयी और उसे पूज्य ''वीरपुत्रजी'' म. सा. को तत्त्वज्ञ सुश्रावक श्री धनराज जी सा. बडेरा तथा श्री हीराचन्द जी सा. पींचा ने सुनाया। पूज्य श्री ने जहां उचित समझा संशोधन बताया। इसके पश्चात् पुनः श्रीमान् पारसमल जी सा. चण्डालिया, आदरणीय जशवन्तलाल जी शाह तथा मेरे द्वारा अवलोकन किया गया। इस प्रकार प्रस्तुत प्रकाशन में पूर्ण सर्तकता एवं सावधानी बरती गई है, फिर भी आगम सम्पादन का हमारा यह प्रथम प्रयास है। अतएव तत्त्वज्ञ मनीषियों से निवेदन है कि इस प्रकाशन में कोई त्रुटि हो तो हमे सूचित कर अनुगृहित करें।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संघ का आगम प्रकाशन का काम पूर्ण हो चुका है। इस आगम प्रकाशन के कार्य में **धर्म प्राण समाज रत्न तत्त्वज्ञ सुश्रावक श्री जशवंतलाल भाई शाह एवं श्राविका रत्न श्रीमती मंगला बहन शाह, बम्बई** की गहन रुचि है। आपकी भावना है कि संघ द्वारा जितने भी आगम प्रकाशन हों वे अर्द्ध मूल्य में ही बिक्री के लिए पाठकों को उपलब्ध हो। इसके लिए उन्होंने सम्पूर्ण आर्थिक सहयोग प्रदान करने की आज्ञा प्रदान की है। तदनुसार प्रस्तुत आगम पाठकों को उपलब्ध कराया जा रहा है, संघ एवं पाठक वर्ग आपके इस सहयोग के लिए आभारी है।

आदरणीय शाह साहब तत्त्वज्ञ एवं आगमों के अच्छे ज्ञाता हैं। आप का अधिकांश समय धर्म साधना आराधना में बीतता है। प्रसन्नता एवं गर्व तो इस बात का है कि आप स्वयं तो आगमों का पठन-पाठन करते ही हैं, पर आपके सम्पर्क में आने वाले चतुर्विध संघ के सदस्यों को भी आगम की वाचनादि देकर जिनशासन की खूब प्रभावना करते हैं। आज के इस हीयमान युग में आप जैसे तत्त्वज्ञ श्रावक रत्न का मिलना जिनशासन के लिए गौरव की बात है। आपके पुत्र रत्न **मयंकभाई शाह** एवं **श्रेयांसभाई शाह** भी आपके पद चिन्हों पर चलने वाले हैं। आप सभी को आगमों एवं थोकड़ों का गहन अभ्यास है। आपके धार्मिक जीवन को देख कर प्रमोद होता है। आप चिरायु हो एवं शासन की प्रभावना करते रहें, इसी भावना के साथ।

जैसा कि पाठक बुन्धुओं को मालूम ही है कि वर्तमान में कागज एवं मुद्रण सामग्री के मूल्य में काफी वृद्धि हो चुकी है। फिर भी **आदरणीय शाह साहब** के आर्थिक सहयोग से इसका मूल्य मात्र **रु० ४०) चालीस रुपया** रखा है जो कि वर्तमान परिपेक्ष्य में ज्यादा नहीं है।

समवायांग सूत्र की प्रथम आवृत्ति का प्रकाशन अगस्त १९९७ में हुआ था। अब यह द्वितीय आवृत्ति पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। आगम रसिक बंधु इससे अधिक से अधिक लाभान्वित हो, इसी शुभ भावना के साथ!

ब्यावर (राज.)

दिनांक १५-६-२००७

संघ सेवक

नेमीचन्द बांठिया

श्री अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, **ब्यावर**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ
१.	पहला समवाय	१
२.	दूसरा समवाय	१०
३.	तीसरा समवाय	१३
४.	चौथा समवाय	१७
५.	पांचवां समवाय	२१
६.	छठा समवाय	२५
७.	सातवां समवाय	२९
८.	आठवां समवाय	३५
९.	नौवां समवाय	३९
१०.	दसवां समवाय	४३
११.	ग्यारहवां समवाय	४९
१२.	बारहवां समवाय	५४
१३.	तेरहवां समवाय	६१
१४.	चौदहवां समवाय	६४
१५.	पन्द्रहवां समवाय	७०
१६.	सोलहवां समवाय	७६
१७.	सत्तरहवां समवाय	८१
१८.	अठारहवां समवाय	८८
१९.	उन्नीसवां समवाय	९३
२०.	बीसवां समवाय	९७
२१.	इक्कीसवां समवाय	१०१
२२.	बाईसवां समवाय	१०६
२३.	तेईसवां समवाय	११२
२४.	चौबीसवां समवाय	११५
२५.	पच्चीसवां समवाय	११८
२६.	छब्बीसवां समवाय	१२४
२७.	सत्ताईसवां समवाय	१२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्र.	विषय	पृष्ठ
२८.	अठाईसवां समवाय	१२९
२९.	उनतीसवां समवायं	१३४
३०.	तीसवां समवाय	१३८
३१.	इकतीसवां समवाय	१५१
३२.	बत्तीसवां समवाय	१५६
३३.	तेतीसवां समवाय	१६१
३४.	चौतीसवां समवाय	१६८
३५.	पैंतीसवां समवाय	१७५
३६.	छत्तीसवां समवाय	१७८
३७.	सैंतीसवां समवाय	१८१
३८.	अड़तीसवां समवाय	१८३
३९.	उनचालीसवां समवाय	१८४
४०.	चालीसवां समवाय	१८५
४१.	इकतालीसवां समवाय	१८६
४२.	बयालीसवां समवाय	१८७
४३.	तयालीसवां समवाय	१९३
४४.	चवालीसवां समवाय	१९४
४५.	पैंतालीसवां समवाय	१९५
४६.	छियालीसवां समवाय	१९६
४७.	सैंतालीसवां समवाय	१९७
४८.	अड़तालीसवां समवाय	१९८
४९.	उनपचासवां समवाय	१९९
५०.	पचासवां समवाय	१९९
५१.	इकावनवां समवाय	२००
५२.	बावनवां समवाय	२०१
५३.	तरेपनवां समवाय	२०३
५४.	चौपनवां समवाय	२०४
५५.	पचपनवां समवाय	२०६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्र.	विषय	पृष्ठ
५६.	छप्पनवां समवाय	२०८
५७.	सत्तावनवां समवाय	२०९
५८.	अठावनवां समवाय	२१०
५९.	उनसठवां समवाय	२११
६०.	साठवां समवाय	२११
६१.	इकसठवां समवाय	२१२
६२.	बासठवां समवाय	२१३
६३.	तरेसठवां समवाय	२१४
६४.	चौसठवां समवाय	२१५
६५.	पैंसठवां समवाय	२१६
६६.	छासठवां समवाय	२१८
६७..	सड़सठवां समवाय	२१९
६८.	अडसठवां समवाय	२२०
६९.	उनसित्तरवां समवाय	२२१
७०.	सित्तरवां समवाय	२२३
७१.	इकहत्तरवां समवाय	२३३
७२.	बहत्तरवां समवाय	२३४
७३.	तेहत्तरवां समवाय	२३८
७४.	चहोत्तरवां समवाय	२३८
७५.	पिचहत्तरवां समवाय	२३९
७६.	छिहत्तरवां समवाय	२४०
७७.	सत्तहत्तरवां समवाय	२४०
७८.	अठहत्तरवां समवाय	२४२
७९.	उन्यासीवां समवाय	२४४
८०.	अस्सीवां समवाय	२४६
८१.	इक्यासीवां समवाय	२४७
८२.	बयासीवां समवाय	२४८
८३.	तयासीवां समवाय	२४९

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्र.	विषय	पृष्ठ
८४.	चौरासीवां समवाय	२५०
८५.	पच्चासीवां समवाय	२५५
८६.	छियासीवां समवाय	२५६
८७.	सित्यासीवां समवाय	२५६
८८.	अठयासीवां समवाय	२५८
८९.	नवासीवां समवाय	२६०
९०.	नब्बेवां समवाय	२६१
९१.	इकानवां समवाय	२६१
९२.	बाणवां समवाय	२६३
९३.	तराणुवां समवाय	२६५
९४.	चौरानवां समवाय	२६६
९५.	पंचानवां समवाय	२६६
९६.	छयानवां समवाय	२६८
९७.	सतानवां समवाय	२६९
९८.	अठानवां समवाय	२६९
९९.	निन्यानवां समवाय	२७१
१००.	सौ वां समवाय	२७३
१०१.	प्रकीर्णक समवाय	२७५
१०२.	बारह अंग सूत्र	२९१
१०३.	राशि का वर्णन	३५५
१०४.	अरूपी अजीव का वर्णन	३५६
१०५.	रूपी अजीव का वर्णन	३५६
१०६.	नैरयिकों का वर्णन	३५७
१०७.	सातवीं नरक का वर्णन	३६२
१०८.	असुरकुमारों का वर्णन	३६३
१०९.	पृथ्वीकाय से लेकर वाणव्यंतर देवों तक का वर्णन	३६७
११०.	ज्योतिषी देवों का वर्णन	३६९
१११.	वैमानिक देवों का वर्णन	३७१

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्र.	विषय	पृष्ठ
११२.	नैरयिक आदि की स्थिति का वर्णन	३७८
११३.	शरीर का वर्णन	३८१-३९१
	(१) औदारिक शरीर	३८१
	(२) वैक्रिय शरीर	३८२
	(३) आहारक शरीर	३८३
	(४) तैजस और कार्मण शरीर	३९०
११४.	अवधिज्ञान का वर्णन	३९१
११५.	वेदना का वर्णन	३९२
११६.	लेश्या का वर्णन	३९३
११७.	आहार आदि विषयक वर्णन	३९३
११८.	आयुष्य बन्ध	३९४
११९.	उपपात और उद्वर्तन का वर्णन	३९५
१२०.	आकर्ष का वर्णन	३९६
१२१.	संहनन पद	३९७
१२२.	संस्थान पद	३९९
१२३.	वेद पद	४०१
१२४.	समवसरण पद	४०३
१२५.	कुलकर पद	४०५-४०८
	(१) अतीत उत्सर्पिणी के कुलकर	४०५
	(२) अतीत अवसर्पिणी के कुलकर	४०५
	(३) इस अवसर्पिणी के कुलकर	४०५
	(४) कुलकरों की भार्याएं	४०६
१२६.	तीर्थंकर पद	४०८-४२०
	तीर्थंकर के माता-पिता आदि संबंधी वर्णन	४०८
	चौबीस तीर्थंकरों के पूर्व भवों के नाम	४११
	चौबीस तीर्थंकरों की शिविकाओं के नाम	४११
	चौबीस तीर्थंकरों के प्रथम भिक्षादाताओं के नाम	४१५
	चौबीस तीर्थंकरों के चैत्य वृक्षों के नाम	४१८

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्र.	विषय	पृष्ठ
	चौबीस तीर्थंकरों के प्रथम शिष्यों के नाम	४१९
	चौबीस तीर्थंकरों के प्रथम शिष्याओं के नाम	४२०
१२७.	चक्रवर्ती पद	४२१-४२३
	चक्रवर्तियों के पिताओं के नाम	४२१
	चक्रवर्तियों के माताओं के नाम	४२२
	बारह चक्रवर्तियों के नाम	४२२
	चक्रवर्तियों के स्त्रीरत्नों के नाम	४२२
१२८.	बलदेव-वासुदेव पद	४२३-४३१
	बलदेव वासुदेव पिताओं के नाम	४२३
	नौ वासुदेवों की माताओं के नाम	४२३
	नौ बलदेवों की माताओं के नाम	४२३
	बलदेवों और वासुदेवों के पूर्व भवों के नाम	४२९
	बलदेव और वासुदेवों के पूर्वभव के धर्माचार्यों के नाम	४३०
	निदान भूमियों के नाम	४३०
	निदानों के कारण	४३१
१२९.	प्रतिवासुदेवों के नाम	४३१
१३०.	वर्तमान ऐरवत तीर्थंकरों के नाम	४३२
१३१.	भरत क्षेत्र के आगामी कुलकरों के नाम	४३३
१३२.	ऐरवत क्षेत्र के आगामी दस कुलकरों के नाम	४३३
१३३.	भावी तीर्थंकर पद	४३४-४३६
	उत्सर्पिणी काल के २४ तीर्थंकर	४३४
	पूर्व भवों के नाम	४३५
	माता-पिता आदि के नाम	४३५
१३४.	भावी चक्रवर्ती पद	४३६
१३५.	भावी बलदेव वासुदेव पद	४३६-४३८
	माता-पिता आदि के नाम	४३६
	पूर्वभवों के नाम, निदान भूमि, कारण आदि	४३७
१३६.	ऐरवत भावी तीर्थंकर पद	४३८
१३७.	ऐरवत क्षेत्र में भावी चक्रवर्ती, बलदेव वासुदेव पद	४३९

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अस्वाध्याय

निम्नलिखित बत्तीस कारण टालकर स्वाध्याय करना चाहिये।

आकाश सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	**काल मर्यादा**
१. बड़ा तारा टूटे तो-	एक प्रहर
२. दिशा-दाह ✻	जब तक रहे
३. अकाल में मेघ गर्जना हो तो-	दो प्रहर
४. अकाल में बिजली चमके तो-	एक प्रहर
५. बिजली कड़के तो-	आठ प्रहर
६. शुक्ल पक्ष की १, २, ३ की रात-	प्रहर रात्रि तक
७. आकाश में यक्ष का चिह्न हो-	जब तक दिखाई दे
८-९. काली और सफेद धूंअर-	जब तक रहे
१०. आकाश मंडल धूलि से आच्छादित हो-	जब तक रहे
औदारिक सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	
११-१३. हड्डी, रक्त और मांस,	ये तिर्यंच के ६० हाथ के भीतर हो। मनुष्य के हो, तो १०० हाथ के भीतर हो। मनुष्य की हड्डी यदि जली या धुली न हो, तो १२ वर्ष तक।
१४. अशुचि की दुर्गंध आवे या दिखाई दे-	तब तक
१५. श्मशान भूमि-	सौ हाथ से कम दूर हो, तो।

✻ *आकाश में किसी दिशा में नगर जलने या अग्नि की लपटें उठ. जैसा दिखाई दे और प्रकाश हो तथा* नीचे अंधकार हो, वह दिशा-दाह है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१६. चन्द्र ग्रहण-	खंड ग्रहण में ८ प्रहर, पूर्ण हो तो १२ प्रहर

(चन्द्र ग्रहण जिस रात्रि में लगा हो उस रात्रि के प्रारम्भ से ही अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१७. सूर्य ग्रहण-	खंड ग्रहण में १२ प्रहर, पूर्ण हो तो १६ प्रहर

(सूर्य ग्रहण जिस दिन में कभी भी लगे उस दिन के प्रारंभ से ही उसका अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१८. राजा का अवसान होने पर,	जब तक नया राजा घोषित न हो
१९. युद्ध स्थान के निकट	जब तक युद्ध चले
२०. उपाश्रय में पंचेन्द्रिय का शव पड़ा हो,	जब तक पड़ा रहे

(सीमा तिर्यंच पंचेन्द्रिय के लिए ६० हाथ, मनुष्य के लिए १०० हाथ। उपाश्रय बड़ा होने पर इतनी सीमा के बाद उपाश्रय में भी अस्वाध्याय नहीं होता। उपाश्रय की सीमा के बाहर हो तो यदि दुर्गन्ध न आवे या दिखाई न देवे तो अस्वाध्याय नहीं होता।)

२१-२४. आषाढ़, आश्विन, कार्तिक और चैत्र की पूर्णिमा	दिन रात
२५-२८. इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदा-	दिन रात
२९-३२. प्रातः, मध्याह्न, संध्या और अर्द्ध रात्रि- इन चार सन्धिकालों में-	१-१ मुहूर्त्त

उपरोक्त अस्वाध्याय को टालकर स्वाध्याय करना चाहिए। खुले मुंह नहीं बोलना तथा सामायिक, पौषध में दीपक के उजाले में नहीं वांचना चाहिए।

नोट - नक्षत्र २८ होते हैं उनमें से आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक नौ नक्षत्र वर्षा के गिने गये हैं। इनमें होने वाली मेघ की गर्जना और बिजली का चमकना स्वाभाविक है। अतः इसका अस्वाध्याय नहीं गिना गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री अ० भा० सुधर्म जैन सं० रक्षक संघ, जोधपुर आगम बत्तीसी प्रकाशन योजना के अन्तर्गत प्रकाशित आगम

अंग सूत्र

क्रं.	नाम आगम	मूल्य
१.	आचारांग सूत्र भाग-१-२	५५-००
२.	सूयगडांग सूत्र भाग-१,२	६०-००
३.	स्थानांग सूत्र भाग-१, २	६०-००
४.	समवायांग सूत्र	४०-००
५.	भगवती सूत्र भाग १-७	३००-००
६.	ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र भाग-१, २	८०-००
७.	उपासकदशांग सूत्र	२०-००
८.	अन्तकृतदशा सूत्र	२५-००
९.	अनुत्तरोपपातिक दशा सूत्र	१५-००
१०.	प्रश्नव्याकरण सूत्र	३५-००
११.	विपाक सूत्र	३०-००

उपांग सूत्र

१.	उववाइय सुत्त	२५-००
२.	राजप्रश्नीय सूत्र	२५-००
३.	जीवाजीवाभिगम सूत्र भाग-१,२	८०-००
४.	प्रज्ञापना सूत्र भाग-१,२,३,४	१६०-००
५.	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति	५०-००
६-७.	चन्द्रप्रज्ञप्ति-सूर्यप्रज्ञप्ति	२०-००
८-१२.	निरयावलिका (कल्पिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा)	२०-००

मूल सूत्र

१.	दशवैकालिक सूत्र	३०-००
२.	उत्तराध्ययन सूत्र भाग-१, २	८०-००
३.	नंदी सूत्र	२५-००
४.	अनुयोगद्वार सूत्र	५०-००

छेद सूत्र

१-३.	त्रीणिछेदसुत्ताणि सूत्र (दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प, व्यवहार)	५०-००
४.	निशीथ सूत्र	५०-००
१.	आवश्यक सूत्र	३०-००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

।। णमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स ॥

श्री समवायाङ्ग सूत्रम्

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

पहला समवाय

उत्थानिका - यह संसार अनादिकाल से है और अनन्त है अर्थात् यह संसार कब से प्रारम्भ हुआ, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार इसका अन्त कब हो जायेगा, यह नहीं कहा जा सकता। इसीलिये संसार अनादि अनन्त कहा जाता है। इसी प्रकार जैन धर्म के सम्बन्ध में भी समझना चाहिये। जैन धर्म भी अनादि अनन्त है। अत एव इसे सनातन (सदातन-सदा रहने वाला) धर्म भी कहते हैं। भरत क्षेत्र और ऐरवत क्षेत्र में काल का परिवर्तन होता रहता है। एक उत्सर्पिणी काल और एक अवसर्पिणी काल को मिला कर एक कालचक्र कहलाता है। यह बीस कोडाकोडी सागरोपम का होता है। दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम परिमाण वाले उत्सर्पिणी काल में चौबीस तीर्थंकर भगवान् होते हैं। इसी प्रकार दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम परिमाण वाले अवसर्पिणी काल में भी चौबीस तीर्थंकर होते हैं। गृहस्थावस्था का त्याग कर संयम अंगीकार करने के बाद जब केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हो जाता है, उसके बाद वे साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप चतुर्विध तीर्थ की स्थापना करते हैं। उस समय उनके जिन (तीर्थङ्कर) नाम कर्म का उदय होता है। तब ही वे भाव तीर्थङ्कर होते हैं। उनकी उस पहली धर्म देशना में ही जितने गणधर होने होते हैं उतने हो जाते हैं। उसी समय तीर्थङ्कर भगवान् अर्थ रूप से द्वादशाङ्ग वाणी का कथन करते हैं और गणधर देव उसे सूत्र रूप से गूंथित करते हैं। इसीलिये वे अपने शासन की अपेक्षा धर्म की आदि करने वाले कहलाते हैं।

बारह अङ्ग सूत्रों के नाम ये हैं - १. आचाराङ्ग २. सूयगडाङ्ग ३. ठाणाङ्ग ४. समवायाङ्ग ५. विवाहपण्णत्ति (व्याख्या प्रज्ञप्ति) ६. ज्ञाताधर्मकथाङ्ग ७. उपासकदशाङ्ग ८. अंतगडदशाङ्ग ९. अनुत्तरौपपातिक १०. प्रश्नव्याकरण ११. विपाक सूत्र १२. दृष्टिवाद। जिस प्रकार धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय ये पांच अस्तिकाय कभी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं थे, कभी नहीं हैं और कभी नहीं रहेंगे, ऐसी बात नहीं किन्तु ये पांच अस्तिकाय भूतकाल में थे, वर्तमान में हैं और भविष्यत् काल में भी रहेंगे । इसी प्रकार यह द्वादशांग वाणी कभी नहीं थी, कभी नहीं है और कभी नहीं रहेगी ऐसी बात नहीं किन्तु भूतकाल में थी, वर्तमान में है और भविष्यत् काल में रहेगी। अतएव यह मेरु पर्वत के समान ध्रुव है, लोक के समान नियत है, काल के समान शाश्वत है, निरन्तर वाचना आदि देते रहने पर भी इसका क्षय नहीं होने के कारण वह अक्षय है। गंगा सिन्धु नदियों के प्रवाह के समान अव्यय है। जम्बूद्वीप, लवण समुद्र आदि द्वीप समुद्रों के समान अवस्थित है और आकाश के समान नित्य है। यह द्वादशाङ्ग वाणी गणि-पिटक के समान है। अर्थात् गुणों के गण एवं साधुओं के गण को धारण करने से आचार्य को गणी कहते हैं। पिटक का अर्थ है पेटी या पिटारी अथवा मंजूषा। आचार्य एवं उपाध्याय आदि सब साधु साध्वियों के सर्वस्व रूप श्रुत रत्नों की पेटी (मंजूषा) को 'गणि-पिटक' कहते हैं। जिस प्रकार पुरुष के बारह अंग होते हैं। यथा - २ पैर, २ जंघा, २ उरू (साथल), २ पसवाडे, २ हाथ, १ गर्दन, १ मस्तक। इसी प्रकार श्रुत रूपी परम पुरुष के भी आचाराङ्ग आदि बारह अङ्ग होते हैं।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ग्यारह गणधर हुए थे। उनकी नौ वांचनायें हुई । अभी वर्तमान में उपलब्ध आगम पांचवें गणधर श्री सुधर्मा स्वामी की वाचना के हैं। सम्पूर्ण दृष्टिवाद तो दो पाट तक ही चलता है। इसलिये दृष्टिवाद का तो विच्छेद हो गया है। ग्यारह अङ्ग ही उपलब्ध होते हैं। उसमें समवायाङ्ग सूत्र का चौथा नम्बर है।

नवाङ्गी टीकाकार श्री अभयदेवसूरि ने 'समवाय' शब्द का अर्थ इस प्रकार किया है -

''सम् इति - सम्यक्, अव इति आधिक्येन, अयनं अयः - परिच्छेदः। जीवाजीवादि विविध पदार्थ सार्थस्य यस्मिन् असौ इति समवायः।।''

अथवा समवयन्ति - समवतरन्ति, संमिलन्ति नानाविधा आत्मादयो भावा अभिधेयतया यस्मिन् असौ समवाय इति॥

''सम्'' अर्थात् सम्यग् रूप से, ''अव'' अर्थात् अधिक विशेष रूप से, ''अय'' अर्थात् ज्ञान, बोधि। निष्कर्ष यह निकला कि - जिसमें जीव, अजीव आदि विविध पदार्थों के समूह का सम्यग् रूप से एवं विशेष रूप से परिच्छेद ज्ञान होवे, उसे 'समवाय'' कहते हैं। अथवा आत्मा (जीव) अनात्मा (अजीव) आदि अनेक पदार्थों का अभिधेय (विषय) रूप से जिसमें मिलन होता है, अवतरण होता है उसको 'समवाय' कहते हैं। अब ''समवाय सूत्र'' का प्रारम्भ होता है। उसका प्रथम सूत्र यह है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुयं मे आउसं! तेणं भगवया एवमक्खायं - (❀ इह खलु समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थयरेणं सयंसंबुद्धेणं पुरिसुत्तमेणं पुरिससीहेणं पुरिसवरपुंडरीएणं पुरिसवरगंधहत्थिणा लोगुत्तमेणं लोगणाहेणं लोगहिएणं लोगपईवेणं लोगपज्जोयगरेणं अभयदएणं चक्खुदएणं मग्गदएणं सरणदएणं जीवदएणं बोहिदएणं धम्मदएणं धम्मदेसएणं धम्मणायगेणं धम्मसारहिणा धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टिणा दीवो ताणं सरणं गइपइट्ठा अप्पडिहयवरणाणदंसणधरेणं वियट्टछउमेणं जिणेणं जावएणं तिण्णेणं तारएणं बुद्धेणं बोहएणं मुत्तेणं मोयगेणं सव्वण्णुणा सव्वदरिसिणा सिवमयलमरुयमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणराविति सिद्धिगइ णामधेयं ठाणं संपाविउकामेणं इमे दुवालसंगे गणिपिडगे पण्णत्ते तंजहा - आयारे सूयगडे ठाणे समवाए विवाहपण्णत्ती णायाधम्मकहाओ उवासगदसाओ अंतगडदसाओ अणुत्तरोववाइयदसाओ पण्हावागरणं विवागसुए दिट्ठिवाए। तत्थणं जे से चउत्थे अंगे समवाए त्ति आहिए, तस्स णं अयमट्ठे पण्णत्ते तंजहा-) एगे आया, एगे अणाया, एगे दंडे, एगे अदंडे, एगा किरिया, एगा अकिरिया, एगे लोए, एगे अलोए, एगे धम्मे, एगे अधम्मे, एगे पुण्णे, एगे पावे, एगे बंधे, एगे मोक्खे, एगे आसवे, एगे संवरे, एगा वेयणा, एगा णिज्जरा।

कठिन शब्दार्थ - **सुयं** - सुना है, **मे** - मैंने, **आउसं** - हे आयुष्मन्!, **तेणं** - उन, **भगवया** - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने, **अक्खायं** - फरमाया है, **एगे** - एक, **आया** - आत्मा, **अणाया** - अनात्मा, **धम्मे** - धर्मास्तिकाय, **अधम्मे** - अधर्मास्तिकाय।

भावार्थ :- पांचवें गणधर श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बूस्वामी से कहते हैं कि - हे आयुष्मन् जम्बू! मैंने सुना है उन श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने इस प्रकार फरमाया है - इस वर्तमान जैन शासन के विषय में श्रुतधर्म की आदि करने वाले, धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले, स्वयंसंबुद्ध यानी अपने आप ही बोध पाये हुए, पुरुषों में उत्तम, पुरुषों में सिंह के समान, पुरुषों में पुण्डरीक-श्रेष्ठ सफेद कमल के समान, पुरुषों में प्रधान गन्धहस्ती के समान, लोक में उत्तम, लोक के नाथ, लोक का हित करने वाले, लोक के लिए दीपक के समान, लोक में उद्योत करने वाले, जीवों को अभयदान देने वाले, ज्ञान रूपी चक्षु को देने वाले, मोक्षमार्ग को देने वाले, शरण देने वाले, संयम एवं ज्ञान रूप जीवन देने वाले, बोधि अर्थात्

❀ यह पाठ किसी किसी प्रति में है। इसलिए इस सारे पाठ को कोष्ठक (ब्रेकिट) में दिया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्त्व के देने वाले, चारित्र धर्म को देने वाले, श्रुतचारित्र रूप धर्म का उपदेश देने वाले, धर्म के नायक, धर्म रूपी रथ के सारथि, चार गति का अन्त करने वाले, धर्म रूप चक्र को धारण करने वाले अत एव प्रधान चक्रवर्ती रूप, संसार-समुद्र में द्वीप के समान, रक्षक रूप शरणभूत गति रूप, संसार सागर में गिरते हुए प्राणियों के लिये आधार रूप, अप्रतिहत अर्थात् बाधा रहित, पूर्ण ज्ञान दर्शन को धारण करने वाले, छद्मस्थपने से निवृत्त होने वाले, स्वयं राग द्वेष को जीतने वाले, दूसरों को राग द्वेष जीताने वाले, स्वयं संसार समुद्र से तिरे हुए, दूसरों को संसार समुद्र से तिराने वाले, स्वयमेव बोध को प्राप्त करने वाले, दूसरों को बोध प्राप्त कराने वाले, स्वयं कर्म बन्धन से मुक्त होने वाले, दूसरों को कर्म बन्धन से मुक्त कराने वाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, शिव-कल्याण स्वरूप, निरुपद्रव, अचल-स्थिर, रोग रहित, अनन्त-अन्त रहित, अक्षय-विनाश रहित, बाधा पीड़ा रहित, पुनरागमन रहित, सिद्धिगति रूप शाश्वत स्थान को प्राप्त होने के अभिलाषी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने गणिपिटक रूप ये बारह अङ्ग फरमाये हैं। यथा - आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग, स्थानाङ्ग, समवायाङ्ग, व्याख्या प्रज्ञप्ति-भगवती, ज्ञाताधर्मकथाङ्ग, उपासकदशाङ्ग, अन्तकृद्दशाङ्ग, अनुत्तरौपपातिकदशाङ्ग, प्रश्नव्याकरण, विपाक सूत्र, दृष्टिवाद। इन बारह अङ्गों में चौथा अङ्ग समवायाङ्ग कहा गया है। उस समवायाङ्ग का यह अर्थ फरमाया है। यथा - किसी अपेक्षा से आत्मा एक है। अनात्मा यानी घट पटादि पदार्थ द्रव्य अपेक्षा से एक है। हिंसादि रूप दण्ड एक है। अहिंसादि रूप अदण्ड एक है। कायिकी आदि अथवा अस्ति रूप क्रिया एक है। योग निरोध रूप अथवा नास्ति रूप अक्रिया एक है। लोक एक है। अलोक एक है। धर्मास्तिकाय एक है। अधर्मास्तिकाय एक है। पुण्य-शुभ कर्म एक है। पाप-अशुभ कर्म एक है। बन्ध एक है। मोक्ष एक है। आस्रव एक है। संवर एक है। वेदना एक है। निर्जरा एक है।

विवेचन - समवायाङ्ग सूत्र में एक की संख्या से शुरू करके एक-एक की वृद्धि करते हुए सौ तक बोलों का कथन किया है। ये बोल एकोत्तर वृद्धि के कहलाते हैं। इसके आगे भी अनेक बोल दिये गये हैं। ये अनेकोत्तर वृद्धि के कहलाते हैं।

संसार में मुख्य रूप से दो ही पदार्थ हैं - आत्मा (जीव) और अनात्मा (अजीव)। इन दोनों में भी आत्मा की प्रधानता है। आत्मा ही ज्ञाता और विज्ञाता है। इसीलिये शास्त्रकार ने सर्वप्रथम आत्मा का ही कथन किया है। शास्त्र का प्रारम्भ करते हुए गणधर देव श्री सुधर्मा स्वामी ने फरमाया है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"सुयं मे आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं"

संस्कृत भाषा का यह लचीलापन है कि - अलग-अलग पदच्छेद करने से अलग-अलग अर्थ हो जाते हैं। जैसे कि - इसकी संस्कृत छाया की गई है -

"श्रुतम् मया हे आयुष्मन् तेन भगवता एवं आख्यातम्।"

जिसका अर्थ है - हे आयुष्मन् जम्बू! मैंने सुना है - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने इस प्रकार फरमाया है। दूसरी तरह से इसकी संस्कृत छाया इस प्रकार की है -

"श्रुतम् मया आयुष्मता भगवता।"

अर्थात् आयुष्य वाले भगवान् ने इस प्रकार फरमाया है - इसका तात्पर्य यह है कि - जब तक आयुष्य है तब तक भगवान् वाणी फरमा सकते हैं। आयुष्य समाप्त होने पर नहीं फरमा सकते। तीसरी, चौथी और पांचवीं वक्त संस्कृत छाया करते हुए - **"आउसंतेणं"** शब्द का सुधर्मा स्वामी का विशेषण बनाया है। संस्कृत छाया बनाई है - **"आवसता मया श्रुतम्"** अर्थात् - गुरु महाराज के पास रहते हुए मैंने सुना है। चौथी छाया की है - **"आमृशता मया श्रुतम्"** विनय पूर्वक भगवान् के दोनों चरण कमलों को दोनों हाथों से स्पर्श करते हुए मैंने सुना है। पांचवीं छाया की है - **"आजुषमाणेन मया श्रुतं"** हृदय में भगवान् के प्रति बहुमान रखते हुए भक्ति और प्रीतिपूर्वक योगों की स्थिरतापूर्वक मैंने सुना है। इस प्रकार एक ही शब्द के भिन्न-भिन्न पदच्छेद करते हुए भिन्न-भिन्न अर्थ किये हैं। तीर्थङ्करों की पाट परम्परा चले इस अभिप्राय से तथा अपने वचनों में विशेष श्रद्धा उत्पन्न हो इस दृष्टि से श्री सुधर्मास्वामी ने फरमाया है कि - मैंने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के मुखारविन्द से सुना है। अर्थात् साक्षात् सुना है, परम्परा से नहीं। आचाराङ्ग सूत्र में भगवान् ने फरमाया है कि - **'सव्वे पाणा पियाउया'** अर्थात् सब प्राणियों को अपना आयुष्य प्रिय है इसलिये श्री सुधर्मा स्वामी ने अपने शिष्य जम्बूस्वामी को **'हे आयुष्मन् जम्बू!'** इस सम्बोधन से सम्बोधित किया है।

जो ज्ञान दर्शन रूप उपयोग में निरन्तर रहे, उसे आत्मा कहते हैं। उपयोग रहित को अनात्मा (अजीव) कहते हैं। प्रत्येक आत्मा असंख्यात प्रदेशी होते हुए भी द्रव्य रूप से एक है। दुष्प्रयुक्त मन, वचन, काया रूप दण्ड (हिंसा मात्र) सामान्य रूप से एक है इसी प्रकार ऊर्ध्व लोक, अधो लोक और तिरछा लोक तीनों असंख्यात प्रदेशी होते हुए भी द्रव्य रूप से एक है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और लोकाकाश असंख्यात प्रदेशी हैं। आकाशास्तिकाय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लोक और अलोक दोनों जगह होने से अनंत प्रदेशी होते हुए भी द्रव्य रूप से एक है। यहाँ धर्म शब्द से धर्मास्तिकाय और अधर्म शब्द से अधर्मास्तिकाय लिया गया है। शुभ कर्म को पुण्य और अशुभ कर्म को पाप तथा जीव और कर्म का क्षीर नीर की तरह एकमेक हो जाने को 'बन्ध' कहते हैं। इसी प्रकार मोक्ष, आस्रव, संवर, वेदना और निर्जरा का भी एकत्व समझना चाहिए।

प्रश्न - भंते (भगवान्) किसे कहते हैं ?

उत्तर - भंते की छाया संस्कृत में भगवत् शब्द है। उसका अर्थ किया है, ''भगं भाग्यं विद्यते यस्य स भगवान्'' भग शब्द के छह अर्थ होते हैं। यथा -

ऐश्वर्यस्य, समग्रस्य, रूपस्य, यशसः श्रियः ।

धर्मस्याथ प्रयत्नस्य, षण्णां भग इतीङ्गना ॥

अर्थ - सम्पूर्ण ऐश्वर्य रूप, यश, संयम, लक्ष्मी, धर्म और धर्म में पुरुषार्थ, इन छह बातों का स्वामी भगवान् कहलाता है।

प्रश्न - तीर्थंकर किसे कहते हैं ?

उत्तर - **''तीर्थं करोति इति तीर्थङ्करः''**

अर्थ - साधु, साध्वी, श्रावक श्राविका रूप चतुर्विध संघ रूप तीर्थ की जो स्थापना करे, उसे ''तीर्थंकर'' कहते हैं।

जंबुद्दीवे दीवे एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते। अप्पइट्ठाणे णरए एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते। पालए जाणविमाणे एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते। सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते। अद्दा णक्खत्ते एगतारे पण्णत्ते। चित्ता णक्खत्ते एगतारे पण्णत्ते। साइ णक्खत्ते एगतारे पण्णत्ते। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं उक्कोसेणं एगं सागरोवमं ठिई पण्णत्ता। दोच्चाए पुढवीए णेरइयाणं जहण्णेणं एगं सागरोवमं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं उक्कोसेणं एगं साहियं सागरोवमं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमारिंदवज्जियाणं भोमिज्जाणं देवाणं अत्थेगइयाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता। असंखिज्जवासाउय सण्णि पंचिंदिय तिरिक्ख जोणियाणं अत्थेगइयाणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता। असंखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय सण्णिमणुयाणं अत्थेगइयाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता। वाणमंतराणं देवाणं उक्कोसेणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता। जोइसियाणं देवाणं उक्कोसेणं एगं पलिओवमं वाससयसहस्समब्भहियं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मे कप्पे देवाणं जहण्णेणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मे कप्पे देवाणं अत्थेगइयाणं एगं सागरोवमं ठिई पण्णत्ता। ईसाणे कप्पे देवाणं जहण्णेणं साइरेगं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता। ईसाणे कप्पे देवाणं अत्थेगइयाणं एगं सागरोवमं ठिई पण्णत्ता। जे देवा सागरं सुसागरं सागरकंतं भवं मणुं माणुसोत्तरं लोगहियं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं एगं सागरोवमं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा एगस्स अद्धमासस्स (एगेणं अद्धमासेणं) आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा णीससंति वा, तेसिणं देवाणं एगस्स वाससहस्सस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइया भवसिद्धिया जे जीवा ते एगेणं भवग्गहणेणं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिणिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ सूत्र १ ॥

कठिन शब्दार्थ - एगं जोयणसयसहस्सं - एक लाख योजन, **आयामविक्खंभेणं** - लम्बा-चौड़ा, **अप्पइट्ठाणे णरए** - अप्रतिष्ठान नामक नरकावास, **पालए जाण विमाणे** - पालक यान विमान, **अद्दा** - आर्द्रा, **चित्ता** - चित्रा, **साइ** - स्वाति, **अत्थेगइयाणं** - कितनेक, **ठिई** - स्थिति, **पलिओवमं** - पल्योपम, **उक्कोसेणं** - उत्कृष्ट, **सागरोवमं** - सागरोपम, **साहियं** - कुछ अधिक, **असुरकुमारिंद वज्जियाणं** - असुरकुमारों के इन्द्रों को छोड़ कर, **असंखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय - सण्णिमणुयाणं** - असंख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज संज्ञी मनुष्यों में, **वाससयसहस्समब्भहियं** - एक लाख वर्ष अधिक, **वाससहस्सस्स** - एक हजार वर्ष, **आहारट्ठे** - आहार की इच्छा, **समुप्पज्जइ** - उत्पन्न होती है।

भावार्थ - यह जम्बूद्वीप एक लाख योजन का लम्बा चौड़ा कहा गया है। सातवीं नरक का अप्रतिष्ठान नामक नरकावास एक लाख योजन का लम्बा चौड़ा कहा गया है। सौधर्मेन्द्र का पालक यान विमान एक लाख योजन का लम्बा-चौड़ा कहा गया है। सर्वार्थ सिद्ध महाविमान एक लाख योजन का लम्बा-चौड़ा कहा गया है। आर्द्रा नक्षत्र, चित्रा नक्षत्र और स्वाति नक्षत्र एक एक तारा वाले कहे गये हैं। इस रत्नप्रभा नरक में कितनेक नैरयिकों की यानी चौथे पाथड़े के नैरयिकों की मध्यम स्थिति एक पल्योपम कही गई है। इस रत्नप्रभा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति एक पल्योपम कही गई है। इस रत्नप्रभा नरक में तेरहवें पाथड़े के नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम कही गई है। दूसरी नरक में नैरयिकों की जघन्य स्थिति एक सागरोपम कही गई है। असुरकुमार देवों में कितनेक देवों की स्थिति एक पल्योपम कही गई है। असुरकुमार देवों की उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम से कुछ अधिक कही गई है। असुरकुमारों के इन्द्र अर्थात् चमरेन्द्र और बलीन्द्र को छोड़ कर बाकी भवनपति देवों में से कितनेक देवों की स्थिति एक पल्योपम कही गई है। असंख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियों में से कितनेक अर्थात् हेमवय हिरण्णवय क्षेत्रों में उत्पन्न हुए तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियों की स्थिति एक पल्योपम कही गई है। असंख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज संज्ञी मनुष्यों में से कितनेक अर्थात् हेमवय हिरण्णवय क्षेत्रों में उत्पन्न होने वाले गर्भज संज्ञी मनुष्यों की स्थिति एक पल्योपम कही गई है। वाणव्यन्तर देवों की उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम कही गई है। ज्योतिषी देवों की उत्कृष्ट स्थिति एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम कही गई है। पहले सौधर्म देवलोक में देव और देवियों की जघन्य स्थिति एक पल्योपम कही गई है। प्रथम सौधर्म देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति एक सागरोपम कही गई है। दूसरे ईशान देवलोक में देवों की और देवियों की जघन्य स्थिति एक पल्योपम से अधिक कही गई है। दूसरे ईशान देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति एक सागरोपम कही गई है। जो देव दूसरे ईशान देवलोक के सातवें पाथड़े के सागर सुसागर सागरकान्त भव मनु मानुष्योत्तर और लोक हित इन आठ विमानों में देव रूप से उत्पन्न होते हैं उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम कही गई है। वे देव एक अर्द्धमास अर्थात् एक पक्ष (पन्द्रह दिन का एक पक्ष होता है।) से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाहरी श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को एक हजार वर्ष से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। उनमें से कितनेक भवसिद्धिक यानी भव्य जीव एक मनुष्य भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, कर्म विकारों से रहित होकर शीतलीभूत होंगे और सब दुःखों का अन्त करेंगे।

विवेचन – प्रश्न – प्रायः करके, थोकड़ा वाले पूछा करते हैं कि – चार लाख कौन से हैं ?

उत्तर – यहाँ बतलाया गया है कि – जम्बूद्वीप, सातवीं नरक का अप्रतिष्ठान नरकेन्द्र, सर्वार्थसिद्ध और पहले देवलोक का पालक नाम का यान विमान, ये चार पदार्थ एक लाख योजन के लम्बे और एक लाख योजन के चौड़े हैं। इनकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सो सत्ताईस योजन तीन गाउ एक सौ अट्ठाईस धनुष और साढे तेरह अंगुल से कुछ अधिक है। इन चारों में जो विशेषता है वह ठाणाङ्ग सूत्र के तीसरे ठाणे के पहले उद्देशक में इस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार बतलाई गयी है - **"तओ लोगे समा सपक्खिं सपडिदिसिं"** अर्थात् अप्रतिष्ठान नरक, जम्बूद्वीप और सर्वार्थसिद्ध ये तीन तो दिशा और विदिशा में समान रूप से आये हुए हैं। किन्तु पालक विमान को तो जब इन्द्र कहीं बाहर जाता हो तब वैक्रिय से बनाया जाता है। वह उपरोक्त तीन की तरह समान दिशा और विदिशा में आया हुआ नहीं है। यह सवारी के काम आता है। इसलिये इसको यान (आना-जाना) विमान कहते हैं।

रत्नप्रभा आदि सात नरक हैं। पहली नरक से दूसरी, तीसरी आदि विशेष-विशेष लम्बी और चौड़ी हैं। सातों नरकों के ४९ पाथड़े (प्रस्तट-प्रतर) हैं। प्रत्येक पाथड़े की मोटाई (जाडाई - ऊंचाई) तीन हजार योजन की है। पहली नरक में १३, दूसरी में ११, तीसरी में ९, चौथी में ७, पांचवीं में ५, छठी में ३ और सातवीं में १ पाथड़ा (प्रस्तट) है। जिस प्रकार नरकों में पाथड़े (प्रस्तट) हैं उसी प्रकार देवलोकों में भी पाथड़े हैं। पहला और दूसरा देवलोक बराबरी में आये हुए हैं। उनके (दोनों के) १३ पाथड़े हैं। तीसरा और चौथा देवलोक उन दोनों (पहले और दूसरे) के ऊपर हैं। किन्तु वे दोनों बराबरी में आये हुए हैं। उन दोनों के १२ पाथड़े हैं। पांचवा, छठा, सातवां और आठवां देवलोक एक घड़े के ऊपर दूसरे घड़े की तरह हैं। पांचवें देवलोक के ६, छठे देवलोक के ५, सातवें के ४ और आठवें के ४ पाथड़े हैं। नौवां दसवां दोनों बराबरी में आये हुए हैं, इन दोनों के ४ पाथड़े हैं। ग्यारहवाँ और बारहवाँ दोनों देवलोक बराबरी में आये हुए हैं। इन दोनों के ४ पाथड़े हैं। नव ग्रैवेयक एक घड़े के ऊपर दूसरे घड़े की तरह ऊपरा-ऊपरी आये हुए हैं। इनके ९ पाथड़े हैं। पांच अनुत्तर विमान का एक पाथड़ा है। इस प्रकार इन २६ देवलोकों के ६२ पाथड़े हैं। नरक के ४९ और देवलोक के ६२ पाथड़ों में रहने वाले नैरयिक जीवों की और देवों की अलग-अलग अवगाहना और स्थिति टीका में बतलाई गयी है।

जिन तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय और मनुष्यों का आयुष्य करोड़ पूर्व से अधिक होता है, उनको असंख्यात वर्ष की आयुष्य वाले कहा गया है। वे युगलिक होते हैं। यहाँ पर वाणव्यन्तर देवों की उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम की बतलाई गयी है। वह देवों की ही समझनी चाहिए क्योंकि वाणव्यन्तर देवियों की उत्कृष्ट स्थिति आधे पल्योपम से अधिक नहीं होती है। सौधर्मकल्प में जघन्य स्थिति एक पल्योपम की कही है वह देव और देवियों दोनों की समझनी चाहिए। क्योंकि - सौधर्म देवलोक में एक पल्योपम से कम स्थिति नहीं होती है। इसके आगे जो सौधर्म कल्प में एक सागरोपम की स्थिति बतलाई है। वह केवल देवों की ही समझनी चाहिए। क्योंकि वहाँ देवियों की उत्कृष्ट स्थिति भी पचास पल्योपम से अधिक नहीं होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ईशान कल्प में जघन्य स्थिति एक पल्योपम से कुछ अधिक बताई है। यहाँ पर देव और देवी दोनों की समझनी चाहिए। इसके आगे ईशान कल्प में कितनेक देवों की स्थिति एक सागरोपम की बताई है। यहाँ पर मात्र देवों की ही समझनी चाहिए क्योंकि वहाँ पर देवियों की उत्कृष्ट स्थिति भी ५५ पल्योपम से अधिक नहीं होती है। सागर सुसागर आदि आठ विमानों में देव ही उत्पन्न होते हैं, देवियाँ नहीं। जिन देवों की स्थिति जितने सागरोपम की होती है। वे देव उतने ही पक्ष (पखवाड़ा) से आभ्यन्तर और बाह्य श्वासोश्वास लेते हैं और उतने ही हजार वर्षों से उनको आहार ग्रहण करने की इच्छा होती है। यह आभोग निर्वर्तित आहार की अपेक्षा से समझना चाहिए। अनाभोग निर्वर्तित आहार तो सब देवों के प्रति समय होता ही रहता है। इच्छा पूर्वक लिया हुआ आहार 'आभोग निर्वर्तित' कहलाता है और बिना इच्छा के रोमों के द्वारा निरन्तर लिया जाने वाला 'आहार अनाभोग निर्वर्तित' कहलाता है।

भवसिद्धिक - जिन जीवों में मोक्ष जाने की योग्यता है उन्हें 'भवसिद्धिक' (भवी, भव्य) कहते हैं। वे जल्दी या देरी से अवश्य मोक्ष जायेंगे। यहाँ पर पहले समवाय से लेकर तेतीसवें समवाय तक पल्योपम और सागरोपम की स्थिति वाले जीवों का वर्णन किया गया है। साथ ही उन भवसिद्धिक जीवों का भी वर्णन किया है। जो एक भव करके मोक्ष जायेंगे । यावत् तेतीस भव करके मोक्ष जायेंगे। इसमें चारों गति के भवों की संख्या बताई गयी है। किन्तु अन्तिम भव तो मनुष्य का ही करेंगे । क्योंकि मनुष्य गति से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। दूसरी गति से नहीं।

अभवसिद्धिक - जिनमें मोक्ष जाने की योग्यता नहीं अर्थात् जो कभी भी मोक्ष नहीं जायेंगे किन्तु चतुर्गति रूप संसार में ही परिभ्रमण करते रहेंगे, उन्हें 'अभवसिद्धिक' (अभवी-अभव्य) कहते हैं।

दूसरा समवाय

दो दंडा पण्णत्ता तंजहा - अट्ठादंडे चेव अणट्ठादंडे चेव। दुवे रासी पण्णत्ता तंजहा - जीवरासी चेव अजीवरासी चेव। दुविहे बंधणे पण्णत्ते तंजहा - रागबंधणे चेव दोसबंधणे चेव। पुव्वाफग्गुणी णक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते। उत्तराफग्गुणी णक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते। पुव्वाभद्दवया णक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते। उत्तराभद्दवया णक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं दो पलिओवमाइं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ठिई पण्णत्ता। दुच्चाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं दो सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमारिंदवज्जियाणं भोमिज्जाणं देवाणं उक्कोसेणं देसूणाइं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। असंखिज्जवासाउयसण्णिपंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं अत्थेगइयाणं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। असंखिज्जवासाउय सण्णि गब्भवक्कंतिय मणुस्साणं अत्थेगइयाणं देवाणं च दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मे कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। ईसाणे कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मे कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ईसाणे कप्पे देवाणं उक्कोसेणं साहियाइं दो सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। सणंकुमारे कप्पे देवाणं जहण्णेणं दो सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। माहिंदे कप्पे देवाणं जहण्णेणं साहियाइं दो सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा सुभं सुभकंतं सुभवण्णं सुभगंधं सुभलेसं सुभफासं सोहम्मवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा दोण्हं अद्धमासाणं (दोहिं अद्धमासेहिं) आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा णीससंति वा । तेसिणं देवाणं दोहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ । अत्थेगइया भवसिद्धिया जीवा जे दोहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति, बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिणिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ सूत्र २ ॥

कठिन शब्दार्थ - **अट्ठादंडे** - अर्थदण्ड, **अणट्ठादंडे** - अनर्थदण्ड, **पुव्वा** - पूर्व, **फग्गुणी** - फाल्गुनी, **णक्खत्ते** - नक्षत्र, **भद्दवया** - भाद्रपदा, **दुतारे** - दो तारों वाले, **देसुणाइं** - देशोन, **आणमंति** - आभ्यंतर ऊँचा श्वास लेते हैं, **पाणमंति** - आभ्यंतर नीचा श्वास लेते हैं, **उस्ससंति** - बाह्य ऊंचा श्वास लेते हैं, **णीससंति** - बाह्य नीचा श्वास लेते हैं, **दोहिं** - दो, **भवग्गहणेहिं** - भव ग्रहण करके, **परिणिव्वाइस्संति** - परिनिर्वृत होंगे अर्थात् शीतलीभूत होंगे, **सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति** - सब दुःखों का अंत करेंगे।

भावार्थ - दो दण्ड कहे गये हैं यथा - अर्थदण्ड और अनर्थदण्ड। दो राशि कही गई हैं यथा - जीवराशि और अजीवराशि । दो प्रकार का बन्धन कहा गया है यथा - रागबन्धन और द्वेषबन्धन। पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र, पूर्व भाद्रपदा नक्षत्र और उत्तर भाद्रपदा नक्षत्र ये चार नक्षत्र दो-दो तारों वाले कहे गये हैं। इस रत्नप्रभा नरक में कितनेक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नैरयिकों की स्थिति दो पल्योपम की कही गई है। दूसरी नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति दो सागरोपम कही गई है। असुरकुमार देवों में कितनेक देवों की स्थिति दो पल्योपम कही गई है। असुरकुमारेन्द्र यानी चमरेन्द्र और बलीन्द्र को छोड़ कर बाकी भवनपति देवों की स्थिति देशोन दो पल्योपम कही गई है। असंख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियों में कितनेक यानी हरिवर्ष और रम्यक वर्ष क्षेत्रों में उत्पन्न युगलिक तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियों की स्थिति दो पल्योपम की कही गई है। असंख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी गर्भज मनुष्यों में कितनेक अर्थात् हरिवर्ष रम्यक वर्ष क्षेत्रों में उत्पन्न युगलिक मनुष्यों की और कितनेक देवों की स्थिति दो पल्योपम की कही गई है। सौधर्म देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति दो पल्योपम की कही गई है। दूसरे ईशान देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति दो पल्योपम की कही गई है। सौधर्म देवलोक में कितनेक देवों की उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपम की कही गई है। ईशान देवलोक में देवों की उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपम से कुछ अधिक की कही गई है। तीसरे सनत्कुमार देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति दो सागरोपम से कुछ अधिक की कही गई है। चौथे माहेन्द्र देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति दो सागरोपम से कुछ अधिक की कही गई है। सौधर्म देवलोक के तेरहवें पाथड़े में शुभ, शुभकान्त, शुभवर्ण, शुभगन्ध, शुभलेश्य, शुभ स्पर्श, सौधर्मावतंसक विमान हैं, उनमें जो देव देव रूप से उत्पन्न होते हैं उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपम की कही गई है, वे देव दो पखवाड़ों से आभ्यन्तर ऊंचा श्वास लेते हैं आभ्यन्तर नीचा श्वास लेते हैं। बाह्य ऊंचा श्वास लेते हैं बाह्य नीचा श्वास लेते हैं। उन देवों को दो हजार वर्षों से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। कितनेक भवी जीव दो भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, मुक्त होंगे, शीतलीभूत होंगे, सब दुःखों का अन्त करेंगे ॥ २ ॥

विवेचन - दण्ड का सीधा अर्थ है सजा देना अर्थात् जीवहिंसा करना 'दण्ड' कहलाता है। उसके दो भेद हैं - **१. अर्थ दण्ड** - अपने लिये अथवा दूसरे जीवों के लिये त्रस और स्थावर जीवों की जो हिंसा की जाती है उसे 'अर्थ दण्ड' कहते हैं। **२. अनर्थ दण्ड** - किसी भी प्रयोजन के बिना व्यर्थ में जीव हिंसा रूप कार्य करना 'अनर्थ दण्ड' कहलाता है।

वस्तु के समूह को 'राशि' कहते हैं। राशि के दो भेद हैं - जीव राशि और अजीव राशि। जो चेतना युक्त हो तथा द्रव्य प्राण और भाव प्राण वाला हो, उसे 'जीव' कहते हैं। जिसमें चैतन्यता (उपयोग) गुण न हो, उसे 'अजीव' कहते हैं। द्रव्य प्राण दस हैं। वे इस प्रकार हैं -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चेन्द्रियाणि त्रिविधं बलं च, उच्छ्वास निःस्वास मथान्यदायुः ।
प्राणाःदशैते भगवद्भिरुक्ताः, तेषां वियोजीकरणं तु हिंसा ॥

जिन से प्राणी जीवित रहे, उन्हें प्राण कहते हैं। वे दस हैं -

१. स्पर्शनेन्द्रिय बल प्राण २. रसनेन्द्रिय बल प्राण ३. घ्राणेन्द्रिय बल प्राण ४. चक्षुरिन्द्रिय बल प्राण ५. श्रोत्रेन्द्रिय बल प्राण ६. काय बल प्राण ७. वचन बल प्राण ८. मन बल प्राण ९. श्वासोच्छ्वास बल प्राण १०. आयुष्य बल प्राण।

भाव प्राण चार हैं यथा - अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति (अनन्त आत्मिक सामर्थ्य) और अनन्त सुख (अव्याबाध सुख) । सिद्ध भगवन्तों में ये चार भाव प्राण होते हैं। कोई कोई "अनन्त वीर्य" कहते हैं। किन्तु यह कथन आगमानुकूल नहीं है। क्योंकि भगवती सूत्र शतक १ उद्देशक ८ में सिद्ध भगवन्तों में "वीर्य" का निषेध किया है। वीर्य का अर्थ है - किसी भी कार्य को सम्पन्न करने की शक्ति (पुरुषार्थ) । किन्तु सिद्ध भगवान् को कोई भी कार्य करना बाकी नहीं रहा है। वे निष्ठितार्थ (कृतकार्य-कृतकृत्य) हो चुके हैं। इसीलिये उनमें वीर्य नहीं होता है।

बन्धन - जिसके द्वारा कर्म और आत्मा क्षीर, नीर दूध और पानी की तरह एक रूप हो जाते हैं उसे बन्धन कहते हैं। बन्धन के दो भेद हैं १. राग बन्धन और २. द्वेष बन्धन। जिससे जीव मनोज्ञ वस्तु को देखकर आसक्त (अनुरक्त) हो जाय, उसे 'राग बन्धन' कहते हैं। अमनोज्ञ वस्तु को देखकर उस पर द्वेष करने से होने वाला बन्ध 'द्वेष बन्धन' कहलाता है।

असुरकुमार जाति के दो इन्द्र हैं - चमर और बलि। इनको छोड़कर उत्तर दिशा के नवनिकाय के देवों की उत्कृष्ट स्थिति दो पल्योपम से कुछ कम है। तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय और गर्भज मनुष्य की जो दो पल्योपम की स्थिति बतलाई है वह हरिवर्ष और रम्यकवर्ष क्षेत्रों में उत्पन्न युगलिक की अपेक्षा समझनी चाहिए।

तीसरा समवाय

तओ दंडा पण्णत्ता तंजहा - मण दंडे, वय दंडे, काय दंडे। तओ गुत्तीओ पण्णत्ताओ तंजहा-मणगुत्ती, वयगुत्ती, कायगुत्ती। तओ सल्ला पण्णत्ता तंजहा-मायासल्ले णं णियाणसल्ले णं मिच्छादंसणसल्ले णं, तओ गारवा पण्णत्ता तंजहा-इड्ढि गारवेणं रस गारवेणं साया गारवेणं । तओ विराहणा पण्णत्ता तंजहा - णाण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विराहणा, दंसण विराहणा, चरित्त विराहणा । मिगसिर णक्खत्ते तितारे पण्णत्ते। पुस्स णक्खत्ते तितारे पण्णत्ते। जेट्ठा णक्खत्ते तितारे पण्णत्ते। अभीइ णक्खत्ते तितारे पण्णत्ते। सवण णक्खत्ते तितारे पण्णत्ते। अस्सिणी णक्खत्ते तितारे पण्णत्ते। भरणी णक्खत्ते तितारे पण्णत्ते। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। दोच्चाए णं पुढवीए णेरइयाणं उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। तच्चाए णं पुढवीए णेरइयाणं जहण्णेणं तिण्णि सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। असंखिज्जवासाउय सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। असंखिज्जवासाउय सण्णिगब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सणंकुमारमाहिंदेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं तिण्णि सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा आभंकरं पभंकरं आभंकरपभंकरं चंदं चंदावत्तं चंदप्पभं चंदकंतं चंदवण्णं चंदलेस्सं चंदज्झयं चंदसिंगं चंदसिट्ठं चंदकूडं चंदुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा तिण्हं अद्धमासाणं (तिहिं अद्धमासेहिं) आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा। तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं तिहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ । संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे तिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिणिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ।। सूत्र ३ ।।

कठिन शब्दार्थ - **सल्ला** - शल्य, **गारवा** - गारव या गौरव, **मिगसिर** - मृगशिर, **पुस्स** - पुष्य, **जेट्ठा** - ज्येष्ठा, **अभीइ** - अभिजित, **अस्सिणी** - अश्विनी, **तितारे** - तीन तारों वाले, **देवत्ताए** - देव रूप से, **उववण्णा** - उत्पन्न हुए हैं।

भावार्थ - **दण्ड** - जिससे आत्मा दण्डित हो उसे दण्ड कहते हैं, वह दण्ड तीन प्रकार का कहा है। यथा - मन दण्ड, वचन दण्ड, काय दण्ड। **गुप्ति** - मन वचन काया की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना या आते हुए नवीन कर्मों को रोकना गुप्ति कहलाती है। वे गुप्तियाँ तीन कही गई हैं यथा - मन गुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति। **शल्य** - जिससे बाधा-पीड़ा हो, उसे शल्य कहते हैं। कांटा, भाला आदि द्रव्य शल्य हैं। जैसे द्रव्य शल्य शरीर में चुभ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाने पर शरीर के लिए दुःखदायी होते हैं, उसी तरह जो आत्मा के लिये दुःखदायी हों, उन्हें भाव शल्य कहते हैं। भाव शल्य तीन कहे गये हैं यथा - १. माया शल्य - कपट भाव रखना। २. निदान शल्य - तप संयम आदि धर्म क्रिया के फल स्वरूप इहलौकिक पारलौकिक ऋद्धियों की कामना करना। ३. मिथ्यादर्शन शल्य - विपरीत श्रद्धा होना। **गारव या गौरव** - वज्र आदि की गुरुता (भारीपन) द्रव्य गौरव है। अभिमान और लोभ से होने वाला आत्मा का अशुभ परिणाम भाव गौरव है। गौरव तीन कहे गये हैं यथा - १. ऋद्धि गौरव - इन्द्र नरेन्द्र आदि से पूज्य आचार्य आदि की ऋद्धि का अभिमान करना अथवा उनकी प्राप्ति की इच्छा करना। २. रस गौरव - रसना इन्द्रिय के विषय मधुर आदि रसों की प्राप्ति से अभिमान करना या उनकी इच्छा करना। ३. साता गौरव - साता स्वस्थता आदि शारीरिक सुखों की प्राप्ति होने से अभिमान करना या उनकी इच्छा करना। **विराधना** - ज्ञानादि का सम्यक् रीति से आराधन न करना, उनका खण्डन करना और उनमें दोष लगाना। वह विराधना तीन प्रकार की कही गई है। यथा - १. ज्ञान विराधना - ज्ञान और ज्ञानी की आशातना करना, अपलाप आदि द्वारा ज्ञान का खण्डन करना। २. दर्शन विराधना - जिन वचनों में शंका कांक्षा आदि द्वारा समकित की विराधना करना। ३. चारित्र विराधना - सामायिक आदि चारित्र की विराधना करना। मृगशिर, पुष्य, ज्येष्ठा, अभिजित, श्रवण, अश्विनी और भरणी, ये सात नक्षत्र तीन-तीन तारों वाले कहे गये हैं। इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नैरयिकों की स्थिति तीन पल्योपम कही गई है। दूसरी नारकी में नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम कही गई है। तीसरी नरक में नैरयिकों की जघन्य स्थिति तीन सागरोपम कही गई है। असुरकुमार देवों में से कितनेक देवों की स्थिति तीन पल्योपम की कही गई है। असंख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियों की अर्थात् देवकुरु उत्तरकुरु के युगलिक तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की कही गई है। असंख्यात वर्ष की आयु वाले अर्थात् देवकुरु उत्तरकुरु के युगलिक संज्ञी गर्भज मनुष्यों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की कही गई है ❀। सौधर्म और ईशान अर्थात् पहले और दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति तीन पल्योपम की कही गई है। सनत्कुमार और माहेन्द्र अर्थात् तीसरे और चौथे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति तीन सागरोपम की कही गई है। जो देव आभङ्कर, प्रभङ्कर, आभङ्करप्रभङ्कर, चन्द्र,

---

❀ भरत और ऐरवत क्षेत्र में भी सुषम सुषमा आरे में युगलिक तिर्यंच पंचेन्द्रिय और गर्भज मनुष्यों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्रावर्त, चन्द्रप्रभ, चन्द्रकान्त, चन्द्रवर्ण, चन्द्रलेश्य, चन्द्रध्वज, चन्द्रशृङ्ग, चन्द्रसृष्ट, चन्द्रकूट, चन्द्रोत्तरावतंसक विमान में देव रूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम की कही गई है। वे देव तीन पक्ष से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को तीन हजार वर्षों से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। कितनेक भवसिद्धिक जीव तीन भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मबन्धन से मुक्त होंगे, शीतलीभूत होंगे, सब दुःखों का अन्त करेंगे ॥ ३ ॥

विवेचन - यहाँ दण्ड तीन बतलाये गये हैं। दण्ड शब्द की व्याख्या टीकाकार ने इस प्रकार की है - **"दण्ड्यते - चारित्रैश्वर्या - पहारतो असारीक्रियते एभिरात्मेति दण्डाः।"**

अर्थात् - जो चारित्र रूपी आध्यात्मिक ऐश्वर्य का अपहरण कर आत्मा को असार कर देता है वह दण्ड है अथवा प्राणियों को जिससे दुःख पहुँचता है, उसे दण्ड कहते हैं, अथवा मन, वचन, काया की अशुभ प्रवृत्ति को दण्ड कहते हैं।

गुप्ति - मन, वचन, काया की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना गुप्ति कहलाता है। अथवा आने वाले कर्म रूपी कचरे को रोकना गुप्ति है। शुभ योग में प्रवृत्ति करने को भी किसी अपेक्षा गुप्ति कहते हैं।

शल्य - शस्त्र अथवा काँटे को शल्य कहते हैं। इसके दो भेद हैं। १. द्रव्य और २. भाव। सुई, कांटा, भाला आदि को द्रव्य शल्य कहते हैं। भाव शल्य के तीन भेद हैं यथा - कपट भाव रखना मायाशल्य है, अपने तप संयम की करणी के फलस्वरूप राजा देवता आदि की ऋद्धि की प्राप्ति के अध्यवसाय को निदान (नियाणा) शल्य कहते हैं। कुदेव, कुगुरु और कुधर्म को सुदेव, सुगुरु और सुधर्म मानकर उन पर श्रद्धा करना मिथ्यादर्शन शल्य है।

गौरव (गारव) - **"गुरोभावः कर्म वा इति गौरवम्"** (आच्च गौरवे) अर्थात् - जो भारी हो, उसे गौरव कहते हैं। प्राकृत में "आच्च गौरवे" इस सूत्र से 'औ' के स्थान में 'आ' हो जाता है। इसलिये संस्कृत और हिन्दी में गौरव कहते हैं और प्राकृत में गारव कहते हैं। इसके द्रव्य और भाव दो भेद हैं। वज्र (हीरा) आदि का भारी होना द्रव्य गौरव है। अभिमान और लोभ से होने वाला आत्मा का अशुभ अध्यवसाय भाव गौरव (भाव गारव) है। यह संसार चक्र में परिभ्रमण कराने वाले कर्मों का कारण है।

विराधना - ज्ञान दर्शन और चारित्र आदि का अच्छी तरह से आराधन न करना बल्कि उनका खण्डन करना और उनमें दोष लगाना विराधना है। इसके तीन भेद किये हैं यथा - ज्ञान विराधना, दर्शन विराधना और चारित्र विराधना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चौथा समवाय

चत्तारि कसाया पण्णत्ता तंजहा-कोहकसाए माणकसाए मायाकसाए लोभकसाए। चत्तारि झाणा पण्णत्ता तंजहा - अट्टज्झाणे रुद्दज्झाणे धम्मज्झाणे सुक्कज्झाणे। चत्तारि विकहाओ पण्णत्ताओ तंजहा - इत्थीकहा भत्तकहा रायकहा देसकहा। चत्तारि सण्णा पण्णत्ता तंजहा-आहारसण्णा भयसण्णा मेहुणसण्णा परिग्गहसण्णा। चउव्विहे बंधे पण्णत्ते तंजहा - पगइबंधे ठिइबंधे अणुभावबंधे पएसबंधे। चउ गाउए जोयणे पण्णत्ते। अणुराहा णक्खत्ते चउ तारे पण्णत्ते। पुव्वासाढा णक्खत्ते चउ तारे पण्णत्ते। उत्तरासाढा णक्खत्ते चउ तारे पण्णत्ते। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। तच्चाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं चत्तारि सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सणंकुमारमाहिंदेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा किट्टिं सुकिट्टिं किट्टियावत्तं किट्टिप्पभं किट्टिजुत्तं किट्टिवण्णं किट्टिलेस्सं किट्टिज्झयं किट्टिसिंगं किट्टिसिट्ठं किट्टिकूडं किट्टुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं चत्तारि सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा चउण्हं अद्धमासाणं (चउहिं अद्धमासेहिं) आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा । तेसिणं देवाणं चउहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। अत्थेगइया भवसिद्धिया जीवा जे चउहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ सूत्र ४ ॥

कठिन शब्दार्थ - चत्तारि - चार, **कसाया** - कषाय, **झाणा** - ध्यान, **पगइबंधे** - प्रकृति बंध, **पएसबंधे** - प्रदेश बंध, **अणुराहा** - अनुराधा, **सणंकुमारमाहिंदेसु** - सनत्कुमार और माहेन्द्र नामक देवलोक में।

भावार्थ - कषाय - जो शुद्ध स्वरूप वाली आत्मा को कलुषित करता है अर्थात् कर्म मल से मलिन करता है उसे कषाय कहते हैं। अथवा कष अर्थात् कर्म या संसार की आय अर्थात् प्राप्ति या वृद्धि जिससे हो, वह कषाय है। अथवा कषाय मोहनीय कर्म के उदय से होने वाला जीव का क्रोधादि वैभाविक परिणाम कषाय कहलाता है। वह कषाय चार प्रकार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का कहा गया है। यथा - क्रोध कषाय, मान कषाय, माया कषाय, लोभ कषाय । **ध्यान** - एक वस्तु पर चित्त को एकाग्र रखना ध्यान कहलाता है। वह ध्यान चार प्रकार का कहा गया है। यथा - १. आर्तध्यान - इष्ट वस्तु के संयोग और अनिष्ट वस्तु के वियोग की चिन्ता करना। २. रौद्रध्यान - हिंसा, झूठ आदि में मन को जोड़ना तथा धन, परिवार आदि की रक्षा की चिन्ता करना। ३. धर्मध्यान - वीतराग प्ररूपित तत्त्वों के चिन्तन में मन को एकाग्र रखना। ४. शुक्लध्यान - श्रुत के आधार से मन की अत्यन्त स्थिरता और योगों का निरोध शुक्ल ध्यान कहलाता है। **विकथा** - संयम में बाधक चारित्र विरुद्ध कथा को विकथा कहते हैं। विकथा चार कही गई है यथा - १. स्त्रीकथा - स्त्री की जाति, कुल, रूप और वेश आदि की कथा करना। २. भक्तकथा - भोजन सम्बन्धी कथा करना। ३. राजकथा - राजा की ऋद्धि आदि की कथा करना। ४. देशकथा - देश सम्बन्धी कथा करना। संज्ञा - असाता वेदनीय और मोहनीयकर्म के उदय से आहार आदि की इच्छा (अभिलाषा) होना संज्ञा कहलाती है। संज्ञा चार कही गई है। यथा - आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा, परिग्रह संज्ञा। **बन्ध** - जिसके द्वारा कर्म और आत्मा क्षीर नीर की तरह एक रूप हो जाते हैं उसे बन्ध कहते हैं। वह बन्ध चार प्रकार का कहा गया है। यथा - १. प्रकृति बन्ध - कर्मपुद्गलों का भिन्न भिन्न स्वभाव। २. स्थिति बन्ध - कर्मपुद्गलों की जीव के साथ रहने की काल मर्यादा। ३. अनुभाव बन्ध - कर्म पुद्गलों की फल देने की शक्ति का न्यूनाधिक होना। इसे अनुभव बन्ध और अनुभाग बन्ध (रस बन्ध) भी कहते हैं। ४. प्रदेश बन्ध - जीव के साथ कर्मपुद्गलों का न्यूनाधिक परिमाण में सम्बन्ध होना। चार कोस का एक योजन होता है। अनुराधा नक्षत्र, पूर्वाषाढा नक्षत्र, उत्तराषाढा नक्षत्र, ये तीन नक्षत्र चार-चार तारों वाले कहे गये हैं। इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति चार पल्योपम की कही गई है। तीसरी वालुकाप्रभा नामक नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति चार सागरोपम की कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति चार पल्योपम की कही गई है। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति चार पल्योपम की कही गई है। सनत्कुमार और माहेन्द्र नामक तीसरे और चौथे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति चार सागरोपम की कही गई है। तीसरे और चौथे देवलोक के कृष्टि, सुकृष्टि, कृष्ट्यावर्त्त, कृष्टिप्रभ, कृष्टियुक्त, कृष्टिवर्ण, कृष्टिलेश्य, कृष्टिध्वज, कृष्टिश्रृङ्ग, कृष्टिसृष्ट या कृष्टिसिद्ध, कृष्टिकूट, कृष्ट्युत्तरावतंसक इन बारह विमानों में जो देव देवरूप से उत्पन्न होते हैं उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति चार सागरोपम की कही गई है। वे देव चार पखवाड़ों से आभ्यन्तर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाहरी श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को चार हजार वर्षों से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। कितनेक भवसिद्धिक-भव्य जीव चार भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ॥ ४ ॥

विवेचन - कषाय - "कष्यन्ते पीड्यन्ते प्राणिनो अस्मिन् इति कषः संसारः तस्य आयः लाभः इति कषायः" जिसमें संसारी प्राणी दुःख भोगते हैं उसे कष कहते हैं। अर्थात् संसार का दूसरा नाम कष है। उसकी प्राप्ति जिससे हो, उसे कषाय कहते हैं। जन्म-मरण का कारण ही कषाय हैं। जैसा कि कहा है -

"रागो य दोसो वि य कम्मबीयं ।"

अर्थात् - राग और द्वेष ये दो ही कर्म के बीज हैं। अपनी आत्मा का हित चाहने वाले पुरुषों का कर्त्तव्य है कि - वे राग-द्वेष रूपी कषाय का सर्वथा त्याग कर दें।

कोहं माणं च मायं च, लोभं च पाववड्ढणं ।
वमे चत्तारि दोसे उ, इच्छंतो हियमप्पणो ॥

अर्थ - अपनी आत्मा का हित चाहने वाले साधक को चाहिए कि - वह क्रोध, मान, माया और पाप वर्धक लोभ का वमन कर दे। गाथा में "वमन" करना कहा है। इसका आशय यह है कि - छोड़ी हुई वस्तु को तो पच्चक्खाण के काल की मर्यादा के उपरान्त व्यक्ति फिर उस वस्तु को ग्रहण कर लेता है किन्तु वमन की हुई चीज को कोई भी ग्रहण नहीं करता। इसीलिये ज्ञानियों का फरमाना है कि - क्रोधादि कषाय को केवल छोड़े ही नहीं किन्तु सर्वथा वमन कर देना चाहिये फिर कभी ग्रहण नहीं करना चाहिये।

ध्यान - किसी एक वस्तु को लक्ष्य कर उस पर चित्त को स्थिर करना 'ध्यान' कहलाता है। छद्मस्थों के लिये ध्यान का कालपरिमाण एक अन्तर्मुहूर्त्त का कहा गया है। एक वस्तु से दूसरी वस्तु में ध्यान का संक्रमण होने पर ध्यान का प्रवाह लम्बे समय तक भी रह सकता है। वीतराग भगवान् का ध्यान तो योगों का निरोध करना मात्र है। ध्यान के चार भेद हैं। उनमें से आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान अप्रशस्त (अशुभ) ध्यान हैं। ये दोनों सर्वथा छोड़ने योग्य हैं। धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान ये दोनों प्रशस्त (शुभ) ध्यान हैं। ये दोनों आत्मा का कल्याण करने वाले हैं जैसा कि - बृहदालोयणा में कहा है -

राई मात्र घट वध नहीं, देखा केवल ज्ञान ।
यह निश्चय कर जानके, तजिये प्रथम ध्यान ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दूजा भी नहीं चिंतिये, कर्म बंध बहु दोष ।
तीजा चौथा ध्याय के, करिये मन संतोष ॥

अत एव प्रतिक्रमण में कायोत्सर्ग पारने के बाद सिर्फ इतना ही बोलना चाहिए कि - "कायोत्सर्ग में आर्त्तध्यान रौद्रध्यान ध्याया हो तो मिच्छामि दुक्कडं। कुछ लोग ऐसा भी बोलते हैं कि - "धर्मध्यान शुक्ल ध्यान नहीं ध्याया हो" तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं। परन्तु यह बोलना ठीक नहीं है क्योंकि कायोत्सर्ग स्वयं धर्म ध्यान रूप है और शुक्ल ध्यान श्रेणी चढ़ते समय आठवें गुणस्थान में आता है। वर्तमान में न तो उपशम श्रेणी है और न क्षपक श्रेणी है और न आठवाँ गुणस्थान है। दूसरी बात यह है कि 'मिच्छामि दुक्कडं' पाप का दिया जाता है। धर्म का नहीं। आर्त्तध्यान रौद्रध्यान पाप रूप हैं और धर्मध्यान एवं शुक्लध्यान दोनों धर्म रूप हैं। अतः इन दोनों का मिच्छामि दुक्कडं नहीं दिया जाता है।

आर्त्तध्यान की अपेक्षा रौद्रध्यान ज्यादा अशुभ है। आर्त्तध्यान में तो सिर्फ स्वयं के ही कर्म बन्ध होता है किन्तु रौद्रध्यान में स्वयं के और दूसरों के भी कर्मबन्ध होते हैं। रौद्रध्यान के परिणाम बड़े क्रूर और हिंसक होते हैं।

विकथा - कर्मबन्ध कराने वाली कथा को 'विकथा' कहते हैं। इनके चार भेद हैं फिर प्रत्येक के चार-चार भेद हो जाते हैं। जिसका विस्तृत वर्णन ठाणाङ्ग सूत्र के चौथे ठाणे में है। इसी प्रकार बन्ध का भी विस्तृत वर्णन ठाणाङ्ग सूत्र में है।

आहार करना आहार संज्ञा नहीं है किन्तु आहार की अभिलाषा (इच्छा) करना आहार संज्ञा है। इस में मोहनीय कर्म की प्रधानता होती है। आहार संज्ञा छठे गुणस्थान तक ही रहती है। जब कि - आहार तो तेरहवें गुणस्थानवर्ती केवली भगवान् भी करते हैं। किन्तु उनके आहार संज्ञा नहीं है। छठे गुणस्थान के बाद सातवें गुणस्थान से लेकर सभी संयत "**णो सण्णावउत्ता**" (नो संज्ञोपयुक्त) कहलाते हैं।

बन्ध - मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद ,कषाय, योग के निमित्त से अनन्त-अनन्त कर्म वर्गणा आत्मा के एक-एक प्रदेश के साथ बन्ध जाती है, उसे बन्ध कहते हैं।

चौबीस अंगुल का एक हाथ, चार हाथ का एक धनुष, दो हजार धनुष का एक कोस और चार कोस का एक योजन होता है। धनुष, दण्ड, युग (जुग), नालिका, अक्ष, मुसल, ये सभी चार-चार हाथ के होते हैं, इसलिये धनुष शब्द के साथ इनका भी प्रयोग किया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पांचवाँ समवाय

पंच किरिया पण्णत्ता तंजहा - काइया अहिगरणिया पाउसिया पारितावणिया पाणाइवाय किरिया। पंच महव्वया पण्णत्ता तंजहा - सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं, सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं । पंच कामगुणा पण्णत्ता तंजहा - सद्दा रूवा रसा गंधा फासा। पंच आसव दारा पण्णत्ता तंजहा - मिच्छत्तं, अविरई, पमाया, कसाया, जोगा। पंच संवरदारा पण्णत्ता तंजहा - सम्मत्तं, विरई, अप्पमत्तया, अकसाया, अजोगया। पंच णिज्जर ट्ठाणा पण्णत्ता तंजहा - पाणाइवायाओ वेरमणं, मुसावायाओ वेरमणं, अदिण्णादाणाओ वेरमणं, मेहुणाओ वेरमणं, परिग्गहाओ वेरमणं। पंच समिईओ पण्णत्ताओ तंजहा - इरियासमिई भासासमिई एसणासमिई आयाणभंडमत्तणिक्खेवणा समिई उच्चारपासवणखेलसिंघाणजल्लपारिट्ठावणिया समिई। पंच अत्थिकाया पण्णत्ता तंजहा - धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए जीवत्थिकाए पोग्गलत्थिकाए। रोहिणी णक्खत्ते पंच तारे पण्णत्ते। पुणव्वसु णक्खत्ते पंच तारे पण्णत्ते। हत्थ णक्खत्ते पंचतारे पण्णत्ते। विसाहाणक्खत्ते पंच तारे पण्णत्ते। धणिट्ठा णक्खत्ते पंच तारे पण्णत्ते। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं पंच पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। तच्चाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं पंच सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं पंच पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं पंच पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सणंकुमारमाहिंदेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं पंच सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा वायं सुवायं वायावत्तं वायप्पभं वायकंतं वायवण्णं वायलेस्सं वायज्झयं वायसिंगं वायसिट्ठं वायकूडं वाउत्तरवडिंसगं सूरं सुसूरं सूरावत्तं सूरप्पभं सूरकंतं सूरवण्णं सूरलेस्सं सूरज्झयं सूरसिंगं सूरसिट्ठं सूरकूडं सूरुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं पंच सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा पंचण्हं अद्ध मासाणं (पंचहिं अद्धमासेहिं) आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा। तेसिणं देवाणं पंचहिं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ । संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे पंचहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ सूत्र ५ ॥

कठिन शब्दार्थ - पंच - पांच, **किरिया** - क्रिया, **काइया** - कायिकी, **अहिगरणिया**- आधिकरणिकी, **पाउसिया** - प्राद्वेषिकी, **पारितावणिया** - पारितापनिकी, **पाणाइवाय किरिया** - प्राणातिपातिकी क्रिया, **महव्वया** - महाव्रत, **आसव दारा** - आस्रव द्वार, **समिई**- समिति, **अत्थिकाया** - अस्तिकाय, **पुणव्वसु** - पुनर्वसु, **हत्थ** - हस्त, **विसाहा** - विशाखा, **धणिट्ठा** - धनिष्ठा।

भावार्थ - पांच क्रिया कही गई हैं। यथा - १. कायिकी - काया से लगने वाली क्रिया २. आधिकरणिकी - जिस कार्य से अथवा तलवार आदि शस्त्र से आत्मा नरक गति का अधिकारी होता है उसे अधिकरण कहते हैं। उस अधिकरण से लगने वाली क्रिया आधिकरणिकी कहलाती है। ३. प्राद्वेषिकी - मत्सर भाव एवं ईर्षा रूप प्रद्वेष से लगने वाली क्रिया प्राद्वेषिकी कहलाती है। ४. पारितापनिकी-दूसरे प्राणी को दुःख देने से, परिताप उपजाने से लगने वाली क्रिया पारितापनिकी कहलाती है। ५. प्राणातिपातिकी - जीव के दस प्राणों में से किसी भी प्राण का विनाश करने से लगने वाली क्रिया प्राणातिपातिकी कहलाती है। पांच महाव्रत कहे गये हैं यथा - सब प्रकार के प्राणातिपात - हिंसा से निवृत्त होना, सब प्रकार के झूठ से निवृत्त होना, सब प्रकार के अदत्तादान - चोरी से निवृत्त होना, सब प्रकार के मैथुन से निवृत्त होना सब प्रकार के परिग्रह से निवृत्त होना। पांच कामगुण कहे गये हैं यथा - शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श। आस्रव द्वार - जिनसे कर्म आवें उन्हें आस्रव द्वार कहते हैं। वे पांच कहे गये हैं यथा - मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। संवर द्वार - आते हुए कर्म जिन से रोक दिये जावें उन्हें संवरद्वार कहते हैं। वे पांच हैं यथा - सम्यक्त्व, विरति, अप्रमत्तता - अप्रमाद, अकषाय और अयोगता - योगों की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना। निर्जरा स्थान - कुछ अंश में कर्मों का क्षय करना निर्जरा कहलाती है। निर्जरा स्थान पांच कहे गये हैं यथा - प्राणातिपात से निवृत्त होना, मृषावाद से निवृत्त होना, अदत्तादान से निवृत्त होना, मैथुन से निवृत्त होना, परिग्रह से निवृत्त होना। समिति - यतना पूर्वक प्रवृत्ति करना समिति कहलाती है। समितियाँ पांच कही गई हैं। यथा - १. ईर्यासमिति-युगप्रमाण भूमि को

आगे देखते हुए यतना पूर्वक चलना। २. भाषासमिति - यतना पूर्वक निरवद्य वचन बोलना। ३. एषणा समिति - निर्दोष आहार की गवेषणा करना। ४. आदान भंडमात्र निक्षेपणा समिति - वस्त्र पात्र आदि को यतना पूर्वक लेना और रखना। ५. उच्चार प्रस्रवण खेल सिंघाण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जल्लपरिस्थापनिका समिति - लघुनीत बड़ीनीत, थूक, कफ, नासिका - मल आदि को यतना पूर्वक परिठवना। पांच अस्तिकाय कही गई हैं। यथा - धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्‌गलास्तिकाय। रोहिणी नक्षत्र, पुनर्वसु नक्षत्र, हस्त नक्षत्र, विशाखा नक्षत्र और धनिष्ठा नक्षत्र, ये पांच नक्षत्र पांच-पांच तारों वाले कहे गये हैं। इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति पांच पल्योपम की कही गई है। तीसरी धूमप्रभा नामक नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति पांच सागरोपम की कही गई है। असुरकुमारों में कितनेक देवों की स्थिति पांच पल्योपम की कही गई है। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति पांच पल्योपम की कही गई है। सनत्कुमार और माहेन्द्र नामक तीसरे और चौथे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति पांच सागरोपम की कही गई है। जो देव, तीसरे और चौथे देवलोक के वात, सुवात, वातावर्त्त, वातप्रभ, वातकान्त, वातवर्ण, वातलेश्य, वातध्वज, वातशृङ्ग, वातसृष्ट या वातसिद्ध, वातकूट, वायूत्तरावतंसक, शूर, सुशूर, शूरावर्त्त, शूरप्रभ, शूरकान्त, शूरवर्ण, शूरलेश्य, शूरध्वज, शूरशृङ्ग, शूरसृष्ट या शूरसिद्ध, शूरकूट और शूरोत्तरावतंसक, इन चौबीस विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति पांच सागरोपम की कही गई है। वे देव पांच पखवाड़ों से यानी ढाई महीनों से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाहरी श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को पांच हजार वर्षों से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। जो भव सिद्धिक-भव्य हैं उनमें से कितनेक जीव पांच भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे॥ ५॥

विवेचन - क्रिया - कर्म बन्ध की कारण भूत चेष्टा (प्रवृत्ति) को क्रिया कहते हैं। इसके २५ भेद हैं। जिन को पांच-पांच करके, पांच वक्त ठाणाङ्ग सूत्र के पाँचवें ठाणे में दिया गया है तथा पन्नवणा सूत्र के २२ वें पद में २५ ही क्रियाओं का वर्णन दिया गया है। इनका हिन्दी अनुवाद श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह के प्रथम भाग में पांच पांच के विभाग से पांचवें बोल में दिया गया है।

महाव्रत - देशविरति श्रावक के अणुव्रतों की अपेक्षा सर्वविरति साधु मुनिराज के व्रत बड़े हैं। इसलिये इनको 'महाव्रत' कहते हैं।

प्रश्न - साधु मुनिराज छहकाय जीवों की रक्षा करते हैं। इसलिये उनका पहला व्रत-अहिंसा व्रत है। यहाँ पर अहिंसा महाव्रत नहीं कह कर सर्व प्राणातिपात विरमणव्रत क्यों कहा गया है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर – जीव कभी मरता नहीं है। इसलिये उसकी हिंसा नहीं होती किन्तु जीव के दस प्राण कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं –

पञ्चेन्द्रियाणि त्रिविधं बलं च, उच्छ्वास निःस्वास मथान्यदायुः ।

प्राणाःदशैते भगवद्भिरुक्ताः, तेषां वियोजीकरणं तु हिंसा ॥

जिनसे प्राणी जीवित रहे उन्हें 'प्राण' कहते हैं। वे दस हैं –

१. स्पर्शनेन्द्रिय बल प्राण २. रसनेन्द्रिय बल प्राण ३. घ्राणेन्द्रिय बल प्राण ४. चक्षुरिन्द्रिय बल प्राण ५. श्रोत्रेन्द्रिय बल प्राण ६. काय बल प्राण ७. वचन बल प्राण ८. मन बल प्राण ९. श्वासोच्छ्वास बल प्राण १०. आयुष्य बल प्राण।

इन दस प्राणों में से किसी भी प्राण का विनाश करना हिंसा है। जैन शास्त्रों में हिंसा के लिये प्रायः प्राणातिपात शब्द का ही प्रयोग होता है। इसका अभिप्राय यही है कि इन दस प्राणों में से किसी भी प्राण का अतिपात (विनाश) करना ही हिंसा है।

एकेन्द्रिय जीवों में चार प्राण होते हैं – स्पर्शनेन्द्रिय बल प्राण, काय बल प्राण, श्वासोच्छ्वास बल प्राण, आयुष्य बल प्राण। द्वीन्द्रिय में छह प्राण होते हैं – चार पूर्वोक्त तथा रसनेन्द्रिय बल प्राण और वचन बल प्राण। त्रीन्द्रिय में सात प्राण होते हैं – छह पूर्वोक्त और घ्राणेन्द्रिय बल प्राण। चतुरिन्द्रिय में आठ प्राण होते हैं – पूर्वोक्त सात और चक्षुरिन्द्रिय बल प्राण। असंज्ञी पंचेन्द्रिय में नौ प्राण होते हैं – पूर्वोक्त आठ और श्रोत्रेन्द्रिय बल प्राण। संज्ञी पंचेन्द्रिय में दस प्राण होते हैं – पूर्वोक्त नौ और मन बल प्राण।

जिस जीव में जितने प्राण अधिक होते हैं उसकी रक्षा करने में उतना ही धर्म अधिक होता है और उन प्राणों का विनाश करने में उतना ही अधर्म (पाप) अधिक होता है।

कामगुण – जिनकी कामना (अभिलाषा) की जाय उनको 'काम' कहते हैं और पुद्गलों के धर्म को 'गुण' कहते हैं। तात्पर्य यह है कि काम-वासना को उत्तेजित करने वाले शब्द रूपादि को काम गुण कहते हैं।

आस्रव – जिनसे आत्मा में आठ प्रकार के कर्मों का प्रवेश होता है अर्थात् जीव रूप तालाब में कर्म रूपी पानी का आना आस्रव कहलाता है उसके पांच भेद हैं – १. मिथ्यात्व २. अविरति ३. प्रमाद ४. कषाय और ५. योग ।

संवर – जीव रूपी तालाब में आते हुए कर्म रूपी पानी को रोक देना संवर है। इसके पांच भेद हैं यथा – १. सम्यक्त्व २. विरति ३. अप्रमाद ४. अकषाय और ५. अयोग (शुभयोग)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निर्जरा - कर्मों का कुछ अंश में क्षय (क्षपणा) होना निर्जरा कहलाती है। कर्मों का सर्वथा क्षय हो जाना मोक्ष है।

समिति - एकाग्र परिणाम पूर्वक की जाने वाली आगमोक्त सम्यक् प्रवृत्ति समिति कहलाती है। ये ईर्यासमिति आदि पांच प्रकार की है।

अस्तिकाय - 'अस्ति' शब्द का अर्थ प्रदेश है और काय का अर्थ है 'राशि' । प्रदेशों की राशि वाले द्रव्यों को 'अस्तिकाय' कहते हैं। धर्मास्तिकाय आदि पांच अस्तिकाय हैं।

नक्षत्र, स्थिति और उच्छ्वास आदि सूत्रों का अर्थ स्वतः सरल है।

छठा समवाय

छ लेसाओ पण्णत्ताओ तंजहा-किण्हलेसा णीललेसा काउलेसा तेउलेसा पम्हलेसा सुक्कलेसा। छ जीव णिकाया पण्णत्ता तंजहा-पुढवीकाए आउकाए तेउकाए वाउकाए वणस्सइकाए तसकाए। छव्विहे बाहिरे तवोकम्मे पण्णत्ते तंजहा-अणसणे ऊणोयरिया वित्तिसंखेवो रसपरिच्चाओ कायकिलेसो संलीणया । छव्विहे अब्भिंतरे तवोकम्मे पण्णत्ते तंजहा-पायच्छित्तं विणओ वेयावच्चं सज्झाओ झाणं उस्सग्गो। छह छाउमत्थिया समुग्घाया पण्णत्ता तंजहा-वेयणा समुग्घाए कसाय समुग्घाए मारणंतिय समुग्घाए वेउव्विय समुग्घाए तेय समुग्घाए आहारग समुग्घाए। छव्विहे अत्थुग्गहे पण्णत्ते तंजहा-सोइंदिय अत्थुग्गहे, चक्खुइंदिय अत्थुग्गहे, घाणिंदिय अत्थुग्गहे, जिब्भिंदिय अत्थुग्गहे, फासिंदिय अत्थुग्गहे, णोइंदिय अत्थुग्गहे । कत्तिया णक्खत्ते छ तारे पण्णत्ते। असिलेसा णक्खत्ते छ तारे पण्णत्ते। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं छ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। तच्चाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं छ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं छ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं छ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सणंकुमारमाहिंदेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं छ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा सयंभूं सयंभूरमणं घोसं सुघोसं महाघोसं किट्टिघोसं वीरं सुवीरं वीरगयं वीरसेणियं वीरावत्तं वीरप्पभं वीरकंतं वीरवण्णं वीरलेसं वीरज्झयं वीरसिंगं वीरसिट्ठं वीरकूडं वीरुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं छ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा छण्हं अद्धमासाणं (छहिं अद्धमासेहिं) आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा । तेसिणं देवाणं छहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे छहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ।। ६ ।।

कठिन शब्दार्थ - **बाहिरे** - बाह्य, **तवोकम्मे** - तप, **ऊणोयरिया** - ऊनोदरी, **वित्तिसंखेवो** - वृत्तिसंक्षेप, **रसपरिच्चाओ** - रस परित्याग, **कायकिलेसो** - काया क्लेश, **संलीणया** - संलीनता, **अब्भिंतरे** - आभ्यन्तर, **उस्सग्गो-विउस्सग्गो** - उत्सर्ग-व्युत्सर्ग, **छाउमत्थिया** - छद्मस्थ जीवों के, **समुग्घाया** - समुद्घात, **अत्थुग्गहे** - अर्थावग्रह।

भावार्थ - **लेश्या** - जिससे कर्मों का आत्मा के साथ सम्बन्ध हो उसे लेश्या कहते हैं। लेश्या छह कही गई हैं। यथा - १. कृष्ण लेश्या - काजल के समान काले वर्ण के पुद्गलों के सम्बन्ध से बना हुआ आत्मा का परिणाम। २. नील लेश्या - अशोक वृक्ष के समान नीले रंग के पुद्गलों के सम्बन्ध से बना हुआ आत्मा का परिणाम । ३. कापोत लेश्या - कबूतर के समान रक्त कृष्ण वर्ण के पुद्गलों के संयोग से होने वाला आत्मा का परिणाम। ४. तेजोलेश्या - तोते की चोंच के समान लाल वर्ण के पुद्गलों के संयोग से होने वाला आत्मा का परिणाम । ५. पद्मलेश्या - हल्दी के समान पीले रंग के पुद्गलों के संयोग से होने वाला परिणाम । ६. शुक्ल लेश्या - शंख के समान सफेद रंग के पुद्गलों के सम्बन्ध से होने वाला आत्मा का परिणाम । छह जीव निकाय कही गई है यथा - पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय । छह प्रकार का बाह्य तप कहा गया है। यथा - १. अनशन-आहार का त्याग करना। २. ऊनोदरी - जिसका जितना आहार है उससे कम आहार करना। ३. वृत्तिसंक्षेप - अभिग्रह पूर्वक भिक्षा करना। ४. रसपरित्याग - विकार जनक दूध, दही, घी आदि विगयों का तथा गरिष्ठ खान पान का त्याग करना। ५. कायाक्लेश- शास्त्र सम्मत रीति से शरीर को क्लेश पहुँचाना। ६. संलीनता - कषायों को पतला करना। छह प्रकार का आभ्यन्तर तप कहा गया है। यथा - १. प्रायश्चित्त - लगे हुए पापों की शुद्धि करना। २. विनय - अपने से बड़े एवं गुरुजनों का सम्मान करना। ३. वैयावृत्य - अपने से बड़े एवं गुरुजनों की तथा समस्त साधुओं की सेवा शुश्रूषा करना। ४. स्वाध्याय - अस्वाध्याय के समय को टाल कर मर्यादा पूर्वक शास्त्रों को पढना पढाना। ५. ध्यान - चित्त को एकाग्र रखना। ६. उत्सर्ग - व्युत्सर्ग-ममता का त्याग करना। छद्मस्थ जीवों के छह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समुद्घात कहे गए हैं। यथा - वेदना समुद्घात - असाता वेदनीय कर्म की निर्जरा करना। कषाय समुद्घात - उदीरणा द्वारा कषायों की निर्जरा करना। मारणान्तिक समुद्घात - उदीरणा द्वारा आयु कर्म के पुद्गलों की निर्जरा करना। वैक्रिय समुद्घात-वैक्रिय करते समय अपने प्रदेशों को शरीर से बाहर निकाल कर पूर्व बद्ध वैक्रिय शरीर नाम कर्म के पुद्गलों की निर्जरा करना। तैजस् समुद्घात - तेजोलेश्या निकाल कर तैजस शरीर नाम कर्म के पुद्गलों की निर्जरा करना। आहारक समुद्घात-आहारक शरीर निकाल कर पूर्वबद्ध आहारक नाम कर्म के पुद्गलों की निर्जरा करना। अर्थावग्रह-सामान्य रूप से पदार्थों का जानना अर्थावग्रह कहलाता है। यह छह प्रकार का कहा गया है। यथा - श्रोत्रेन्द्रिय अर्थावग्रह, चक्षु इन्द्रिय अर्थावग्रह, घ्राणेन्द्रिय अर्थावग्रह, जिह्वेन्द्रिय अर्थावग्रह, स्पर्शनेन्द्रिय अर्थावग्रह, नोइन्द्रिय अर्थात् मन अर्थावग्रह। कृत्तिका नक्षत्र और अश्लेषा नक्षत्र छह-छह तारों वाले कहे गये हैं। इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति छह पल्योपम की कही गई है। तीसरी वालुका प्रभा नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति छह सागरोपम की कही गई है। असुरकुमारों में कितनेक देवों की स्थिति छह पल्योपम की कही गई है। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति छह पल्योपम की कही गई है। सनत्कुमार और माहेन्द्र नामक तीसरे और चौथे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति छह सागरोपम की कही गई है। स्वयम्भू, स्वयम्भूरमण, घोष, सुघोष, महाघोष, कृष्टिघोष, वीर, सुवीर, वीरगत, वीरसैनिक, वीरावर्त्त, वीरप्रभ, वीरकान्त, वीरवर्ण, वीरलेश्य, वीरध्वज, वीरश्रृङ्ग, वीरसृष्ट या वीरसिद्ध, वीरकूट, वीरोत्तरावतंसक इन बीस विमानों में जो देव देवरूप से उत्पन्न होते हैं उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति छह सागरोपम की कही गई है। वे देव छह पखवाड़ों से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को छह हजार वर्षों से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। जो भवसिद्धिक जीव हैं, उनमें से कितनेक छह भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ॥ ६ ॥

विवेचन - लेश्या - कषाय और योग के निमित्त से आत्मा के साथ कर्मों का सम्बन्ध होना 'लेश्या' कहलाता है। मूल में इसके दो भेद हैं - द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या। द्रव्य लेश्या के लिए कहा है -

कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यात् परिणामो य आत्मनः ।
स्फटिकस्येव तत्रायं, लेश्या शब्दः प्रवर्त्तते ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्य लेश्या कर्म वर्गणा रूप है। वह रूपी अष्टस्पर्शी है। योगान्तर्गत कृष्णादि द्रव्य लेश्या के संयोग से होने वाला आत्मा का परिणाम विशेष भाव लेश्या है। द्रव्य लेश्या, भाव लेश्या में परिणत हो जाती है। जैसे वैडूर्य मणि में लाल धागा पिरोने से वह अपने नील वर्ण को रखते हुए धागे की लाल छाया को धारण करती है। किन्तु लेश्या का यह परिणाम केवल मनुष्य और तिर्यञ्च की लेश्या के सम्बन्ध में ही है। देव और नैरयिक में द्रव्य लेश्या अवस्थित होती है। वह बदलती नहीं है। भाव लेश्या बदलती रहती है। लेश्या के छह भेद हैं इनमें से कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या ये तीन लेश्याएँ पाप का कारण होने से अधर्म लेश्याएँ हैं । इनसे जीव दुर्गति में उत्पन्न होता है। तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या ये तीन धर्म लेश्याएं हैं। इन से जीव सुगति में उत्पन्न होता है।

जिस लेश्या को लिए हुए जीव मरता है, उसी लेश्या को लेकर परभव में उत्पन्न होता है। लेश्या के प्रथम एवं चरम समय में जीव परभव में नहीं जाता किन्तु अन्तर्मुहूर्त बीतने पर और अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर ही परभव के लिये जाता है। मरते समय लेश्या का अन्तर्मुहुर्त्त बाकी रहता है। इसलिये परभव में भी जीव उसी लेश्या से युक्त होकर उत्पन्न होता है।

तप - शरीर और कर्मों को तपाना तप है। जैसे अग्नि में तपा हुआ सोना निर्मल होकर शुद्ध हो जाता है। उसी प्रकार तप रूपी अग्नि में तपा हुआ आत्मा कर्ममल से रहित होकर शुद्ध स्वरूप हो जाता है। तप के दो भेद हैं - बाह्य तप और आभ्यन्तर तप। बाह्य शरीर से सम्बन्ध रखने वाले तप को बाह्य तप कहते हैं। इसके दो भेद हैं - इत्वर और यावत्कथिक। अवसर्पिणी काल में प्रथम तीर्थङ्कर के शासन में एक वर्ष, मध्य के बाईस तीर्थङ्करों के शासन में आठ मास और अन्तिम तीर्थङ्कर के शासन में ६ मास का उत्कृष्ट इत्वर तप होता है।

जिसका जितना आहार है उससे कम आहार करना ऊनोदरी तप है। पुरुष का ३२ कवल, स्त्री का २८ कवल और नपुंसक का २४ कवल परिमाण आहार पूर्ण आहार होता है। जिस तप का सम्बन्ध आत्मा के भावों से हो उसे आभ्यन्तर तप कहते हैं।

प्रश्न - कर्मों के बन्ध से आत्मा मलिन होती है। इसलिये आत्मा को ही तपाना चाहिए शरीर को तपाने से क्या लाभ?

उत्तर - प्रश्न उचित है। समाधान यह है कि मक्खन में छाछ भी मिली हुई होती है। उससे शुद्ध घी बनाना है तो केवल मक्खन को ही नहीं तपाया जाता है किन्तु जिस बर्तन में मक्खन रखा हुआ है उस बर्तन सहित मक्खन को तपाया जाता है तो ही शुद्ध घी मिलता है। इसी प्रकार संसारी आत्मा शरीर में रहा हुआ है इसलिये उस आत्मा को निर्मल बनाने के लिये

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शरीर को भी तपाना आवश्यक होता है। लक्ष्य तो आत्मा को तपाने का ही है। ठाणाङ्ग सूत्र के १० वें ठाणे में ज्ञान बल, दर्शन बल, तप बल आदि १० बल बतलाये गये हैं। तप बल का इतना माहात्म्य बताया है कि - उससे निकाचित कर्म भी क्षय हो जाते हैं।

समुद्घात - कालान्तर में उदय में आने वाले वेदनीय आदि कर्म पुद्गलों को उदीरणा के द्वारा उदय में लाकर उनकी सम्यक् प्रकार से प्रबलता पूर्वक निर्जरा करना 'समुद्घात' कहलाता है। समुद्घात सात हैं। इनमें से छद्मस्थ के छह समुद्घात होते हैं।

प्रश्न - छद्मस्थ किसे कहते हैं ?

उत्तर - **"छद्मनि घाति कर्मणि तिष्ठति इति छद्मस्थः।"** ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय मोहनीय और अन्तराय, ये चार घातीकर्म कहलाते हैं। इनका क्षय न हो तब तक जीव छद्मस्थ कहलाता है और इनका क्षय होने पर जीव केवली बन जाता है।

मूल में अर्थावग्रह के छह भेद दिये हैं। ज्ञान के पांच भेद हैं यथा - मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान और केवल ज्ञान। मति ज्ञान के कुल ३४१ भेद होते हैं। वे इस प्रकार हैं - अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चारों ज्ञान पांच इन्द्रियाँ और छठे मन से होते हैं। अतः ६×४ = २४ भेद होते हैं। किन्तु व्यंजनावग्रह, मन और चक्षु के अतिरिक्त चार इन्द्रियों से होता है। (२४+४=२८)। ये २८ बारह तरह से होते हैं। यथा - बहु, अल्प, बहुविध, अल्पविध, क्षिप्र (शीघ्र), अक्षिप्र, अनिश्रित, निश्रित, असंदिग्ध, संदिग्ध, ध्रुव, अध्रुव। अतः २८×१२ = ३३६। बुद्धि के चार भेद हैं यथा - उत्पत्तिया (औत्पातिकी), वेणइया (वैनयिकी), कम्मिया (कर्मजा), पारिणामिया (पारिणामिकी) ३३६+४=३४०। जाति स्मरण भी मतिज्ञान का ही भेद है। इस प्रकार मतिज्ञान के ये ३४१ भेद होते हैं। मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता (चिन्तन-विचारणा), अभिनिबोध, ये पांच मतिज्ञान के पर्यायवाची शब्द हैं।

सातवाँ समवाय

सत्त भयट्ठाणा पण्णत्ता तंजहा - इहलोग भए परलोग भए आदाण भए अकम्हा भए आजीव भए मरण भए असिलोग भए। सत्त समुग्घाया पण्णत्ता तंजहा-वेयणा समुग्घाए कसाय समुग्घाए मारणंतिय समुग्घाए वेउव्विय समुग्घाए तेय समुग्घाए आहारग समुग्घाए केवलिसमुग्घाए। समणे भगवं महावीरे सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। इहेव जंबूद्दीवे दीवे सत्त वासहर पव्वया पण्णत्ता तंजहा - चुल्लहिमवंते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महाहिमवंते णिसढे णीलवंते रुप्पी सिहरी मंदरे । इहेव जंबूद्दीवे दीवे सत्त वासा पण्णत्ता तंजहा - भरहे हेमवए हरिवासे महाविदेहे रम्मए एरण्णवए एरवए । खीणमोहे णं भगवया मोहणिज्ज वज्जाओ सत्त कम्मपयडीओ वेएइ । महा णक्खत्ते सत्त तारे पण्णत्ते। कत्तियाइया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता (अभियाइया सत्त णक्खत्ता)। महाइया सत्त णक्खत्ता दाहिण-दारिया पण्णत्ता। अणुराहाइया सत्त णक्खत्ता अवरदारिया पण्णत्ता। धणिट्ठाइया सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पण्णत्ता। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं सत्त पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। तच्चाए णं पुढवीए णेरइयाणं उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। चउत्थीए णं पुढवीए णेरइयाणं जहण्णेणं सत्त सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं सत्त पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं सत्त पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सणंकुमारे कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। माहिंदे कप्पे देवाणं उक्कोसेणं साइरेगाइं सत्त सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। बंभलोए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं सत्त साहिया सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा समं समप्पभं महापभं पभासं भासुरं विमलं कंचणकूडं सणंकुमारवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा सत्तण्हं अद्धमासाणं (सत्तहिं अद्धमासेहिं) आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा। तेसिणं देवाणं सत्तहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे णं सत्तहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ सूत्र ७ ॥

कठिन शब्दार्थ - भय ट्ठाणा - भय स्थान, **अकम्हा भए** - अकस्मात् भय, **असिलोग भए** - अश्लोक भय, **वासहर पव्वया** - वर्षधर पर्वत, **खीणमोहे** - क्षीण मोहनीय, **सत्त कम्मपयडीओ** - सात कर्म प्रकृतियों को, **बंभलोए कप्पे** - ब्रह्मलोक नामक पांचवे देवलोक में।

भावार्थ - सात भय स्थान कहे गये हैं यथा - इहलोक भय - अपनी ही जाति के प्राणी से डरना इहलोकभय कहलाता है। जैसे - मनुष्य का मनुष्य से, देव का देव से, तिर्यञ्च का तिर्यञ्च से और नैरयिक का नैरयिक से डरना। परलोक भय - दूसरी जाति वाले से डरना। जैसे मनुष्य का तिर्यञ्च या देव अथवा तिर्यञ्च का देव या मनुष्य से डरना। आदान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भय – धन की रक्षा के लिए चोर आदि से डरना। अकस्माद् भय – बिना किसी बाह्य कारण के स्वकल्पना से अचानक डरना। आजीविका भय – आजीविका के विनाश का भय अथवा रोगादि का भय। मरण भय – मरने से डरना। अश्लोक भय – अपकीर्ति से डरना। सात समुद्घात कहे गये हैं यथा – वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात, वैक्रिय समुद्घात, तैजस् समुद्घात, आहारक समुद्घात, केवली समुद्घात। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी सात हाथ ऊँचे थे अर्थात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के शरीर की ऊंचाई सात हाथ की थी। इस जम्बूद्वीप में सात वर्षधर यानी वासों (क्षेत्रों) का विभाग करने वाले पर्वत कहे गये हैं। यथा – चुल्लहिमवान्, महा हिमवान्, निषध, नीलवान्, रूपी या रुक्मी, शिखरी, मन्दर। इस जम्बूद्वीप में सात वास यानी मनुष्यों के रहने के स्थान कहे गये हैं। यथा – भरत, हैमवत, हरिवर्ष, महाविदेह, रम्यक, ऐरण्यवत या हैरण्यवत, ऐरवत। क्षीणमोहनीय भगवान् यानी बारहवें गुणस्थानवर्ती जीव मोहनीय कर्म के सिवाय सात कर्मों को वेदते हैं। मघा नक्षत्र सात तारों वाला कहा गया है। कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और अश्लेषा ये सात नक्षत्र अथवा अभिजित आदि सात नक्षत्र पूर्व द्वार वाले कहे गये हैं। पूर्व दिशा में जाने वाले के लिए ये मंगलकारी हैं। मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति और विशाखा ये सात नक्षत्र दक्षिण द्वार वाले कहे गये हैं। दक्षिण दिशा में जाने वाले के लिए ये मङ्गलकारी हैं। अनुराधा, ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अभिजित और श्रवण ये सात नक्षत्र पश्चिम द्वार वाले कहे गये हैं। पश्चिम दिशा में जाने वाले के लिए मङ्गलकारी हैं। धनिष्ठा, शतभिषक, पूर्वभाद्रपदा, उत्तरभाद्रपदा, रेवती, अश्विनी और भरणी ये सात नक्षत्र उत्तर द्वार वाले कहे गये हैं। उत्तर दिशा में जाने वाले के लिए मङ्गलकारी हैं। इस रत्नप्रभा नामक प्रथम पृथ्वी में कितनेक नैरयिकों की स्थिति सात पल्योपम कही गई है। तीसरी नरक में नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम कही गई है। चौथी पंकप्रभा नामक नरक में नैरयिकों की जघन्य स्थिति सात सागरोपम कही गई है। असुरकुमार देवों में कितनेक देवों की स्थिति सात पल्योपम कही गई है। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति सात पल्योपम कही गई है। सनत् कुमार नामक तीसरे देवलोक मे कितनेक देवों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम कही गई है। माहेन्द्र नामक चौथे देवलोक में देवों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम से कुछ अधिक कही गई है। ब्रह्मलोक नामक पांचवें देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति सात सागरोपम से कुछ अधिक कही गई है। पांचवें देवलोक के अन्तर्गत सम, समप्रभ, महाप्रभ, प्रभास, भासुर, विमल, कञ्चनकूट,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सनत्कुमारावतंसक इन आठ विमानों में जो देव देव रूप से उत्पन्न होते हैं उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम की कही गई है। वे देव सात पखवाड़ों से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को सात हजार वर्षों से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। कितनेक भवसिद्धिक-भव्य जीव सात भव करके सिद्ध बुद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे॥ ७ ॥

विवेचन - मोहनीय कर्म के दो भेद हैं। दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय। दर्शन मोहनीय के तीन भेद हैं - मिथ्यात्व मोहनीय, सम्यक्त्व मोहनीय और मिश्र मोहनीय। चारित्र मोहनीय के दो भेद - कषाय मोहनीय और नोकषाय मोहनीय। कषाय मोहनीय के अन्तानुबन्धी क्रोध आदि सोलह भेद हैं। नोकषाय के नौ भेद हैं। जो क्रोधादि कषायों को उत्पन्न करने में निमित्त होते हैं। उनको नोकषाय कहते हैं। भय मोहनीय कर्म के उदय से भय पैदा होता है। भय के सात भेद हैं। इन में से "मरण" को सबसे बड़ा भय कहा है। जैसे -

"सात भय संसार ना, तिणमें मरण भय मोटो रे ।"

परन्तु ज्ञानी पुरुष तो फरमाते हैं कि प्राणी दुःखों से भयभीत हो रहे हैं। जैसा कि भगवती सूत्र में कहा है -

प्रश्न - किं भया पाणा?

उत्तर - दुःख भया पाणा।

अर्थात् - प्राणियों को किससे भय लगता है? प्राणियों को दुःख से भय लगता है। शास्त्रकार फरमाते हैं कि -

जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं, रोगाणि मरणाणि य ।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसंति जंतवो ॥

अर्थ - जन्म दुःख है, जरा (बुढ़ापा) दुःख है, रोग दुःख है और मरण दुःख है। अहो! बड़ा खेद है कि सारा संसार जन्म, मरण के दुःख से दुःखित हो रहा है। जैन सिद्धान्त कह रहा है कि - जिसका जन्म होता है उसका मरण अवश्य होता है। इसलिये दुःखों का मूल जन्म है। इसलिये जन्म की ही जड़ उखाड़ देनी चाहिये। जिसका जन्म नहीं होता उसको बुढ़ापा, रोग नहीं होता और यहाँ तक कि उसका मरण भी नहीं होता है। जैसा कि कहा है -

मृत्योर्बिभेषि किं मूढ ! भीतं मुञ्चति नो यमः ।
अजातं नैव गृह्णाति कुरु यत्नमजन्मनि ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस श्लोक का अर्थ हिन्दी के दोहे में इस प्रकार कहा है -

मृत्यु से क्यों डरत है, मृत्यु छोड़त नाय ।
अजन्मा मरता नहीं, कर यत्न नहीं जन्माय ॥

सिद्ध भगवन्तों का जन्म नहीं होता है इसलिये मरण भी नहीं होता है। अन्य सिद्धान्तवादी तो कहते हैं - "जो जन्मता है सो मरता है और जो मरता है सो जन्मता है।" किन्तु जैन सिद्धान्त ऐसा नहीं कहता है। उसका कथन है कि - जो जन्मता है वह तो अवश्य मरता है। चाहे राजा, राणा, तीर्थंकर चक्रवर्ती भी क्यों न हो परन्तु जो मरता है उनमें से कोई जन्म लेता है तो कोई जन्म नहीं भी लेता है। जैसा कि कहा है -

जातस्य हि ध्रुव मृत्युः, मृतस्य जन्म वा न वा ।
अकर्मा याति निर्वाणं, सकर्मा जायते पुनः ॥

यही बात हिन्दी दोहे में कही है -

जन्म संग मृत्यु लगा, मृत जन्मे अरु नाय ।
कर्म सहित फिर जन्मता, कर्म रहित सिद्ध थाय ॥

अतः बुद्धिमानों का कर्त्तव्य है कि - धर्म कार्य में ऐसा पुरुषार्थ करें कि बार-बार जन्म लेना ही न पड़े ।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के शरीर की ऊंचाई सात हाथ की थी। इस विषय में ऐसा समझना चाहिए कि - अनुयोगद्वार सूत्र में अंगुल के तीन भेद बतलाये गये हैं। प्रमाण अंगुल, आत्म अंगुल और उत्सेधांगुल। अवसर्पिणीकाल के पहले तीर्थंकर अथवा पहले चक्रवर्ती की अवगाहना (शरीर की ऊंचाई) पांच सौ धनुष की होती है। उनके अंगुल को प्रमाण अंगुल कहते हैं। जिस समय जो मनुष्य होते हैं उनके अपने अपने अंगुल को आत्मांगुल कहते हैं। अन्तिम तीर्थङ्कर (महावीर स्वामी) के अङ्गुल के आधे भाग को उत्सेधाङ्गुल कहते हैं। अथवा इस अवसर्पिणी काल के १०।। हजार वर्ष बीत जाने पर जो मनुष्य होंगे उनके अङ्गुल को उत्सेधांगुल कहते हैं। उत्सेधाङ्गुल से प्रमाण अङ्गुल एक हजार गुणा अधिक बड़ा होता है। जम्बूद्वीप आदि शाश्वत वस्तुओं को नापने के लिए प्रमाण अङ्गुल काम में आता है। जिस समय के जो मनुष्य होते हैं उस समय के कुआँ तालाब मकान आदि नापने के लिये आत्माङ्गुल काम आता है। चार गति के जीवों के शरीर की ऊंचाई (लंबाई) चौड़ाई नापने के लिये उत्सेधाङ्गुल काम में आता है। इसी उत्सेधाङ्गुल प्रमाण से भगवान् महावीर स्वामी सात हाथ ऊंचे थे। आत्माङ्गुल (अपने खुद के अङ्गुल) से तो वे साढ़े तीन हाथ के थे। आत्माङ्गुल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से तो प्रत्येक व्यक्ति साढ़े तीन हाथ का ही होता है। भगवान् ऋषभदेव भी उनके खुद के अङ्गुल से तो साढ़े तीन हाथ के ही थे । उत्सेधाङ्गुल से पांच सौ धनुष के थे।

महाविदेह क्षेत्र के सभी तीथङ्कर पांच सौ धनुष के ही होते हैं। किन्तु भरत और ऐरवत क्षेत्र के तीर्थङ्करों के शरीर की अवगाहना एक सरीखी नहीं होती है। इस अवसर्पिणी काल के तीर्थङ्करों की अवगाहना इस प्रकार है –

१. श्री ऋषभदेवजी	५०० धनुष	२. श्री अजितनाथजी	४५० धनुष
३. श्री सम्भवनाथ जी	४०० धनुष	४. श्री अभिनन्दनस्वामी	३५० धनुष
५. श्री सुमतिनाथजी	३०० धनुष	६. श्री पद्मप्रभस्वामी	२५० धनुष
७. श्री सुपार्श्वनाथस्वामी	२०० धनुष	८. श्री चन्द्रप्रभ स्वामी	१५० धनुष
९. श्री सुविधिनाथ स्वामी (श्री पुष्पदंतस्वामी)	१०० धनुष	१०. श्री शीतलनाथस्वामी	९० धनुष
११. श्री श्रेयांसनाथ स्वामी	८० धनुष	१२. श्री वासुपूज्य स्वामी	७० धनुष
१३. श्री विमलनाथ स्वामी	६० धनुष	१४. श्री अनन्तनाथ स्वामी	५० धनुष
१५. श्री धर्मनाथ स्वामी	४५ धनुष	१६. श्री शान्तितनाथ स्वामी	४० धनुष
१७. श्री कुंथुनाथ स्वामी	३५ धनुष	१८. श्री अरनाथ स्वामी	३० धनुष
१९. श्री मल्लिनाथ स्वामी	२५ धनुष	२०. श्री मुनिसुव्रत स्वामी	२० धनुष
२१. श्री नमिनाथस्वामी	१५ धनुष	२२. श्री अरिष्टनेमि स्वामी	१० धनुष
२३. श्री पार्श्वनाथ स्वामी	०९ हाथ	२४. श्री महावीर स्वामी (श्री वर्धमान स्वामी)	०७ हाथ

यह अवसर्पिणी काल के तीर्थङ्करों की अवगाहना बतलाई गयी है। उत्सर्पिणी काल के तीर्थङ्करों की अवगाहना उपरोक्त क्रम से विपरीत समझना चाहिए। जैसे कि – पहले तीर्थङ्कर की अवगाहना ७ हाथ यावत् चौबीसवें तीर्थङ्कर की अवगाहना ५०० धनुष की होती है।

मनुष्यों के रहने के स्थान को वास (निवास, वर्ष, क्षेत्र) कहते हैं। उन वास (क्षेत्र) की मर्यादा करने वाले पर्वतों को वासहर (वर्षधर) पर्वत कहते हैं। इस जम्बूद्वीप में सात वास (वर्ष-क्षेत्र) हैं और सात ही वर्षधर पर्वत हैं। जिनके नाम ऊपर मूलपाठ और भावार्थ में बता दिये गये हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आठवां समवाय

अट्ठ मयट्ठाणा पण्णत्ता तंजहा-जाइमए कुलमए बलमए रूवमए तवमए सुयमए लाभमए इस्सरियमए। अट्ठ पवयण मायाओ पण्णत्ताओ तंजहा-इरियासमिई भासासमिई एसणासमिई आयाणभंडमत्तणिक्खेवणासमिई उच्चारपासवण-खेलसिंघाणजल्ल पारिट्ठावणियासमिई, मणगुत्ती वयगुत्ती कायगुत्ती । वाणमंतराणं देवाणं चेइय रुक्खा अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। जंबू णं सुदंसणा अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। कूडसामली णं गरुलावासे अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। जंबूद्दीवस्स णं जगई अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। अट्ठ सामइए केवलि समुग्घाए पण्णत्ते तंजहा - पढमे समए दंडं करेइ, बीए समए कवाडं करेइ, तइए समए मंथं करेइ, चउत्थे समए मंथंतराइं पूरेइ, पंचमे समए मंथंतराइं पडिसाहरइ, छट्ठे समए मंथं पडिसाहरइ, सत्तमे समए कवाडं पडिसाहरइ, अट्ठमे समए दंडं पडिसाहरइ, तओ पच्छा सरीरत्थे भवइ। पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणियस्स अट्ठ गणा अट्ठ गणहरा होत्था तंजहा -

सुभे य सुभघोसे य, वसिट्ठे बंभयारि य।
सोमे सिरिधरे चेव, वीरभद्दे जसे इय॥

अट्ठ णक्खत्ता चंदेणं सद्धिं पमद्दं जोगं जोएंति तंजहा-कत्तिया, रोहिणी, पुणव्वसू, महा, चित्ता, विसाहा, अणुराहा, जेट्ठा । इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं अट्ठ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। चउत्थीए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं अट्ठ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं अट्ठ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं अट्ठ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। बंभलोए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं अट्ठ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा अच्चिं अच्चिमालिं वइरोयणं पभंकरं चंदाभं सूराभं सुपइट्ठाभं अग्गिच्चाभं रिट्ठाभं अरुणाभं अरुणोत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसिं णं देवाणं उक्कोसेणं अट्ठ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा अट्ठण्हं अद्धमासाणं (अट्ठहिं अद्धमासेहिं) आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णीससंति वा । तेसिणं देवाणं अट्ठहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ । संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे अट्ठहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ ८ ॥

कठिन शब्दार्थ - मय ट्ठाणा - मद स्थान, **इस्सरिय मए** - ऐश्वर्य मद, **पवयण मायाओ** - प्रवचन माता, **चेइय रुक्खा** - चैत्यवृक्ष, **जंबू सुदंसणा** - सुदर्शन नाम का जम्बू वृक्ष, **कुडसामली** - कूटशाल्मली, **गरुलावासे** - गरुड जाति के वेणुदेव का निवास स्थान, **जगई** - जगती-कोट के समान पाल, **दंडं** - दण्ड, **कवाडं** - कपाट (किंवाड), **मंथं** - मथानी, **पूरेइ** - पूर्ण करता है, **पडिसाहरइ** - वापिस खींचता है।

भावार्थ - मद यानी अभिमान के आठ स्थान - भेद कहे गये हैं यथा - जाति का मद, कुल का मद, बल का मद, रूप का मद, तप का मद, श्रुत का मद, लाभ का मद, ऐश्वर्य का मद। आठ प्रवचन माता कही गई है। यथा - ईर्यासमिति - यतना पूर्वक चलना, भाषासमिति - यतना पूर्वक बोलना, एषणा समिति - यतना पूर्वक आहार पानी आदि की गवेषणा करना, आदानभंडमात्र निक्षेपणा समिति-भण्डोपकरणों को यतना पूर्वक उठाना और रखना, उच्चार-प्रस्रवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-परिस्थापनिका समिति - बड़ी नीत, लघु नीत आदि को यतना पूर्वक परिठवना। मनगुप्ति - मन को अशुभ विचारों से रोकना, वचन गुप्ति - वचन को अशुभ वचनों से रोकना, काय गुप्ति - काया को अशुभ कार्यों से रोकना। वाणव्यन्तर देवों के चैत्य वृक्ष आठ योजन ऊंचे कहे गये हैं। ये चैत्य वृक्ष उनके नगरों में सुधर्मा आदि सभाओं के आगे मणि पीठिकाओं के ऊपर छत्र, चामर और ध्वजाओं से अलंकृत होते हैं। ये वृक्ष रत्नों के होते हैं। उत्तर कुरु में सुदर्शन नाम का जम्बू वृक्ष आठ योजन ऊँचा कहा गया है। देवकुरु में गरुड़ जाति के वेणुदेव का निवास स्थान कूट शाल्मली वृक्ष आठ योजन ऊंचा कहा गया है। जम्बूद्वीप की जगती (कोट के समान पाल) आठ योजन ऊंची कही गई है। अन्तर्मुहूर्त्त में मोक्ष प्राप्त करने वाला कोई-कोई केवली-केवलज्ञानी कर्मों को सम (बराबर) करने के लिए अर्थात् वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मों की स्थिति को आयुकर्म की स्थिति के बराबर करने के लिए समुद्घात करता है। केवली समुद्घात आठ समय का कहा गया है। यथा - प्रथम समय में केवली अपने आत्मप्रदेशों की दण्ड की रचना करता है वह मोटाई में स्वशरीर परिमाण और लम्बाई में ऊपर और नीचे से लोकान्त तक विस्तृत होता है। दूसरे समय में उसी दण्ड को पूर्व और पश्चिम अथवा उत्तर और दक्षिण में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

फैलाता है। फिर उस दण्ड का लोक पर्यन्त कपाट (किंवाड़) बनाता है। तीसरे समय में दक्षिण और उत्तर अथवा पूर्व और पश्चिम दिशा में लोकान्त तक आत्म प्रदेशों को फैला कर उसी कपाट को मथानी रूप बना देता है। ऐसा करने से लोक का अधिकांश भाग आत्म प्रदेशों से व्याप्त हो जाता है। किन्तु मथानी की तरह अन्तराल प्रदेश खाली रहते हैं। चौथे समय में मथानी के अन्तरालों को पूर्ण करता हुआ समस्त लोकाकाश को आत्म प्रदेशों से व्याप्त कर देता है। क्योंकि लोकाकाश और एक जीव के प्रदेश बराबर हैं। पांचवें समय में मथानी के अन्तरालों को वापिस खींचता है - संकोच करता है। छठे समय में मथानी को वापिस खींचता है। सातवें समय में कपाट को वापिस खींचता है। आठवें समय में दण्ड को वापिस खींचता है। इसके बाद सब आत्म प्रदेश पुनः शरीरस्थ हो जाते हैं। पुरुषादानीय अर्थात् पुरुषों में श्रेष्ठ भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के आठ गण और आठ गणधर थे।

यथा - शुभ शुभघोष, वशिष्ठ, ब्रह्मचारी, सोम, श्रीधर, वीरभद्र और यशोभद्र। आठ नक्षत्र चन्द्रमा के साथ प्रमर्द योग करते हैं अर्थात् चन्द्रमा इन नक्षत्रों के बीच में होकर निकलता है। उनके नाम ये हैं - कृत्तिका, रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा। इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति आठ पल्योपम की कही गई है। पंकप्रभा नामक चौथी नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति आठ सागरोपम की कही गई है। असुरकुमार देवों में कितनेक देवों की स्थिति आठ पल्योपम की कही गई है। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति आठ पल्योपम की कही गई है। पांचवें ब्रह्म देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति आठ सागरोपम की कही गई है। पांचवें ब्रह्म देवलोक के अन्तर्गत अर्चि, अर्चिमाली, वैरोचन, प्रभङ्कर, चन्द्राभ, सूर्याभ, सुप्रतिष्ठाभ, अग्न्याभ, रिष्टाभ, अरुणाभ, अरुणोत्तरावतंसक, इन ग्यारह विमानों में जो देव देव रूप से उत्पन्न होते हैं उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति आठ सागरोपम की कही गई है। वे देव आठ पखवाड़ों से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को आठ हजार वर्षों से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। जो भवसिद्धिक जीव हैं उन में से कितनेक जीव आठ भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ॥ ८॥

विवेचन - किसी बात का अभिमान करना 'मद' कहलाता है। मदस्थान आठ कहे गये हैं। जाति कुल आदि का अभिमान करने से नीच गोत्र का बन्ध होता है और अभिमान न करने से उच्च गोत्र का बन्ध होता है। तीर्थङ्कर भगवन्तों की द्वादशांग रूप वाणी को प्रवचन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहते हैं। यहाँ पांच समिति और तीन गुप्ति इन आठ को प्रवचन माता कहा है। इसका अभिप्राय यह है कि - सारी द्वादशाङ्ग वाणी का सार इन आठ प्रवचन माताओं में समाविष्ट हो जाता है।

चैत्य शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। पूज्य श्री जयमल जी म. सा. ने चैत्य शब्द के ११२ अर्थ बतलाये हैं। जो कि मधुकरजी म. सा. द्वारा सम्पादित उववाई सूत्र के प्रारम्भ में दिये गये हैं। यहाँ पर वाणव्यन्तर देवों की सुधर्मा सभा के आगे मणि पीठिका के ऊपर जो वृक्ष हैं, उनको चैत्य वृक्ष कहा है। वे पृथ्विकाय रूप रत्नों से बने हुए हैं और शाश्वत हैं।

उत्तर कुरु क्षेत्र में जम्बू वृक्ष पृथ्वी परिणाम रूप सर्व रत्नमय है। इसका नाम सुदर्शना है। इसी प्रकार देवकुरु क्षेत्र में गरुड़ जातीय वेणु देव सुवर्णकुमार भवनपति नामक देव का निवास स्थान रूप कूट शाल्मली वृक्ष है।

पुरुषों में आदेय नाम कर्म का विशेष उदय वाले पुरुषादानीय तेईसवें तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ के आठ गणधर थे और आठ ही गण थे। ठाणाङ्ग सूत्र के आठवे ठाणे में भी ऐसा ही बतलाया गया है। किन्तु आवश्यक सूत्र में दस गणधर बतलाये हैं तथा कहा है कि - दो गणधरों का आयुष्य अल्प था। इसलिये उनकी गिनती न करने से आठ गणधर ही बतलाये हैं। किन्तु आवश्यक सूत्र का यह कथन युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता है। इसलिये समवायाङ्ग सूत्र और ठाणाङ्ग सूत्र के अनुसार आठ गणधर मानना ही उचित एवं प्रामाणिक है।

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में २८ नक्षत्र बतलाये गये हैं। उनमें से मृगशिर आदि छह नक्षत्र दक्षिण की तरफ से चन्द्रमा के साथ योग जोड़ते हैं और अभिजित् आदि बारह नक्षत्र उत्तर की तरफ से योग जोड़ते हैं। कृत्तिका आदि सात नक्षत्र चन्द्रमा के साथ प्रमर्द योग जोड़ते हैं अर्थात् कभी ऊपर से और कभी नीचे से योग जोड़ते हैं, एक दिशा निश्चित नहीं है। पूर्वाषाढा उत्तराषाढा और जेष्ठा इन नक्षत्रों को चीर कर बीच से चन्द्र निकल जाता है, इसको भी प्रमर्द योग कहते हैं।

कुल समुद्घात सात हैं। केवली समुद्घात सभी केवली भगवान् नहीं करते हैं किन्तु कोई कोई केवली भगवान् करते हैं। छद्मस्थ जो कार्य करता है वह अन्तर्मुहूर्त्त से पहले नहीं करता है अर्थात् उसको कार्य करने में अन्तर्मुहूर्त्त का समय लगता ही है किन्तु केवली भगवान् अनन्त शक्ति सम्पन्न होते हैं। इसीलिये आठ समय में ही केवली समुद्घात कर लेते हैं। किसी किसी की मान्यता है कि केवली समुद्घात नहीं करते बल्कि हो जाता है। परन्तु यह मान्यता आगम के अनुसार नहीं है। क्योंकि आगम के मूल पाठ में कहा है यथा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दंडं करेइ, कवाडं करेइ ।

अर्थात् केवली भगवान् प्रथम समय में दण्ड करते हैं दूसरे समय में कपाट करते हैं। यहाँ "करते हैं" यह क्रियापद दिया है किन्तु समुद्घात होता है ऐसा क्रियापद नहीं दिया है।

केवली समुद्घात के आठ समयों में से पहले और आठवें समय में औदारिक काय योग होता है। दूसरे, छठे और सातवें समय में औदारिक मिश्र काययोग होता है। तीसरे चौथे और पांचवें समय में कार्मण काययोग होता है।

नौवां समवाय

णव बंभचेर गुत्तीओ पण्णत्ताओ तंजहा - णो इत्थीपसुपंडग संसत्ताइं सिज्जासणाइं सेवित्ता भवइ। णो इत्थीणं कहं कहित्ता भवइ। णो इत्थीणं गणाइं सेवित्ता भवइ। णो इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता णिज्झाइत्ता भवइ। णो पणीयरसभोई भवइ। णो पाणभोयणस्स अइमायाए आहारइत्ता भवइ। णो इत्थीणं पुव्वरयाइं पुव्वकीलियाइं समरइत्ता भवइ । णो सद्दाणुवाई णो रूवाणुवाई णो गंधाणुवाई णो रसाणुवाई णो फासाणुवाई णो सिलोगाणुवाई भवइ। णो सायासोक्खपडिबद्धे यावि भवइ। णव बंभचेरअगुत्तीओ पण्णत्ताओ तंजहा - इत्थीपसुपंडगसंसत्ताणं सिज्जासणाणं सेवणया जाव सायासुक्खपडिबद्धे या वि भवइ। णव बंभचेरा पण्णत्ता तंजहा-

सत्थपरिण्णा लोगविजओ सीयोसणिज्जं सम्मत्तं ।
आवंती धूय विमोहा (यणं) उवहाणसुयं महापरिण्णा ॥

पासे णं अरहा पुरिसादाणीए णव रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था । अभिइ णक्खत्ते साइरेगे णव मुहुत्ते चंदेणं सद्धिं जोगं जोएइ । अभिइयाइया णव णक्खत्ता चंदस्स उत्तरेणं जोगं जोएंति तंजहा - अभिइ सवणो जाव भरणी । इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसम रमणिज्जाओ भूमिभागाओ णव जोयणसए उड्ढं अबाहाए उवरिल्ले तारारूवे चारं चरइ। जंबूद्दीवे णं दीवे णव जोयणिया मच्छा पविसिंसु वा पविसंति वा पविसिस्संति वा। विजयस्स णं दारस्स एगमेगाए बाहाए णव णव भोमा पण्णत्ता। वाणमंतराणं देवाणं सभाओ सुहम्माओ णव जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पण्णत्ताओ । दंसणावरणिज्जस्स णं कम्मस्स णव उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ तंजहा- णिद्दा पयला णिद्दाणिद्दा पयलापयला थीणद्धी चक्खुदंसणावरणे अचक्खुदंसणावरणे ओहिदंसणावरणे केवलदंसणावरणे। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं णव पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। चउत्थीए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं णव सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं णव पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं णव पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। बंभलोए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं णव सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा पम्हं सुपम्हं पम्हावत्तं पम्हप्पभं पम्हकंतं पम्हवण्णं पम्हलेसं पम्हज्झयं पम्हसिंगं पम्हसिट्ठं पम्हकूडं पम्हुत्तरवडिंसगं सुज्जं सुसुज्जं सुज्जावत्तं सुज्जप्पभं सुज्जकंतं सुज्जवण्णं सुज्जलेसं सुज्जज्झयं सुज्जसिंगं सुज्जसिट्ठं सुज्जकूडं सुज्जुत्तरवडिंसगं रुइल्लं रुइल्लावत्तं रुइल्लप्पभं रुइल्लकंतं रुइल्लवण्णं रुइल्लेसं रुइल्लज्झयं रुइल्लसिंगं रुइल्लसिट्ठं रुइल्लकूडं रुइल्लुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसिणं देवाणं णव सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा णवण्हं अद्धमासाणं (णवहिं अद्धमासेहिं) आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा । तेसिणं देवाणं णवहिं वास सहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ । संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे णवहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ ९ ॥

कठिन शब्दार्थ - बंभचेर गुत्तीओ - ब्रह्मचर्य की गुप्तियाँ, **पणीय रसभोई** - प्रणीत रसभोजी-गरिष्ठभोजन करने वाला, **अइमायाए** - अधिक मात्रा में, **पुव्वरयाइं** - पहले भोगे हुए काम भोगों का, **पुव्व कीलियाइं** - पहले की हुई क्रीड़ा, **सत्थपरिण्णा** - शस्त्र परिज्ञा, **लोगविजओ** - लोकविजय, **सीओसणिज्जं** - शीतोष्णीय, **सम्मत्तं** - सम्यक्त्व, **विमोहा** - विमोक्ष, **उवहाणसुयं** - उपधान श्रुत, **महापरिण्णा** - महापरिज्ञा, **पुरिसादाणीए** - पुरुषादानीय-पुरुषों में श्रेष्ठ, **जोगं** - योग, **जोएंति** - जोड़ता है, **बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ** - बहुत समान रमणीय भूमि भाग से, **चारं चरेइ** - भ्रमण करता है, **भोमा** - नगर, **सुहम्माओ सभाओ** - सुधर्मा सभाएँ, **उत्तर पगडीओ** - उत्तर प्रकृतियाँ, **थीणद्धी** - स्त्यानर्द्धि (स्त्यानगृद्धि)।

भावार्थ - ब्रह्मचर्य गुप्तियाँ - ब्रह्मचर्य की रक्षक बातें नौ कही गई हैं यथा - १. ब्रह्मचारी को स्त्री पशु नपुंसक से रहित स्थान में रहना चाहिए २. ब्रह्मचारी पुरुष स्त्रियों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की कथा वार्ता न करे। ३. स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बैठे, उनके उठ जाने पर भी एक मुहूर्त्त तक उस आसन पर न बैठे, स्त्रियों से अधिक सम्पर्क न रखे ४. स्त्रियों के मनोहर और मनोरम अङ्गों को न देखे। यदि अकस्मात् दृष्टि पड़ जाय तो शीघ्र ही वापिस खींच ले । ५. गरिष्ठ भोजन न करे। ६. अधिक भोजन न करे। ७. पहले भोगे हुए कामभोगों और पहले की हुई क्रीड़ाओं का स्मरण न करे। ८. स्त्रियों के शब्द, रूप, गन्ध, रस, स्पर्श और प्रशंसा पर ध्यान न दे। ९. पुण्योदय के कारण प्राप्त हुए अनुकूल वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श आदि सुखों में आसक्त न होवे। इन से विपरीत नौ ब्रह्मचर्य की अगुप्तियाँ कही गई हैं यथा - स्त्री पशु नपुंसक सहित मकान में रहे यावत् अनुकूल वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श आदि के सुखों में आसक्त रहे। आचाराङ्ग सूत्र के ब्रह्मचर्य नामक प्रथम श्रुतस्कन्ध के नौ अध्ययन कहे गये हैं। यथा - १. शस्त्र परिज्ञा २. लोक विजय ३. शीतोष्णीय ४. सम्यक्त्व ५. आवंति ६. धूत अथवा लोकसार ७. विमोक्ष ८. उपधानश्रुत ९. महापरिज्ञा। पुरुषादानीय-पुरुषों में श्रेष्ठ तेवीसवें तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी का शरीर नौ हाथ ऊँचा था। अभिजित् नक्षत्र नौ मुहूर्त्त से कुछ अधिक चन्द्रमा के साथ योग करता है। अभिजित आदि अर्थात् अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषक्, पूर्व भाद्रपदा, उत्तर भाद्रपदा, रेवती, अश्विनी और भरणी ये नौ नक्षत्र चन्द्रमा के साथ उत्तर में योग करते हैं। इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुत सम रमणीय भूमिभाग से नौ सौ योजन की ऊंचाई में तारामण्डल परिभ्रमण करता है। जम्बूद्वीप में नौ योजन के मच्छ-मत्स्य प्रविष्ट हुए हैं प्रवेश करते हैं और प्रवेश करेंगे। लवणसमुद्र में ५०० योजन तक के मच्छ हैं किन्तु लवणसमुद्र की खाड़ी का मुंह छोटा होने के कारण उसमें नौ योजन तक के मच्छ ही आ सकते हैं। जम्बूद्वीप के पूर्व दिशा के विजय द्वार के प्रत्येक किनारे पर नौ नौ भौम (नगर) अथवा विशिष्ट स्थान हैं। वाणव्यन्तर देवों की सुधर्मा सभा नौ योजन ऊंची कही गई है। दर्शनावरणीय कर्म की नौ उत्तर प्रकृतियाँ कही गई हैं। यथा - १. निद्रा २. प्रचला ३. निद्रानिद्रा ४. प्रचला प्रचला ५. स्त्यानर्द्धि (स्त्यानगृद्धि) ६. चक्षु दर्शनावरणीय ७. अचक्षु दर्शनावरणीय ८. अवधि दर्शनावरणीय ९. केवल दर्शनावरणीय । इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति नौ पल्योपम की कही गई है। पंकप्रभा नामक चौथी नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति नौ सागरोपम की कही गई है। असुरकुमार देवों में कितनेक देवों की स्थिति नौ पल्योपम की कही गई है। पांचवें ब्रह्म देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति नौ सागरोपम की कही गई है। ब्रह्म देवलोक के अन्तर्गत १. पद्म २. सुपद्म ३. पद्मावर्त ४. पद्मप्रभ ५. पद्मकान्त ६. पद्मवर्ण, ७. पद्मलेश्य ८. पद्मध्वज ९. पद्मश्रृङ्ग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१०. पद्मसृष्ट अथवा पद्मसिद्ध ११ पद्मकूट १२. पद्मोत्तरावतंसक १३ सूर्य १४. सुसूर्य १५. सूर्यावर्त्त १६. सूर्यप्रभ १७. सूर्यकान्त १८. सूर्यवर्ण १९. सूर्यलेश्य २०. सूर्यध्वज २१. सूर्यश्रृङ्ग २२. सूर्यसृष्ट या सूर्यसिद्ध २३. सूर्यकूट २४. सूर्योत्तरावत्तसंक २५. रुचिर २६. रुचिरावर्त्त २७. रुचिरप्रभ २८. रुचिरकान्त २९. रुचिरवर्ण ३०. रुचिरलेश्य ३१. रुचिरध्वज, ३२. रुचिरश्रृङ्ग ३३. रुचिरसृष्ट या रुचिरसिद्ध ३४. रुचिरकूट, ३५. रुचिरोतरावतंसक। इन पैंतीस विमानों में जो देव देवरूप से उत्पन्न होते हैं उन देवों की स्थिति नौ सागरोपम की कही गई है। वे देव नौ पखवाड़ों से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को नौ हजार वर्षों से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। कितनेक भवसिद्धिक जीव जो नौ भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ॥ ९ ॥

विवेचन - जैन सिद्धान्त में ब्रह्मचर्य का बड़ा महत्त्व बतलाया गया है। जैसे खेत में बोए हुए धान की सुरक्षा के लिये किसान खेत के चारों तरफ कांटों की बाड़ लगाता है। उसी प्रकार ब्रह्मचर्य रूप धान की रक्षा के लिये शास्त्रकारों ने एक बाड़ नहीं किन्तु नौ नौ बाड़ बतलाई है तथा जिस प्रकार नगर की सुरक्षा के लिये उसके चारों तरफ कोट लगाया जाता है। उसी प्रकार इस ब्रह्मचर्य रूपी नगर की सुरक्षा के लिये नौ बाड़ लगाने के बाद दसवां कोट भी लगाया है। जिसका वर्णन उत्तराध्ययन सूत्र के १६ वें अध्ययन में है। ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए यदि प्राण भी देने पड़े तो आत्मघात करके प्राण दे दे। किन्तु ब्रह्मचर्य खण्डित न करें। आत्मघात करना यद्यपि बाल मरण है। तथापि ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये आत्मघात करने को ज्ञानियों ने पण्डित मरण कहा है। विषय भोगों को किम्पाक फल की उपमा दी है। किम्पाक फल देखने में सुन्दर और खाने में मीठा लगता है। किन्तु खाने के बाद उसका परिणाम बड़ा भयंकर होता है। अर्थात् मृत्यु देने वाला होता है। उसी प्रकार विषय भोग भोगते समय तो अच्छे लगते हैं किन्तु उनका परिणाम बड़ा भयंकर होता है। वे एक भव नहीं अनेक भवों में दुःख और दुर्गति को देने वाले होते हैं कहा भी है -

"खणमित्त सुक्खा बहुकाल दुक्खा ।"

हिन्दी में भी कहा है -

काम भोग प्यारा लगे, फल किम्पाक समान ।
मीठी खाज खुजावतां, पीछे दुःख की खान ॥
तप जप संयम दोहिला, औषध कड़वी जाण।
सुख कारण पीछे घणां, निश्चय पद निर्वाण ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जो दर्शन को रोके उसको दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं। उसके नौ भेद हैं। चक्षु (आंख) से होने वाला ज्ञान चक्षु दर्शन और चार इन्द्रियाँ तथा मन से जो पदार्थों का सामान्य बोध होता है उसे अचक्षु दर्शन कहते हैं। अवधि दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम होने पर इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना आत्मा को रूपी द्रव्य के सामान्य बोध को अवधि दर्शन कहते हैं। केवल दर्शनावरणीय कर्म के सर्वथा क्षय होने पर आत्मा द्वारा संसार के सकल पदार्थों का जो सामान्य ज्ञान होता है उसे केवल दर्शन कहते हैं।

१. निद्रा - सुख पूर्वक सोकर सुखपूर्वक जगना।

२. निद्रा-निद्रा - सुख पूर्वक सो कर मुश्किल से जगना।

३. प्रचला - खड़े हुए या बैठे हुए जो व्यक्ति को नींद आती है। उसे प्रचला कहते हैं।

४. प्रचला-प्रचला - चलते चलते व्यक्ति को जो नींद आती है वह प्रचला-प्रचला निद्रा कहलाती है।

५. स्त्यानगृद्धि - जिस निद्रा में जीव दिन में अथवा रात में सोचा हुआ काम निद्रितावस्था में कर डालता है वह स्त्यानगृद्धि है। वज्रऋषभ नाराच संहनन वाले जीव को जब स्त्यानगृद्धि निद्रा आती है तब उसमें वासुदेव का आधा बल आ जाता है। ऐसी निद्रा में मरने वाला जीव, यदि आयु न बांध चुका हो तो, नरक गति में जाता है।

निद्रा और प्रचला का उदय २४ ही दण्डक में है। २४ ही दण्डक के जीवों को निद्रा और प्रचला आती है। ऐसा भगवती सूत्र के ५ वें शतक के चौथे उद्देशक में मूलपाठ में बताया गया है।

दसवां समवाय

दसविहे समणधम्मे पण्णत्ते तंजहा-खंती मुत्ती अज्जवे मद्दवे लाघवे सच्चे संजमे तवे चियाए बंभचेरवासे । दस चित्त समाहिट्ठाणा पण्णत्ता तंजहा-धम्मचिंता वा से असमुप्पण्णपुव्वा समुप्पज्जिज्जा सव्वं धम्मं जाणित्तए, सुमिणदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा अहातच्चं सुमिणं पासित्तए,सण्णिणाणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा पुव्वभवे सुमरित्तए, देवदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवजुइं दिव्वं देवाणुभावं पासित्तए, ओहिणाणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा ओहिणा लोगं जाणित्तए, ओहिदंसणे वा से

Jain Education International	For Personal & Private Use Only	www.jainelibrary.org

असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा ओहिणा लोगं पासित्तए, मणपज्जवणाणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा जाव मणोगए भावे जाणित्तए, केवलणाणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा केवलं लोगं जाणित्तए, केवलदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा केवलं लोगं पासित्तए, केवलिमरणं वा मरिज्जा सव्वदुक्खप्पहीणाए । मंदरे णं पव्वए मूले दस जोयण सहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ते। अरिहा णं अरिट्ठणेमी दस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। कण्हे णं वासुदेवे दस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था । रामे णं बलदेवे दस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। दस णक्खत्ता णाण वुड्ढिकरा पण्णत्ता तंजहा -

मिगसिर अद्दा पुस्सो, तिण्णि य पुव्वा य मूलमस्सेसा ।
हत्थो चित्तो य तहा, दस वुड्ढिकराइं णाणस्स ॥

अकम्मभूमियाणं मणुयाणं दसविहा रुक्खा उवभोगत्ताए उवत्थिया पण्णत्ता तंजहा -

मतंगया य भिंगा, तुडियंगा दीव जोइ चित्तंगा ।
चित्तरसा मणियंगा, गेहागारा अणिगिणा य ॥

इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं दस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। चउत्थीए पुढवीए दस णिरयावाससहस्साइं पण्णत्ता। चउत्थीए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। पंचमीए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं जहण्णेणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुर कुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता। असुरिंदवज्जाणं भोमिज्जाणं देवाणं अत्थेगइयाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं दस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। बायर वणस्सइकाइयाणं उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता। वाणमंतराणं देवाणं अत्थेगइयाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं दस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। बंभलोए कप्पे देवाणं उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। लंतए कप्पे अत्थेगइयाणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवाणं जहण्णेणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा घोसं सुघोसं महाघोसं णंदिघोसं सुसरं मणोरमं रम्मं रम्मगं रमणिज्जं मंगलावत्तं बंभलोगवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा दसण्हं अद्धमासाणं (दसहिं अद्धमासेहिं) अत्थेगइयाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा। तेसिणं देवाणं दसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे दसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ १० ॥

कठिन शब्दार्थ - दसविहे - दस प्रकार का, **समणधम्मे** - श्रमण धर्म, **अज्जवे** - आर्जव, **मद्दवे** - मार्दव, **लाघवे** - लाघव, **चियाए** - त्याग, **बंभचेरवासे** - ब्रह्मचर्यवास, **असमुप्पणपुव्वा धम्मचिंता** - जिसके चित्त में पहले धर्म की भावना उत्पन्न नहीं हुई थी, **समुप्पज्जिज्जा** - उत्पन्न होवे, **दिव्वं** - दिव्य, **देविड्ढिं** - देव ऋद्धि, **देवजुइं** - देवद्युति-कांति, **देवाणुभावं** - देव प्रभाव, **ओहिणाणे** - अवधिज्ञान, **ओहिदंसणे** - अवधिदर्शन, **मणपज्जवणाणे** - मनःपर्यवज्ञान, **मणोगए** - मनोगत, **जाणित्तए** - जानने के लिए, **पासित्तए**- देखने के लिए, **मंदरे पव्वए** - मन्दर (मेरु) पर्वत, **णाणवुड्ढिकरा** - ज्ञान की वृद्धि करने वाले, **रुक्खा** - वृक्ष, **लंतए** - लान्तक।

भावार्थ - श्रमण धर्म दस प्रकार का कहा गया है। यथा - १. क्षमा - क्रोध पर विजय प्राप्त करना, क्रोध का कारण उपस्थित होने पर भी क्रोध न करना अपितु शान्ति रखना। २. मुक्ति - लोभ पर विजय प्राप्त करना, पौद्गलिक वस्तुओं पर आसक्ति न रखना। ३. आर्जव - कपट रहित होना, माया ठगाई का त्याग करना। ४. मार्दव - मान का त्याग करना, जाति कुल रूप ऐश्वर्य तप ज्ञान लाभ और बल इन आठ में से किसी का मद न करना। ५. लाघव - द्रव्य से अल्प उपधि रखना और भाव से माया, निदान (नियाणा) मिथ्यात्व इन तीन शल्यों का त्याग करना। ६. सत्य, हित और मित वचन बोलना। ७. संयम- सतरह प्रकार के संयम का पालन करना। ८. तप - बारह प्रकार का तप करना। ९. त्याग - सर्व सङ्गों का त्याग करना, किसी वस्तु पर मूर्च्छा-ममत्व न रखना। १०. ब्रह्मचर्यवास - नववाड़ सहित पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना। चित्त समाधि के दस स्थान यानी कारण कहे गये हैं यथा - १. जिसके चित्त में पहले धर्म की भावना उत्पन्न नहीं हुई थी उसके चित्त में सब धर्मों को जानने के लिए धर्म की भावना उत्पन्न हो जाने से चित्त में समाधि होती है।

Jain Education International　　For Personal & Private Use Only　　www.jainelibrary.org

२. पहले कभी नहीं देखे हुए यथातथ्य (वास्तविक) शुभ स्वप्न के देखने से चित्त में समाधि होती है। ३. जो पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ ऐसे संज्ञी ज्ञान यानी जाति स्मरण ज्ञान के उत्पन्न होने से जीव अपने पूर्वभव को देख कर चित्त में समाधि होती है और वैराग्य को प्राप्त होता है। ४. जो पहले कभी नहीं हुआ ऐसे देव का दर्शन होने पर उसकी दिव्य ऋद्धि, दिव्य द्युति-कान्ति और दिव्य प्रभाव को देख कर चित्त में समाधि होती है और धर्म में श्रद्धा दृढ़ होती है। ५. जो पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ ऐसे अवधिज्ञान के उत्पन्न होने से लोक के स्वरूप को जानने से चित्त में समाधि होती है। ६. जो पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ ऐसे अवधि दर्शन के उत्पन्न होने से लोक को देखने से चित्त में समाधि उत्पन्न होती है। ७. जो पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ ऐसा मनःपर्यव ज्ञान उत्पन्न होता है जिससे अढाई द्वीप के अन्दर रहे हुए संज्ञी जीवों के मनोगत भावों को जानता है जिससे चित्त में समाधि होती है। ८. जो पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ ऐसा केवलज्ञान उत्पन्न होता है जिससे सम्पूर्ण लोक को जानता है जिससे चित्त में समाधि उत्पन्न होती है। ९. जो पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ ऐसा केवलदर्शन उत्पन्न होता है जिससे सम्पूर्ण लोक को देखता है जिससे चित्त में समाधि होती है। १०. केवलिमरण अर्थात् केवल ज्ञान केवल दर्शन सहित मृत्यु होने से सब दुःख तथा जन्म मरण के बन्धन छूट जाने से चित्त में समाधि होती है। मेरु पर्वत मूल में दस हजार योजन का चौड़ा कहा गया है। बाईसवें तीर्थङ्कर भगवान् अरिष्टनेमि, कृष्ण वासुदेव और राम बलदेव इन तीनों के शरीर दस धनुष ऊंचे थे। दस नक्षत्र ज्ञान की वृद्धि करने वाले कहे गये हैं अर्थात् इन नक्षत्रों के उदय होने पर विद्यारम्भ या विद्या सम्बन्धी कोई काम शुरू करने से ज्ञान की वृद्धि होती हैं। वे ये हैं- १. मृगशीर्ष, २. आर्द्रा ३. पुष्य ४-५-६ पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वभाद्रपदा, पूर्वाषाढ़ा, ७-८ मूला, अश्लेषा ९. हस्त और १०. चित्रा, ये दस नक्षत्र ज्ञान की वृद्धि करने वाले हैं। अकर्म भूमि में होने वाले युगलिया मनुष्यों के लिए दस प्रकार के वृक्ष उपभोग में आते हैं वे इस प्रकार हैं - १. मत्तङ्गा - शरीर के लिए पौष्टिक रस देने वाले, २. भृताङ्गा - बर्तन का काम देने वाले, ३. त्रुटिताङ्गा - वादिंत्र-बाजे का काम देने वाले, ४. दीपाङ्गा - दीपक का काम देने वाले, ५. ज्योतिरङ्गा - सूर्य के समान प्रकाश देने वाले तथा अग्नि का काम देने वाले, ६. चित्राङ्गा - विविध प्रकार के फूल देने वाले, ७. चित्ररसा - विविध प्रकार का भोजन देने वाले ८. मण्यङ्गा - आभूषण देने वाले ९. गेहाकारा - मकान की तरह आश्रय देने वाले १०. अणियणा (अनग्ना) - वस्त्र का काम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देने वाले। इन दस प्रकार के वृक्षों से युगलियों की आवश्यकताएं पूरी होती हैं। इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में नैरयिकों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की कही गई है। इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति दस पल्योपम की कही गई है। पंकप्रभा नामक चौथी नरक में दस लाख नरकावास कहे गये हैं। पंकप्रभा नामक चौथी नरक में कितनेक नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की कही गई है। पांचवीं धूमप्रभा नामक नरक में कितनेक नैरयिकों की जघन्य स्थिति दस सागरोपम की कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की कही गई है। असुरकुमारों के इन्द्रों को छोड़ कर बाकी कितनेक भवनपति देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति दस पल्योपम कही गई है। बादर वनस्पतिकाय की उत्कृष्ट स्थिति दस हजार वर्ष की कही गई है। कितनेक वाणव्यन्तर देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की कही गई है। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति दस पल्योपम की कही गई है। पांचवें ब्रह्मलोक देवलोक में देवों की उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की कही गई है। छठे लान्तक देवलोक में कितनेक देवों की जघन्य स्थिति दस सागरोपम की कही गई है। घोष, सुघोष, महाघोष, नन्दीघोष, सुस्वर, मनोरम, रम्य, रम्यक्, रमणीय, मङ्गलावर्त्त ब्रह्मलोकावतंसक इन ग्यारह विमानों में जो देव देव रूप से उत्पन्न होते हैं उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की कही गई है। वे देव दस पखवाड़ों से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को दस हजार वर्षों से आहार की इच्छा पैदा होती है। कितनेक भव सिद्धिक जीव ऐसे हैं जो दस भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ॥ १० ॥

विवेचन - यहाँ पर श्रमण धर्म १० बतलाये गये हैं कहीं कहीं पर इनको १० यति धर्म भी कहा है। इन सब में पहला नम्बर क्षमा को दिया है वास्तव में यह सब धर्मों का शिरोमणि धर्म है। पूर्वाचार्यों ने कहा है -

"सहु धर्म सिरे, क्षमा धर्मनी होड तो कहोनी कोण करे"

तीर्थङ्कर भगवान् क्षमाशूर होते हैं - **"खंती सूरा अरिहंता"** श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को मारने के लिये उन पर गोशालक ने तेजोलेश्या छोड़ी किन्तु अनन्त शक्ति सम्पन्न होते हुये भी भगवान् महावीर ने उसका कुछ प्रतीकार नहीं किया । किन्तु उसको क्षमा कर दिया यह क्षमा शूरता का उत्कृष्ट उदाहरण है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चित्त का पर्यायवाची शब्द मन है। चित्त और मन को वश में करना बड़ा कठिन है। किन्तु तपश्चर्या तथा धर्म चिंतन करते हुए कर्मों का आवरण हल्का पड़ता है। उस समय चित्त में होने वाले विशुद्ध आनन्द को चित्त समाधि कहते हैं। चित्त समाधि के कारणों को शास्त्रकार ने "चित्तसमाधि स्थान" कहा है। जिनका वर्णन ऊपर मूल में तथा भावार्थ में कर दिया गया है।

जहाँ के मनुष्य असि (शस्त्र-तलवार, भाला आदि) मषि (स्याही तथा स्याही से होने वाले सब कार्य जैसे व्यापार, धन्धा, कानून आदि) कृषि (खेती बाड़ी यावत् शारीरिक परिश्रम से होने वाले सब कार्य) से अपनी आजीविका करते हैं। उस क्षेत्र को कर्म भूमि का क्षेत्र कहते हैं। जहाँ उपरोक्त साधनों से आजीविका नहीं करते अपितु वृक्षों से जिनकी आजीविका चलती है उस स्थान को अकर्मभूमि तथा भोग भूमि कहते हैं। ५ देवकुरु, ५ उत्तरकुरु, ५ हरिवास, ५ रम्यक्वास, ५ हेमवत, ५ हेरण्यवत् ये तीस और एकोरुक आदि ५६ अन्तरद्वीप ये ८६ क्षेत्र युगलिक क्षेत्र हैं। यहाँ पर दस जाति के वृक्ष होते हैं। ये इन क्षेत्रों में अनेक जगह होते हैं। ये केवल गिनती की अपेक्षा १० नहीं किन्तु जाति की अपेक्षा १० प्रकार के हैं और अनेक हैं। इनसे युगलिकों की आजीविका होती है। जिस युगलिक को जिस वस्तु की आवश्यकता होती है। वह उस जाति के वृक्ष के पास पहुँच जाता है और अपनी आवश्यकता की पूर्ति कर लेता है। ये वनस्पति जाति के वृक्ष हैं, कल्प वृक्ष नहीं, ये देवाधिष्ठित भी नहीं हैं। साधारण वृक्षों की तरह वृक्ष हैं इसलिये इन्हें वृक्ष ही कहना चाहिये। जैसा कि शास्त्रकार ने मूल में "**रुक्खा**" शब्द दिया है, जिसका अर्थ है - वृक्ष । जो जिस जाति का वृक्ष है उस वृक्ष से वही चीज प्राप्त होती है। इसलिये 'जो मांगे सो देते हैं, ऐसा कहना ठीक नहीं है। यदि कल्प वृक्ष हो तो दस जाति के वृक्षों की आवश्यकता नहीं, एक ही कल्प वृक्ष सब वस्तुओं की पूर्ति (पूर्णता) कर सकता है। परन्तु वैसा नहीं है। अतः इन्हें कल्पवृक्ष नहीं कहना चाहिये। वृक्ष ही कहना चाहिए।

ज्ञान की वृद्धि करने वाले नक्षत्र दस हैं। यह बात यहाँ पर और ठाणाङ्ग सूत्र के दसवें ठाणें में भी बतलाई गयी है। इस का अभिप्राय यह है कि उपरोक्त दस नक्षत्रों के उदय होने पर और चन्द्रमा के साथ योग जोड़ने पर विद्यारंभ करना या विद्या अध्ययन सम्बन्धी कोई भी कार्य प्रारंभ करने से ज्ञान की वृद्धि होती है। उस कार्य में सफलता मिलती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ग्यारहवाँ समवाय

एक्कारस उवासग पडिमाओ पण्णत्ताओ तंजहा - दंसणसावए, कयव्वयकम्मे, सामाइयकडे, पोसहोववास णिरए, दिया बंभयारी रत्तिं परिमाणकडे, दिआ वि राओ वि बंभयारी, असिणाई वियडभोई मोलिकडे, सचित्त परिण्णाए, आरंभ परिण्णाए, पेस परिण्णाए, उद्दिट्ठभत्त परिण्णाए, समणभूए यावि भवइ समणाउसो! लोगंताओ एक्कारसेहिं एक्कारेहिं जोयणसएहिं अबाहाए जोइसंते पण्णत्ते। जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स इक्कारसएहिं इक्कवीसेहिं जोयणसएहिं अबाहाए जोइसे चारं चरइ। समणस्स णं भगवओ महावीरस्स एक्कारस गणहरा होत्था तंजहा - इंदभूई अग्गिभूई वाउभूई वियत्ते सोहम्मे मंडिए मोरियपुत्ते अकंपिए अयलभाए मेयज्जे पभासे। मूले णक्खत्ते एक्कारस्स तारे पण्णत्ते। हेट्ठिम गेविज्जगाणं देवाणं एक्कारसमुत्तरं गेविज्जविमाणसयं भवइ त्ति मक्खायं। मंदरे णं पव्वए धरणितलाओ सिहरतले एक्कारसभाग परिहीणे उच्चत्तेणं पण्णत्ते। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं एक्कारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। पंचमीए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं एक्कारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एक्कारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं एक्कारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। लंतए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं एक्कारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा बंभं सुबंभं बंभावत्तं बंभप्पभं बंभकंतं बंभवण्णं बंभलेसं बंभज्झयं बंभसिंगं बंभसिट्ठं बंभकूडं बंभुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसिणं देवाणं एक्कारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा एक्कारसण्हं अद्धमासाणं (एक्कारसहिं अद्धमासेहिं) आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा। तेसिणं देवाणं एक्कारसण्हं वाससहस्साणं (एक्कारसहिं वाससहस्सेहिं) आहारट्ठे समुप्पज्जइ। संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे एक्कारसेहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ ११ ॥

कठिन शब्दार्थ - **एक्कारस** - ग्यारह, **पडिमाओ** - पडिमाएं-प्रतिज्ञाएं - अभिग्रह विशेष, **कयव्वयकम्मे** - कृतव्रतकर्मा, **पोसहोववास णिरए** - पौषधोपवास निरत, **बंभयारी**-

ब्रह्मचारी, **दिया** - दिवस, **रत्तिं-राओ** - रात्रि, **असिणाई** - स्नान नहीं करने वाला, **वियडभोजी** - विकटभोजी-दिन में भोजन करने वाला, **मोलिकडे** - मौलिकृत, **परिण्णाए-** परिज्ञात (त्याग), **समणभूए** - श्रमणभूत - साधु के समान, **जोइसंते** - ज्योतिष चक्र का अंत, **धरणियलाओ** - पृथ्वीतल से, **सिहरे** - शिखर पर्यन्त।

भावार्थ - उपासक - साधुओं की उपासना यानी सेवा करने वाला श्रमणोपासक (श्रावक) कहलाता है उसकी ग्यारह पडिमाएं यानी प्रतिज्ञाएं (अभिग्रह विशेष) कही गई हैं वे ये हैं - १. दर्शनश्रावक - यह पहली पडिमा है, इसमें अतिचार रहित शुद्ध सम्यक्त्व का पालन किया जाता है। इसका समय एक मास तक है। २. कृतव्रतकर्मा - दूसरी पडिमा में श्रावक पांच अणुव्रत और तीन गुणव्रतों को धारण करता है। इसका समय दो मास है। ३. कृतसामायिक - तीसरी पडिमा में बत्तीस दोष टाल कर निश्चित समय पर शुद्ध सामायिक और देशावकाशिक व्रतों का सम्यग् रूप से पालन किया जाता है। इसके लिए तीन मास का समय है। ४. पौषधोपवासनिरत - चौथी पडिमा में अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमावस्या को यानी महीने में छह पौषधोपवास किये जाते हैं। इसका समय चार मास है। ५. दिवाब्रह्मचारी रात्रिपरिमाण कृत - पांचवीं पडिमा में दिन में ब्रह्मचारी रहता है और रात्रि में मैथुन की मर्यादा करता है। इसका समय कम से कम एक दिन, दो दिन या तीन दिन और अधिक से अधिक पांच मास तक का है। ६. दिवारात्रि ब्रह्मचारी - छठी पडिमा में दिन और रात्रि में पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है। इस पडिमा का धारक श्रावक स्नान नहीं करता है। विकटभोजी अर्थात् वह दिन में ही भोजन करता है, रात्रि में चारों आहार का त्याग करता है। मौलिकृत अर्थात् वह धोती की लांग नहीं देता है किन्तु खुली लांग रखता है। इस पडिमा का समय कम से कम एक, दो या तीन दिन है और अधिक से अधिक छह मास है। ७. सचित्त परिज्ञात - सातवीं पडिमा में सचित्त का सर्वथा त्याग किया जाता है। इसका उत्कृष्ट समय सात मास है। ८. आरम्भ परिज्ञात - आठवीं पडिमा में श्रावक आरम्भ का त्याग कर देता है अर्थात् स्वयं किसी प्रकार का आरम्भ नहीं करता है। इसका उत्कृष्ट समय आठ मास का है। ९. प्रेष्य परिज्ञात - नवमी पडिमा में श्रावक दूसरों से आरम्भ करवाने का त्याग करता है। इसका उत्कृष्ट समय नौ मास है। १०. उद्दिष्ट भक्त परिज्ञात - दसवीं पडिमा में श्रावक उद्दिष्ट भक्त का त्याग कर देता है। वह अपने निमित्त बनाये हुए आहारादि को ग्रहण नहीं करता है। वह उस्तरे से मुण्डन करा देता है अथवा शिखा रखता है। इसका उत्कृष्ट समय दस मास है। ११. श्रमणभूत - ग्यारहवीं पडिमा में वह पडिमाधारी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रावक श्रमणभूत यानी साधु के समान होता है। उसकी सारी क्रियाएं साधु के समान होती हैं। वह भिक्षावृत्ति से अपना निर्वाह करता है किन्तु इतना फर्क है कि उसका अपने सम्बन्धियों से रागबन्धन सर्वथा छूटता नहीं है इसलिए वह उन्हीं के घर भिक्षा लेने को जाता है। उसका वेष भी साधु के समान होता है। किन्तु वह सिर पर शिखा-चोटी रखता है। यदि उसे कोई पूछे कि - आप कौन हैं? तो उसे स्पष्ट उत्तर देना चाहिए कि - "मैं पडिमाधारी श्रावक हूँ, साधु नहीं।" इस पडिमा का उत्कृष्ट समय ग्यारह मास है। सब पडिमाओं का समय मिला कर साढे पांच वर्ष होते हैं। लोक के अन्तिम भाग से ११११ योजन की दूरी पर ज्योतिषचक्र का अन्त हो जाता है। इस जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से ११२१ योजन की दूरी पर ज्योतिषचक्र परिभ्रमण करता है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ग्यारह गणधर थे उनके नाम इस प्रकार हैं - १. इन्द्रभूति २. अग्निभूति ३. वायुभूति ४. व्यक्त भूति ५. सुधर्मा स्वामी ६. मण्डितपुत्र ७. मौर्यपुत्र ८. अकम्पित ९. अचलभ्राता १०. मेतार्य ११. प्रभासस्वामी। मूला नक्षत्र ग्यारह तारों वाला कहा गया हैं। नीचे की त्रिक वाले ग्रैवेयक देवों के १११ विमान होते हैं, ऐसा कहा गया है। मेरु पर्वत पृथ्वीतल से लेकर शिखर पर्यन्त ऊंचाई में ग्यारहवें भाग कम होता जाता है। जैसे कि मेरु पर्वत मूल में दस हजार योजन का चौड़ा है। मूल भाग से ग्यारह अंगुल ऊपर जाने पर एक अङ्गुल चौड़ाई कम हो जाती है। ग्यारह योजन जाने पर एक योजन चौड़ाई कम हो जाती है और ग्यारह सौ यौजन जाने पर एक सौ योजन और ग्यारह हजार योजन जाने पर एक हजार योजन चौड़ाई कम हो जाती है। इस तरह ९९ हजार योजन जाने पर नौ हजार योजन चौड़ाई कम हो जाती है। इस प्रकार शिखर पर एक हजार योजन का चौड़ा रह जाता है। इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति ग्यारह पल्योपम की कही गई है। धूमप्रभा नामक पांचवीं नरक में कितनेक नैरयिकों की ग्यारह सागरोपम की स्थिति कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति ग्यारह पल्योपम की कही गई है। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति ग्यारह पल्योपम की कही गई है। छठे लान्तक देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति ग्यारह सागरोपम की कही गई है। लान्तक देवलोक के अन्तर्गत ब्रह्म, सुब्रह्म, ब्रह्मावर्त्त, ब्रह्मप्रभ, ब्रह्मकान्त, ब्रह्मवर्ण, ब्रह्मलेश्य, ब्रह्मध्वज, ब्रह्मशृङ्ग, ब्रह्मसृष्ट या ब्रह्मसिद्ध, ब्रह्मकूट और ब्रह्मोत्तरावतंसक इन बारह विमानों में जो देव देव रूप से उत्पन्न होते हैं उन देवों की स्थिति ग्यारह सागरोपम की कही गई है। वे देव ग्यारह पखवाड़ों से आभ्यंतर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को ग्यारह हजार वर्षों से आहार की इच्छा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पैदा होती है। कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो ग्यारह भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे यावत् सब दु:खों का अन्त करेंगे ।। ११ ॥

विवेचन - साधुओं की उपासना-सेवा करने वाले को उपासक या श्रमणोपासक (श्रावक) कहते हैं। बारह अणुव्रतों का पालन करते हुए श्रावक जब धार्मिक क्षेत्र में आगे बढ़ने की इच्छा करते हैं तब घर के कामों से निवृत्त होकर इन ग्यारह पडिमाओं (प्रतिज्ञा-नियम विशेष) को धारण करते हैं जिनका वर्णन ऊपर दिया गया है। दशाश्रुतस्कन्ध की छठी दशा में इनका विस्तृत वर्णन दिया गया है जिसका हिन्दी अनुवाद जैन सिद्धान्त बोल संग्रह भाग ४ में दिया गया है। इन ग्यारह पडिमाओं का आचरण आनन्द, कामदेव आदि १० श्रावकों ने किया है जिसका वर्णन उपासकदशाङ्ग सूत्र में किया गया है।

प्राचीन हस्त लिखित प्रतियों में ऐसा वर्णन मिलता है कि - पहली पडिमा में एक महीने तक एकान्तर उपवास किया जाता है। दूसरी पडिमा में दो महीने तक बेले बेले, तीसरी पडिमा में तीन महीने तक तेले-तेले तपश्चर्या की जाती है। इस प्रकार यावत् ग्यारहवीं पडिमा में ग्यारह महीने तक ग्यारह ग्यारह की तपश्चर्या की जाती है। आनन्द श्रावक का वर्णन पढ़ने से भी इस बात की पुष्टि हो जाती है कि उन्होंने पडिमाओं में इसी प्रकार की तपश्चर्या की थी। क्योंकि जब गौतम स्वामी आनन्द को दर्शन देने पधारे थे तब आनन्द श्रावक के शरीर का वर्णन काकन्दी नगरी के धन्ना अनगार की तरह किया है। इस प्रकार का जर्जर शरीर तपश्चर्या से ही हो सकता है इसीलिये वे संथारे से उठ नहीं सके। विनति करने पर गौतम स्वामी आनन्द श्रावक के नजदीक पहुँचे तब आनन्द श्रावक ने अपना मस्तक उनके चरणों में लगा कर वन्दन नमस्कार किया। इन उद्धरणों से यह स्पष्ट होता है कि - श्रावक की पडिमाओं में श्रावक इतना उत्कृष्ट तप करता है।

श्रमणोपासक (श्रावक) की पडिमाओं को देखने से अल्प पाप और महा पाप की व्याख्या का स्पष्टीकरण हो जाता है। वह इस प्रकार है - एक सरीखी परिस्थिति, परिणामों की विचार धारा, तत्त्वज्ञान और विवेक ये सब बातें जिस व्यक्ति में हो वह यदि कोई आरम्भ आदि का पाप काम स्वयं करे अथवा इन सभी गुणों से युक्त पुरुष से वह आरम्भ आदि पाप कार्य करावें अथवा इन सभी गुणों से युक्त किसी व्यक्ति ने आरम्भादि पाप कार्य किया है उसके कार्य की अनुमोदना करे तो स्वयं करने वाले को पाप अधिक लगता है। कराने में उससे कम और अनुमोदना में उससे भी कम पाप लगता है। क्योंकि - आठवीं पडिमा में श्रावक स्वयं आरम्भ करने का त्याग करता है। नौवीं पडिमा में दूसरों से आरम्भ करवाने का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्याग करता है और दसवीं पडिमा में अपने लिये बनाये हुए आहार पानी का त्याग करता है अर्थात् अनुमोदना का भी त्याग करता है। इसमें इतना ध्यान रखने की आवश्यकता है कि - करने वाला, कराने वाला और अनुमोदन में समान परिणाम विचार-धारा और विवेक आदि हों तो ही ऐसा समझना चाहिये। श्रावक महारम्भ का त्याग पहले करता है। यहाँ पर भी स्वयं करने रूप महारम्भ का त्याग पहले किया है। कराने और अनुमोदने रूप अल्प पाप का त्याग पीछे किया है।

प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में चौबीस-चौबीस तीर्थङ्कर होते हैं। प्रत्येक तीर्थङ्कर के गणधर होते हैं। उनकी संख्या भिन्न-भिन्न होती है। इस अवसर्पिणी काल के तीर्थङ्करों के गणधरों की संख्या इस प्रकार हुई थी -

१. भगवान् ऋषभदेव	८४	२. भगवान् अजितनाथ	९५
३. भगवान् संभवनाथ	१०२	४. भगवान् अभिनन्दनस्वामी	११६
५. भगवान् सुमतिनाथ	१००	६. भगवान् पद्मप्रभस्वामी	१०७
७. भगवान् सुपार्श्वनाथ	९५	८. भगवान् चन्द्रप्रभस्वामी	९३
९. भगवान् सुविधिनाथ	८८	१०. भगवान् शीतलनाथ	८१
११. भगवान् श्रेयांसनाथ	७६	१२. भगवान् वासुपूज्य स्वामी	६६
१३. भगवान् विमलनाथ	५७	१४. भगवान् अनन्तनाथ	५०
१५. भगवान् धर्मनाथ	४३	१६. भगवान् शान्तिनाथ	३६
१७. भगवान् कुंथुनाथ	३५	१८. भगवान् अरनाथ	३३
१९. भगवान् मल्लिनाथ	२८	२०. भगवान् मुनिसुव्रतस्वामी	१८
२१. भगवान् नमिनाथ	१७	२२. भगवान् अरिष्टनेमिनाथ	११
२३. भगवान् पार्श्वनाथ	८	२४. भगवान् महावीर स्वामी	११

जब तीर्थङ्कर भगवान् को केवलज्ञान उत्पन्न होता है तब पहली धर्मदेशना (धर्मोपदेश) देते हैं; उसमें जितने गणधर होने होते हैं उतने हो जाते हैं। भगवान् महावीर स्वामी को वैसाख सुदी १० के दिन सुव्रत दिवस विजय मुहूर्त्त उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग होने पर दिन के पिछले भाग में जृंभिका ग्राम नगर से बाहर ऋजुबालुका नदी के उत्तर तट पर शामाक गाथापति के खेत में वैयावृत्य नामक चैत्य के ईशान कोण में शाल वृक्ष के नजदीक गोदुहिका नामक उकडु आसन से बैठे हुए आतापना लेते हुए चौविहार बेले की तपस्या में केवलज्ञान, केवल दर्शन उत्पन्न हुआ। भगवान् की प्रथम देशना हुई। चार जाति के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देव और चार जाति की देवियाँ, तिर्यञ्च, तिर्यञ्चणी मनुष्य मनुष्यणी यह बारह प्रकार की परिषद् उपस्थित थी किन्तु वह 'अभाविता' परिषद् थी । उसमें व्रतधारण करने की किसी में भी योग्यता नहीं थी । इसलिये वह पहली धर्मदेशना खाली गई । दूसरी देशना अपापापुरी में हुई । वहाँ यज्ञ कराने के लिये इन्द्रभूति आदि ग्यारह महान् ब्राह्मण पंडित एकत्रित हुए थे। अपने मत की पुष्टि करने के लिये शास्त्रार्थ करने के लिये भगवान् के पास आये थे। अपने अपने संशय का संतोष जनक निवारण हो जाने पर वे भगवान् के शिष्य बन गये। उनके संशय नीचे लिखे अनुसार थे -

१. **इन्द्रभूति** - जीव है या नहीं?

२. **अग्निभूति** - ज्ञानावरण आदि कर्म हैं या नहीं?

३. **वायुभूति** - शरीर और जीव एक है या भिन्न-भिन्न?

४. **व्यक्तस्वामी** - पृथ्वी आदि भूत हैं या नहीं?

५. **सुधर्मास्वामी** - इसलोक में जो जैसा है, परलोक में भी वह वैसा ही रहता है या नहीं?

६. **मंडित पुत्र** - बंध और मोक्ष है या नहीं?

७. **मौर्य पुत्र** - देवता हैं या नहीं?

८. **अकम्पित** - नरक हैं या नहीं?

९. **अचलभ्राता** - पुण्य ही बढ़ने पर सुख और घटने पर दु:ख का कारण हो जाता है या दु:ख का कारण पाप पुण्य से अलग है?

१०. **मेतार्य** - आत्मा की सत्ता होने पर भी परलोक है या नहीं?

११. **प्रभास** - मोक्ष है या नहीं?

सभी गणधरों के संशय एवं उनका समाधान विशेषावश्यक भाष्य गाथा १५४७ से २०२४ तक में तथा हरिभद्रीयावश्यक में विस्तारपूर्वक दिया है। जिसका हिन्दी अनुवाद जैन सिद्धान्त बोल संग्रह चौथे भाग में है।

बारहवां समवाय

बारस भिक्खुपडिमाओ पण्णत्ताओ तंजहा - मासिया भिक्खुपडिमा, दोमासिया भिक्खुपडिमा, तिमासिया भिक्खुपडिमा, चउमासिया भिक्खुपडिमा, पंचमासिया भिक्खुपडिमा, छमासिया भिक्खुपडिमा, सत्तमासिया भिक्खुपडिमा, पढमा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्तराइंदिया भिक्खुपडिमा, दोच्चा सत्तराइंदिया भिक्खुपडिमा, तच्चा सत्तराइंदिया भिक्खुपडिमा, अहोराइया भिक्खुपडिमा, एगराइया भिक्खुपडिमा। दुवालसविहे संभोगे पण्णत्ते तंजहा -

उवहिसुयभत्तपाणे, अंजलिपग्गहे त्ति य ।
दायणे य णिकाए य, अब्भुट्ठाणे त्ति आवरे ।।
किइकम्मस्स य करणे, वेयावच्च करणे इय ।
समोसरणं सण्णिसिज्जा य, कहाए य पबंधणे।।

दुवालसावत्ते किइकम्मे पण्णत्ते तंजहा -

दुओणयं जहाजायं, किइकम्मं बारसावयं ।
चउसिरं तिगुत्तं च, दुप्पवेसं एगणिक्खमणं ।।

विजया णं रायहाणी दुवालस जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ता। रामे णं बलदेवे दुवालस वाससयाइं सव्वाउयं पालित्ता देवत्तं गए। मंदरस्स णं पव्वयस्स चूलिया मूले दुवालस जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता। जंबूद्दीवस्स णं दीवस्स वेइया मूले दुवालस जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता। सव्व जहण्णिया राई दुवालस मुहुत्तिया पण्णत्ता, एवं दिवसो वि णायव्वो। सव्वट्ठसिद्धस्स णं महाविमाणस्स उवरिल्लाओ थूभियग्गाओ दुवालस जोयणाइं उड्ढं उप्पइया ईसिपब्भारा णाम पुढवी पण्णत्ता। ईसिपब्भाराए णं पुढवीए दुवालस णामधेज्जा पण्णत्ता तंजहा - ईसि त्ति वा, ईसिपब्भाराइ वा, तणूइ वा, तणुयतरित्ति वा, सिद्धि त्ति वा, सिद्धालए त्ति वा, मुत्ती त्ति वा, मुत्तालए त्ति वा, बंभेत्ति वा, बंभवडिंसए त्ति वा, लोयपडिपूरणे त्ति वा, लोयग्गचूलियाइ वा। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं बारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता । पंचमीए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं बारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं बारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं बारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। लंतए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं बारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा महिंदं महिंदज्झयं कंबुं कंबुग्गीवं पुंखं सुपुंखं महापुंखं पुंडं सुपुंडं महापुंडं णरिंदं णरिंदकंतं णरिंदुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा बारसण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा। तेसिणं देवाणं बारसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे बारसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ।। १२ ।।

कठिन शब्दार्थ - बारस, दुवालस - बारह, **भिक्खुपडिमा** - भिक्षु पडिमा, **मासिया**- एक मास की, **सत्त राइंदिया** - सात दिन रात की, **अंजलिपग्गहे** - अञ्जलिप्रग्रह, **णिकाए** - निकाचन-निमंत्रण, **अब्भुट्ठाणे** - अभ्युत्थान, **किइकम्मस्स करणे** - कृतिकर्म करण-विधि पूर्वक वन्दना, **समोसरणं** - समवसरण, **सण्णिसिज्जा** - सन्निषद्या-आसन आदि देना, **कहाए पबंधणे** - कथा-प्रबन्ध, **किइकम्मे** - कृति कर्म, **दुवालसावत्ते** - बारह आवर्तन, **जहाजायं** - यथा जात, **दुओणयं** - दो बार नमन, **चउसिरं** - चार शिर, **तिगुत्तं** - त्रिगुप्त, **दुप्पवेसं** - दो बार प्रवेश, **एगणिक्खमणं** - एक निष्क्रमण, **वेइया** - वेदिका, **थूभियग्गाओ** - स्तूपिकाग्र-चूलिका के अग्रभाग से, **ईसि** - ईषत्।

भावार्थ - भिक्षुपडिमा यानी साधु के अभिग्रह विशेष बारह कहे गये हैं, वे ये हैं -

१. एकमासिकी भिक्षुपडिमा - पहली पडिमाधारी साधु के एक दत्ति अन्न की और एक दत्ति पानी की लेना कल्पता है। इसका समय एक मास का है।

२. द्विमासिकी भिक्खुपडिमा - इसमें दो दत्ति अन्न की और दो दत्ति पानी की लेना कल्पता है। इसका समय एक मास है।

३. त्रिमासिकी भिक्खुपडिमा - इसमें तीन दत्ति अन्न की और तीन दत्ति पानी की लेना कल्पता है। इसका समय एक मास है।

४. चातुर्मासिकी भिक्खुपडिमा - इसमें चार दत्ति अन्न की और चार दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है। इसका समय एक मास है।

५. पञ्चमासिकी भिक्खुपडिमा - इसमें पांच दत्ति अन्न की और पांच दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है। इसका समय एक मास है।

६. षाण्मासिकी भिक्खुपडिमा - इसमें छह दत्ति अन्न की और छह दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है। इसका समय एक मास है।

७. सप्तमासिकी भिक्खुपडिमा - इसमें सात दत्ति अन्न की और सात दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है। इसका समय एक मास है।

८. आठवीं पडिमा का समय सात दिन रात का है। इसमें एकान्तर चौविहार उपवास

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करना चाहिए। ग्राम के बाहर जाकर उत्तानासन, पार्श्वासन या निषद्यासन से ध्यान लगा कर समय व्यतीत करना चाहिए। वहां जो उपसर्ग आवें उन्हें समभाव पूर्वक सहन करना चाहिए।

९. नवमी पडिमा का समय सात दिन रात है। इसमें एकान्तर चौविहार उपवास किया जाता है। ग्राम के बाहर जाकर दण्डासन, लकुटासन या उत्कटासन से ध्यान करना चाहिए और उपसर्गों को समभाव से सहन करना चाहिए।

१०. दसवीं पडिमा का समय सात दिन रात है। इसमें चौविहार उपवास किया जाता है। ग्राम के बाहर जाकर गोदुहासन, वीरासन या आम्रकुब्जासन से ध्यान लगा कर समय व्यतीत करना चाहिए और उपसर्गों को समभाव पूर्वक सहन करना चाहिए ।

११. ग्यारहवीं पडिमा एक अहोरात्रिकी अर्थात् एक दिन रात की होती है। चौविहार बेला करके इस पडिमा का आराधन किया जाता है। ग्राम के बाहर जाकर दोनों पैरों को कुछ संकुचित कर हाथों को घुटनों तक लम्बा करके कायोत्सर्ग करना चाहिए ।

१२. बारहवीं पडिमा का नाम एकरात्रिकी है। इसका समय सिर्फ एक रात है। इसका आराधन चौविहार तेला करके किया जाता है। ग्राम के बाहर श्मशान भूमि में जाकर किसी एक पदार्थ पर दृष्टि जमा कर निश्चलता पूर्वक कायोत्सर्ग करना चाहिए। उपसर्गों को समभाव पूर्वक सहन करना चाहिए। इस पडिमा का सम्यक् पालन न करने से तीन बातें अहितकारी हो जाती है - उन्माद की प्राप्ति हो जाती है, लम्बे समय तक रहने वाले रोगादि की प्राप्ति हो जाती है अथवा केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। इस पडिमा का सम्यक् रूप से पालन करने से अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान इन तीनों में से किसी एक ज्ञान की अवश्य प्राप्ति होती है। यह पडिमा हित, शुभ, शक्ति और मोक्ष के लिए तथा ज्ञानादि की प्राप्ति के लिए होती है।

सम्भोग - समान समाचारी वाले साधुओं के सम्मिलित आहार आदि व्यवहार को सम्भोग कहते हैं। वह सम्भोग बारह प्रकार का कहा गया है वह इस प्रकार है - १. उपधि अर्थात् वस्त्र पात्र आदि उपधि को परस्पर लेने देने के लिए बना हुआ नियम । २. श्रुत - परस्पर शास्त्र की वाचना लेना देना। ३. भक्त पान - आहार पानी परस्पर लेना देना। ४. अञ्जलिप्रग्रह - परस्पर वन्दन नमस्कार करना। ५. दान - शिष्यादि को परस्पर लेना देना। ६. निकाचन यानी निमन्त्रण - शय्या, उपधि, आहार आदि के लिए परस्पर निमंत्रण देना। ७. अभ्युत्थान - अपने से बड़े साधु को आते देख कर आसन से उठना। ८. कृतिकर्म करण - विधिपूर्वक वन्दना करना। ९. वैयावृत्य करण - ग्लान, वृद्ध, तपस्वी आदि साधुओं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की सेवा करना। १०. समवसरण - व्याख्यान आदि के समय एक जगह बैठना तथा एक ही मकान में साथ ठहरना। ११. सन्निषद्या - आसन आदि देना, एक आसन पर बैठना। १२. कथा प्रबन्ध - एक जगह बैठ कर कथा वार्त्ता करना, शास्त्रचर्चा करना। ये साधुओं के बारह सम्भोग हैं। कृतिकर्म यानी वन्दना नामक तीसरे आवश्यक के बारह आवर्तन कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - १-२ यथाजात यानी जन्मते हुए बालक की तरह घुटनों के बीच में दोनों हाथों को जोड़ कर दो बार नमस्कार करना। ३-६ चार शिर अर्थात् दो वक्त खमासमणा देने से चार वक्त गुरु के चरणों में शिर नमावें । ७-९ त्रिगुप्त यानी मन वचन काया को गोप कर रखना। १०-११ दो वक्त अवग्रह में प्रवेश करना और १२ एक वक्त बाहर निकलना। खमासमणा देने की विधि यह है - दो वक्त इच्छामि खमासमणो का पाठ बोले । जब "निसिहियाए" शब्द आवे तब दोनों गोड़े खड़े करके दोनों हाथ जोड़ कर बैठे फिर **१ अ हो, २ का यं, ३ का य,** ये तीन आवर्तन करे। इसी तरह **४ ज त्ता भे, ५ ज व णि, ६ ज्जं च भे,** ये तीन आवर्तन करे। इस प्रकार एक पाठ में ६ आवर्तन करें। जहाँ **'तित्तीसण्णयराए'** शब्द आवे वहाँ खड़ा हो जावे और पाठ समाप्त करे। इसी प्रकार दूसरी वक्त खमासमणो का पाठ बोलते वक्त फिर ६ आवर्तन करे और **'तित्तीसण्णयराए'** शब्द आवे वहाँ खड़ा न होवे किन्तु बैठा बैठा ही पाठ समाप्त करे। इस प्रकार खमासमणो के १२ आवर्तन होते हैं। इस जम्बूद्वीप के पूर्व द्वार के स्वामी, एक पल्योपम की स्थिति वाले विजय देव की विजया राजधानी बारह लाख योजन की लम्बी चौड़ी है। नवमा राम बलदेव (कृष्ण वासुदेव का भाई) बारह सौ वर्ष का पूर्ण आयुष्य भोग कर पांचवें ब्रह्मलोक देवलोक में उत्पन्न हुए । मेरु पर्वत की चूलिका मूल में बारह योजन की चौड़ी कही गई है। इस जम्बूद्वीप की वेदिका मूल में बारह योजन चौड़ी कही गई है। सब से छोटी रात्रि आषाढ़ पूर्णिमा की होती है। वह बारह मुहूर्त्त की होती है। इसी तरह पौष पूर्णिमा का दिन भी सब से छोटा होता है। वह बारह मुहूर्त्त का होता हैं। सर्वार्थसिद्ध महाविमान की ऊपर की चूलिका के अग्रभाग से बारह योजन ऊपर जाने पर ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी आती है। ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के बारह नाम कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - १. ईषत्, २. ईषत्प्राग्भारा, ३. तन्वी, ४. तनुतरा, ५. सिद्धि, ६. सिद्धालय, ७. मुक्ति, ८. मुक्तालय, ९. ब्रह्म, १०. ब्रह्मावतंसक, ११. लोक प्रतिपूर्ण, १२. लोकाग्र चूलिका । इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति बारह पल्योपम की कही गई है। धूमप्रभा नामक पांचवीं नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति बारह सागरोपम की कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बारह पल्योपम की कही गई है। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति बारह पल्योपम की कही गई है। छठे लान्तक देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति बारह सागरोपम की कही गई है। लान्तक देवलोक के अन्तर्गत महेन्द्र, महेन्द्र ध्वज, कम्बु, कम्बुग्रीव, पुंक्ष, सुपुंक्ष, महापुंक्ष, पुण्ड्र, सुपुण्ड्र, महापुण्ड्र, नरेन्द्र, नरेन्द्रकान्त, नरेन्द्रावतंसक, इन तेरह विमानों में जो देव देवरूप से उत्पन्न होते हैं उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति बारह सागरोपम की कही गई है। वे देव बारह पखवाड़ों से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को बारह हजार वर्षों से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो बारह भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ।। १२॥

विवेचन - एक समान समाचारी वाले साधुओं का साधुओं के साथ तथा साध्वियों का साध्वियों के साथ सम्मिलित आहारादि करने के व्यवहार को संभोग कहते हैं। इनमें से किसी भी सम्भोग के नियम का पालन न करने पर प्रायश्चित्त का भागी बनता है। तीन बार तक प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध हो सकता है किन्तु चौथी बार दोष लगने पर प्रायश्चित्त नहीं दिया जाता है। किन्तु विसंभोगी कर दिया जाता है।

उपरोक्त बारह संभोगों में से शुद्ध और समान समाचारी वाली साध्वियों के साथ ये छह सम्भोग हो सकते हैं -

१. **श्रुत संभोग** - अर्थात् विधिपूर्वक शास्त्र की वांचना लेना और देना।

२. **अंजलि प्रग्रह** - परस्पर वन्दन नमस्कार करना एवं आलोचना आदि लेना देना।

३. **अभ्युत्थान** - साधु के आने पर खड़ा होना।

४. **कृतिकर्म** - विधिपूर्वक वन्दन करना।

५. **समवसरण** - व्याख्यान आदि के समय साधु के स्थान पर आकर व्याख्यान सुनना।

६. **कथा प्रबन्ध** - एक जगह बैठकर शास्त्र चर्चा एवं धर्म चर्चा आदि करना। ये छह संभोग साधु साध्वियों के परस्पर हो सकते हैं।

कृतिकर्म के बारह आवर्तन बताये गये हैं किन्तु यहां (समवायाङ्ग की टीका में) जैसा चाहिये वैसा विषय को स्पष्ट नहीं किया जा सका है किन्तु **'दुओणयं जहाजायं'** यह गाथा आवश्यक निर्युक्ति में (गाथा नं. १२०२) दी है जहाँ इस विषय को पूर्ण रूप से स्पष्ट किया गया है और कहा गया है कि - '२५ आवश्यक से परिशुद्ध यदि वन्दना की जाय तो वन्दन कर्त्ता परिनिर्वाण को प्राप्त होता है या वैमानिक देव होता है।' गुरु महाराज की वन्दना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'इच्छामि खमासमणो' के पाठ से दो बार की जाती है। **इच्छामि खमासमणो** के पाठ से वंदन के २५ आवश्यक की निम्न विधि प्रचलित है - खड़े होकर दोनों हाथ जोड़ कर '**इच्छामि खमासमणो**' का पाठ प्रारंभ करे। '**अणुजाणह मे मिउग्गहं**' शब्द आवे उस समय कुछ आगे झुक कर मस्तक नमाना (यह पहला अवनत हुआ) फिर '**निसीहि**' शब्द बोलते हुए उत्कुटुक (यथाजात) आसन से बैठें। (यह गुरु महाराज के अवग्रह में पहला प्रवेश हुआ)। दोनों कोहनियों को घुटने के बीच में रखे, अंजलि-बद्ध दोनों हाथ मस्तक पर रख कर सिर झुकाते हुए निम्नानुसार आवर्त्तन ✿ करें। '**अ**' बोल कर अंजलि को दायें हाथ की तरफ से मस्तक की ओर घुमा कर बायें हाथ की तरफ लावें बाद में मस्तक पर अंजलि लगाते हुए '**हो**' ऐसा बोले। इस प्रकार प्रथम आवर्त्तन हुआ। इस प्रकार अन्य आवर्त्तन भी करें। प्रथम के तीन आवर्त्तन '**अहो**' '**कायं**' '**काय**' इस प्रकार दो-दो अक्षरों का उच्चारण करने से होता है। इसके बाद '**संफासं**' बोलते हुए गुरु चरणों के स्पर्श के प्रतीक के रूप में दोनों हाथों से या मस्तक से जमीन का स्पर्श करे (यह चउसिरं में से पहला शिर हुआ) तत्पश्चात् दोनों हाथों को जोड़ कर मस्तक पर लगाते हुए '**खमणिज्जो**' से लेकर 'दिवसो' '**वइक्कंतो**' तक का पाठ बोले। तत्पश्चात् '**ज**' '**त्ता**' '**भे**', '**ज**' '**व**' '**णि**', '**ज्जं**' '**च**' '**भे**' इस प्रकार तीन तीन अक्षरों का उच्चारण करते हुए तीन आवर्त्तन करें। उसके बाद '**खामेमि खमासमणो**' बोलते हुए गुरु चरणों के स्पर्श के प्रतीक के रूप में दोनों हाथों से या मस्तक से जमीन का स्पर्श करे। (यह द्वितीय शिर हुआ) फिर दोनों हाथों को जोड़ कर मस्तक पर लगा कर '**खामेमि**' से '**वइक्कमं**' तक पाठ बोले और '**आवस्सियाए पडिक्कमामि**' बोलता हुआ खड़ा होवे (यह एक निष्क्रमण हुआ) और शेष पाठ (**पडिक्कमामि से अप्पाणं वोसिरामि** तक) पूरा करें। (इस प्रकार प्रथम खमासमणो में एक अवनत, एक प्रवेश, यथाजात, छह आवर्त्तन, दो शिर, एक निष्क्रमण और तीन गुप्तियाँ हुई) इसी प्रकार दूसरी बार इच्छामि खमासमणो की विधि करें किन्तु इसमें '**आवस्सियाए पडिक्कमामि**' ये दस अक्षर नहीं कहें तथा यहाँ पर खड़े न हो कर बैठे बैठे गुरु के अवग्रह में ही पूरा पाठ समाप्त करे। (इस प्रकार दूसरे खमासमणो में एक अवनत, एक प्रवेश, छह आवर्त्तन दो शिर होते हैं तथा यथाजात व तीन गुप्तियाँ दोनों खमासमणो में समुच्चय होती है।) दोनों खमासमणो में मिला कर ये पच्चीस आवश्यक होते हैं।

✿ *पूज्य श्री घासीलालजी म. सा. ने भी आवश्यक की टीका में आवर्त्तन की यही विधि दी है।*

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तेरहवां समवाय

तेरस किरिया ठाणा पण्णत्ता तंजहा - अट्ठादंडे, अणट्ठादंडे, हिंसादंडे, अकम्हादंडे दिट्ठिविपरियासियादंडे, मुसावायवत्तिए, अदिण्णादाणवत्तिए, अज्झत्थिए, माणवत्तिए, मित्तदोसवत्तिए, मायावत्तिए, लोभवत्तिए, ईरियावहिए णामं तेरसमे । सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु तेरस विमाण पत्थडा पण्णत्ता। सोहम्मवडिंसगे णं विमाणे अद्धतेरस जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते। एवं ईसाणवडिंसगे वि। जलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं अद्धतेरसजाइकुल कोडी जोणी पमुहसयसहस्साइं पण्णत्ता। पाणाउस्स णं पुव्वस्स तेरस वत्थू पण्णत्ता। गब्भवक्कंतियपंचिंदिय तिरिक्ख जोणियाणं तेरसविहे पओगे पण्णत्ते तंजहा - सच्चमणपओगे मोसमणपओगे सच्चामोसमणपओगे असच्चामोसमणपओगे सच्चवइपओगे मोसवइपओगे सच्चामोसवइपओगे असच्चामोसवइपओगे ओरालियसरीरकायपओगे ओरालियमीस-सरीरकायपओगे वेउव्वियसरीरकायपओगे वेउव्वियमीससरीरकायपओगे कम्मसरीरकायपओगे । सूरमंडलं जोयणेणं तेरसेहिं एगसट्ठिभाएहिं जोयणस्स ऊणं पण्णत्तं। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं तेरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। पंचमीए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं तेरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं तेरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं तेरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। लंतग कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं तेरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा वज्जं सुवज्जं वज्जावत्तं वज्जप्पभं वज्जकंतं वज्जवण्णं वज्जलेसं वज्जरूवं वज्जसिंगं वज्जसिट्ठं वज्जकूडं वज्जुत्तरवडिंसगं वइरं वइरावत्तं वइरप्पभं वइरकंतं वइरवण्णं वइरलेसं वइररूवं वइरसिंगं वइरसिट्ठं वइरकूडं वइरुत्तरवडिंसगं लोगं लोगावत्तं लोगप्पभं लोगकंतं लोगवण्णं लोगलेसं लोगरूवं लोगसिंगं लोगसिट्ठं लोगकूडं लोगुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं तेरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा तेरसेहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा। तेसिणं देवाणं तेरसेहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ । संतेगइया भवसिद्धिया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीवा जे तेरसेहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ।। १३ ।।

कठिन शब्दार्थ - **तेरस** - तेरह, **किरियाट्ठाणा** - क्रिया स्थान, **अकम्हादंडे** - अकस्मात् दण्ड, **दिट्ठिविप्परियासियादंडे** - दृष्टि विपर्यास दण्ड, **मुसावायवत्तिए** - मृषावाद प्रत्ययिक, **अदिण्णादाणवत्तिए** - अदत्तादान प्रत्ययिक, **अज्झत्थिए** - अध्यात्म प्रत्ययिक, **माणवत्तिए** - मान प्रत्ययिक, **मित्तदोसवत्तिए** - मित्र द्वेष प्रत्ययिक, **ईरियावहिए** - ईर्यापथिकी, **विमाण पत्थडा** - विमानों के प्रस्तट (पाथड़े), **अद्धतेरस जाइकुलकोडी जोणीपमुहसयसहस्साइं** - साढे बारह लाख कुल कोड़ी योनि प्रमुख, **पाणाउस्स पुव्वस्स** - प्राणायु पूर्व की, **मण पओगे** - मन योग, **वइ पओगे** - वचन योग, **काय पओगे** - काय प्रयोग, **जोयणेणं एगसट्ठिभाएहिं** - एक योजन के इकसठिये भाग ।

भावार्थ - क्रियास्थान - कर्मबन्ध के कारण तेरह कहे गये हैं वे ये हैं - १. अर्थदण्ड- अपने शरीर या स्वजनादि के लिए छह काय जीवों का आरम्भ करना। २. अनर्थदण्ड - किसी भी प्रयोजन के बिना किया जाने वाला पाप । ३. हिंसादण्ड - किसी जीव ने मुझे मारा है, मारता है या मारेगा यह सोच कर उसकी हिंसा करना। ४. अकस्माद्दण्ड - किसी जीव को मारने के लिए प्रवृत्त हुआ पुरुष भ्रमवश किसी दूसरे को मार देवें । ५. दृष्टिविपर्यास दण्ड - नजर चूक जाने के कारण या भ्रमवश दूसरे को मार देना। ६. मृषावाद प्रत्ययिक - झूठ बोलने से लगने वाला पाप । ७. अदत्तादान प्रत्ययिक - चोरी करने से लगने वाला पाप। ८. अध्यात्म प्रत्ययिक - मानसिक दुष्ट विचारों से लगने वाला पाप । ९. मान प्रत्ययिक - मान एवं अहङ्कार के कारण होने वाला पाप। १०. मित्र द्वेष प्रत्ययिक - अपने मित्रों और कुटुम्बियों के प्रति द्वेष करने से लगने वाला पाप। ११. माया प्रत्ययिक - माया कपट के कारण लगने वाला पाप। १२. लोभ प्रत्ययिक - लोभ और आसक्ति के कारण लगने वाला पाप। १३. ईर्यापथिकी - यह क्रिया ग्यारहवें, बारहवें एवं तेरहवें गुणस्थानवर्ती जीव को लगती है। यह साता रूप होती है। इसकी स्थिति दो समय की होती है। पहले समय में बन्धती है। दूसरे समय में भोगी जाती है और तीसरे समय में निर्जर जाती है अर्थात् उसकी निर्जरा हो जाती है। ऐसी क्रिया से होने वाला कर्म पहले समय में बंधता है, दूसरे समय में भोगा जाता है और तीसरे समय में निर्जर जाता है-छूट जाता है। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में तेरह विमान प्रस्तट-प्रस्तर (पाथड़े) कहे गये हैं। पहला सौधर्म देवलोक मेरुपर्वत से दक्षिण दिशा में पूर्व पश्चिम लम्बा और उत्तर दक्षिण चौड़ा अर्द्ध

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्राकार है, उसके तेरह प्रस्तट-प्रतर (पाथड़ों) के बीच में सौधर्मावतंसक विमान साढ़े बारह लाख योजन लम्बा चौड़ा कहा गया है। इसी तरह ईशानावतंसक भी साढ़े बारह लाख योजन का लम्बा चौड़ा है। जलचर तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय जीवों की साढ़े बारह लाख कुलकोडी कही गई है। प्राणियों की आयुष्य का भेद प्रभेद सहित वर्णन करने वाले प्राणायु पूर्व की तेरह वस्तु-अध्ययन कहे गये हैं। गर्भज तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय जीवों के तेरह योग कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - १. सत्य मन योग, २. मृषा - असत्य मन योग, ३. सत्यमृषा यानी मिश्र मन योग, ४. असत्यामृषा यानी व्यवहार मन योग, ५. सत्य वचन योग, ६. असत्य वचन योग, ७. सत्यमृषा - मिश्र वचन योग, ८. असत्यामृषा - व्यवहार वचन योग, ९. औदारिक शरीर काययोग, १०. औदारिक मिश्र शरीर काययोग, ११. वैक्रिय शरीर काययोग, १२. वैक्रिय मिश्र शरीर काययोग, १३. कार्मणशरीर काययोग। सूर्यमण्डल एक योजन के ६१ भाग में से १३ भाग ऊणा कहा गया है अर्थात् एक योजन के इकसठिये ४८ भाग का चौड़ा कहा गया है। इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति तेरह पल्योपम की कही गई है। धूमप्रभा नामक पाँचवीं नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति तेरह सागरोपम की कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति तेरह पल्योपम की कही गई है। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति तेरह पल्योपम की कही गई है। छठे लान्तक देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति तेरह सागरोपम की कही गई है। छठे लान्तक देवलोक के अन्तर्गत वज्र, सुवज्र, वज्रावर्त्त, वज्रप्रभ, वज्रकान्त, वज्रवर्ण, वज्रलेश्य, वज्ररूप, वज्रश्रृङ्ग, वज्रसृष्ट या वज्रसिद्ध, वज्रकूट, वैर, वैरावर्त्त, वैरप्रभ, वैरकान्त, वैरवर्ण, वैरलेश्य, वैररूप, वैरश्रृङ्ग, वैरसृष्ट या वैरसिद्ध, वैरकूट, वैरोत्तरावत्तंसक, लोक, लोकावर्त्त, लोकप्रभ, लोककान्त, लोकवर्ण, लोकलेश्य, लोकरूप, लोकश्रृङ्ग, लोकसृष्ट या लोकसिद्ध, लोककूट, लोकोत्तरावत्तंसक, इन चौतीस विमानों में जो देव देवरूप से उत्पन्न होते हैं उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति तेरह सागरोपम की कही गई है। वे देव तेरह पखवाड़ों से आभ्यंतर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को तेरह हजार वर्षों से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। कितनेक ऐसे भवसिद्धिक जीव हैं जो तेरह भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ।। १३॥

विवेचन - जिन क्रियाओं को करने से कर्मों का बन्ध होता है उन्हें यहाँ 'क्रियास्थान' कहा गया है।

मन वचन और काया की प्रवृत्ति को योग कहते हैं। वीर्यान्तराय कर्म के क्षय या क्षयोपशम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से मन वर्गणा, वचन वर्गणा और काय वर्गणा के पुद्गलों का अवलम्बन लेकर आत्मप्रदेशों में होने वाले परिस्पंद, कम्पन या हलन चलन को भी योग कहते हैं। अवलम्बन के भेद से इसके तीन भेद हैं - मन, वचन और काया । इनमें मन के चार, वचन के चार और काया के सात इस प्रकार कुल १५ भेद हो जाते हैं। पण्णवणा सूत्र के १६ वें पद में योग के स्थान पर प्रयोग शब्द प्रयुक्त किया गया है। इन्हीं को प्रयोगगति भी कहा जाता है। यहाँ तेरहवें बोल में गर्भज तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के तेरह प्रयोग ही बतलाये गये हैं। क्योंकि तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय में आहारक प्रयोग और आहारक मिश्र प्रयोग ये दो प्रयोग नहीं पाये जाते हैं।

सौधर्म और ईशान अर्थात् पहला और दूसरा देवलोक दोनों अर्द्धचन्द्राकार हैं और दोनों मिलने से पूर्ण चन्द्राकार बनते हैं। इन दोनों के नीचे तेरह प्रस्तट (पाथड़े) आये हुए हैं। तेरहवें पाथड़े में 'सौधर्मावतंसक और ईशानावतंसक' (अवतंसक-आभूषण रूप) विमान आये हुए हैं।

चार कोस का एक योजन होता है। एक योजन के कल्पना से ६१ भाग किये जायं तो ६१ भाग में से ४८ परिमाण सूर्य का विमान लम्बा चौड़ा है और चौबीस भाग परिमाण ऊंचा है। चन्द्रमा का विमान $\frac{५६}{६१}$ लम्बा चौड़ा है और $\frac{२८}{६१}$ भाग ऊंचा है।

चौदहवां समवाय

चउद्दस भूयग्गामा पण्णत्ता तंजहा - सुहुमा अपज्जत्तया, सुहुमा पज्जत्तया, बायरा अपज्जत्तया, बायरा पज्जत्तया, बेइंदिया अपज्जत्तया, बेइंदिया पज्जत्तया, तेइंदिया अपज्जत्तया, तेइंदिया पज्जत्तया, चउरिंदिया अपज्जत्तया चउरिंदिया पज्जत्तया, पंचिंदिया असण्णी अपज्जत्तया, पंचिंदिया असण्णी पज्जत्तया, पंचिंदिया सण्णी अपज्जत्तया, पंचिंदिया सण्णी पज्जत्तया । चउद्दस पुव्वा पण्णत्ता तंजहा -

उप्पायपुव्वमग्गेणियं च, तइयं च वीरियं पुव्वं ।
अत्थिणत्थिपवायं, तत्तो णाण प्पवायं च ।।
सच्चप्पवाय पुव्वं, तत्तो आयप्पवाय पुव्वं च ।
कम्मप्पवाय पुव्वं , पच्चक्खाणं भवे णवमं ।।
विज्जाअणुप्पवायं, अबंझपाणाउ बारसं पुव्वं ।
तत्तो किरिय विसालं पुव्वं, तह बिंदुसारं च ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अग्गेणियस्स णं पुव्वस्स चउद्दस वत्थू पण्णत्ता । समणस्स भगवओ महावीरस्स चउद्दस समण साहस्सीओ उक्कोसिया समण संपया होत्था । कम्मविसोहिमग्गणं पडुच्च चउद्दस जीव ट्ठाणा पण्णत्ता तंजहा - मिच्छदिट्ठी, सासायणसम्मदिट्ठी, समामिच्छदिट्ठी, अविरय सम्मदिट्ठी, विरयाविरए, पमत्तसंजए, अप्पमत्तसंजए, णियट्टिबायरे, अणियट्टिबायरे, सुहुमसंपराए, उवसमए वा खवए वा उवसंतमोहे खीणमोहे, सजोगीकेवली, अजोगीकेवली। भरहेरवयाओ णं जीवाओ चउद्दस चउद्दस जोयणसहस्साइं चत्तारि य एगुत्तरे जोयणसए छच्च एगूणवीसे भागे जोयणस्स आयामेणं पण्णत्ते। एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स चउद्दसरयणा पण्णत्ता तंजहा - इत्थी रयणे, सेणावइ रयणे, गाहावई रयणे, पुरोहिय रयणे, वड्डई रयणे, आस रयणे, हत्थी रयणे, असि रयणे, दंड रयणे, चक्क रयणे, छत्त रयणे, चम्म रयणे, मणि रयणे, कागिणी रयणे। जंबूद्दीवे णं दीवे चउद्दस महाणईओ पुव्वावरेण लवणसमुद्दं समुप्पेंति तंजहा - गंगा सिंधू रोहिया रोहियंसा हरी हरिकंता सीया सीओदा णरकांता णारीकांता सुवण्णकूला रूप्पकूला रत्ता रत्तवई । इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं चउद्दस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। पंचमीए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं चउद्दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं चउद्दस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं चउद्दस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। लंतए कप्पे देवाणं उक्कोसेणं चउद्दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। महासुक्के कप्पे देवाणं जहण्णेणं चउद्दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा सिरिकंतं सिरिमहियं सिरिसोमणसं लंतयं काविट्ठं महिंदं महिंदकंतं महिंदुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं चउद्दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा चउद्दसेहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा तेसिणं देवाणं चउद्दसेहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे चउद्दसेहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ १४ ॥

कठिन शब्दार्थ - **भूयग्गामा** - भूतग्राम-जीवों के समूह, **चउद्दस पुव्वा** - चौदह पूर्व, **अग्गेणिय** - अग्रायणीय, **अत्थिणत्थिप्पवायं** - अस्तिनास्ति प्रवाद, **आयप्पवायपुव्वं** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्मप्रवाद पूर्व, **विज्जाअणुप्पवायं पुव्वं** - विद्यानुप्रवाद पूर्व, **अबंझ** - अवन्ध्य, **किरियविसालपुव्वं** - क्रिया विशाल पूर्व, **वत्थु** - वस्तु (अध्ययन), **कम्मविसोहिमग्गणं** - कर्मों की विशुद्धि मार्गणा, **सासायण सम्मद्दिट्ठी** - सास्वादन सम्यग् दृष्टि, **विरयाविरए** - विरताविरत (देशविरत) **णियट्टि बायरे** - निवृत्ति बादर, **सुहुमसंपराए** - सूक्ष्म संपराय, **उवसमए** - उपशान्त कषाय, **खवए** - क्षपक (क्षीण कषाय) **कागिणी रयणे** - काकिणी रत्न, **पुव्वावरेण** - पूर्व और पश्चिम की तरफ से, **समुप्पेंति** - मिलती हैं।

भावार्थ - भूतग्राम यानी जीव समूह के चौदह भेद कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. सूक्ष्म अपर्याप्तक - जिन जीवों को सूक्ष्म नाम कर्म का उदय होता है उन्हें सूक्ष्म कहते हैं। सूक्ष्म जीव सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हैं। जिस जीव में जितनी पर्याप्तियाँ सम्भव हैं यानी जिस जीव को जितनी पर्याप्तियाँ बांधना है, जब तक वह उतनी प्रर्याप्तियाँ नहीं बांध लेता तब तक वह अपर्याप्तक कहलाता है और अपने योग्य पर्याप्तियाँ पूरी बांध लेने पर पर्याप्तक कहलाता है। २. सूक्ष्म पर्याप्तक ३. बादर अपर्याप्तक, ४. बादर पर्याप्तक ५. बेइन्द्रिय अपर्याप्तक ६. बेइन्द्रिय पर्याप्तक ७. तेइन्द्रिय अपर्याप्तक ८. तेइन्द्रिय पर्याप्तक ९. चौरिन्द्रिय अपर्याप्तक १०. चौरिन्द्रिय पर्याप्तक ११. असंज्ञी यानी जिनके मन न हो ऐसे पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक १२. असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक १३. संज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तक १४. संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक। पूर्व-साधु साध्वी श्रावक श्राविका रूप चार तीर्थ की स्थापना करते समय तीर्थङ्कर भगवान् पहले पहल जिस अर्थ का उपदेश गणधरों को देते हैं अथवा गणधर पहले पहल जिस अर्थ को सूत्र रूप में गूंथते हैं उन्हें 'पूर्व' कहते हैं, वे चौदह कहे गये हैं उनके नाम इस प्रकार हैं - १ उत्पाद पूर्व - इसमें सभी द्रव्य और पर्यायों की उत्पत्ति का कथन है। २. अग्रायणीय पूर्व - इसमें सभी द्रव्य, पर्याय और जीवों के परिमाण का वर्णन है। ३. मा का वर्णन है। ८. कर्मप्रवाद पूर्व - इसमें आठ कर्मों का भेद प्रभेद सहित वर्णन है। ९. प्रत्याख्यान प्रवाद पूर्व - इसमें पच्चक्खाणों का वर्णन है। १०. विद्यानुप्रवाद पूर्व - इसमें विविध प्रकार की विद्या और सिद्धियों का वर्णन है। ११. अवन्ध्य पूर्व - इसमें अवन्ध्य यानी निष्फल न जाने वाले शुभ और अशुभ कार्यों का वर्णन है। १२. प्राणायुप्रवाद पूर्व - इसमें दस प्राण और आयु आदि का वर्णन है। १३. क्रियाविशाल पूर्व - इसमें कायिकी आदि क्रियाओं का विस्तृत वर्णन है। १४. बिन्दुसार पूर्व - इसमें सर्वश्रेष्ठ शास्त्रों का वर्णन है। दूसरे अग्रायणीय पूर्व की चौदह वस्तु यानी अध्ययन कहे गये हैं। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के उत्कृष्ट श्रमण सम्पदा चौदह हजार थी अर्थात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समय में उनके साधुओं की संख्या

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चौदह हजार से ऊपर नहीं हुई थी। कर्मों की विशुद्धि मार्गणा की अपेक्षा चौदह जीवस्थान यानी गुणस्थान कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं १. मिथ्यादृष्टि-मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय से जिस अवस्था में जीव की दृष्टि यानी श्रद्धा मिथ्या - विपरीत होती है उसे मिथ्यादृष्टि गुणस्थान कहते हैं। २. सास्वादन सम्यग्दृष्टि - जो जीव औपशमिक सम्यक्त्व वाला है परन्तु अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से सम्यक्त्व को छोड़ कर मिथ्यात्व की ओर झुक रहा है, वह जीव जब तक मिथ्यात्व प्राप्त नहीं करता तब तक उसे सास्वादन सम्यग् दृष्टि गुणस्थान वाला कहते हैं। ३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि - मिश्र मोहनीय कर्म के उदय से जब जीव की दृष्टि कुछ शुद्ध और कुछ मिथ्या होती है, उस अवस्था को सम्यग्मिथ्यादृष्टि - मिश्र गुणस्थान कहते हैं। ४. अविरत सम्यग् दृष्टि - जो जीव सम्यग्दृष्टि होकर भी कुछ भी त्याग पच्चक्खाण नहीं कर सकता है उसका गुणस्थान अविरत सम्यग् दृष्टि गुणस्थान कहलाता है। ५. विरताविरत यानी देश विरत गुणस्थान- प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से जो जीव पाप जनक क्रियाओं का सर्वथा त्याग नहीं कर सकता है, उसका गुणस्थान देशविरत गुणस्थान कहलाता है। ६. प्रमत्त संयत - जो जीव पाप जनक क्रियाओं का सर्वथा त्याग कर देते हैं ऐसे संयत मुनि भी जब तक प्रमाद का सेवन करते हैं तब तक उनका गुणस्थान प्रमत्त संयत गुणस्थान कहलाता है। ७. अप्रमत्त संयत - जो मुनि किञ्चिन्मात्र भी प्रमाद सेवन नहीं करते हैं उनका गुणस्थान अप्रमत्त संयत कहलाता है। ८ निवृत्ति बादर - जिस जीव के अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ ये चारों निवृत्त हो गये हों उस अवस्था को निवृत्ति बादर गुणस्थान कहते हैं या सम-समयवर्ती त्रैकालिक जीवों के परिणामों में निवृत्ति (भिन्नता तथा बादर संज्वलन कषाय का उदय जिस गुणस्थान में रहता है, उसे निवृत्त बादर गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थान से उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी ये दो श्रेणियाँ प्रारम्भ होती हैं। उपशम श्रेणी वाला जीव मोहनीय कर्म की प्रकृतियों का उपशम करता हुआ ग्यारहवें गुणस्थान तक जाकर वापिस लौट आता है और क्षपक श्रेणी वाला जीव दसवें से सीधा बारहवें गुणस्थान में जाकर अपडिवाई हो जाता है। ९. अनिवृत्ति बादर - संज्वलन क्रोध, मान और माया से जहाँ निवृत्ति न हुई हो ऐसी अवस्था को अनिवृत्ति बादर गुणस्थान कहते हैं या सम-समयवर्ती त्रैकालिक जीवों के परिणामों में निवृत्ति नहीं होती है तथा बादर संज्वलन कषाय का उदय रहता है। उसे निवृत्त बादर गुणस्थान कहते हैं। १०. सूक्ष्मसम्पराय - इस गुणस्थान में सूक्ष्म लोभ का उदय रहता है। ११. उपशान्त कषाय - जिसमें सम्पूर्ण कषाय अर्थात् मोहनीय कर्म की सभी प्रकृतियाँ उपशान्त हो जाती हैं उसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपशान्त कषाय गुणस्थान कहते हैं। १२. क्षपक यानी क्षीणकषाय - जिसमें मोहनीय कर्म की सभी प्रकृतियों का क्षय कर दिया जाता है उसे क्षीण कषाय गुणस्थान कहते हैं। १३. सयोगी केवली गुणस्थान - जिन्होंने ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन चार घाती कर्मों का क्षय करके केवलज्ञान केवलदर्शन प्राप्त किया है उनके स्वरूप विशेष को सयोगी केवली गुणस्थान कहते हैं। १४. अयोगी केवली गुणस्थान - जिसमें केवली भगवान् मन वचन काया के तीनों योगों से रहित हो जाते हैं उसे अयोगी केवली गुणस्थान कहते हैं। भरत और ऐरावत प्रत्येक की जीवाएं १४४०१ $\frac{६}{१९}$ योजन की लम्बी हैं। प्रत्येक चक्रवर्ती के चौदह रत्न होते हैं। वे इस प्रकार हैं - १. स्त्री रत्न - संसार की समस्त स्त्रियों में प्रधान। २. सेनापति रत्न ३. गृहपति यानी भंडारी, ४. पुरोहित यानी शान्ति कर्म कराने वाला, ५. बढई - रथकार ६. अश्व रत्न, ७. हस्ती रत्न ८. असि रत्न, ९. दण्ड रत्न १०. चक्र रत्न ११. छत्र रत्न १२. चर्म रत्न, १३. मणि रत्न १४. काकिनी रत्न। ये चौदह अपनी अपनी जाति में सर्वोत्कृष्ट होते हैं, इसीलिए ये रत्न कहलाते हैं। इन चौदह में से पहले के सात रत्न पञ्चेन्द्रिय हैं। शेष सात रत्न एकेन्द्रिय हैं। इस जम्बूद्वीप में चौदह महानदियाँ पूर्व और पश्चिम की तरफ से लवण समुद्र में मिलती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं - १. गङ्गा २. सिन्धु ३. रोहिता ४. रोहितंसा ५. हरी ६. हरिकान्ता ७. सीता, ८. सीतोदा ९. नरकान्ता १०. नारीकान्ता ११. सुवर्णकूला १२. रूप्यकूला १३. रक्ता १४. रक्तवती। इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति चौदह पल्योपम की कही गई है। धूमप्रभा नामक पांचवीं नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति चौदह सागरोपम की कही गई है। कितनेक असुर कुमार देवों की स्थिति चौदह पल्योपम कही गई है। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति चौदह पल्योपम की कही गई है। छठे लान्तक देवलोक में देवों की उत्कृष्ट स्थिति चौदह सागरोपम की कही गई है। महाशुक्र नामक सातवें देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति चौदह सागरोपम की कही गई है। महाशुक्र देवलोक के अन्तर्गत श्रीकान्त श्रीमहित श्रीसोमनस, लान्तक कापिष्ठ, माहेन्द्र कान्त, माहेन्द्रोत्तरावतंसक इन सात विमानों में जो देव देवरूप से उत्पन्न होते हैं उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति चौदह पल्योपम की कही गई है। वे देव चौदह पखवाड़ों से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को चौदह हजार वर्षों से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। कितनेक भव सिद्धिक जीव ऐसे हैं जो चौदह भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ॥ १४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - यहाँ अपेक्षा से जीव के चौदह भेद बतलाये गये हैं। मूल में शास्त्रकार ने '**भूयग्गामा**' शब्द दिया है। 'भूत' का अर्थ जीव और 'ग्राम' का अर्थ है समूह। तात्पर्य यह है कि - जीवों के समूह को 'भूतग्राम' कहते हैं। जीव के अनेक पर्यायवाची शब्द हैं। भूत शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है-

"**भूताः, अभूवन, भवन्ति, भविष्यन्ति इति भूताः**" अर्थात् भूत काल में जो थे वर्तमान हैं और भविष्यत् काल में रहेंगे, उन्हें भूत कहते हैं। चार शब्द विशेष प्रचलित है - प्राण, भूत, जीव, सत्त्व । जिनका अर्थ इस प्रकार किया गया है।

प्राणाः द्वित्रिचतुः प्रोक्ता, भूतास्तु सर्वः स्मृता ।

जीवाः पञ्चेन्द्रियाः प्रोक्ता शेषा सत्त्वा उदीरिताः ॥

अर्थात् - बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौरिन्द्रिय को प्राण, वनस्पति को भूत, पञ्चेन्द्रिय को जीव और पृथ्वीकाय अप्काय तेउकाय वायुकाय को सत्त्व कहा गया है।

सात प्रकार के जीवों के अपर्याप्त और पर्याप्त के भेद से १४ भेद किये गये हैं। पर्याप्ति छह प्रकार की कही गई है। यथा - आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषा पर्याप्ति, मनः पर्याप्ति ।

आहारादि के लिये पुद्गलों को ग्रहण करने तथा उन्हें आहार, शरीर आदि रूप में परिणमाने की आत्मा की शक्ति विशेष को पर्याप्ति कहते हैं। यह शक्ति पुद्गलों के उपचय से होती है।

जिस जीव में जितनी पर्याप्तियाँ सम्भव हैं उतनी पर्याप्तियाँ पूरी बांध लेने पर वह पर्याप्तक कहलाता है। एकेन्द्रिय जीव अपने योग्य (आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास) चार पर्याप्तियाँ पूरी कर लेने पर पर्याप्तक कहे जाते हैं। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव उपरोक्त पांचों पर्याप्तियों के साथ छठी मनः पर्याप्ति पूरी कर लेने पर पर्याप्तक कहे जाते हैं। कोई भी जीव आहार, शरीर और इन्द्रिय इन तीन पर्याप्तियों को पूर्ण किये बिना नहीं मर सकता क्योंकि इन तीन पयाप्तियों के पूर्ण होने पर ही (चौथी पर्याप्ति अधूरी रह सकती है) आगामी भव की आयु का बन्ध होता है।

जिन जीवों के सूक्ष्म नाम कर्म का उदय है वे 'सूक्ष्म' कहलाते हैं और जिन जीवों के बादर नाम कर्म का उदय है, वे 'बादर' कहलाते हैं। ये दो भेद एकेन्द्रिय जीवों में ही होते हैं। बेइन्द्रियादि जीवों में सूक्ष्म भेद नहीं होता है।

यहाँ पर कर्म विशुद्धि की अपेक्षा जीव स्थान चौदह कहे हैं। कर्मग्रंथ में इन जीव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थानों को गुणस्थान कहा है। जिसका अर्थ किया है - गुणों (आत्मशक्तियों) के स्थानों अर्थात् क्रमिक विकास की अवस्थाओं को 'गुणस्थान' कहते हैं। गुणस्थान जीव के ही होते हैं, अजीव के नहीं। इस अपेक्षा से जीवस्थान और गुणस्थान एकार्थक हो जाते हैं। कर्मग्रन्थ में गुणस्थान का स्वरूप बहुत विस्तृत दिया हुआ है। प्रायः उसी का अनुसरण करते हुए श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह के पांचवें भाग में भी गुणस्थानों का स्वरूप सरल हिन्दी भाषा में दिया गया है।

जिस प्रकार धर्म पक्ष में तीर्थङ्कर भगवान् का स्थान सर्वोपरि है। उसी प्रकार संसार पक्ष में चक्रवर्ती का दर्जा सर्वोपरि है। उसकी अधीनता में ३२ हजार मुकुट बन्ध राजा रहते हैं। वह १४ रत्न, नव निधि का स्वामी होता है। १६ हजार देवता उनकी सेवा में रहते हैं। ६४ हजार रानियों का अन्तःपुर होता है। जैसे - तीर्थङ्कर भगवान् की गति मोक्ष की निश्चित होती है वैसे चक्रवर्ती की गति निश्चित नहीं होती। यदि वे दीक्षा लें तो मोक्ष अथवा वैमानिक देवों में उत्पत्ति होती है और यदि चक्रवर्ती राजऋद्धि में ही आसक्त बना रहे तो मर कर नरक गति में ही जाता है। इस अवसर्पिणी काल में दस चक्रवर्ती मोक्ष गये हैं। सुभूम और ब्रह्मदत्त ये दो चक्रवर्ती नरक में गये हैं।

पन्द्रहवां समवाय

पण्णरस परमाहम्मिया पण्णत्ता तंजहा -

अंबे अंबरिसे चेव, सामे सबले त्ति यावरे।
रुद्दोवरुद्द काले य, महाकाले त्ति यावरे ॥
असिपत्ते धणू कुंभे, वालुए वेयरणी त्ति य।
खरस्सरे महाघोसे, एए पण्णरसाहिया॥

णमी णं अरहा पण्णरस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था । धुव्वराहू णं बहुल पक्खस्स पडिवए पण्णरसभागं पण्णरसभागेणं चंदस्स लेसं आवरित्ताणं चिट्ठइ तंजहा- पढमाए पढमं भागं, बीयाए दुभागं, तइयाए तिभागं, चउत्थीए चउभागं, पंचमीए पंचभागं, छट्ठीए छभागं, सत्तमीए सत्तभागं, अट्ठमीए अट्ठभागं, णवमीए णवभागं, दसमीए दसभागं, एक्कारसीए एक्कारसभागं, बारसीए बारसभागं, तेरसीए तेरसभागं, चउद्दसीए चउद्दसभागं, पण्णरसेसु पण्णरसभागं। तं चेव सुक्कपक्खस्स य उवदंसेमाणे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उवदंसेमाणे चिट्ठइ तंजहा - पढमाए पढमभागं जाव पण्णरसेसु पण्णरसभागं। छ णक्खत्ता पण्णरस मुहुत्त संजुत्ता पण्णत्ता तंजहा -

सत्तभिसय भरणी, अद्दा अस्सलेसा साई तहा जेट्ठा ।
एए छ णक्खत्ता, पण्णरस मुहुत्तसंजुत्ता ॥

चित्तासोएसु णं मासेसु पण्णरसमुहुत्तो दिवसो भवइ, एवं चित्तासोएसु णं मासेसु पण्णरसमुहुत्ता राई भवइ। विज्जायणुप्पवायस्स णं पुव्वस्स पण्णरस वत्थू पण्णत्ता। मणुस्साणं पण्णरसविहे पओगे पण्णत्ते तंजहा - सच्च मणपओगे, मोसमणपओगे, सच्चमोसमणपओगे, असच्चामोसमणपओगे, सच्चवइपओगे, मोसवइपओगे, सच्चमोसवइपओगे, असच्चामोसवइपओगे, ओरालियसरीरकायपओगे, ओरालियमीस-सरीरकायपओगे, वेउव्वियसरीरकायपओगे, वेउव्वियमीससरीर कायपओगे, आहारयसरीरकायपओगे, आहारयमीससरीरकायपओगे, कम्मयसरीर कायपओगे। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं पण्णरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। पंचमीए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं पण्णरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं पण्णरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं पण्णरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। महासुक्के कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं पण्णरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा णंदं सुणंदं णंदावत्तं णंदप्पभं णंदकंतं णंदवण्णं णंदलेसं णंदज्झयं णंदसिंगं णंदसिट्ठं णंदकूडं णंदुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं पण्णरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा पण्णरसण्हं अद्धमासाणं (पण्णरसेहिं अद्धमासेहिं) आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा। तेसिणं देवाणं पण्णरसेहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे पण्णरसेहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ १५ ॥

कठिन शब्दार्थ - परमाहम्मिया - परम अधार्मिक, **अम्बरिसी(अंबरिसे)** - अम्बरीष, **उवरुद्द** - उपरौद्र, **धुव्वराहू** - ध्रुव राहु, **पडिवए** - प्रतिपदा, **बहुलपक्खस्स** - प्रत्येक मास के कृष्ण पक्ष की, **आवरित्ताणं चिट्ठइ** - आच्छादित करता है, **उवदंसेमाणे** - उपदर्शित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करता हुआ अर्थात् खुली करता हुआ, **चिट्ठइ** - रहता है, **कम्मसरीरकायपओगे** - कार्मण शरीर काय प्रयोग।

भावार्थ - परमाधार्मिक-बड़े पापी और क्रूर परिणामों वाले असुर जाति के देव जो तीसरी नरक तक नैरयिक जीवों को विविध प्रकार के दुःख देते हैं उनको परमाधार्मिक देव कहते हैं। वे पन्द्रह प्रकार के होते हैं। यथा - १. अम्ब - नैरयिक जीवों को ऊपर आकाश में ले जाकर नीचे गिरा देते हैं। २. अम्बरीष - छुरी आदि से नैरयिक जीवों के शरीर के छोटे-छोटे टुकड़े करके उन्हें भाड़ में पकाने योग्य बनाते हैं। ३. श्याम - रस्सी और लात घूंसे वगैरह से नैरयिक जीवों को पीटते हैं और भयङ्कर स्थानों में पटक देते हैं, ये काले रंग के होते हैं। ४. शबल - नैरयिक जीवों के शरीर की आंतें, नसें और कलेजे आदि को बाहर खींच लेते हैं। ये चितकबरे रंग के होते हैं। ५. रौद्र - शक्ति और भाले वगैरह से नैरयिक जीवों को पिरो देते हैं। बहुत भयङ्कर होने के कारण इनको रौद्र कहते हैं। ६. उपरौद्र - नैरयिक जीवों के शरीर के अङ्गोपाङ्गों को फाड़ देते हैं ७. काल - जो उन्हें कड़ाहे में पकाते हैं। ये काले रंग के होते हैं। ८. महाकाल - नैरयिक जीवों के शरीर के टुकड़े टुकड़े करके उन्हें खिलाते हैं। ये बहुत काले होते हैं। ९. असिपत्र - जो वैक्रिय शक्ति द्वारा तलवार के समान पत्तों से युक्त वृक्ष बना कर उनके नीचे बैठे हुए नैरयिक जीवों पर वे तलवार सरीखे पत्ते गिरा कर तिल सरीखे छोटे-छोटे टुकड़े कर डालते हैं। १०. धनुष - धनुष द्वारा बाण छोड़ कर नैरयिक जीवों के कान आदि को काट देते हैं। ११. कुम्भ - जो उन्हें कुम्भियों में पकाते हैं। १२. वालुक - वैक्रिय द्वारा बनाई हुई कदम्ब पुष्प के आकार वाली अथवा वज्र के आकार वाली बालू रेत में नैरयिक जीवों को भड़भुंजे की भाड़ में चने की तरह भूनते हैं। १३. वैतरणी - जो राध, लोही, ताम्बा, सीसा आदि पदार्थों से उबलती हुई नदी में नैरयिक जीवों को फैंक देते हैं। १४. खरस्वर -वज्र सरीखे कांटों से व्याप्त शाल्मली वृक्षों पर नैरयिक जीवों को चढ़ा कर कठोर स्वर करते हुए वे उनको खींचते हैं जिससे कांटों से उनका शरीर चीरा जाता है। १५. महाघोष - डर से भागते हुए नैरयिक जीवों को पशुओं की तरह बाड़े में बन्द कर देते हैं तथा जोर से चिल्ला कर उन्हें डराते हैं। ये पन्द्रह परमाधार्मिक देव कहे गये हैं। ये तीसरी नरक तक नैरयिक जीवों को दुःख देते हैं। इकवीसवें तीर्थङ्कर भगवान् नमिनाथ स्वामी के शरीर की अवगाहना पन्द्रह धनुष ऊँची थी । राहु के दो भेद हैं - १. ध्रुवराहु - नित्यराहु और २. पर्वराहु । जो पूर्णिमा और अमावस्या के दिन चन्द्र और सूर्य का ग्रहण करता है उसे पर्वराहु कहते हैं। जो हमेशा चन्द्रमा के साथ रहता है उसे नित्यराहु या ध्रुवराहु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहते हैं। ध्रुवराहु प्रत्येक मास के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा यानी एकम को चन्द्रमा की कान्ति यानी प्रकाश के पन्द्रहवें भाग को आच्छादित करता है - ढकता है जैसे कि १. एकम को एक भाग २. द्वितीया को दो भाग ३. तृतीया को तीन भाग ४. चतुर्थी को चार भाग ५. पञ्चमी को पांच भाग ६. षष्ठी को छह भाग ७. सप्तमी को सात भाग ८. अष्टमी को आठ भाग ९. नवमी को नौ भाग १०. दशमी को दस भाग, ११. एकादशी को ग्यारह भाग १२. द्वादशी को बारह भाग १३. त्रयोदशी को तेरह भाग १४. चतुर्दशी को चौदह भाग और १५. अमावस्या को पन्द्रह भाग को ढक लेता है। ज्योतिष करण्ड में चन्द्रमा की सोलह कलाएं कही गई हैं। उनमें से अमावस्या के दिन पन्द्रह कला ढक जाती हैं, सिर्फ एक कला शेष रहती है। वही ध्रुवराहु शुक्लपक्ष में एक एक कला को वापिस खुली करता जाता है। जैसे कि शुक्लपक्ष की एकम को एक भाग खुला करता है। यावत् इसी क्रम से पूर्णिमा को पन्द्रह भाग खुला करता है इन सोलह कलाओं में से एक कला हमेशा खुली रहती है। शतभिषक्, भरणी, आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाति तथा ज्येष्ठा ये छह नक्षत्र तुला संक्रान्ति में चन्द्रमा के साथ पन्द्रह मुहूर्त्त तक रहते हैं। विद्यानुप्रवाद नामक दसवें पूर्व की पन्द्रह वस्तु- अध्ययन कहे गये हैं। मनुष्यों के पन्द्रह योग कहे गये हैं। यथा - १. सत्य मन योग, २. असत्य मन योग ३. सत्यमृषा मन योग - मिश्र मन योग, ४. असत्यामृषा मन योग ५. सत्य वचन योग, ६. मृषा- असत्य वचन योग ७. सत्यमृषा वचन योग, ८. असत्यामृषा वचन योग ९. औदारिक शरीर काय योग १०. औदारिक मिश्र शरीर काय योग ११. वैक्रिय शरीर काय योग १२. वैक्रिय मिश्र शरीर काय योग १३. आहारक शरीर काय योग १४. आहारक मिश्र शरीर काय योग १५. कार्मण शरीर काय योग । इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति पन्द्रह पल्योपम की कही गई है। धूमप्रभा नामक पांचवीं नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति पन्द्रह सागरोपम की कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति पन्द्रह पल्योपम की कही गई है। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति पन्द्रह पल्योपम की कही गई है। आठवें महाशुक्र देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति पन्द्रह सागरोपम की कही गई है। महाशुक्र देवलोक के अन्तर्गत नन्द, सुनन्द, नन्दावर्त्त, नन्दप्रभ, नन्दकान्त, नन्दवर्ण, नन्दलेश्य, नन्दध्वज, नन्दश्रृङ्ग, नन्दसृष्ट या नन्दसिद्ध, नन्दकूट, नन्दोत्तरावतंसक, इन बारह विमानों में जो देव देवरूप से उत्पन्न होते हैं उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति पन्द्रह सागरोपम कही गई है। वे देव पन्द्रह पखवाड़ों से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को पन्द्रह हजार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वर्षों से आहार की इच्छा पैदा होती है। कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो पन्द्रह भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ॥ १५ ॥

विवेचन - अत्यन्त संक्लिष्ट परिणाम होने के कारण जो परम (उत्कृष्ट) अधार्मिक होते हैं उन्हें परमाधार्मिक कहते हैं। ये असुरकुमार जाति के भवनपति देव हैं। ये तीसरी नरक तक जाकर नैरयिकों को दुःख देते हैं। इससे आगे जाने की इनकी शक्ति नहीं है। आगे के नरकों में नैरयिक जीव परस्पर लड़ते झगड़ते रहते हैं और परस्पर ही दुःख देते हैं। जैसा की तत्त्वार्थ सूत्र में कहा है -

परस्परोदीरितदुःखाः ।। ४ ॥ संक्लिष्टासुरोदीरितदुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः ।। ५ ॥ ३/३,४

तीसरी नरक तक परमाधार्मिक दुःख देते हैं और परस्पर भी लड़ते झगड़ते रहते हैं। चौथी से सातवीं तक नैरयिक जीव परस्पर ही लड़ते झगड़ते रहते हैं। यह दुःख भी परमाधार्मिकों द्वारा दिये हुए दुःख से भी अधिक दुःख होता है। जैसे कि - यहाँ तिर्यञ्च और मनुष्य कुत्तों की जाति को कभी कभी दुःख दे देते हैं। किन्तु कुत्ते परस्पर लड़ते झगड़ते ही रहते हैं। परमाधार्मिक देव जो दुःख देते हैं उसका वर्णन भावार्थ में कर दिया गया है। नैरयिकों को दुःख देने से परमाधार्मिक देवों को नया कर्म बन्ध होता है।

ऊपर राहू के दो भेद बताये गये हैं - इस विषय में यह शंका की गई है कि - चन्द्रमा का विमान तो एक योजन के ६१ भागों में से ५६ भाग लम्बा चौड़ा है। ध्रुव राहू रूप ग्रह का विमान तो आधा योजन ही लम्बा चौड़ा है। फिर वह चन्द्रमा की कला को ढक कर सर्व आवरण रूप (चन्द्रोपराग) चन्द्रग्रहण कैसे कर सकता है?

इसका समाधान दो तरह से दिया गया है कि - ज्योतिष शास्त्र में बतलाया गया है कि राहु का विमान आधा योजन है यह प्रायिक (सामान्य) कथन है। क्योंकि राहु के विमान को ज्योतिष ग्रंथ में एक योजन प्रमाण भी बतलाया गया है। दूसरा समाधान यह दिया गया है कि - यद्यपि राहु का विमान छोटा है परन्तु उसकी अन्धकार की किरणों का समूह बहुत और सघन है इसलिये वह सम्पूर्ण चन्द्र को आवृत्त (ढ़क) कर लेता है। अतः इसमें किसी प्रकार का दोष नहीं है।

तेरहवें बोल में तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियों के तेरह योगों का वर्णन किया गया है। क्योंकि उनके तेरह ही योग होते हैं। आहारक और आहारक मिश्र नहीं होता। मनुष्य के पन्द्रह ही योग होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शंका - कार्मण काय योग के समान तैजस् काययोग अलग क्यों नहीं माना गया है?

समाधान - तैजस् और कार्मण का सदा साहचर्य (साथ) रहता है अर्थात् औदारिक आदि अन्य शरीर कभी कभी कार्मण शरीर को छोड़ भी देते हैं परन्तु तैजस् शरीर कार्मण शरीर को कभी नहीं छोड़ता है। इसलिये वीर्यशक्ति का जो व्यापार कार्मण काययोग द्वारा होता है वही नियम से (निश्चित रूप से) तैजस् शरीर द्वारा भी होता रहता है। इसलिये कार्मण काययोग में ही तैजस् काय योग का समावेश हो जाता है इसलिये तैजस् काययोग अलग नहीं माना गया है।

जीव परभव से आकर जब वैक्रिय के १४ दण्डकों में जन्म लेता है तब कार्मण काययोग का वैक्रिय के साथ सम्बन्ध (मिश्रण) होने से शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं होने तक वैक्रिय मिश्र माना गया है। इसके बाद वैक्रिय काय योग होता है। इसी प्रकार जीव जब परभव से आकर औदारिक के दस दण्डकों में जन्म लेता है तब अपर्याप्त अवस्था तक औदारिक मिश्र होता है। शरीर पर्याप्ति पूर्ण हो जाने पर औदारिक काय योग होता है अर्थात् शरीर पर्याप्ति के पूर्ण होते ही औदारिक मिश्र काय योग छूट जाता है और औदारिक काययोग शुरू होता है। विग्रह गति में सिर्फ कार्मण काय योग ही रहता है।

आगमकार की यह मान्यता है कि जब जीव जिस शरीर को छोड़ कर दूसरा शरीर धारण करता है तब बनाये जाने वाले शरीर की प्रधानता होने से उसकी मिश्रता होती है। जैसे कि - मनुष्य औदारिक शरीर से वैक्रिय शरीर बनाता है तो वैक्रिय मिश्र और आहारक शरीर बनाता है तो आहारक मिश्र काय योग होता है। वैक्रिय से अथवा आहारक शरीर से वापिस औदारिक में आता है तब औदारिक मिश्र काय योग होता है।

कर्मग्रन्थ आदि ग्रन्थों की मान्यता कहीं कहीं आगम से मेल नहीं खाती है। अतः आगम मान्यता सर्वोपरि है।

उपरोक्त शतभिषक् भरणी आदि छह नक्षत्र चन्द्रमा के साथ १५ मुहूर्त्त तक योग जोड़ते हैं।

ऊपर यह जो बतलाया गया है चैत्र और आश्विन मास की पूर्णिमा के दिन भी पन्द्रह मुहूर्त्त का और रात भी पन्द्रह मुहूर्त्त की होती है। यह स्थूल न्याय को लेकर कहा गया है। निश्चय में तो मेष संक्रान्ति और तुला संक्राति के दिन दिवस भी १५ मुहूर्त्त का और रात्रि भी १५ मुहूर्त्त की होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सोलहवां समवाय

सोलस य गाहासोलसगा पण्णत्ता तंजहा - समए, वेयालिए, उवसग्गपरिण्णा, इत्थी - परिण्णा, णिरयविभत्ती, महावीरथुई, कुसीलपरिभासिए, वीरिए, धम्मे, समाही, मग्गे, समोसरणे, आहातहिए, गंथे, जमइए ,गाहासोलसमे सोलसगे। सोलस कसाया पण्णत्ता तंजहा - अणंताणुबंधी कोहे, अणंताणुबंधी माणे, अणंताणुबंधी माया अणंताणुबंधी लोभे, अपच्चक्खाणकसाए कोहे, अपच्चक्खाणकसाए माणे अपच्चक्खाणकसाए माया, अपच्चक्खाणकसाए लोभे, पच्चक्खाणावरणे कोहे, पच्चक्खाणावरणे माणे, पच्चक्खाणावरणा माया, पच्चक्खाणावरणे लोभे, संजलणे कोहे, संजलणे माणे, संजलणे माया, संजलणे लोभे। मंदरस्स णं पव्वयस्स सोलस णामधेया पण्णत्ता तंजहा -

मंदर मेरु मणोरम सुदंसण सयंपभे य गिरिराया ।
रयणुच्चय पियदंसण मज्झेलोगस्स णाभी य ।।
अत्थे य सूरियावत्ते सूरियावरणेत्ति य ।
उत्तरे य दिसाई य, वडिंसे इय सोलसमे ॥

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स सोलस समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था। आयप्पवायस्स णं पुव्वस्स सोलस वत्थू पण्णत्ता। चमरबलीणं उवारियालेणे सोलस जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते। लवणे णं समुद्दे सोलस जोयणसहस्साइं उस्सेह परिवुड्ढीए पण्णत्ते। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं सोलस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। पंचमीए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं सोलस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं सोलस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं सोलस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। महासुक्के कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं सोलस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा आवत्तं वियावत्तं णंदियावत्तं महाणंदियावत्तं अंकुसं अंकुसपलंबं भद्दं सुभद्दं महाभद्दं सव्वओभद्दं भद्दुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं सोलस सागरोवमाइं ठिई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पण्णत्ता। ते णं देवा सोलसण्हं अद्धमासाणं (सोलसेहिं अद्धमासेहिं) आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा। तेसिणं देवाणं सोलस वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे सोलसेहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ १६ ॥

कठिन शब्दार्थ - **गाहासोलसगा** - गाथा-षोडशक गाथा नामक सोलहवां अध्ययन, **वेयालिए** - वैतालीय, **णिरयविभत्ती** - नरक विभक्ति, **महावीर थुई** - महावीर स्तुति, **कुसील परिभासिए** - कुशील परिभाषा, **वीरिए** - वीर्य, **आहातहिए** - यथातथ्य, **गंथे** - ग्रन्थ, **जमइए** - यमक, **सूरियावत्ते** - सूर्यावर्त्त, **सूरियावरणे** - सूर्यावरण, **दिसाई** - दिशाओं का आदि (प्रारम्भक), **वडिंसे** - अवतंस, **चमरबलीणं** - चमरचञ्चा और बलिचञ्चा राजधानी के मध्य में स्थित भवन, **उवारियालेणे** - अवतारिका लयन पीठिका।

भावार्थ - श्री सूत्रकृताङ्ग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध में सोलह अध्ययन हैं, उनमें गाथा नाम का सोलहवां अध्ययन है। उन सोलह अध्ययनों के नाम इस प्रकार हैं - १. समय २. वैतालीय, ३. उपसर्ग परिज्ञा ४. स्त्री परिज्ञा ५. नरक विभक्ति ६. महावीर स्तुति, ७. कुशील परिभाषा ८. वीर्य ९. धर्म १०. समाधि ११. मार्ग १२. समवसरण १३. यथातथ्य १४. ग्रन्थ १५. यमक १६. गाथा। कषाय सोलह प्रकार के कहे गये हैं। यथा - १. अनन्तानुबन्धी क्रोध, २. अनन्तानुबन्धी मान, ३. अनन्तानुबन्धी माया ४. अनन्तानुबन्धी लोभ ५. अप्रत्याख्यान क्रोध ६. अप्रत्याख्यान मान ७. अप्रत्याख्यान माया ८. अप्रत्याख्यान लोभ ९. प्रत्याख्यानावरण क्रोध १०. प्रत्याख्यानावरण मान ११. प्रत्याख्यानावरण माया १२. प्रत्याख्यानावरण लोभ १३. संज्वलन क्रोध, १४. संज्वलन मान, १५. संज्वलन माया १६. संज्वलन लोभ। मेरु पर्वत के सोलह नाम कहे गये हैं। यथा - १. मन्दर २. मेरु ३. मनोरम ४. सुदर्शन ५. स्वयंप्रभ ६. गिरिराज ७. रत्नोच्चय, ८. प्रियदर्शन (शिलोच्चय) ९. लोकमध्य, १०. लोकनाभि ११. अत्थ (अस्त) १२ सूर्यावर्त्त १३. सूर्यावरण, १४. उत्तर-भरत आदि सब क्षेत्रों से मेरु पर्वत उत्तर दिशा में पड़ता है। १५. दिशादि - दिगादि-सब दिशाओं का प्रारम्भक तथा निश्चय कराने वाला १६. अवतंस। पुरुषादानीय - पुरुषों में सम्माननीय पार्श्वनाथ भगवान् के उत्कृष्ट श्रमणसंपदा सोलह हजार थी। आत्मप्रवाद पूर्व की सोलह वस्तु-अध्ययन कहे गये हैं। चमरचञ्चा और बलिचञ्चा राजधानी के मध्य में स्थित भवन की पीठिका सोलह हजार योजन लम्बी चौड़ी कही गई है। जम्बूद्वीप से लवण समुद्र में पंचानवें हजार योजन जाने पर तथा धातकी खण्ड से ९५ वें हजार योजन लवण समुद्र में इधर आने पर बीच में नगर के कोट की तरह एक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दगमाला (उदकमाला) आती है, वह दस हजार यौजन की चौड़ी है। वह सोलह हजार योजन तक ऊंची गई है। इस रत्न प्रभा नामक पहली नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति सोलह पल्योपम की कही गई है। धूमप्रभा नामक पांचवीं नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति सोलह सागरोपम की कही गई है। कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति सोलह पल्योपम की कही गई है। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति सोलह पल्योपम की कही गई है। महाशुक्र नामक आठवें देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति सोलह सागरोपम की कही गई है। महाशुक्र देवलोक के अन्तर्गत आवर्त्त, व्यावर्त्त, नन्दिकावर्त्त, महानन्दिकावर्त्त, अङ्कुश, अङ्कुशप्रलम्ब, भद्र, सुभद्र, महाभद्र, सर्वतोभद्, भद्रोत्तरावतंसक इन ग्यारह विमानों में जो देव देव रूप से उत्पन्न होते हैं। उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति सोलह सागरोपम की कही गई है। वे देव सोलह पखवाड़ों से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को सोलह हजार वर्षों से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। कितने भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो सोलह भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ॥ १६ ॥

विवेचन - सूत्रकृताङ्ग सूत्र में स्वसमय (स्वसिद्धान्त) का सुन्दर रीति से वर्णन किया है। उसके बाद परसमय (परसिद्धान्त) अर्थात् अन्यमतावलम्बी ३६३ पाखण्ड मत का स्वरूप बतलाकर उनका युक्ति पूर्वक खण्डन किया गया है। इससे यह बात भी स्पष्ट होती है कि पहले स्वसिद्धान्त का ज्ञान करना चाहिए, उसके बाद परसिद्धान्त। इस कारण से सूयगडाङ्ग सूत्र का विशेष महत्त्व है।

कषाय मोहनीय कर्म के उदय से होने वाले क्रोध, मान, माया और लोभ रूप आत्मा के परिणाम विशेष को कषाय कहते हैं। प्रत्येक कषाय के चार-चार भेद हैं - १. अनन्तानुबन्धी २. अप्रत्याख्यान ३. प्रत्याख्यानावरण ४. संज्वलन।

अनन्तानुबन्धी - जिस कषाय के प्रभाव से जीव अनन्तकाल तक संसार में परिभ्रमण करता है। उस कषाय को अनन्तानुबन्धी कषाय कहते हैं। यह कषाय सम्यक्त्व का घात करता है।

अप्रत्याख्यान - जिस कषाय के उदय से देश विरति रूप अल्प (थोड़ा सा भी) प्रत्याख्यान नहीं होता, उसे अप्रत्याख्यान कषाय कहते हैं। इस कषाय से श्रावक धर्म की प्राप्ति नहीं होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्याख्यानावरण - जिस कषाय के उदय से सर्व विरति रूप प्रत्याख्यान रुक जाता है अर्थात् साधु धर्म की प्राप्ति नहीं होती, उसे प्रत्याख्यानावरण कषाय कहते हैं।

संज्वलन - जो कषाय परीषह या उपसर्ग आ जाने पर साधु मुनिराजों को भी थोड़ा सा जलाता है अर्थात् उन पर भी थोड़ा सा असर दिखाता है। उसे संज्वलन कषाय कहते हैं। यह कषाय सर्वविरति रूप साधु धर्म में तो बाधा नहीं पहुँचाता किन्तु सबसे ऊंचे यथाख्यात चारित्र में एवं वीतरागता में बाधा पहुँचाता है। इस प्रकार कषाय के सोलह भेद हो जाते हैं। इन प्रत्येक की उपमाएं भी दी गयी है। ठाणाङ्ग ४ के अनुसार जैन सिद्धान्त बोल संग्रह प्रथम भाग में इसका विस्तृत वर्णन है।

मेरुपर्वत के सोलह नाम कहे गये हैं। यथा -

१. मेरु - तिर्च्छा लोक के मध्य भाग की मर्यादा करने वाला होने से इसे मेरु कहते हैं। अथवा मेरु नामक देव इसका स्वामी है। इसलिये इसको मेरु कहते हैं।

२. मन्दर - मन्दर नामक देव के योग से इसको मन्दर कहते हैं। यहाँ पर यह शङ्का हो सकती है कि फिर तो मेरु के दो स्वामी हो जायेंगे । इस शंका का समाधान टीकाकार ने इस प्रकार दिया है कि एक ही देव के दो नाम हो सकते हैं। इसलिये शङ्का को कोई स्थान नहीं है। फिर भी वास्तविक निर्णय तो बहुश्रुत ही दे सकते हैं।

३. मनोरम - अत्यन्त सुन्दर होने के कारण यह (मेरु) देवताओं के मन को भी अपने में रमण करा लेता है।

४. सुदर्शन - जाम्बूनदरूप रत्नों की बहुलता होने से जिसको देखने से मन को बड़ा सन्तोष होता है अतः यह सुदर्शन है।

५. स्वयंप्रभ - रत्नों की बहुलता होने से सूर्य आदि के प्रकाश की अपेक्षा रखे बिना ही स्वयं की प्रभा से प्रकाशित होता है। अतः यह स्वयंप्रभ है।

६. गिरिराज - मेरु पर्वत सब पर्वतों से ऊंचा है। तथा इस पर ६४ इन्द्रों के द्वारा सब तीर्थङ्कर भगवन्तों का जन्माभिषेक किया जाता है। इसलिये यह गिरिराज है।

७. रत्नोच्चय - यहाँ नाना रत्नों की उपलब्धि होती है।

८. प्रियदर्शन (शिलोच्चय) - पाण्डुशिला, पाण्डुकम्बलशिला, रक्तशिला, रक्तकम्बल शिला इन चार शिलाओं के ऊपर भरत, ऐरवत और महाविदेह क्षेत्र के तीर्थंकरों का जन्माभिषेक किया जाता हैं। यह चारों शिलाएं मेरु पर्वत के ऊपर है। इसलिये यह शिलोच्चय कहलाता है।

९. लोकमध्य - यहाँ लोक शब्द से तिरछा लोक का ग्रहण किया गया है। थाली के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आकार तिर्छा लोक एक रज्जु परिमाण लम्बा चौड़ा है। इसके ठीक बीचोबीच में मेरु पर्वत आया हुआ है। इसलिए इसको लोकमध्य कहते हैं।

१०. लोकनाभि - जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में नाभि शरीर के बीचोबीच होती है इसी प्रकार तिर्च्छा लोक के ठीक मध्य में आने से मेरु पर्वत को लोक नाभि कहते हैं।

११. अत्थ (अस्त) - जम्बूद्वीप में दो सूर्य और दो चन्द्रमा हैं। वे मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते हैं। यही बात तत्त्वार्थ सूत्र में कही है।

ज्योतिष्काः सूर्याश्चन्द्रमसो ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णतारकाश्च ॥ १३ ॥
मेरु प्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥ १४ ॥
तत्कृतः कालविभागः ॥ १५ ॥
बहिरवस्थिताः ॥ १६ ॥

जब यहाँ का सूर्य मेरु पर्वत की आड़ में चला जाता है तो उसको अस्त कह देते हैं। वास्तव में सूर्य कभी अस्त होता ही नहीं है। वह तो नित्य गति करता ही रहता है। अपेक्षा से उसको अस्त कह देते हैं। मेरु की आड़ में आ जाने से मेरु को भी अस्त कह दिया है। यहाँ पर कारण में कार्य का उपचार कर दिया है।

१२. सूर्यावर्त - सूर्य और चन्द्रमा आदि ज्योतिषी देव मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा किया करते हैं। इसलिये मेरु को सूर्यावर्त कहा है।

१३. सूर्यावरण - सूर्य चन्द्रमा आदि मेरु की आड़ में आ जाने से वे ढक जाते हैं इसलिये मेरु को सूर्यावरण कहा है।

१४. उत्तर - भरतादि सब क्षेत्रों से मेरु उत्तर दिशा में है इसलिये इसको उत्तर कहते हैं। यथा -

जे मंदरस्य पुव्वेण, मणुसा दाहिणेण अवरेणं ।
जे याऽवि उत्तरेणं, सव्वेसिं उत्तरो मेरु ॥ ४९ ॥

'सव्वेसिं उत्तरोमेरु' त्ति (सर्वेषामुत्तरोमेरुः) **(आचाराङ्ग १-१-१)**

अर्थात् - पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशा में रहने वाले सब जीवों के लिये मेरु पर्वत उत्तर दिशा में रहता है। इसका कारण यह है कि - जिस क्षेत्र में सूर्य जिस दिशा में उदय होता है उसको पूर्व दिशा कहते हैं। उस अपेक्षा से मेरु पर्वत उत्तर दिशा में है। मेरु पर्वत सब पर्वतों में सब से ऊंचा है इसलिये इसको "उत्तम" भी कहते हैं। ऐसा भी कहीं पाठ है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१५. दिशा आदि - मेरु पर्वत समतल भूमि पर १० हजार योजन का चौड़ा है। इसके ठीक बीच में आठ रुचक प्रदेश है। वहीं से दिशा और विदिशा निकली हैं। इसीलिये मेरु पर्वत को सब दिशाओं का आदि (प्रारम्भक) कहते हैं।

१६. अवतंस - यह सब पर्वतों में श्रेष्ठ होने के कारण इसको अवतंस (शेखर-आभूषण) कहते हैं। यह मेरु पर्वत के सोलह नामों का अर्थ कहा गया है।

लवण समुद्र २ लाख योजन का लंबा चौड़ा है। जम्बूद्वीप की जगती से लवण समुद्र में ९५ हजार योजन जाने पर तथा धातकीखण्ड की जगती से ९५ हजार योजन लवण समुद्र में आने पर बीच में १० हजार योजन की पानी की सतह से नगर के कोट की तरह १६ हजार योजन ऊपर जल की वृद्धि हुई है। जिसको उगमाला (उदकमाला) कहते हैं। इसी जगह १० हजार योजन में लवण समुद्र १ हजार योजन ऊंडा है। बाकी ९५ हजार योजन में तो गोतीर्थ (जिस प्रकार पानी पीने के लिये गायें तालाब में उतरती हैं उस ढालू-ढलान की तरह) है।

सत्तरहवां समवाय

सत्तरसविहे असंजमे पण्णत्ते तंजहा-पुढवीकाय असंजमे, आउकाय असंजमे, तेउकाय असंजमे, वाउकाय असंजमे, वणस्सइकाय असंजमे, बेइंदिय असंजमे, तेइंदिय असंजमे, चउरिंदिय असंजमे, पंचिंदिय असंजमे, अजीवकाय असंजमे, पेहा असंजमे, उवेहा असंजमे, अवहट्टु असंजमे, अप्पमज्जणा असंजमे, मण असंजमे, वइ असंजमे, काय असंजमे। सत्तरसविहे संजमे पण्णत्ते तंजहा - पुढवीकाय संजमे जाव काय संजमे। माणुस्सुत्तरे णं पव्वए सत्तरस-एक्कवीसे जोयण सए उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते। सव्वेसिं वि वेलंधर अणुवेलंधर णागराईणं आवासपव्वया सत्तरस एक्कवीसाइं जोयण सयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। लवणे णं समुद्दे सत्तरस जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ साइरेगाइं सत्तरस जोयणसहस्साइं उड्ढं उप्पइत्ता तओ पच्छा चारणाणं तिरिया गई पवत्तइ। चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो तिगिंछिकूडे उप्पायपव्वए सत्तरस एक्कवीसाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते। बलिस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो रुयगिंदे उप्पायपव्वए सत्तरस एक्कवीसाइं जोयण सयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते। सत्तरस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विहे मरणे पण्णत्ते तंजहा - आविई मरणे, ओहि मरणे, आयंतिय मरणे, वलय मरणे, वसट्ट मरणे, अंतोसल्ल मरणे, तब्भव मरणे, बाल मरणे, पंडिय मरणे, बालपंडिय मरणे, छउमत्थ मरणे, केवलि मरणे, वेहाणस मरणे, गिद्धपिट्ठ मरणे भत्तपच्चक्खाण मरणे, इंगिणि मरणे, पाओवगमण मरणे। सुहुमसंपराए णं भगवं सुहुमसंपराएभावे वट्टमाणे सत्तरस कम्मपगडीओ णिबंधइ तंजहा - आभिणिबोहिय णाणावरणे, सुय णाणावरणे, ओहि णाणावरणे, मणपज्जव णाणावरणे, केवल णाणावरणे, चक्खु दंसणावरणे, अचक्खु दंसणावरणे, ओहि दंसणावरणे, केवल दंसणावरणे, साया वेयणिज्जं जसोकित्ती णामं, उच्चागोयं दाणंतरायं लाभंतरायं भोगंतरायं उवभोगंतरायं वीरियअंतरायं। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं सत्तरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। पंचमीए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। छट्ठीए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं सत्तरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं सत्तरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। महासुक्के कप्पे देवाणं उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। सहस्सारे कप्पे देवाणं जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा सामाणं सुसामाणं महासामाणं पउमं महापउमं कुमुयं महाकुमुयं णलिणं महाणलिणं पुंडरीयं महापुंडरीयं सुक्कं महासुक्कं सीहं सीहकंतं सीहवीयं भावियं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा सत्तरसेहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा । तेसिणं देवाणं सत्तरसेहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ । संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे सत्तरसेहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ १७ ॥

कठिन शब्दार्थ - **सत्तरस विहे** - सतरह प्रकार का, **असंजमे** - असंयम, **पेहा** - प्रेक्षा, **उवेहा** - उपेक्षा, **अवहट्टु** - अपहृत्य, **अप्पमज्जणा** - अप्रमार्जना, **माणुसुत्तरे** - मानुष्योत्तर, **णागराईणं** - नाग राजाओं के, **आवासपव्वया** - आवास पर्वत, **सव्वग्गेणं** - सर्वाग्र-सब मिला कर, **चारणाणं** - जंघाचारण और विद्याचारणों की, **तिरिया गई** - तिर्च्छी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गति, **पवत्तइ** - होती है, **उप्पायपव्वए** - उत्पात पर्वत, **तिगिंछिकूडे** - तिगिंछि कूट, **आवीईमरणे** - आवीचि मरण, **आयंतियमरणे** - आत्यंतिक मरण, **वलयमरणे** - वलन्मरण, **वसट्ट** - वशार्त, **अंतोसल्ल** - अन्तःशल्य, **वेहाणस** - वैहानस (वैहायस), **गिद्धपिट्ठ** - गृद्धपृष्ठ, **पाओवगमण** - पादपोपगमन ।

भावार्थ - सतरह प्रकार का असंयम कहा गया है। यथा - १. पृथ्वीकाय का असंयम २. अप्काय असंयम ३. तेउकाय असंयम ४. वायुकाय असंयम ५. वनस्पतिकाय असंयम ६. बेइन्द्रिय असंयम ७. तेइन्द्रिय असंयम ८. चौइन्द्रिय असंयम ९. पञ्चेन्द्रिय असंयम इन जीवों की यतना न करने से असंयम होता है। १०. अजीवकाय असंयम यानी बहुमूल्य वस्त्र आदि ग्रहण करना एवं साधु के लिये अकल्पनीय और अनैषणिय वस्तु को ग्रहण करना अजीवकाय असंयम कहलाता है। ११. प्रेक्षा असंयम - उपकरण आदि की पडिलेहणा न करना या अविधि से करना। १२. उपेक्षा असंयम - अशुभ कार्यों में प्रवृत्ति करना और शुभ कार्यों में प्रवृत्ति न करना। १३. अपहृत्य असंयम - लघुनीत बड़ीनीत आदि को विधि से न परठना। १४. अप्रमार्जना असंयम - उपकरणों की प्रमार्जना न करना अथवा अविधि से करना। १५. मन असंयम - मन से बुरे विचार करना। १६. वचन असंयम - दुष्ट वचन बोलना। १७. काय असंयम - शरीर से अशुभ प्रवृत्ति करना। सतरह प्रकार का संयम कहा गया है। यथा - १-१७ पृथ्वीकाय संयम यावत् काय संयम । पृथ्वी आदि की यतना करना यावत् मन वचन काया की शुभ प्रवृत्ति करना। मानुष्योत्तर पर्वत १७२१ योजन ऊँचा कहा गया है। सब बेलन्धर और अनुबेलन्धर नागराजाओं के आवासपर्वत १७२१ योजन ऊँचे कहे गये हैं। लवण समुद्र का पानी सतरह हजार योजन कहा गया है। जम्बूद्वीप से लवणसमुद्र में ९५ हजार योजन जाने पर धातकी खण्ड से ९५ हजार योजन लवण समुद्र में इधर आने पर दस हजार योजन का चक्रवाल पानी आता है। वह पानी सोलह हजार योजन ऊंचा गया है और पाताल में एक हजार योजन उंडा है। इस प्रकार सब मिला कर लवण समुद्र का पानी सतरह हजार योजन ऊंचा है। इस रत्नप्रभा पृथ्वी के समतल भूमिभाग से सतरह हजार योजन से कुछ अधिक ऊंचा जाने पर इसके बाद जंघाचारण और विद्याचारणों की तिर्च्छी गति होती है। असुरों के राजा असुरों के इन्द्र चमरेन्द्र का उत्पात पर्वत तिगिंछि कूट १७२१ योजन का ऊंचा कहा गया है। इसी तरह असुरों के राजा असुरों के इन्द्र बलीन्द्र का उत्पात पर्वत रुचकेन्द्र कूट १७२१ योजन का ऊंचा कहा गया है। सतरह प्रकार का मरण कहा गया है। यथा - १. आवीचि मरण - प्रत्येक क्षण में आयु कर्म का जो क्षय होता जा रहा है वह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आवीचि मरण है। २. अवधि मरण - एक बार भोग कर छोड़े हुए आयु कर्म के पुद्गलों को जब तक दुबारा भोगना शुरू नहीं करता है तब तक बीच के समय को अवधि मरण कहते हैं। ३. आत्यन्तिक मरण - आयुकर्म के जिन कर्म दलिकों को एक बार भोग कर छोड़ दिया है यदि उन्हें फिर न भोगना पड़े तो उन दलिकों की अपेक्षा जीव का आत्यन्तिक मरण कहलाता है। ४. वलन्मरण - संयम से गिरते हुए व्यक्ति का मरण वलन्मरण कहलाता है। ५. वशार्त्त मरण - इन्द्रियों के विषयों में फंसे हुए व्यक्ति की मृत्यु वशार्त्त मरण कहलाता है। ६. अन्तःशल्य मरण - जो व्यक्ति लज्जा या अभिमान के कारण अपने पापों की आलोचना किये बिना ही मर जाता है उसकी मृत्यु को अन्तःशल्य मरण कहते हैं। ७. तद्भव मरण - तिर्यञ्च या मनुष्य भव में आयुष्य पूरी करके फिर उसी भव की आयुष्य बांध लेने पर तथा दुबारा उसी भव में उत्पन्न होकर मृत्यु प्राप्त करना तद्भव मरण है। तद्भव मरण देव गति और नरकगति में नहीं होता है। क्योंकि देव मर कर वापिस देव और नैरयिक मर कर वापिस नैरयिक नहीं होता है ८. बालमरण - त्याग पच्चक्खाण रहित प्राणियों का मरण बाल मरण कहलाता है। ९. पण्डित मरण - सर्व विरति साधुओं की मृत्यु को पण्डित मरण कहते हैं। १०. बालपण्डित मरण- देशविरति श्रावकों की मृत्यु को बालपण्डित मरण कहते हैं। ११. छद्मस्थ मरण - केवलज्ञान प्राप्त किये बिना छद्मस्थावस्था में मृत्यु हो जाना छद्मस्थ मरण है। १२. केवलीमरण - केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद मृत्यु होना। १३. वैहायस मरण (वैहानस मरण) - वृक्ष की शाखा आदि में बांध देने पर अथवा फांसी आदि से मृत्यु होना वैहायस (वैहानस) मरण है। १४. गृद्धपृष्ठ मरण - गीध आदि मांसभक्षी जीवों से अपने शरीर का भक्षण करवा कर मरना गृद्धपृष्ठ मरण है। १५. भक्तप्रत्याख्यान मरण - यावज्जीवन तीन या चार प्रकार के आहारों का त्याग करने के बाद जो मृत्यु होती है उसे भक्त प्रत्याख्यान या भक्तपरिज्ञा मरण कहते हैं। १६. इङ्गिनीमरण - यावज्जीवन चारों प्रकार के आहार का त्याग कर निश्चित स्थान में हिलने डुलने का आगार रख कर जो मृत्यु होती है उसे इङ्गिनी (इङ्गित) मरण कहते हैं। १७. पादपोपगमन मरण - संथारा करके वृक्ष के समान जिस स्थान पर जिस आसन से लेट जाय फिर उसी जगह उसी आसन से लेटे रहना और इस प्रकार मृत्यु हो जाना पादपोपगमन मरण है। इस मरण में हाथ पैर हिलाने का भी आगार नहीं होता है। **सूक्ष्मसम्पराय** गुणस्थान में रहा हुआ सूक्ष्मसाम्परायिक अनगार सतरह कर्म प्रकृतियों का **बन्ध करता है। यथा** - १. आभिनिबोधिक ज्ञानावरण (मति ज्ञानावरण), २. श्रुत ज्ञानावरण, **३. अवधि ज्ञानावरण**, ४. मनःपर्यव ज्ञानावरण ५. केवल ज्ञानावरण ६. चक्षु दर्शनावरण,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७. अचक्षु दर्शनावरण ८. अवधि दर्शनावरण ९. केवल दर्शनावरण १०. सातावेदनीय ११. यशःकीर्ति नाम १२. उच्च गोत्र १३. दानान्तराय १४. लाभान्तराय १५. भोगान्तराय १६. उपभोगान्तराय, १७. वीर्यान्तराय। इस रत्नप्रभा नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति सतरह पल्योपम की कही गई है। धूमप्रभा नामक पांचवीं नरक में नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति सतरह सागरोपम कही गई है। तमः प्रभा नामक छठी नरक में नैरयिकों की जघन्य स्थिति सतरह सागरोपम कही गई है। असुरकुमार देवों में कितनेक देवों की स्थिति सतरह पल्योपम कही गई है। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति सतरह पल्योपम कही गई है। महाशुक्र नामक सातवें देवलोक में देवों की उत्कृष्ट स्थिति सतरह सागरोपम कही गई है। सहस्रार नामक आठवें देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति सतरह सागरोपम की कही गई है। सहस्रार देवलोक के अन्तर्गत सामान, सुसामान, महासामान, पद्म, महापद्म, कुमुद, महाकुमुद, नलिन, महानलिन, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शुक्र, महाशुक्र, सिंह, सिंहकान्त, सिंहवीत, भावित, इन सतरह विमानों में जो देव उत्पन्न होते हैं उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति सतरह सागरोपम की कही गई है। वे देव सतरह पखवाडों से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को सतरह हजार वर्षों से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो सतरह भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ॥ १७ ॥

विवेचन - यहाँ संयम और असंयम के सतरह - सतरह भेद बतलाये गये हैं। प्रवचन सारोद्धार ग्रन्थ में संयम के दूसरे प्रकार से भी सतरह भेद बतलाये गये हैं। यथा -

१-५. हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह रूप पांच आस्रवों से विरति। अर्थात् इनका सेवन नहीं करना।

६-१०. स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन पांच इन्द्रियों को उनके विषयों की ओर जाने से रोकना अर्थात् उन्हें वश में रखना।

११-१४. क्रोध, मान, माया और लोभ रूप चार कषायों को छोड़ना।

१५-१७. मन, वचन और काया की अशुभ प्रवृत्ति रूप तीन दण्डों से विरति होना अर्थात् मन, वचन और काया की अशुभ प्रवृत्ति नहीं करना।

सतरह प्रकार का असंयम। ऊपर जो सतरह प्रकार का असंयम बतलाया है उसके विपरीत प्रवृत्ति करना असंयम है। यथा -

१-५. हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह (ममत्व, मूर्छा) में प्रवृत्ति करना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

९-१०. पांच इन्द्रियों को वश में नहीं रखना।

११-१४. क्रोध, मान, माया और लोभ में प्रवृत्ति करना।

१५-१७. मन, वचन और काया से अशुभ प्रवृत्ति करना।

लवण समुद्र के ऊपरी सतह से १६ हजार योजन ऊंचा उगमाला (उदक माला) है। पर्व दिनों में आधा योजन पानी की वेल ऊंची चढ़ जाती है। ४२ हजार नागराज देव लवण समुद्र की आभ्यन्तर वेला को और ७२ हजार नागराज देव बाहरी वेला को तथा ६० हजार देव ऊपर उठती हुई वेला को दबाकर रखते हैं। ताकि वह वेला जम्बूद्वीप और धातकी खण्ड द्वीप को पानी से आप्लावित न कर दे अर्थात् पानी से एकमेक न कर दे ।

लवण समुद्र का पानी सर्वाग्र रूप से १७ हजार योजन ऊपर गया है और मानुष्योत्तर पर्वत तथा वेलन्धर, अणुवेलन्धर नागराज देवों के पर्वत भी १७२१ योजन ऊंचे हैं। जंघाचारण और विद्याचारणों की तिर्छी गति १७ हजार योजन से कुछ अधिक ऊपर जाने पर तिर्छी होती है। वे रुचक द्वीप आदि द्वीपों में जाने के लिये तिर्छी गति करते हैं। इस जम्बूद्वीप से असंख्यात द्वीप समुद्र आगे जाने पर अरुणोदय समुद्र में दक्षिण दिशा से ४२ हजार योजन आगे जाने पर चमरेन्द्र का तिगिंछि कूट उत्पात पर्वत की ऊंचाई १७२१ योजन है। इसी प्रकार उत्तर दिशा में बलीन्द्र का रुचकेन्द्र उत्पात पर्वत है। मनुष्य क्षेत्र में आने के लिये चमरेन्द्र और बलीन्द्र इन उत्पात पर्वतों पर आकर उछलते हैं।

सतरह प्रकार का मरण बतलाया गया है। जीव इस भव का आयुष्य समाप्त कर जब अगले दूसरे भव में जाता है तभी से उसका आवीचि मरण शुरू हो जाता है। यथा - जैसे कोई जीव १०० वर्ष का आयुष्य बांधकर मृत्यु को प्राप्त कर अगले भव के लिये रवाना हुआ तभी से जो जो क्षण बीतता जाता है वह १०० वर्ष में से कम होता जाता है। जैसा कि कहा है -

यामेव रात्रिं प्रथमामुपैति, गर्भे वसत्यै नरवीर ! लोकः ।
ततः प्रभृत्यस्खलितप्रयाणः, स प्रत्यहं मृत्युसमीपमेतिं ॥
आसन्नतरतामेति, मृत्युर्जन्तोर्दिने-दिने।
आघातं नीयमानस्य, वध्यस्येव पदे-पदे ॥

अर्थात् जीव जब गर्भ में आता है और जो जो क्षण बीतता जाता है उतना आयुष्य कम होता जाता है और वह मृत्यु के नजदीक पहुँचता जाता है। जैसे किसी अपराधी को फांसी की सजा दी गयी उसको पकड़ कर सिपाही फांसी के स्थान पर ले जाते हैं। वह अपराधी ज्यों ज्यों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कदम भरता जाता है त्यों त्यों वह मृत्यु के नजदीक पहुँचता जाता है। यही बात संसारी प्राणी के लिये भी समझनी चाहिए। इसीलिये श्रमण भगवान् महावीर स्वामी फरमाते हैं कि -

"समयं गोयम मा पमायए"

हे गौतम! धर्म कार्य करने में एक समय मात्र का भी प्रमाद मत करो । दूसरी जगह भी कहा है-

सांस सांस पर प्रभु भज, वृथा सांस मत खोय ।
कुण जाणे इण सांस का, आणा होय क ना होय ॥
क्षण क्षण क्षण क्षण करतां, जीवन बीता जाय ।
क्षण क्षण का उपयोग कर, बीता क्षण फिर न आय ॥
जो जो क्षण बीत गया, शीश पकड़ क्यों रोय ।
यह क्षण आया सामने, इसे वृथा मत खोय ॥

इस प्रकार ज्ञानियों ने जीवन की क्षण भङ्गुरता को जानकर धर्म करणी करने के लिये बहुत बहुत प्रेरणा दी है।

पादपोपगमन मरण - "पादैः पिबति इति पादपः "अर्थात् जो पैरों (अपनी जड़ों) से पानी पीता है उसे पादप (वृक्ष) कहते हैं। वह पवन के जोर से सम या विषम उबड़ खाबड़ जगह में जिस अवस्था में गिर पड़ता है। वह उसी तरह से पड़ा रहता है। पादपोपगमन संथारे में भी साधक जिस पसवाड़े आदि पर सो जाय उसको वैसा ही सोते रहना चाहिए। कहीं किसी प्रकार की हलन चलन नहीं करना चाहिये। शास्त्र में कहीं कहीं पर पादपोपगमन के स्थान पर "पाओगमण" अर्थात् पादगमन शब्द आता है। टीकाकार ने इसका अर्थ स्पष्ट किया है कि - पाद का अर्थ है पैर और गमन का अर्थ है जाना। तात्पर्य यह है कि साधक संथारा करने के लिये अपने गुरुदेव आदि से आज्ञा लेकर "कडाई" स्थविरों के साथ स्वयं अपने पैरों से चलकर पर्वत आदि एकान्त स्थान में जाता है। साधक अपने पैरों से चलकर जाता है इसलिये इसे पादगमन संथारा भी कहते हैं। जिन सन्तों ने मासखमण दो मासखमण आदि उत्कृष्ट तपश्चर्या करके अपने शरीर को तपश्चर्या से होने वाले भूख प्यास आदि कष्टों को समभाव पूर्वक सहन करने के योग्य बना लिया हो ऐसे योग साधना करने वाले सन्त मुनिराजों को "कड़ाई" (कृतयोगी) स्थविर कहते हैं। ये जिस संथारा करने वाले मुनिराज के साथ जाते हैं उस मुनि का जब तक संथारा चलता है तब तक प्रायः ये भी चौविहार तपश्चर्या करते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऊपर बतलाये हुए १७ प्रकार के मरणों में से बारह प्रकार के मरण बाल मरण कहे गये हैं। बाल मरण से संसार घटता नहीं अपितु संसार में परिभ्रमण करना पड़ता है। इसीलिये साधु-साध्वी श्रावक श्राविका रूप चतुर्विध संघ पण्डित मरण का मनोरथ प्रतिदिन चिन्तन करते हैं। यथा -

कब सीखूं श्रुत ज्ञान को, करूँ पडिमा अंगीकार।
पण्डित मरण से मृत्यु हो, मुनि मनोरथ सार॥
आरम्भ परिग्रह कब तजूं, कब लूं महाव्रत धार ।
कब शुद्ध मन आलोयणा, करूँ संथारो सार ॥ **(श्रावक मनोरथ)**

क्योंकि -

अज्ञान मरण अनन्त मरा, कारज सधा कछु नाय ।
एक मरण ऐसा मरे, भव भव मरण मिट जाय ॥

अज्ञान मरण का अर्थ है बाल मरण। भव भव के जन्म मरण को मिटाने वाला पण्डित मरण है। सातवें समवाय में भी इसका विशेष विवेचन दिया गया है।

दसवें गुणस्थान का नाम सूक्ष्मसम्पराय है। इस गुणस्थान में रहा हुआ जीव बन्ध योग्य १२० कर्म प्रकृतियों में से सिर्फ १७ कर्म प्रकृतियों को बांधता है। इस गुणस्थान से आगे बढ़ने पर १६ कर्म प्रकृतियों का व्यवछेद हो जाता है। सिर्फ एक साता वेदनीय कर्म प्रकृति का बन्ध होता है। जिसको ईर्यावही बन्ध कहते हैं। इसकी बन्ध स्थिति दो समय की है।

अठारहवाँ समवाय

अट्ठारस विहे बंभे पण्णत्ते तंजहा - ओरालिए कामभोगे णेव सयं मणेणं सेवइ, णो वि अण्णं मणेणं सेवावेइ, मणेणं सेवंतं वि अण्णं ण समणुजाणाइ, ओरालिए कामभोगे णेव सयं वायाए सेवइ, णो वि अण्णं वायाए सेवावेइ, वायाए सेवंतं वि अण्णं ण समणुजाणाइ, ओरालिए कामभोगे णेव सयं काएणं सेवइ, णो वि अण्णं काएणं सेवावेइ, काएण सेवंतं वि अण्णं ण समणुजाणाइ। दिव्वे कामभोगे णेव सयं मणेणं सेवइ, णो वि अण्णं मणेणं सेवावेइ, मणेणं सेवंतं वि अण्णं ण समणुजाणाइ, दिव्वे कामभोगे णेव सयं वायाए सेवइ, णो वि अण्णं वायाए सेवावेइ, वायाए सेवंतं वि अण्णं ण समणुजाणाइ, दिव्वे काम भोगे णेव सयं काएणं सेवइ,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णो वि अण्णं काएणं सेवावेइ, काएणं सेवंतं वि अण्णं ण समणुजाणाइ । अरहओ णं अरिट्ठणेमिस्स अट्ठारस समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था । समणेणं भगवया महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं सखुड्डय वियत्ताणं अट्ठारस ठाणा पण्णत्ता तंजहा -

वयछक्कं कायछक्कं, अकप्पो गिहिभायणं ।
पलियंक णिसिज्जा य, सिणाणं सोहवज्जणं ॥

आयारस्स णं भगवओ सचूलियागस्स अट्ठारस पयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ता। बंभीए णं लिवीए अट्ठारसविहे लेखविहाणे पण्णत्ते तंजहा-बंभी जवणी लियादोसा ऊरिया खरोट्टिया खरसाविया पहाराइया उच्चत्तरिया अक्खरपुट्ठिया भोगवयया वेणइया णिण्हइया अंक लिवी गणिय लिवी गंधव्व लिवी भूय लिवी आदंस लिवी माहेसरी लिवी दामि लिवी बोलिंदि लिवी। अत्थिणत्थिप्पवायस्स णं पुव्वस्स अट्ठारस वत्थू पण्णत्ता। धूमप्पभाए णं पुढवीए अट्ठारसुत्तरं जोयणसयसहस्सं बाहल्लेणं पण्णत्ता। पोसासाढेसु णं मासेसु सइ उक्कोसेणं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, सइ उक्कोसेणं अट्ठारस मुहुत्ता राई भवइ । इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं अट्ठारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। छट्ठीए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं अट्ठारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं अट्ठारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं अट्ठारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सहस्सारे कप्पे देवाणं उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। आणए कप्पे देवाणं अत्थेगइयाणं जहण्णेणं अट्ठारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा कालं सुकालं महाकालं अंजणं रिट्ठं सालं समाणं दुमं महादुमं विसालं सुसालं पउमं पउमगुम्मं कुमुयं कुमुयगुम्मं णलिणं णलिणगुम्मं पुंडरीयं पुंडरीयगुम्मं सहस्सारवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा अट्ठारसेहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा । तेसिणं देवाणं अट्ठारस वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे अट्ठारसेहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ १८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - ओरालिए काम भोगे - औदारिक शरीर संबंधी काम भोगों को, **दिव्वे** - देव संबंधी, **सखुड्डुय वियत्ताणं** - बालक से लेकर वृद्ध तक, **अट्ठारस ठाणा** - अठारह पालन करने योग्य स्थान, **वयछक्कं** - छह व्रत, **कायछक्कं** - छह काय, **अकप्पो**- अकल्प्य त्याग, **गिहिभायणं** - गृहस्थ के बर्तनों में आहार पानी न करे तथा उन्हें कपड़े धोने आदि के काम में नहीं लें। **पलियंक** - पर्यङ्क, **णिसिज्जा** - निषद्या, **सिणाणं** - स्नान त्याग, **सोहवज्जणं** - शोभावर्जन, **सचूलियागस्स** - चूलिका सहित, **पयग्गेणं** - पदाग्र-प्रत्येक पद के, **बंभी** - ब्राह्मी, **लिविए** - लिपि के, **लेखविहाणे** - लेख विधान-लिखने के तरीके।

भावार्थ - अठारह प्रकार का ब्रह्मचर्य कहा गहा है। यथा - १. औदारिक शरीर सम्बन्धी यानी मनुष्य तिर्यञ्च सम्बन्धी कामभोगों को स्वयं मन से सेवन न करे। २. दूसरों को मन से सेवन न करावे और ३. मन से सेवन करते हुए दूसरों को अच्छा भी न जाने । ४. औदारिक शरीर सम्बन्धी कामभोगों को स्वयं वचन से सेवन न करे। ५. दूसरों को वचन से सेवन न करावे। ६. वचन से सेवन करते हुए दूसरों की अनुमोदना भी न करे। ७. औदारिक शरीर सम्बन्धी कामभोगों को स्वयं काया से सेवन न करे। ८. दूसरों को काया से सेवन न करावे ९. काया से सेवन करते हुए दूसरों की अनुमोदना भी न करे। १०. दिव्य अर्थात् देव सम्बन्धी काम भोगों को स्वयं मन से सेवन न करे। ११. दूसरों को मन से सेवन न करावे १२. मन से सेवन करते हुए दूसरों की अनुमोदना भी न करे। १३. दिव्य कामभोगों को स्वयं वचन से सेवन न करे। १४. दूसरों को वचन से सेवन न करावे । १५. वचन से सेवन करते हुए दूसरों की अनुमोदना भी न करे। १६. दिव्य काम भोगों को स्वयं काया से सेवन न करे। १७. दूसरों को काया से सेवन न करावे। १८. काया से सेवन करते हुए दूसरों की अनुमोदना भी न करे।

बाईसवें तीर्थङ्कर भगवान् अरिष्टनेमिनाथ स्वामी के अठारह हजार साधुओं की उत्कृष्ट श्रमण सम्पदा थी। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने बालक से लेकर वृद्ध तक सभी श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अठारह स्थान पालन करने योग्य कहे हैं। वे इस प्रकार हैं - १-६ छह व्रत यानी प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह और रात्रिभोजन का सर्वथा त्याग करना। ७-१२ छह काय अर्थात् पृथ्वीकाय अप्काय तेउकाय वायुकाय वनस्पतिकाय और त्रसकाय इन छह कायों के आरम्भ का सर्वथा त्याग करना। १३. अकप्पो - अकल्पनीय आहार पानी वस्त्र पात्र आदि को ग्रहण न करे १४. गृहस्थ के बर्तनों में आहार पानी न करे तथा उन्हें कपड़े

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धोने आदि के काम में नहीं ले। १५. पर्यङ्क - पलंग, खाट, कुर्सी आदि पर न बैठे। १६. निषद्या - गृहस्थ के घर जाकर न बैठे। १७. स्नान न करे। १८. शोभावर्जन - शरीर की विभूषा न करे। चूलिका सहित श्री आचाराङ्ग सूत्र के प्रत्येक पद के हिसाब से अठारह हजार पद कहे गये हैं। ब्राह्मी लिपि के लिखने के तरीके अठारह प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. ब्राह्मी २. यवनानी, ३. लिप्तदोशा ४. उरिया (उडिया) ५. खरौष्ठी, ६. खरश्राविता ७. पहराइया, ८. उच्चतरिका ९. अक्षरपृष्टिका १०. भोगवतिका ११. वैनयिकी १२. निह्नविकी १३. अङ्क लिपि १४. गणित लिपि १५. गन्धर्व लिपि १६. भूतादर्श लिपि १७. माहेश्वरी लिपि, १८. दामि लिपि (बोलिंदी लिपि)। अस्तिनास्तिप्रवाद नामक चौथे पूर्व की अठारह वस्तु-अध्ययन कहे गये हैं।

धूमप्रभा नामक पांचवीं नरक की मोटाई एक लाख अठारह हजार योजन की कही गई है। पौष और आषाढ मास में एक वक्त उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है और उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है अर्थात् पौष पूर्णिमा मकरसंक्रान्ति में अठारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है और आषाढी पूर्णिमा में कर्क संक्रान्ति में अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है। इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति अठारह पल्योपम की कही गई है। तमःप्रभा नामक छठी नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति अठारह सागरोपम की कही गई है। असुरकुमार देवों में कितनेक देवों की स्थिति अठारह पल्योपम की कही गई है। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति अठारह पल्योपम की कही गई है। सहस्रार नामक आठवें देवलोक में देवों की उत्कृष्ट स्थिति अठारह सागरोपम की कही गई है। आणत नामक नववें देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति अठारह सागरोपम की कही गई है। आणत देवलोक के अन्तर्गत काल, सुकाल, महाकाल, अञ्जन, रिष्ट, साल, समान, द्रुम, महाद्रुम, विशाल, सुशाल, पद्म, पद्मगुल्म, कुमुद, कुमुदगुल्म, नलिन, नलिनगुल्म, पुण्डरीक, पुण्डरीकगुल्म, सहस्रारावत्तंसक इन बीस विमानों में जो देव देव रूप से उत्पन्न होते हैं उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति अठारह सागरोपम कही गई है। वे देव अठारह पखवाड़ों से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को अठारह हजार वर्षों से आहार की इच्छा पैदा होती है। कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो अठारह भवों से सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ॥ १८ ॥

विवेचन - यहाँ ब्रह्मचर्य के अठारह भेद बतलाये गये हैं। यथा - औदारिक (मनुष्य तिर्यंच सम्बन्धी) शरीर सम्बन्धी काम भोगों का स्वयं सेवन करे नहीं, करावे नहीं, करते हुए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को भला भी जाने नहीं। मन वचन काया से। अर्थात् तीन करण तीन योग से औदारिक सम्बन्धी काम भोगों का त्याग करना। इसी प्रकार देव सम्बन्धी कामभोगों का भी तीन करण तीन योगों से त्याग करे। इस प्रकार ब्रह्मचर्य के अठारह भेद बतलाये गये हैं। ब्रह्मचर्य का पर्यायवाची शब्द शील भी है। साधु साध्वी के आचार को भी शील कहते हैं। उसके एक गाथा द्वारा अठारह हजार भेद बतलाये गये हैं। वह गाथा इस प्रकार है यथा -

जे णो करेंति मणसा णिज्जियाहार सण्णा सोइंदिए ।
पुढवीकायारंभं खंतिजुया ते मुणी वंदे ॥

इस गाथा में तीन करण, तीन योग, चार संज्ञा, पांच इन्द्रिय, पृथ्वीकायादि का आरंभ दस (पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय पञ्चेन्द्रिय और अजीव का आरंभ) और दस श्रमण धर्म, (खंति, मुत्ति, अज्जवे, मद्दवे, लाघवे, सच्चे, संजमे, तवे, चियाए, बंभचेर वासे) इनका संकेत है। क्षान्ति आदि दस श्रमण धर्म ध्रुवशील हैं। इनका दशविध जीवादि आरंभ के साथ क्रमशः संयोग और गुणाकार करने से अठारह हजार (१८०००) भेद होते हैं। अर्थात् उपरोक्त गाथा की १८००० गाथाएं हो जाती हैं। इसकी विधि इस प्रकार है। यथा -

दस प्रकार के श्रमण धर्म को पुढवीकायादि दस के साथ गुणा करने से १०० भेद होते हैं। इन १०० भेदों को श्रोत्रेन्द्रिय आदि पांच इन्द्रियों के साथ गुणा करने पर ५०० भेद होते हैं। इन ५०० को आहारादि चार संज्ञाओं के साथ गुणा करने से २००० भेद होते हैं। इनको मन, वचन, काया इन तीन योगों से गुणा करने से ६००० भेद होते हैं। इन ६००० को तीन करण (करना, कराना, अनुमोदना) के साथ गुणा करने पर १८००० भेद हो जाते हैं। इस प्रकार इस एक ही गाथा की १८००० गाथा बन जाती है। इस गाथा को फेरने से ध्यान की बड़ी एकाग्रता बनती है। इस गाथा को उपयोग पूर्वक फेरना ध्यान की उत्कृष्ट साधना है।

वर्तमान में प्रचलित जितनी भी ध्यान पद्धतियाँ हैं वे सब इस गाथा की ध्यान पद्धति के आगे फीकी पड़ जाती है। क्योंकि वे सब पद्धतियाँ प्रायः शरीर को लक्ष्य करके चलती है। किन्तु साधक का ध्यान तो आत्म लक्षी होना चाहिए। औपपातिक सूत्र में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के अनगारों का वर्णन है। वे सब आध्यात्मिक ध्यान करते थे। किन्तु वर्तमान में प्रचलित शारीरिक प्राणायाम की तरह ध्यान नहीं करते थे। वे आध्यात्मिक अनगार थे। शरीर की सेवा, शुश्रूषा की तरफ उनका लक्ष्य नहीं था।

व्रत छह आदि अठारह स्थानों का वर्णन दशवैकालिक सूत्र के छठे अध्ययन में विस्तार पूर्वक दिया है। गृहस्थ के भाजन के विषय में टीकाकारों ने तथा पूज्य श्री जवाहरलाल जी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

म. सा. के सुशिष्य पूज्य आचार्य श्री घासीलाल जी म. सा. ने लिखा है कि - साधु-साध्वी को गृहस्थ के बर्तन में आहार पानी नहीं करना चाहिए तथा गृहस्थ का बर्तन मिट्टी या लोहे आदि के कुन्डे को कपड़े धोने के काम में नहीं लेना चाहिए तथा गरम पानी आदि को ठण्डा करने के लिए परात-थाली आदि को काम में नहीं लेना चाहिए।

आचाराङ्ग सूत्र के दो श्रुतस्कन्ध हैं। पहले श्रुतस्कन्ध में नौ अध्ययन हैं और दूसरे श्रुतस्कन्ध में पांच चूडा (चूला) हैं। यहाँ पर आचाराङ्ग के १८००० पद बतलाये गये हैं। वे सिर्फ पहले श्रुत स्कन्ध के ही समझना चाहिए। यह पहला श्रुत स्कन्ध चूला सहित है। यह बात बतलाने के लिये "सचूलियागस्स" यह शब्द दिया है। पद संख्या में चूलिका शामिल नहीं है। क्योंकि चूलिका में तो बहुत बहुतर पद है। जिससे अर्थ का बोध हो उसे पद कहते हैं। ऐसा टीकाकार ने लिखा है। संस्कृत में तो "विभक्त्यन्तं पदम्" अर्थात् जिसके अन्त में "स्यादि" और "त्यादि" विभक्ति हो उसे पद कहते हैं। कौमुदी व्याकरण में तो "सुबन्त" और तिङन्त को पद कहा है। आगम में पद की व्याख्या किस तरह की है, यह देखने में नहीं आया।

अक्षर लिखने की विधि को लिपि कहते हैं। उसके यहाँ अठारह भेद बतलाये गये हैं। किन्तु अङ्क संख्या उन्नीस दे दी है। प्रज्ञापना सूत्र के पहले पद में भी लिपि के अठारह भेद दिये हैं। परन्तु यहाँ के नामों में और क्रम में भेद है। यहाँ टीकाकार ने लिखा है कि इन लिपियों का अर्थ देखने में नहीं आया है। इसलिये विवेचन नहीं किया गया है।

उन्नीसवाँ समवाय

एगूणवीसं णायज्झयणा पण्णत्ता तंजहा -

उक्खित्तणाए संघाडे, अंडे कुम्मे व सेलए ।
तुंबे य रोहिणी मल्ली, मागंदी चंदिमा त्ति य ॥
दावद्दवे उदगणाए, मंडुक्के तेतली इय ।
णंदिफले अवरकंका, आइण्णे सुंसुमा इ य ॥
अवरे य पोंडरीए, णाए एगूणवीसमे ॥

जंबूद्दीवे णं दीवे सूरिया उक्कोसेणं एगूणवीसं जोयण सयाइं उड्ढमहो तवयंति। सुक्के णं महग्गहे अवरेणं उदिए समाणे एगूणवीसं णक्खत्ताइं समं चारं चरित्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवरेणं अत्थमणं उवागच्छइ। जंबूद्दीवस्स णं दीवस्स कलाओ एगूणवीसं छेयणाओ पण्णत्ताओ। एगूणवीसं तित्थयरा अगारवासमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइया। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं एगूणवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। छट्ठीए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं एगूणवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एगूणवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं एगूणवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। आणय कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं उक्कोसेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। पाणयकप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं जहण्णेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा आणयं पाणयं णयं विणयं घणं सुसिरं (झुसिरं) इंदं इंदोकंतं इंदुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा एगूणवीसाए अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा। तेसिणं देवाणं एगूणवीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे एगूणवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ १९ ॥

कठिन शब्दार्थ - **एगूणवीसं** - उन्नीस, **णायज्झयणा** - ज्ञाता धर्म कथांग सूत्र के अध्ययन, **उक्खित्तणाए** - उत्क्षिप्त ज्ञात, **संघाडे** - संघट्ट ज्ञात, **अंडे** - अण्ड ज्ञात, **कुम्मे** - कूर्म ज्ञात, **सेलए** - शैलक, **तुंबे** - तुम्बक, **मागंदी** - माकंदी ज्ञात, **दावद्दवे** - दावद्रव वृक्ष का दृष्टान्त, **मंडुक्के** - मण्डूक ज्ञात नन्द मणियार (मणिकार) की कथा, **आइण्णे** - आकीर्णज्ञात, **पोंडरीए** - पुण्डरीक का दृष्टान्त, **उड्ढ महो** - ऊपर और नीचे, **तवयंति** - तपता है, **सुक्के महग्गहे** - शुक्र महाग्रह, **अवरेण** - पश्चिम दिशा से, **अगारवासमज्झे वसित्ता** - अगारवास में रह कर।

भावार्थ - ज्ञाताधर्म कथाङ्ग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के १९ अध्ययन कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. उत्क्षिप्त ज्ञात - पूर्वभव में शशक (खरगोश) की रक्षा करने से श्रेणिक राजा के घर उत्पन्न हुए मेघकुमार की कथा। २. संघट्ट ज्ञात - धन्ना सार्थवाह और विजय चोर की कथा ३. अण्ड ज्ञात - शुद्ध समकित के लिए अण्डे का दृष्टान्त ४. कूर्म ज्ञात - साधु को अपनी इन्द्रियाँ वश में रखने के लिए कच्छुए का दृष्टान्त। ५. शैलक - भूल के लिए पश्चात्ताप करके फिर संयम में दृढ़ होने के लिए शैलक राजर्षि का दृष्टान्त । ६. तुम्बक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञात - मिट्टी का लेप लगने से तुम्बी पानी में डूबती है और लेप उतर जाने पर वह पानी के ऊपर आ जाती है। इसी प्रकार कर्मों से भारी जीव संसार समुद्र में डूबता है और कर्मों का लेप हट जाने से मोक्ष प्राप्त करता है। ७. रोहिणी ज्ञात - आराधक और विराधक के लाभ और अलाभ बताने के लिए रोहिणी आदि चार पुत्रवधुओं की कथा। ८. मल्लि ज्ञात - भगवान् मल्लिनाथ की कथा। ९. माकंदी ज्ञात - कामभोगों में आसक्त पुरुष विनाश को प्राप्त होता है, जैसे रयणा(रत्ना)देवी के मोह में फंसा हुआ जिनरक्षित मारा गया । कामभोगों से विरक्त पुरुष सुख को प्राप्त होता है, जैसे जिनपालित १०. चन्द्र ज्ञात - शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की कला के समान अप्रमादी साधु के गुणों की वृद्धि होती है और कृष्ण पक्ष के चन्द्रमा की कला के समान प्रमादी साधु के गुणों की हानि होती है। ११. दावद्रव वृक्ष का दृष्टान्त १२. उदक ज्ञात - पुद्गलों के परिणाम शुभाशुभ हो जाते हैं। सुबुद्धि प्रधान ने दुर्गन्धित पानी को सुगन्धित एवं शुद्ध करके जितशत्रु राजा को पुद्गलों का परिणाम समझाया था। १३. मण्डूक ज्ञात - नन्द मणियार (मणिकार) की कथा । १४. तेतली ज्ञात - धर्मप्राप्ति के लिए अनुकूल सामग्री की आवश्यकता बताने के लिए तेतलीपुत्र प्रधान की कथा। १५. नंदिफल ज्ञात - वीतराग के उपदेश से ही धर्म प्राप्त होता है। यह बताने के लिए नन्दि फल का दृष्टान्त। १६. अपरकंका (अमरकंका) ज्ञात - विषयों का कड़वा फल बतलाने के लिए अपरकङ्का (अमरकंका) के राजा पद्मनाभ की कथा। १७. आकीर्ण ज्ञात - इन्द्रियों के विषयों में आसक्त रहने से होने वाले अनर्थों को बतलाने के लिए आकीर्ण जाति के घोड़ों का दृष्टान्त। १८. सुषुमा ज्ञात - संयमी जीवन के लिए शुद्ध और निर्दोष आहार निर्ममत्व भाव से करने के लिए सुषुमा कुमारी का दृष्टान्त । १९. पुण्डरीक ज्ञात- उत्कृष्ट भाव से पालन किया गया थोड़े समय का संयम भी आत्मा का कल्याण कर देता है यह बताने के लिए पुण्डरीक का दृष्टान्त। इस जम्बूद्वीप में सूर्य ऊपर और नीचे सब मिला कर उत्कृष्ट उन्नीस सौ योजन तपता है यानी प्रकाश करता है। सूर्य अपने विमान से ऊपर एक सौ योजन तक प्रकाश करता है और अपने विमान से नीचे अठारह सौ योजन तक प्रकाश करता है। सूर्य के विमान से आठ सौ योजन नीचे यह समतल भूमि भाग है और इससे एक हजार योजन नीचे जम्बूद्वीप की सलिलावती विजय है। यह जम्बूद्वीप की सलिलावती विजय ही एक हजार योजन ऊंडी है। इस से यह स्पष्ट होता है कि धातकी खण्ड और अर्ध पुष्कर द्वीप की सलिलावती विजय एक हजार योजन ऊंडी नहीं है। वहाँ तक सूर्य का प्रकाश पहुँचता है। शुक्र महाग्रह पश्चिम दिशा से उदय होकर उन्नीस नक्षत्रों के साथ भ्रमण करके पश्चिम दिशा में ही अस्त होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जम्बूद्वीप का गणित करने में एक योजन के उन्नीसवें भाग को कला कहा गया है। श्री महावीरस्वामी, श्री पार्श्वनाथस्वामी, श्री अरिष्ट नेमिनाथ स्वामी, श्री मल्लिनाथ स्वामी और वासुपूज्यस्वामी, इन पांच तीर्थङ्करों को छोड़ कर बाकी उन्नीस तीर्थङ्करों ने अगारवास में रह कर अर्थात् राजपाट भोग कर फिर मुण्डित होकर दीक्षा ली थी। इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति उन्नीस पल्योपम की कही गई है। तमःप्रभा नामक छठी नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति उन्नीस सागरोपम की कही गई है। असुरकुमार देवों में कितनेक देवों की स्थिति उन्नीस पल्योपम की कही गई है। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति उन्नीस पल्योपम की कही गई है। आणत नामक नववें देवलोक में देवों की उत्कृष्ट स्थिति उन्नीस सागरोपम की कही गई है। प्राणत नामक दसवें देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति उन्नीस सागरोपम की कही गई है। प्राणत देवलोक के अन्तर्गत आणत, प्राणत, नत, विनत, घन, शुषिर, इन्द्र, इन्द्रकान्त, इन्द्रोत्तरावतंसक, इन नौ विमानों में जो देव देव रूप से उत्पन्न होते हैं। उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति उन्नीस सागरोपम की कही गई है। वे देव उन्नीस पखवाड़ों से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को उन्नीस हजार वर्षों से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो उन्नीस भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ॥ १९ ॥

विवेचन - बारह अङ्ग सूत्रों में से छठे अङ्ग सूत्र का नाम ज्ञाताधर्म कथाङ्ग सूत्र है। इस के दो श्रुतस्कन्ध हैं। ज्ञाता और धर्म कथा। पहले श्रुतस्कन्ध में उन्नीस अध्ययन हैं। प्रत्येक अध्ययन में एक-एक कथा है और अन्त में उस कथा (दृष्टान्त- उदाहरण) से मिलने वाली शिक्षा बतलाई गयी है। इन उन्नीस ही कथाओं का हिन्दी अनुवाद श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह बीकानेर के पांचवें भाग में दिया गया है (अगरचन्द भैरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था मरोटी सेठियों का मोहल्ला बीकानेर-राजस्थान)। जिज्ञासु साधक वहाँ देख सकते हैं।

दूसरे श्रुतस्कन्ध का नाम धर्म कथा है। इसमें २०६ अध्ययन हैं। तेईसवें तीर्थङ्कर भगवान् पुरुषादानीय पार्श्वनाथ की २०६ आर्याएँ विराधक हो गयी थी। वे कालधर्म को प्राप्त होकर भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी तथा पहले दूसरे देवलोक के इन्द्रों की इन्द्राणियाँ (अग्रमहिषियाँ) बनी हैं। इन अध्ययनों का हिन्दी अनुवाद श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह के चौथे भाग में दिया गया है।

चौबीस तीर्थङ्करों में से सोलह तीर्थङ्कर माण्डलिक राजा बने। सोलहवें शान्तिनाथ सतरहवें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुन्थुनाथ और अठारहवें अरनाथ ये तीन पहले माण्डलिक राजा बने फिर चक्रवर्ती बने। फिर चक्रवर्ती पद को छोड़कर तीर्थङ्कर बने। पांच तीर्थङ्करों के लिए ठाणाङ्ग सूत्र के पांचवे ठाणे में **"कुमारवास मज्झे वसित्ता"** पाठ दिया है जिसका अर्थ है - कुमार अवस्था (युवराज अवस्था) में रहते हुए ही दीक्षा ली। राजा नहीं बने थे। जैसा कि - गाथा में कहा है -

वीरं अरिट्ठनेमिं पासं, मल्लिं च वासुपुज्जं च।
एए मोत्तूण जिणे, अवसेसा आसी रायाणो ॥ १ ॥

यहाँ कुमार शब्द का अर्थ दिगम्बर सम्प्रदाय में कुंआरा (अविवाहित) किया है। वह आगमानुकूल नहीं है। क्योंकि आगमों में मल्लिनाथ और अरिष्टनेमि इन दोनों को ही अविवाहित (कुंआरा) बतलाया है। शेष तीन वासुपूज्य, पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी को विवाहित बतलाया है। उनके ससुर, पत्नी, सन्तान आदि के नाम भी बतलाये हैं। इसलिये इन तीन को अविवाहित मानना आगमानुकूल नहीं है।

ज्ञातासूत्र के तेरहवें अध्ययन का नाम नन्द मणियार है। 'मणियार' शब्द की संस्कृत छाया 'मणिकार' बनती है। 'मणि' का अर्थ है - हीरा पन्ना रत्न आदि जवाहरात । अतः नन्द सेठ जवाहरात का धन्धा करने वाला जौहरी था। कितनेक लोग नन्द सेठ को चूड़ी बेचने वाला लखारा कह देते हैं यह अर्थ आगमानुकूल नहीं है।

१९ वाँ अध्ययन जो कि पुण्डरीक कण्डरीक का है वह महाविदेह क्षेत्र का है। उपयोगी समझ कर शास्त्रकार ने यहाँ उद्धृत किया है।

बीसवां समवाय

वीसं असमाहि ठाणा पण्णत्ता तंजहा - दवदवचारी यावि भवइ, अप्पमज्जियचारी यावि भवइ, दुप्पमज्जियचारी यावि भवइ, अइरित्त सेज्जासणिए, राइणियपरिभासी, थेरोवघाइए, भूओवघाइए, संजलणे, कोहणे, पिट्ठिमंसिए, अभिक्खणं अभिक्खणं ओहारइत्ता भवइ, णवाणं अहिगरणाणं अणुप्पण्णाणं उप्पाइत्ता भवइ, पोराणाणं अहिगरणाणं खामिय विउसवियाणं पुणोदीरित्ता भवइ, ससरक्ख पाणिपाए, अकाल सज्झायकारए यावि भवइ, कलहकरे, सद्दकरे, झंझकरे, सूरप्पमाणभोई, एसणासमिए यावि भवइ । मुणिसुव्वए णं अरहा वीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। सव्वे वि य घणोदही वीसं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ता। पाणयस्स णं देविंदस्स देवरण्णो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वीसं सामाणिय साहस्सीओ पण्णत्ताओ। णपुंसय वेयणिज्जस्स णं कम्मस्स वीसं सागरोवम कोडाकोडीओ बंधओ बंधठिई पण्णत्ता। पच्चक्खाणस्स णं पुव्वस्स वीसं वत्थू पण्णत्ता। उस्सप्पिणी ओसप्पिणीमंडले वीसं सागरोवम कोडाकोडीओ कालो पण्णत्तो। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं वीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। छट्ठीए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं वीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं वीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं वीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। पाणए कप्पे देवाणं उक्कोसेणं वीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। आरणे कप्पे देवाणं जहण्णेणं वीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा सायं विसायं सुविसायं सिद्धत्थं उप्पलं भित्तिल्लं तिगिच्छं दिसासोवत्थियं पलंबं रुइलं पुप्फं सुपुप्फं पुप्फावत्तं पुप्फपभं पुप्फकंतं पुप्फवण्णं पुप्फलेसं पुप्फज्झयं पुप्फसिंगं पुप्फसिट्ठं (पुप्फसिद्धं) पुप्फुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं वीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा वीसाए अद्धमासाणं (अद्धमासेहिं) आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा। तेसिणं देवाणं वीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे वीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ २० ॥

कठिन शब्दार्थ - असमाहि ठाणा - असमाधि स्थान, **दवदवचारी** - द्रुतद्रुतचारी-जल्दी जल्दी चलना, **अप्पमज्जियचारी** - बिना पूंजे चलना, **दुप्पमज्जियचारी** - दुष्प्रमार्जित-अच्छी तरह नहीं पूंजना, **अइरित्त सेज्जासणिए** - मर्यादा से अधिक शय्या आसन रखना, **राइणिय परिभासी** - रत्नाधिक के सामने बोल कर उनका अपमान करना, **थेरोवघाइए** - स्थविर साधुओं की अवज्ञा करना, उनकी घात चिंतवना, **भूओवघाइए - भूतोपघात** - जीवों की घात करना, **पिट्ठिमंसिए** - पीठ पीछे दूसरों की निन्दा करना, **णवाणं अहिगरणाणं अणुप्पणाणं उप्पाइत्ता भवइ** - नवीन क्लेश खड़ा करना, **खामियविउसवियाणं** - क्षमा किये हुए एवं उपशांत हुए क्लेश को, **कलहकरे** - कलह उत्पन्न करना, **सद्दकरे** - उच्चे स्वर से बातचीत या स्वाध्याय करना, **झंझकरं** - संघ में फूट डालने वाले वचन कहना, **सूरप्पमाणभोई** - सूर्योदय से सूर्यास्त तक कुछ न कुछ खाते रहना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - बीस असमाधि स्थान कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - १. दवदवचारी - द्रुतद्रुतचारी-जल्दी जल्दी चलना। २. बिना पूंजे चलना, बैठना, सोना आदि क्रियाएं करना। ३. अच्छी तरह नहीं पूंजना। ४. मर्यादा से अधिक शय्या आसन आदि रखना। ५. रत्नाधिक यानी ज्ञान दर्शन चारित्र में अपने से बड़े साधु और आचार्य आदि पूजनीय पुरुषों के सामने बोलकर उनका अपमान करना। ६. स्थविर साधुओं की अवज्ञा करना, उनकी घात चिन्तवना। ७. जीवों की घात करना, आधाकर्मादि आहार लेना। ८. प्रतिक्षण बात बात में क्रोध करना। ९. बहुत अधिक क्रोध करना। १०. पीठ पीछे दूसरों की चुगली करना, निन्दा करना ११. मन में शङ्का होते हुए भी बारबार निश्चयकारी भाषा बोलना १२. नवीन क्लेश खड़ा करना। १३. क्षमा किये हुए तथा उपशान्त हुए क्लेश को फिर से खड़ा करना। १४. सचित्त रज लगे हुए हाथ पैरों को बिना पूंजे सोना, बैठना आदि क्रियाएँ करना। १५. अकाल में शास्त्रों की स्वाध्याय करना। १६. आक्रोशादि वचनों का प्रयोग कर कलह उत्पन्न करना। १७. रात को पहले पहर के बाद ऊँचे स्वर से बातचीत या स्वाध्याय करना अथवा गृहस्थों के समान सावद्य भाषा बोलना १८. साधु समुदाय में फूट डालने वाले वचन कहना। १९. सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक कुछ न कुछ खाते रहना अर्थात् सारे दिन मुंह चलाते रहना। २०. एषणा समिति में ध्यान न रखना। इन बीस कारणों से असमाधि उत्पन्न होती है। बीसवें तीर्थङ्कर श्री मुनिसुव्रत स्वामी बीस धनुष के ऊंचे थे। सभी अर्थात् सातों नरकों के नीचे सब घनोदधि बीस हजार योजन मोटा कहा गया है। देवों के राजा, देवों के इन्द्र प्राणतेन्द्र के बीस हजार सामानिक देव हैं। नपुंसक रूप से वेदे जाने वाले मोहनीय कर्म की बन्ध स्थिति बन्ध के समय से लेकर बीस कोडाकोडी सागरोपम की कही गई है। नववें प्रत्याख्यान पूर्व की बीस वस्तु (अध्ययन) हैं। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दोनों मिला कर बीस कोडाकोडी सागरोपम का एक कालचक्र होता है। इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति बीस पल्योपम की कही गई है। तमःप्रभा नामक छठी नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति बीस सागरोपम की कही गई है। असुरकुमार देवों में कितनेक देवों की स्थिति बीस पल्योपम की कही गई है। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति बीस पल्योपम की कही गई है। प्राणत नामक दसवें देवलोक में देवों की उत्कृष्ट स्थिति बीस सागरोपम की कही गई है। आरण नामक ग्यारहवें देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति बीस सागरोपम की कही गई है। आरण देवलोक के अन्तर्गत सात, विसात, सुविसात, सिद्धार्थ, उत्पल, भित्तिल, तिगिच्छ, दिशासौवस्तिक, प्रलम्ब, रुचिर, पुष्प, सुपुष्प, पुष्पावर्त्त, पुष्पप्रभ,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुष्पकान्त, पुष्पवर्ण, पुष्पलेश्य, पुष्पध्वज, पुष्पश्रृङ्ग, पुष्पसृष्ट या पुष्पसिद्ध, पुष्पोत्तरावत्तंसक, इन इक्कीस विमानों में जो देव देव रूप से उत्पन्न होते हैं उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति बीस सागरोपम की कही गई है। वे देव बीस पखवाड़ों से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को बीस हजार वर्षों से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो बीस भवों से सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ॥ २० ॥

विवेचन - जिस कार्य को करने से चित्त में शान्ति लाभ हो तथा वह चित्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप मोक्ष मार्ग में लगा रहे उसे समाधि कहते हैं। ज्ञानादि के अभाव रूप अप्रशस्त भाव को तथा चित्त की अशान्ति को असमाधि कहते हैं। यहाँ बतलाये गये बीस कारणों का सेवन करने से स्वयं की आत्मा को एवं पर की आत्मा को तथा उभय (दोनों) की आत्मा को इस लोक और परलोक में असमाधि उत्पन्न होती है। इन स्थानों का सेवन करने से चित्त दूषित होकर चारित्र को मलिन कर देता है। इसलिये ये असमाधि स्थान कहे जाते हैं। आत्मार्थी पुरुष को इन बीस स्थानों का वर्जन करके आगमानुसार प्रवृत्ति करनी चाहिये। इसका विस्तृत वर्णन दशाश्रुतस्कन्ध की पहली दशा में किया गया है। जिसका हिन्दी अनुवाद श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह के छठे भाग में दिया गया है।

बर्फ की तरह गाढे जमे हुए पानी को घनोदधि कहते हैं। पहली से लेकर सातवीं नरक तक प्रत्येक नरक के नीचे २०-२० हजार योजन का घनोदधि आया हुआ है। यह नरकों के नीचे प्रतिष्ठान रूप आधार है। घनोदधि के नीचे असंख्यात योजन का घनवाय (ठोस वायु) है और घनवाय के नीचे असंख्यात योजन का तनुवाय है। तनुवाय के नीचे असंख्यात योजन का आकाश है। इस प्रकार नरक की स्थिति है।

दस कोडाकोडी सागरोपम का एक उत्सर्पिणी काल होता है। उसी प्रकार दस कोडाकोडी सागरोपम का एक अवसर्पिणी काल होता है। २० कोडाकोडी सागरोपम का एक कालचक्र (उत्सर्पिणी अवसर्पिणी मण्डल) होता है।

यहाँ मूल में नपुंसक वेदनीय लिखा है। नपुंसक वेद मोहनीय कर्म की प्रकृति है। इसलिये इसका ऐसा अर्थ समझना चाहिये कि - नपुंसक वेद इस प्रकार वेदा (भोगा) जाता है इसलिये इसको वेदनीय कह दिया गया है। इसकी बन्ध स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इक्कीसवां समवाय

एक्कवीसं सबला पण्णत्ता तंजहा-हत्थकम्मं करेमाणे सबले, मेहुणं पडिसेवेमाणे सबले, राइभोयणं भुंजमाणे सबले, आहाकम्मं भुंजमाणे सबले, सागारियं पिंडं भुंजमाणे सबले, उद्देसियं कीयं आहट्टु दिज्जमाणं भुंजमाणे सबले, अभिक्खणं अभिक्खणं पडियाइक्खित्ता णं भुंजमाणे सबले, अंतो छण्हं मासाणं गणाओ गणं संकममाणे सबले, अंतो मासस्स तओ दगलेवे करेमाणे सबले, अंतो मासस्स तओ माईठाणे सेवमाणे सबले, रायपिंडं भुंजमाणे सबले, आउट्टियाए पाणाइवायं करेमाणे सबले, आउट्टियाए मुसावायं वयमाणे सबले, आउट्टियाए अदिण्णादाणं गिण्हमाणे सबले, आउट्टियाए अणंतरहियाए पुढवीए ठाणं वा णिसीहियं वा चेएमाणे सबले, एवं आउट्टिए चित्तमंताए पुढवीए, एवं आउट्टिए चित्तमंताए सिलाए कोलावासंसि वा दारुए ठाणं वा सिज्जं वा णिसीहियं वा चेएमाणे सबले, जीवपइट्ठिए सपाणे सबीए सहरिए सउतिंगे पणगदगमट्टी मक्कडा संताणए तहप्पगारे ठाणं वा सिज्जं वा णिसीहियं वा चेएमाणे सबले, आउट्टियाए मूलभोयणं वा कंदभोयणं वा खंधभोयणं वा तयाभोयणं वा पवालभोयणं वा पत्तभोयणं वा पुप्फभोयणं वा फलभोयणं वा बीयभोयणं वा हरियभोयणं वा भुंजमाणे सबले, अंतो संवच्छरस्स दस दगलेवे करेमाणे सबले, अंतो संवच्छरस्स दस माइठाणाइं सेवमाणे सबले, अभिक्खणं अभिक्खणं सीओदग वियडवग्घारियपाणिणा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिगाहित्ता भुंजमाणे सबले। णियट्टिबायरस्स णं खवियसत्तयस्स मोहणिज्जस्स कम्मस्स एक्कवीसं कम्मंसा संतकम्मा पण्णत्ता तंजहा - अपच्चक्खाणकसाए कोहे, अपच्चक्खाण कसाए माणे, अपच्चक्खाण कसाए माया, अपच्चक्खाणकसाए लोभे। पच्चक्खाणावरण कसाए कोहे, पच्चक्खाणावरणकसाए माणे, पच्चक्खाणावरण कसाए माया, पच्चक्खाणावरण कसाए लोभे। संजलणकसाए कोहे, संजलण कसाए माणे, संजलण कसाए माया, संजलण कसाए लोभे। इत्थीवेए पुंसवेए णपुंसयवेए हासे अरई रई भय सोग दुगुंछा। एक्कमेक्काए णं ओसप्पिणीए पंचम छट्ठाओ समाओ एक्कवीसं एक्कवीसं वाससहस्साइं कालेणं पण्णत्ता तंजहा - दूसमा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दूसमदूसमा य। एगमेगाए णं उस्सप्पिणीए पढम बितियाओ समाओ एक्कवीसं एक्कवीसं वाससहस्साइं कालेणं पण्णत्ता तंजहा- दूसमदूसमाए दूसमाए य। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं एक्कवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। छट्ठीए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं एक्कवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एगवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं एगवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। आरणे कप्पे देवाणं उक्कोसेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। अच्चुए कप्पे देवाणं जहण्णेणं एगवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा सिरिवच्छं सिरिदामगंडं मल्लं किट्टं चावोण्णयं अरण्णवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा एक्कवीसाए अद्धमासाणं (अद्धमासेहिं) आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा। तेसिणं देवाणं एक्कवीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ । संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे एक्कवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ २१ ॥

कठिन शब्दार्थ - **सबला** - शबल दोष, **हत्थकम्मं करेमाणे** - हस्तकर्म करना, **मेहुणं पडिसेवेमाणे** - मैथुन सेवन करना, **सागारियपिंडं** - सागारिक पिण्ड - शय्यातर के घर से आहार आदि लेना, **उद्देसियं** - औद्देशिक, **कीयं** - क्रीत - साधु के निमित्त खरीदा हुआ, **गणाओ गणं** - एक गण को छोड़ कर दूसरे गण में, **दगलेवे करेमाणे** - उदक लेप करना अर्थात् नदी उतरना, **माइठाणे** - माया स्थान का, **आउट्टियाए** - जानबूझ कर, **जीवपइट्ठिए** - जीवों वाले स्थान पर, **मूल भोयणं** - मूल का भोजन, **कंदभोयणं** - कंद का भोजन, **तयाभोयणं** - त्वचा - छाल का भोजन, **पवालभोयणं** - प्रवाल का भोजन, **हरियभोयणं** - हरीकाय का भोजन, **सीओदगवियडवग्घारियं पाणिणा** - सचित्त जल वाले हाथ आदि से, **खवियसत्तयस्स** - सात प्रकृतियों का क्षय करने वाले, **संतकम्मा** - सत्ता में रहती है, **अपच्चक्खाण** - अप्रत्याख्यान, **पच्चक्खाणावरण** - प्रत्याख्यानावरण, **संजलण** - संज्वलन।

भावार्थ - **शबल** - जिन कार्यों से चारित्र की निर्मलता नष्ट हो जाती है, उसमें मैल लग जाता है उन्हें 'शबल' दोष कहते हैं। वे इक्कीस हैं - १. हस्तकर्म करना शबल दोष

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। २. मैथुन सेवन करना शबल दोष है। ३. रात्रि भोजन करना शबल दोष है। इसके चार भंग बताये हैं। दिन को लाया गया और दिन (अपने पास रात में बासी रख कर दूसरे दिन) में ही खाया गया। दिन को लाया गया रात को खाया गया। रात को ग्रहण किया गया दिन को खाया गया। रात में ग्रहण किया गया और रात में ही खाया गया। ये चारों ही भङ्ग अशुद्ध हैं, उनका सेवन करना शबल है। ४. आधाकर्म आहारादि का सेवन करना शबल दोष है। ५. साधु को ठहरने के लिए मकान देने वाला सागारिक या शय्यातर कहलाता है। उसके घर से आहारादि लेना नहीं कल्पता है। जो साधु शय्यातर के घर से आहारादि लेता है। वह शबल दोष का सेवन करने वाला होता है। ६. औद्देशिक - किसी साधु साध्वी का उद्देश्य लेकर उनके लिये बनाया गया आहार आदि तथा क्रीत-साधु के निमित्त खरीदा हुआ और साधु के स्थान पर लाकर दिये गये आहारादि का सेवन करना शबल दोष है। ७. बार बार आहारादि का पच्चक्खाण करके उनको भोगना शबल दोष है। ८. छह महीनों के अन्दर एक गण को छोड़ कर दूसरे गण में जाना शबल दोष है। ९. एक महीने में तीन बार उदक लेप लगाना अर्थात् नदी उतरना शबल दोष है। १०. एक महीने के अन्दर तीन बार माया स्थान का सेवन करना शबल दोष है। माया का सेवन करना सर्वथा निषिद्ध है। यदि कोई साधु भूल से माया स्थानों का सेवन कर बैठे तो भी तीन से अधिक बार सेवन करना शबल दोष है। ११. राजपिण्ड को सेवन करना शबल दोष है। १२. जानबूझ कर प्राणियों की हिंसा करना शबल दोष है। १३. जान बूझ कर झूठ बोलना शबल दोष है। १४. जान बूझ कर चोरी करना शबल दोष है। १५. जान बूझ कर सचित्त पृथ्वी पर बैठना सोना कायोत्सर्ग करना एवं स्वाध्याय आदि करना शबल दोष है। १६. इसी प्रकार स्निग्ध और सचित्त रज वाली पृथ्वी, सचित्त शिला या पत्थर अथवा घुणों वाली लकड़ी पर बैठना, सोना, कायोत्सर्ग आदि क्रियाएं करना शबल दोष है। १७. जीवों वाले स्थान पर, प्राण, बीज, हरियाली, कीड़ी नगरा, लीलन फूलन, पानी, कीचड़, मकड़ी के जाले वाले तथा इसी प्रकार के दूसरे स्थान पर बैठना सोना, कायोत्सर्ग आदि क्रियाएँ करना शबल दोष है। १८. जान बूझ कर के मूल, कन्द, खन्ध, त्वचा (छाल), प्रवाल, पत्र, पुष्प (फूल), फल, बीज या हरीकाय आदि का भोजन करना शबल दोष है। १९. एक वर्ष के अन्दर दस बार उदक लेप करना शबल दोष है। २०. एक वर्ष के अन्दर दस बार माया स्थानों का सेवन करना शबल दोष है। २१. जान बूझ कर बार बार सचित्त जल से गीले हाथ वाले व्यक्ति आदि से अशन पान खादिम स्वादिम ग्रहण करना और भोगना शबल दोष है। अर्थात् हाथ, कुड़छी या आहार देने के बर्तन आदि में सचित्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जल लगा रहने पर उससे आहार न लेना चाहिए। ऐसे हाथ, कुड़छी आदि से आहारादि लेना शबल दोष है। मोहनीय कर्म की अनन्तानुबन्धी चार और दर्शन त्रिक इन सात प्रकृतियों का क्षय करने वाले निवृत्ति बादर नामक आठवें गुणस्थानवर्ती जीव के मोहनीय की इक्कीस कर्म प्रकृतियाँ सत्ता में रहती हैं। वे इस प्रकार हैं - १. अप्रत्याख्यान क्रोध, २. अप्रत्याख्यान मान, ३. अप्रत्याख्यान माया ४. अप्रत्याख्यान लोभ ५. प्रत्याख्यानावरण क्रोध, ६. प्रत्याख्यानावरण मान ७. प्रत्याख्यानावरण माया ८. प्रत्याख्यानावरण लोभ ९. संज्वलन क्रोध, १०. संज्वलन मान ११. संज्वलन माया १२. संज्वलन लोभ १३. स्त्री वेद १४. पुरुष वेद १५. नपुंसक वेद १६. हास्य १७. अरति १८. रति १९. भय २०. शोक २१. दुगुंछा-जुगुप्सा। प्रत्येक अवसर्पिणी काल का दुःषमा नामक पांचवां आरा और दुःषम दुःषमा नामक छठा आरा इक्कीस इक्कीस हजार वर्ष के कहे गये हैं। प्रत्येक उत्सर्पिणी काल का दुःषम दुःषमा नामक पहला आरा और दुःषमा नामक दूसरा आरा इक्कीस इक्कीस हजार वर्ष का कहा गया है। इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति इक्कीस पल्योपम की कही गई है। तमःप्रभा नामक छठी नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति इक्कीस सागरोपम की कही गई है। असुरकुमार देवों में कितनेक देवों की स्थिति इक्कीस पल्योपम की कही गई है। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति इक्कीस पल्योपम की कही गई है। आरण नामक ग्यारहवें देवलोक में कितनेक देवों की उत्कृष्ट स्थिति इक्कीस सागरोपम की कही गई है। अच्युत नामक बारहवें देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति इक्कीस सागरोपम की कही गई है। अच्युत देवलोक के अन्तर्गत श्रीवत्स, श्रीदामगण्ड, माल्य, कृष्ट, चापोन्नत आरणावतंसक, इन छह विमानों में जो देव देव रूप से उत्पन्न होते हैं। उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति इक्कीस सागरोपम की कही गई है। वे देव इक्कीस पखवाड़ों से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को इक्कीस हजार वर्षों से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो इक्कीस भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ॥ २१ ॥

विवेचन - 'शबल' शब्द का अर्थ है चित्तकबरा। अर्थात् जैसे सफेद कपड़े में बीच बीच में काले धब्बे लग जायं उसी तरह से शुद्ध चारित्र में दोष लग जाय तो वह शबल चारित्र कहलाता है। तात्पर्य यह है कि - जिन कार्यों के सेवन से चारित्र की निर्मलता नष्ट हो जाती है, उसमें दोष लग जाता है उन्हें शबल दोष कहते हैं। ऐसे कार्यों को सेवन करने वाले साधु भी शबल कहलाते हैं। उत्तर गुणों में अतिक्रम आदि चारों दोषों का सेवन करने से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तथा मूल गुणों में तीन दोषों का (अनाचार को छोड़ कर) सेवन करने से चारित्र शबल (दूषित) हो जाता है।

शबल दोष के इक्कीस भेद मूल में बताये गये हैं।

रात्रि भोजन के चार भङ्ग बतलाये गये हैं -

१. रात में लेकर रात में खाना।

२. रात में लेकर दिन में खाना।

३. दिन में लेकर रात में खाना।

४. दिन में लेकर दिनान्तर में खाना। अर्थात् पहले दिन लेकर अपने पास रात बासी रख कर दूसरे दिन खाना। मुनि के लिये इन चारों भङ्गों का निषेध है।

अभी वर्तमान में कोई एक साधक ऐसा कहते हैं कि - गृहस्थ के घर रात्रि में बनी हुई चीज साधु साध्वी को लेना नहीं कल्पता है। क्योंकि - "रात्रि में बने हुए आहारादि को लेना रात्रि भोजन ही है।" परन्तु यह कहना आगमानुकूल नहीं है। क्योंकि गृहस्थ के यहाँ तो बहुत सी चीजें रात्रि में ही बनती हैं। जैसे दही आदि तथा गुड़, शक्कर आदि मिलों में दिन और रात बनते ही रहते हैं। इसलिये टीकाकार ने रात्रि भोजन के चार उपर्युक्त भेद बताये हैं किन्तु रात्रि में बना हुआ आहार आदि लेना रात्रि भोजन नहीं बतलाया है। अत: आगम से अधिक कहना **'अइरित्त-अतिरिक्त - अधिक'** नामक मिथ्यात्व है।

किसी खास साधु साध्वी के लिये बनाया गया आहार आदि यदि वही साधु साध्वी ले तो आधाकर्म दोष लगता है और यदि दूसरा साधु साध्वी ले तो औद्देशिक दोष लगता है। औद्देशिक और आधाकर्म में यही अन्तर है। "औद्देशिक" का शब्दार्थ इस प्रकार किया गया है -

"**साधु साध्वीः उद्दिश्य तन्निमित्तं कृतं आहारादिकं औद्देशिकम्** ।" अर्थात् साधु साध्वी के निमित्त बनाया हुआ आहारादि ।

"आधाकर्म" का शब्दार्थ इस प्रकार किया गया है -

"**आधया साधु-साध्वी प्रणिधानेन यत् सचेतनं अचेतनं क्रियते, अचेतनं वा पच्यते, न्यूयते वस्त्रादिकं, विरच्यते गृहादिकं तद् आधाकर्म।**" अर्थात् साधु-साध्वी के लिये सचित्त वस्तु फल आदि को अचित्त करना, अचित्त को पकाना, रांधना, वस्त्रादि बुनना (बनाना) मकान आदि बनाना, यह सब आधाकर्म दोष कहलाता है।

एक बार भी नदी को उल्लंघन करना साधु-साध्वी के लिये दोष का कारण हैं किन्तु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक महीने में तीन बार नदी उतरे तो शबल दोष कहलाता है। यही बात माया दोष के लिये भी समझनी चाहिये।

बाईसवां समवाय

बावीसं परीसहा पण्णत्ता तंजहा - दिगिंछा परीसहे, पिवासा परीसहे, सीय परीसहे, उसिण परीसहे, दंसमसग परीसहे, अचेल परीसहे, अरइ परीसहे, इत्थी परीसहे, चरिया परीसहे, णिसीहिया परीसहे, सिज्जा परीसहे, अक्कोस परीसहे, वह परीसहे, जायणा परीसहे, अलाभ परीसहे, रोग परीसहे, तणफास परीसहे, जल्ल परीसहे, सक्कार पुरक्कार परीसहे, पण्णा परीसहे, अण्णाण परीसहे, दंसण परीसहे। दिट्ठिवायस्स णं बावीसं सुत्ताइं छिण्णछेय णइयाइं ससमयसुत्त परिवाडीए। बावीसं सुत्ताइं अछिण्णछेय णइयाइं आजीवियसुत्त परिवाडीए। बावीसं सुत्ताइं तिक णइयाइं तेरासिय सुत्तपरिवाडीए । बावीसं सुत्ताइं चउक्क णइयाइं ससमयसुत्त परिवाडीए। बावीस विहे पोग्गल परिणामे पण्णत्ते तंजहा- कालवण्ण परिणामे, णीलवण्ण परिणामे, लोहियवण्ण परिणामे, हालिद्दवण्ण परिणामे, सुकिल्लवण्ण परिणामे, सुब्भिगंध परिणामे, दुब्भिगंध परिणामे, तित्तरस परिणामे, कडुयरस परिणामे, कसायरस परिणामे, अंबिलरस परिणामे, महुररस परिणामे, कक्खडफास परिणामे, मउयफास परिणामे, गुरुफास परिणामे, लहुफास परिणामे, सीयफास परिणामे, उसिणफास परिणामे, णिद्धफास परिणामे, लुक्खफास परिणामे, अगुरुलहुफास परिणामे, गुरुलहुफास परिणामे । इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं बावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। छट्ठीए पुढवीए णेरइयाणं उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं बावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं बावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। अच्चुए कप्पे देवाणं उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। हेट्ठिम हेट्ठिम गेविज्जगाणं देवाणं जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा महियं विसूहियं विमलं पभासं वणमालं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अच्चुयवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा बावीसाए अद्धमासाणं (अद्धमासेहिं) आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा । तेसिणं देवाणं बावीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ । संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे बावीसं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ २२ ॥

कठिन शब्दार्थ - परीसहे - परीषह, **दिगिंछा** - बुभुक्षा-क्षुधा-भूख, **पिवासा** - पिपासा-प्यास, **सीय** - शीत, **उसिण** - उष्ण, **दंसमसग** - दंशमशक-डांस, मच्छर, खटमल आदि, **अरइ** - अरति, **इत्थी** - स्त्री, **चरिया** - चर्या, **णिसीहिया** - निषद्या, **सिज्जा** - शय्या, **अक्कोस** - आक्रोश, **वह** - वध, **जायणा** - याचना, **तणफास** - तृण स्पर्श, **जल्ल** - मल (मैल), **सक्कारपुरक्कार** - सत्कार पुरस्कार, **पण्णा** - प्रज्ञा, **अण्णाण** - अज्ञान, **ससमयसुत्त परिवाडीए** - स्व समय सूत्र परिपाटी यानी स्वसिद्धान्त की परिपाटी के अनुसार, **छिण्णछेय णइयाइं** - छिन्न छेद नय वाले, **आजीविय-सुत्त परिवाडीए** - आजीविक सूत्र परिपाटी यानी गोशालक मतानुसार, **अछिण्णछेय णइयाइं** - अछिन्न छेद नय वाले, **तेरासिय सुत्त परिवाडीए** - त्रैराशिक सूत्र परिपाटी के अनुसार, **तिक णइयाइं** - त्रिक नयिक-तीन नय वाले, **चउक्क णइयाइं** - चतुष्क नयिक - चार नय वाले, **पोग्गल परिणामे** - पुद्गल परिणाम।

भावार्थ - परीषह - आपत्ति आने पर भी संयम में स्थिर रहने के लिए तथा कर्मों की निर्जरा के लिए जो शारीरिक तथा मानसिक कष्ट साधु साध्वियों को समभाव पूर्वक सहने चाहिए, उन्हें परीषह कहते हैं। वे बाईस हैं। यथा - १.भूख का परीषह - संयम की मर्यादा के अनुसार निर्दोष आहार न मिलने पर मुनियों को भूख का कष्ट सहना चाहिए किन्तु सदोष आहार न लेना चाहिए। २. प्यास का परीषह ३. शीत - ठंड का परीषह ४. उष्ण - गर्मी का परीषह ५. डांस, मच्छर, खटमल आदि का परीषह ६. अचेल परीषह - मर्यादित वस्त्र रखने से होने वाला कष्ट । ७. अरति परीषह - संयम मार्ग में कठिनाइयों के आने पर उसमें मन न लगे और संयम के प्रति अरति (अरुचि) उत्पन्न हो तो धैर्य पूर्वक उसमें मन लगाते हुए अरति को दूर करना चाहिए। ८. स्त्री परीषह - स्त्रियों द्वारा होने वाला कष्ट ९. चर्या परीषह - विहार में होने वाला कष्ट १०. निषद्या परीषह - स्वाध्याय आदि करने की भूमि ऊँची नीची हो तो वहाँ बैठने से होने वाला कष्ट । ११. शय्या परीषह - रहने का स्थान तथा सोने की जगह अनुकूल न होने से होने वाला कष्ट। १२. आक्रोश परीषह - किसी के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वारा धमकाये या फटकारे जाने पर दुर्वचनों से होने वाला कष्ट। १३. वध परीषह - लकड़ी आदि से पीटे जाने पर होने वाला कष्ट १४. याचना परीषह - गोचरी में मांगने से होने वाला कष्ट १५. अलाभ परीषह - वस्तु के न मिलने पर होने वाला कष्ट १६. रोग परीषह - रोग के कारण होने वाला कष्ट १७. तृणस्पर्श परीषह - तिनकों (घास-फूस) पर सोने से अथवा मार्ग में चलते समय तृण आदि पैर में चुभ जाने से होने वाला कष्ट १८. जल्ल परीषह - शरीर और वस्त्र में चाहे जितना मैल लगे किन्तु उद्वेग को प्राप्त न होना तथा स्नान की इच्छा न करना जल्ल-मल परीषह कहलाता है १९. सत्कार पुरस्कार परीषह - जनता द्वारा मान पूजा होने पर हर्षित न होते हुए समभाव रखना और मान पूजा के अभाव में खिन्न न होना सत्कार पुरस्कार परीषह है। २०. प्रज्ञा परीषह - प्रज्ञा यानी बुद्धि की तीव्रता होने पर गर्व न करना। २१. अज्ञान परीषह - अज्ञान यानी बुद्धि मन्द होने पर खिन्न (खेदित) न होना २२. दर्शन परीषह - दूसरे मत वालों का आडम्बर देख कर भी उसकी आकांक्षा नहीं करना अपितु अपने मत में दृढ़ रहना दर्शन परीषह है। स्वसमय यानी स्वसिद्धान्त की परिपाटी के अनुसार दृष्टिवाद के छिन्न छेद नय वाले बाईस सूत्र हैं। आजीविक सूत्र परिपाटी यानी गोशालक मतानुसार बाईस सूत्र अछिन्न छेद नय वाले हैं। त्रैराशिक सूत्र परिपाटी के अनुसार बाईस सूत्र तीन नय वाले हैं। स्व समय सूत्र परिपाटी के अनुसार बाईस सूत्र चार नय वाले हैं। बाईस प्रकार के पुद्गल परिणाम कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. कृष्ण वर्ण पुद्गल परिणाम २. नील वर्ण पुद्गल परिणाम ३. रक्त वर्ण पुद्गल परिणाम ४. हारिद्र यानी पीतवर्ण पुद्गल परिणाम, ५. शुक्ल वर्ण पुद्गल परिणाम ६. सुरभि गन्ध पुद्गल परिणाम ७. दुरभिगन्ध पुद्गल परिणाम ८. तिक्त रस पुद्गल परिणाम ९. कटुक रस पुद्गल परिणाम १०. कषैला रस पुद्गल परिणाम ११. अंबिल यानी खट्टा रस पुद्गल परिणाम १२. मधुर रस पुद्गल परिणाम १३. कर्कश स्पर्श पुद्गल परिणाम १४. मृदु स्पर्श पुद्गल परिणाम १५. गुरु स्पर्श पुद्गल परिणाम १६. लघु स्पर्श पुद्गल परिणाम १७. शीत स्पर्श पुद्गल परिणाम १८. उष्ण स्पर्श पुद्गल परिणाम १९. स्निग्ध स्पर्श पुद्गल परिणाम २०. रूक्ष स्पर्श पुद्गल परिणाम २१. अगुरुलघु स्पर्श पुद्गल परिणाम २२. गुरु लघु स्पर्श पुद्गल परिणाम। इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति बाईस पल्योपम की कही गई है। तमःप्रभा नामक छठी नरक में नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागरोपम की कही गई है। महातमः प्रभा नामक सातवीं नरक में नैरयिकों की जघन्य स्थिति बाईस सागरोपम की कही गई है। असुरकुमार देवों में कितनेक देवों की स्थिति बाईस पल्योपम की कही गई है। अच्युत नामक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बारहवें देवलोक में देवों की उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागरोपम की कही गई है। नव ग्रैवेयक में सब से नीचे प्रथम ग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति बाईस सागरोपम की कही गई है। प्रथम ग्रैवेयक के अन्तर्गत महित, विशोधित, विमल, प्रभास, वनमाल, अच्युतावतंसक, इन छह विमानों में जो देव देव रूप से उत्पन्न होते हैं उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागरोपम की कही गई है। वे देव बाईस पखवाड़ों से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को बाईस हजार वर्षों से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो बाईस भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ॥ २२ ॥

विवेचन - कष्ट, आपत्ति आदि आ जाने पर भी संयम में स्थिर रहने के लिये तथा कर्मों की निर्जरा के लिये जो शारीरिक अथवा मानसिक कष्ट साधु-साध्वियों को समभाव पूर्वक सहन करना चाहिये। उन्हें 'परीषह' कहते हैं। ये बाईस हैं, जो ऊपर बताये गये हैं। भूख, प्यास, ठण्ड, गर्मी, डांस मच्छर आदि से होने वाले कष्ट को समभाव पूर्वक सहन करना चाहिये।

अचेल परीषह के विषय में श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदाय में विशेष मतभेद है। अम्बर का अर्थ है वस्त्र - जिनके साधु साध्वी सिर्फ सफेद रंग के कपड़े रखते हैं (रंग बिरंगे नहीं) इसलिये उनको श्वेताम्बर कहते हैं। जो दिशाओं को ही कपड़ा मानते हैं वस्त्रादि कुछ नहीं रखते हैं, एकदम नग्न रहते हैं। उन्हें दिगम्बर (दिक्-दिशा+अम्बर-कपड़ा) कहते हैं। वस्त्र अथवा वस्त्र का एक सूत भी ग्रहण करने वाले को यह सम्प्रदाय मुनि नहीं मानती। नग्नता में ही मुक्ति मानती है। सवस्त्र को मुक्ति नहीं मानती । नवांगी टीकाकार अभयदेवसूरि ने अचेल परीषह का अर्थ इस प्रकार किया है -

"चेलानां - वस्त्राणां बहुधननवीनावदातसुप्रमाणानां सर्वेषां वाऽभावः अचेलत्वमित्यर्थः"

अर्थात् बहुमूल्य, नवीन, साफ-सूथरा तथा बहुत परिमाण वाले वस्त्रों का अभाव अचेलत्व कहलाता है। अर्थात् अल्प मूल्य, जीर्ण और मर्यादित वस्त्र रखना अचेल परीषह है। दूसरे परीषहों का अर्थ भावार्थ में कर दिया गया है।

इस विषय में वाचकमुख्य उमास्वाति ने तत्त्वार्थ सूत्र के ९ वें अध्याय में इस प्रकार कहा है -

मार्गाऽच्यवननिर्जरार्थं परिसोढव्याः परीषहाः ॥ ८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूक्ष्म सम्परायच्छद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ॥ १० ॥

एकादश जिने ॥ ११ ॥

बादर सम्पराये सर्वे ॥ १२ ॥

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥ १३ ॥

दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ ॥ १४ ॥

चारित्र मोहे नाग्न्यारतिस्त्री निषद्याक्रोश याचनासत्कार पुरस्काराः ॥ १५ ॥

वेदनीये शेषाः ॥ १६ ॥

एकादयो भाज्या युगपदैकोनविंशतेः ॥ १७ ॥

अर्थ - साधु मार्ग से च्युत न होने अर्थात् साधु समाचारी में स्थिर रहने के लिये और कर्म बन्धन के विनाश के लिये जो समभाव पूर्वक सहन करने के योग्य हैं, उन्हें परीषह कहते हैं। चार कर्मों के उदय से ये सारे परीषह होते हैं। ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से - बीसवां (प्रज्ञा परीषह) और इक्कीस वाँ 'अज्ञान परीषह' ये दो परीषह होते हैं। वेदनीय कर्म के उदय से - क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंश- मशक (१से ५ तक) चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श और जल्लमैल (९, ११, १३, १६, १७, १८) ये ग्यारह परीषह होते हैं। दर्शन मोहनीय कर्म के उदय से २२ वाँ दर्शन परीषह होता है और चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से अचेल, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना, सत्कार-पुरस्कार (६, ७, ८, १०, १२, १४ और १९) ये सात परीषह होते हैं। अर्थात् ये आठ परीषह मोहनीय कर्म के उदय से होते हैं। अन्तराय कर्म के उदय से पन्द्रहवाँ अलाभ परीषह होता है।

ये सब परीषह साधु साध्वी के होते हैं। जैसा कि - उत्तराध्ययन सूत्र के दूसरे अध्ययन में कहा है। इसलिये छठे गुणस्थान से लेकर नवमें गुणस्थान तक सभी परीषह होते हैं। दसवें, ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म के उदय से होने वाले आठ परीषहों को छोड़ कर बाकी १४ परीषह होते हैं। तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में वेदनीय कर्म के उदय से होने वाले क्षुधा, पिपासा आदि ग्यारह परीषह होते हैं।

दिगम्बर सम्प्रदाय की मान्यता है कि - केवली कवलाहार नहीं करते अर्थात् केवली को भूख प्यास नहीं लगती है किन्तु यह मान्यता आगमानुकूल नहीं है। श्वेताम्बर परम्परा केवली के कवलाहार मानती है। इसलिये दिगम्बर और श्वेताम्बर में तीन बातों का मुख्य रूप से फर्क है यथा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. केवली कवलाहार (केवली भुक्ति)

२. स्त्री मुक्ति।

३. सवस्त्र मुक्ति।

दिगम्बर सम्प्रदाय इन तीन बातों को नहीं मानती है। श्वेताम्बर सम्प्रदाएं इन तीन बातों को मानती है।

इन बावीस परीषहों में से कुछ परीषह परस्पर विरोधी हैं। जैसे शीत और उष्ण। अर्थात् शीत परीषह के होने पर उष्ण परीषह नहीं होता है और उष्ण परीषह के होने पर शीत परीषह नहीं होता है।

इसी प्रकार चर्या (विहार के कारण होने वाला कष्ट) और निषद्या (अधिक बैठे रहने से होने वाला कष्ट) ये दोनों एक साथ नहीं हो सकते। इसलिये एक जीव में एक साथ अधिक से अधिक २० परीषह हो सकते हैं। तत्त्वार्थ सूत्र में तो बताया है कि - चर्या, शय्या और निषद्या इन तीनों में से भी एक समय में एक ही परीषह संभव है। इसलिये एक जीव में एक साथ १९ परीषह ही हो सकते हैं।

कुछ की यह मान्यता है कि - पहले गुणस्थान से लेकर नौवें गुणस्थान तक बाईस ही परीषह हो सकते हैं। किन्तु यह मान्यता आगमानुकूल नहीं है। क्योंकि ऊपर यह बताया जा चुका है कि - ये परीषह साधु साध्वियों के ही होते हैं। उत्तराध्ययन सूत्र के दूसरे अध्ययन में बाईस परीषहों का विस्तृत वर्णन है। जैन संस्कृति रक्षक संघ सैलाना (ब्यावर) से प्रकाशित उत्तराध्ययन सूत्र में हिन्दी अनुवाद और विवेचन में बाईस परीषहों का अच्छा खुलासा किया गया है।

श्री मधुकर जी वाले समवायाङ्ग में तथा तत्त्वार्थ सूत्र के ९ वें अध्याय में बाईसवें परीषह का नाम ''अदर्शन'' परीषह दिया है। तत्त्वार्थ सूत्र में इसका अर्थ इस प्रकार किया है - ''सूक्ष्म और अतीन्द्रिय पदार्थों का दर्शन न होने से स्वीकृत त्याग निष्फल प्रतीत होने पर विवेक पूर्वक श्रद्धा रखना और प्रसन्न रहना।''

किन्तु पूज्य आचार्य श्री घासीलालजी म. सा. के समवायाङ्ग में तथा नवाङ्गी टीकाकार अभयदेव कृत समवायाङ्ग में और उत्तराध्ययन सूत्र के दूसरे अध्ययन में दर्शन परीषह दिया है तथा इसका दूसरा नाम सम्मत्त परीषह भी दिया है। इसलिये आगम पाठ के अनुसार ये दोनों नाम उचित हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तेईसवां समवाय

तेवीसं सुयगडज्झयणा पण्णत्ता तंजहा - समए, वेयालिए, उवसग्ग परिण्णा, थी परिण्णा, णरयविभत्ती, महावीर थुई, कुसील परिभासिए, वीरिए, धम्मे, समाही, मग्गे, समोसरणे, आहत्तहिए, गंथे, जमईए, गाहा, पुंडरीए, किरियठाणा, आहारपरिण्णा अपच्चक्खाण किरिया, अणगारसुयं, अद्दइज्जं, णालंदइज्जं । जंबूद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे णं ओसप्पिणीए तेवीसाए जिणाणं सूरुग्गमणमुहुत्तंसि केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे । जंबूद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे णं ओसप्पिणीए तेवीसं तित्थयरा पुव्वभवे एक्कारसंगिणो होत्था तंजहा - अजिय संभव अभिणंदण सुमई जाव पासो वद्धमाणो य। उसभे णं अरहा कोसलिए चोद्दसपुव्वी होत्था। जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे णं ओसप्पिणीए तेवीसं तित्थयरा पुव्वभवे मंडलिय रायाणो होत्था तंजहा-अजिय संभव अभिणंदण जाव पासो वद्धमाणो य। उसभे णं अरहा कोसलिए पुव्वभवे चक्कवट्टी होत्था। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं तेवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं तेवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं तेवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं तेवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। हेट्ठिम मज्झिम गेविज्जगाणं देवाणं जहण्णेणं तेवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा हेट्ठिम हेट्ठिम गेविज्जय विमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं तेवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा तेवीसाए अद्धमासाणं (अद्धमासेहिं) आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा। तेसिणं देवाणं तेवीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे तेवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ २३ ॥

कठिन शब्दार्थ - तेवीसं - तेईस, **सुयगडज्झयणा** - सूयगडांग (सूत्रकृताङ्ग) सूत्र के अध्ययन, **वेयालिए** - वैतालीय, **उवसग्गपरिण्णा** - उपसर्ग परिज्ञा, **थी परिण्णा** - स्त्री परिज्ञा, **णरयविभत्ती** - नरक विभक्ति, **महावीर थुई** - महावीर स्तुति, **कुसीलपरिभासिए** - कुशील परिभाषा, **आहत्तहिए** - याथातथ्य, **जमईए** - यमक, **किरियठाणा** - क्रिया स्थान,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अद्दइज्जं - आर्द्रकीय, **णालंदइज्जं** - नालन्दीय, **सूरुग्गमणमुहुत्तंसि** - सूर्योदय के समय, **एक्कारसंगिणो** - ग्यारह अंग के पारगामी, **कोसलिए** - कौशल देश में उत्पन्न, **मंडलियरायाणो** - माण्डलिक राजा, **हेट्ठिम मज्झिम गेविज्जगाणं** - अधस्तन मध्यम यानी दूसरे ग्रैवेयक विमान में देवों की, **हेट्ठिम हेट्ठिम गेविज्जविमाणेसु** - अधस्तन अधस्तन यानी पहले ग्रैवेयक के विमानों में ।

भावार्थ - सूयगडांग (सूत्रकृताङ्ग) सूत्र के दो श्रुतस्कन्ध हैं। पहले श्रुतस्कन्ध में सोलह अध्ययन हैं और दूसरे श्रुतस्कन्ध में सात अध्ययन हैं। दोनों श्रुतस्कन्धों को मिला कर कुल तेईस अध्ययन हैं उनके नाम इस प्रकार हैं - १. समय २. वैतालीय ३. उपसर्ग परिज्ञा ४. स्त्रीपरिज्ञा ५. नरक विभक्ति ६. महावीर स्तुति ७. कुशील परिभाषा ८. वीर्य ९. धर्म १०. समाधि ११. मोक्षमार्ग १२. समवसरण १३. याथातथ्य १४. ग्रन्थ १५. यमक १६. गाथा १७. पुण्डरीक १८. क्रिया स्थान १९. आहार परिज्ञा २०. अप्रत्याख्यान क्रिया २१. अनगारश्रुत २२. आर्द्रक २३. नालन्दीय। इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में भगवान् ऋषभदेव स्वामी से लेकर भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी तक तेईस तीर्थङ्करों को सूर्योदय के समय केवलज्ञान केवल दर्शन उत्पन्न हुआ था और भगवान् महावीर स्वामी को चौथे पहर में उत्पन्न हुआ था। इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में तेईस तीर्थङ्कर पूर्वभव में ग्यारह अङ्ग के पारगामी थे। यथा - अजित नाथ, सम्भव नाथ, अभिनन्दन स्वामी, सुमतिनाथ स्वामी यावत् पार्श्वनाथ स्वामी और वर्द्धमान स्वामी। कौशल देश में उत्पन्न भगवान् ऋषभदेव स्वामी पूर्व भव में चौदह पूर्व के धारक थे। इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में तेईस तीर्थङ्कर पूर्वभव में माण्डलिक राजा थे। यथा - अजितनाथ सम्भवनाथ अभिनन्दन स्वामी यावत् पार्श्वनाथ स्वामी और वर्द्धमान स्वामी। कौशल में उत्पन्न भगवान् ऋषभदेव स्वामी पूर्वभव में चक्रवर्ती थे। इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति तेईस पल्योपम की कही गई है। महातम प्रभा नामक सातवीं नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति तेईस सागरोपम की कही गई है। असुरकुमार देवों में कितनेक देवों की स्थिति तेईस पल्योपम की कही गई है। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति तेईस पल्योपम की कही गई है। अधस्तन मध्यम यानी दूसरे ग्रैवेयक में देवों की जघन्य स्थिति तेईस सागरोपम की कही गई है। जो देव अधस्तनअधस्तन यानी पहले ग्रैवेयक के विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं। उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति तेईस सागरोपम की कही गई है। वे देव तेईस पखवाड़ों से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को तेईस हजार वर्षों से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो तेईस भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ॥ २३ ॥

विवेचन - तेईस तीर्थङ्करों को सूर्योदय के समय केवलज्ञान हुआ। ऐसा बतलाया गया है। प्रश्न होता है - भगवान् मल्लिनाथ को केवलज्ञान कब हुआ? भगवान् मल्लिनाथ का वर्णन ज्ञातासूत्र के आठवें अध्ययन में हैं। पहले समय के विभाग को जान लेना आवश्यक है। दिन के और रात्रि के चार-चार प्रहर होते हैं। किन्तु दूसरी जगह दिन के दो विभाग और रात्रि के भी दो विभाग किये हैं जिनको क्रमशः पूर्वाह्न और अपराह्न तथा पूर्वरात्र और अपररात्र कहते हैं। भगवान् मल्लिनाथ की दीक्षा का समय **'पुव्वण्हकाल समयंसि'** लिखा है - जिसका अर्थ 'दिन के पहले भाग में।' जिस दिन मल्लिनाथ भगवान् की दीक्षा हुई उसी दिन उन्हें केवलज्ञान भी हुआ। केवलज्ञान का समय लिखा है - **"पुव्वावरण्हकाल समयंसि"** पूर्वाह्न का अर्थ है दिन का पूर्वभाग और अपराह्न (दिन का पिछला भाग)। तात्पर्य यह निकला कि - दिन के पूर्व भाग और पिछले भाग दोनों का सन्धि काल (मिश्रण काल) में अर्थात् दिन के बारह और एक बजे के बीच के समय में केवलज्ञान हुआ। इसलिये शास्त्रकार ने उसको सूर्य उद्‌गमन काल कह दिया है। इसलिये परस्पर किसी प्रकार का विरोध नहीं है।

भगवान् ऋषभदेव का जीव पूर्वभव में जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में पुंडरीकिणी नगरी में वज्रसेन राजा के पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ था। उनका नाम वज्रनाभ रखा गया। वज्रसेन तीर्थङ्कर थे इसलिये यथा समय उन्होंने दीक्षा लेकर धर्म तीर्थ प्रवर्ताया। वज्रनाभ राजा बने। उनके यहाँ चक्र रत्न की उत्पत्ति हुई इसलिये छह खण्ड साध कर चक्रवर्ती बने। फिर चक्रवर्ती पद को छोड़कर दीक्षा ली । बीस बोलों की उत्कृष्ट आराधना करके तीर्थङ्कर गोत्र बान्धा। श्रुतज्ञान की भी उत्कृष्ट आराधना की अतएव वे १४ पूर्वधारी बने। वहाँ से सर्वार्थसिद्ध में जाकर, वहाँ से च्यव कर यहाँ भरत क्षेत्र में प्रथम तीर्थङ्कर बने। शेष तेईस तीर्थङ्कर पूर्व भव में माण्डलिक राजा थे। दीक्षा लेकर ग्यारह अङ्ग के पाठी बने। निष्कर्ष यह है कि ऋषभदेव का जीव पूर्व भव में चौदह पूर्वी था शेष २३ तीर्थङ्करों के जीव ११ अंगी थे।

नवग्रैवेयक विमान के तीन विभाग करने पर तीन त्रिक कहलाता है। उनके नाम इस प्रकार हैं -

पहली त्रिक के तीन विभाग - १. अधस्तन अधस्तन २. अधस्तन मध्यम ३. अधस्तन उपरितन ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दूसरी त्रिक के तीन विभाग यथा - ४. मध्यम अधस्तन ५. मध्यम-मध्यम ६. मध्यम उपरितन ।

तीसरी त्रिक के तीन विभाग - ७. उपरितन अधस्तन ८. उपरितन मध्यम ९. उपरितन उपरितन ।

लोक का आकार नाचते हुए भोपे का बतलाया गया है। पुरुष की गर्दन को ग्रीवा कहते हैं। ये ९ विमान ग्रीवा (गर्दन) के स्थान पर आये हुए हैं। इसलिये इनको ग्रैवेयक कहते हैं। ये एक घड़े के ऊपर दूसरे घड़े की तरह ऊपराऊपरि आये हुए हैं।

चौबीसवां समवाय

चउव्वीसं देवाहिदेवा पण्णत्ता तंजहा - उसभ अजिय संभव अभिणंदण सुमइ पउमप्पह सुपास चंदप्पह सुविहि सीयल सिज्जंस वासुपुज्ज विमल अणंत धम्म संति कुंथु अर मल्लि मुणिसुव्वय णमि णेमी पास वद्धमाणा। चुल्लहिमवंत सिहरीणं वासहर पव्वयाणं जीवाओ चउव्वीसं चउव्वीसं जोयण सहस्साइं णवबत्तीसे जोयणसए एगं अट्ठतीसइभागं जोयणस्स किंचि विसेसाहियाओ आयामेणं पण्णत्ताओ। चउवीसं देव ठाणा सइंदया पण्णत्ता, सेसा अहमिंदा अणिंदा अपुरोहिया। उत्तरायणगए णं सूरिए चउवीसंगुलिए पोरिसीछायं णिव्वत्तइत्ताणं णियट्टइ। गंगा सिंधूओ णं महाणईओ पवाहे साइरेगेणं चउवीसं कोसे वित्थारेणं पण्णत्ताओ। रत्तारत्तवईओ महाणईओ पवाहे साइरेगेणं चउवीसं कोसे वित्थारेणं पण्णत्ताओ। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं चउवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहे सत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं चउवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं चउवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं चउवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। हेट्ठिम उवरिमगेविज्जयाणं देवाणं जहण्णेणं चउव्वीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा हेट्ठिम मज्झिम गेविज्जय विमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं चउवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा चउवीसाए अद्धमासाणं (अद्धमासेहिं) आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा। तेसिणं देवाणं चउवीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समुप्पज्जइ। संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे चउवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ २४ ॥

कठिन शब्दार्थ - देवाहिदेवा - देवाधिदेव, **जीवाओ** - जीवाएं, **किंचि** - कुछ, **विसेसाहियाओ-विशेषाधिक** - कुछ विशेष अधिक, **देवठाणा** - देव स्थान, **सइंदया** - इन्द्र सहित, **अणिंदा** - अणिंद्रा-इन्द्र रहित, **अपुरोहिया** - अपुरोहित-पुरोहित रहित, **अहमिंदा** - अहमिन्द्र, **उत्तरायणगए सूरिए** - उत्तरायण में गया हुआ सूर्य, **पोरिसी छायं** - पोरिसी छाया को, **णिव्वत्तइत्ता** - निष्पन्न करके, **णियट्टइ** - वापिस लौट जाता है, **रत्तारत्तवईओ** - रक्ता और रक्तवती, **वित्थारेणं** - विस्तार, **हेट्ठिम उवरिम** - अधस्तन, **उपरितन** - ऊपर का अर्थात् तीसरा ग्रैवेयक, **हेट्ठिम मज्झिम** - अधस्तन मध्यम-दूसरा ग्रैवेयक।

भावार्थ - देवाधिदेव यानी देवों के भी देव अर्थात् इन्द्रों के भी पूजनीय तीर्थङ्कर भगवान् चौबीस कहे गये हैं। उनके नाम इस प्रकार है - १. श्री ऋषभदेव स्वामी २. श्री अजितनाथ स्वामी ३. श्री सम्भवनाथ स्वामी ४. श्री अभिनन्दन स्वामी ५. श्री सुमतिनाथ स्वामी ६. श्री पद्मप्रभ स्वामी ७. श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी ८. श्री चन्द्रप्रभ स्वामी ९. श्री सुविधिनाथ स्वामी १०. श्री शीतलनाथ स्वामी ११. श्री श्रेयांसनाथ स्वामी १२. श्री वासुपूज्य स्वामी १३. श्री विमलनाथ स्वामी १४. श्री अनन्तनाथ स्वामी १५. श्री धर्मनाथ स्वामी १६. श्री शान्तिनाथ स्वामी १७. श्री कुन्थुनाथ स्वामी १८. श्री अरनाथ स्वामी १९. श्री मल्लिनाथ स्वामी २०. श्री मुनिसुव्रत स्वामी २१. श्री नमिनाथ स्वामी २२. श्री नेमिनाथ स्वामी २३. श्री पार्श्वनाथ स्वामी २४. श्री वर्द्धमान स्वामी। मेरु पर्वत से दक्षिण दिशा में भरत क्षेत्र की मर्यादा करने वाला चुल्लहिमवंत पर्वत और मेरु से उत्तर दिशा में ऐरवत क्षेत्र की मर्यादा करने वाला शिखरी पर्वत है, उन दोनों पर्वतों की जीवाएँ २४९३२ $\frac{१}{३८}$ चौबीस हजार नौ सौ बत्तीस और एक योजन का अड़तीसवाँ भाग कुछ अधिक लम्बी कही गई है। १० भवनपति, ८ वाणव्यन्तर, ५ ज्योतिषी और १ वैमानिक, ये चौबीस देवस्थान इन्द्र सहित कहे गये हैं अर्थात् इनमें इन्द्र होते हैं। बाकी सब देवस्थान यानी नव ग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमानों में इन्द्र और पुरोहित नहीं होते हैं अर्थात् उनमें स्वामी सेवक का भाव नहीं होता है। वे सब अहमिन्द्र होते हैं। उत्तरायण में गया हुआ सूर्य अर्थात् सर्वाभ्यन्तर मण्डल में गया हुआ सूर्य कर्क संक्रान्ति के दिन पोरिसी छाया को चौबीस अङ्गुल करके वापिस लौट जाता है अर्थात् फिर द्वितीय मण्डल में आ जाता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। गङ्गा और सिन्धु ये दो महा नदियों का प्रवाह यानी जहाँ से निकलती हैं वहाँ चौबीस कोस से कुछ अधिक विस्तार है। ऐरावत क्षेत्र में बहने वाली रक्ता और रक्तवती महानदियों का प्रवाह यानी जहाँ से निकलती है वहाँ चौबीस कोस से कुछ अधिक विस्तार कहा गया है। इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति चौबीस पल्योपम की कही गई है। महातमःप्रभा नामक सातवीं नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति चौबीस सागरोपम की कही गई है। असुरकुमार देवों में कितनेक देवों की स्थिति चौबीस पल्योपम की कही गई है। सौधर्म और ईशान नामक पहले दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति चौबीस पल्योपम की कही गई है। अधस्तन उपरितन अर्थात् तीसरे ग्रैवेयक वाले देवों की जघन्य स्थिति चौबीस सागरोपम की कही गई है। जो देव अधस्तन मध्यम अर्थात् दूसरे ग्रैवेयक विमानों में देव रूप से उत्पन्न होते हैं उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति चौबीस सागरोपम की कही गई है। वे देव चौबीस पखवाड़ों से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को चौबीस हजार वर्षों से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। कितनेक भव सिद्धिक जीव ऐसे हैं, जो चौबीस भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ॥ २४ ॥

विवेचन - यहाँ समवायाङ्ग सूत्र में तथा भगवती सूत्र के १२ वें शतक के नौवें उद्देशक में तीर्थङ्कर भगवान् के लिए "देवाधिदेव" शब्द का प्रयोग किया है। इस शब्द का अर्थ टीकाकार ने इस प्रकार किया है -

"देवानाम् - इन्द्रादीनामधिका देवाः पूज्यत्वात् देवाधिदेवा इति"

अर्थ - देवों के इन्द्रों से भी पूज्य होने के कारण तीर्थङ्कर भगवन्तों को देवाधिदेव कहते हैं।

२. जम्बूद्वीप, लवण समुद्र आदि गोल क्षेत्र हैं। उनके वर्षधर पर्वतों की सीधी और सरल सीमा को "जीवा" कहते हैं। तात्पर्य यह है कि - धनुष के दोनों किनारों को बांध कर रखने वाली डोरी की तरह जो हो उसको जीवा कहते हैं। चूलहिमवान और शिखरी इन दो वर्षधर पर्वतों की जीवा का परिमाण २४९३२ १/३८ से कुछ विशेषाधिक है।

दस भवनपति, आठ वाणव्यन्तर, पांच ज्योतिषी, एक कल्पोपन्न वैमानिक, ये २४ स्थान इन्द्र सहित हैं। इसीलिये पुरोहित सहित भी हैं। नव ग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमान ये १४ देव स्थान इन्द्र और पुरोहित से रहित हैं। क्योंकि ये सब अहमिन्द्र कहलाते हैं। इसलिये इनमें छोटे बड़ों का भेद नहीं है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्य के १८४ मण्डल हैं। जब सूर्य उत्तरायण होता है तब सबसे आभ्यन्तर मण्डल में प्रविष्ट सूर्य अर्थात् कर्क संक्राति के दिन २४ अङ्गुल की पोरिसी छाया होती है फिर सूर्य आभ्यन्तर मण्डल से दूसरे मण्डल में आ जाता है। यही बात उत्तराध्ययन सूत्र के २६वें अध्ययन में भी कही है। "**आसाढे मासे दुपया**" अर्थात् आषाढ मास में दो पैर छाया प्रमाण की पोरिसी होती है।

गङ्गा नदी और सिन्धु नदी तथा रक्ता और रक्तवती नदी का प्रवाह चौबीस कोस से कुछ अधिक है। यहाँ पर प्रवाह का अर्थ यह समझना चाहिये कि जिस पद्म द्रह आदि से नदियाँ निकलती है वहाँ चौबीस कोस से कुछ अधिक विस्तार है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में तो इनका विस्तार पच्चीस कोस लिखा है। उसको पाठान्तर या मतान्तर समझना चाहिये ।

पच्चीसवां समवाय

पुरिम पच्छिमगाणं तित्थयराणं पंचजामस्स पणवीसं भावणाओ पण्णत्ताओ तंजहा - ईरियासमिई, मणगुत्ती, वयगुत्ती, आलोयभायण-भोयणं, आदाण-भंडमत्त-णिक्खवणा समिई ५, अणुवीइभासणया, कोहविवेगे, लोभविवेगे, भयविवेगे, हासविवेगे ५, उग्गहअणुण्णवणया, उग्गहसीमजाणणया, सयमेव उग्गहं अणुगिण्हणया, साहम्मिय उग्गहं अणुण्णविय परिभुंजणया, साहारण भत्तपाणं अणुण्णविय पडिभुंजणया ५, इत्थी-पसुपंडगसंसत्तग सयणासणवज्जणया, इत्थीकहा विवज्जणया इत्थीणं इंदियाणमालोयण वज्जणया पुव्वरयपुव्वकीलियाणं अणणुसरणया पणीताहार विवज्जणया, सोइंदिय रागोवरई चक्खुइंदिय (चक्खिंदिय) रागोवरई घाणिंदिय रागोवरई, जिब्भिंदिय रागोवरई, फासिंदिय रागोवरई ५। मल्ली णं अरहा पणवीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। सव्वे वि दीहवेयड्ढ पव्वया पणवीसं जोयणाणि उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता, पणवीसं पणवीसं गाउयाणि उव्वेहेणं पण्णत्ता। दोच्चाए पुढवीए पणवीसं णिरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता। आयारस्स णं भगवओ सचूलियागस्स पणवीसं अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा-

सत्थपरिण्णा लोगविजओ, सीयोसणीयं सम्मत्तं।
आवंति धूयविमोह, उवहाणसुयं महापरिण्णा॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पिंडेसण सिज्जिरिया,भासज्झयणा य वत्थ पाएसा।
उग्गहपडिमा सत्तिक्क सत्तया भावण विमुत्ती॥
णिसीहज्झयणं पंचवीसइमं।

मिच्छादिट्ठिविगलिंदिए णं अपज्जत्तए णं संकिलिट्ठपरिणामे णामस्स कम्मस्स पणवीसं उत्तरपयडीओ णिबंधइ तंजहा - तिरिय गइणामं विगलिंदिय जाइणामं ओरालिय सरीरणामं तेयग सरीरणामं कम्मग सरीरणामं हुंडगसंठाणणामं ओरालिय सरीरंगोवंगणामं, छेवट्ठ संघयणणामं वण्णणामं गंधणामं रसणामं फासणामं तिरियाणुपुव्विणामं अगुरुलहुणामं उवघायणामं तसणामं बायरणामं अपज्जत्तयणामं पत्तेयसरीरणामं अथिरणामं असुभणामं दुभगणामं अणादेज्ज णामं अजसोकित्तीणामं णिम्माणणामं। गंगासिंधूओ णं महाणईओ पणवीसं गाऊयाणि पुहुत्तेणं दुहओ घडमुह पवित्तिएणं मुत्तावली हार संठिएणं पवाएणं पडंति । रत्तारत्तवईओ णं महाणईओ पणवीसं गाउयाणि पुहुत्तेणं मकर मुह पवित्तिएणं मुत्तावली हार संठिएणं पवाएणं पडंति। लोगबिंदुसारस्स णं पुव्वस्स पणवीसं वत्थू पण्णत्ता। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं पणवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहे सत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं पणवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं पणवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं पणवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। मज्झिम हेट्ठिम गेविज्जयाणं देवाणं जहण्णेणं पणवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा हेट्ठिम उवरिमगेविज्जग विमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं पणवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ते णं देवा पणवीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा। तेसिणं देवाणं पणवीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे पणवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्व दुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ २५ ॥

कठिन शब्दार्थ - पुरिमपच्छिमगाणं तित्थयराणं - प्रथम तीर्थङ्कर और अंतिम तीर्थङ्कर के शासन में, **पंचजामस्स** - पंचयाम - पांच महाव्रतों की, **आलोयभायणभोयणं** - आलोकित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भाजन भोजन अर्थात् चौड़े मुंह वाले पात्र में भोजन, **अणुवीइ भासणया** - अनुवीचि, **भाषणता** - विचार कर बोलना, **कोह-विवेगे** - क्रोधविवेक - क्रोधत्याग, **हासविवेगे** - हास्यविवेक-हास्य त्याग, **उग्गहअणुण्णवणया** - अवग्रह - अनुज्ञापनता - मकान आदि में ठहरने के लिये उसके स्वामी की आज्ञा लेना, **उग्गहसीम जाणणया** - अवग्रह सीमा ज्ञापनता - उपाश्रय की सीमा खोल कर आज्ञा लेना, **साहम्मिय उग्गहं अणुण्णविय परिभुंजणया** - साधर्मिकावग्रह अनुज्ञाप्य परिभोजनता - संभोगी साधुओ को उपाश्रय की सीमा बतला कर उसे भोगना अर्थात् काम में लेना, **साहारण भत्तपाणं** - साधारण भक्तपान-लाये हुए आहार पानी को, **अणुण्णवियपरिभुंजणया** - गुरु महाराज या अपने से बड़े साधु को दिखला कर तथा उनकी आज्ञा लेकर भोगना, **इत्थीपसु-पंडगसंसत्तग सयणासण वज्जणया** - स्त्री पशु, नपुंसक युक्त शयन और आसन का त्याग करना, **इत्थी कहा विवज्जणया** - स्त्री कथा विवर्जनता-स्त्री कथा का त्याग, **इत्थीणं इंदियाणमालोयण वज्जणया** - स्त्रियों के नाक कान आदि इन्द्रियों को विकार दृष्टि से नहीं देखना, **पुव्वरयपुव्वकीलियाणं अणणुसरणया** - पूर्वरत पूर्वक्रीडित अननुस्मरणता-पूर्व में भोगे हुए काम भोगों को स्मरण न करना, **पणीयाहार विवज्जणया** - प्रणीताहारविवर्जनता - प्रणीत आहार का त्याग करना, **सोइंदिय रागोवरई** - श्रोत्रेन्द्रिय रागोपरति - श्रोत्रेन्द्रिय के विषयों में राग न करना, **दीहवेयड्ढ पव्वया** - दीर्घ वैताढ्य पर्वत, **उव्वेहेणं** - उद्वेध-ऊंडा (गहरा) **सत्थपरिण्णा** - शस्त्र परिज्ञा, **लोगविजओ** - लोक विजय, **सीयोसणीयं** - शीतोष्णीय, **सम्मत्तं** - सम्यक्त्व, **विमोह** - विमोक्ष, **उवहाणसुयं** - उपधान श्रुत, **महापरिण्णा** - महापरिज्ञा, **सिज्ज** - शय्या, **पाएसा** - पात्रैषणा, **उग्गहपडिमा** - अवग्रह प्रतिमा, **सत्तिक्क सत्तया** - सात सत्तिक्कया, **संकिलिट्ठ परिणामे** - संक्लिष्ट परिणाम वाला, **घडमुहपवित्तिएणं**-घटमुख प्रवृत्त - घडे के मुख के आकार, **मुत्तावलिहार संठिएणं** - मुक्तावलीहार संस्थित - मुक्तावली हार के संस्थान वाले, **पवाएण** - प्रपात से, **पडंति** - गिरती हैं, **मकरमुहपवित्तिएणं**-मकरमुख प्रवृत्त-मकर के मुखाकार वाले।

भावार्थ - भरत क्षेत्र और ऐरवत क्षेत्र के उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थङ्कर और अन्तिम तीर्थङ्कर के शासन में पांच महाव्रतों की पच्चीस भावनाएं कही गई हैं, वे ये हैं - १. ईर्यासमिति - देख कर यतना पूर्वक गमनागमनादि क्रिया करना २. मनोगुप्ति - मन की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना ३. वचनगुप्ति - वचन की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना ४. आलोकित भाजन भोजन - सदा विवेक पूर्वक देख कर चौड़े मुख वाले पात्र में आहार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पानी ग्रहण करना और प्रकाश वाले स्थान में बैठ कर भोजन करना। ५. आदान भंड मात्र निक्षेपणा समिति - यतना पूर्वक भंडोपकरण लेना और रखना। ये प्राणातिपात विरमण रूप पहले महाव्रत की पांच भावनाएँ हैं। ६. अनुवीचि भाषणता - विचार कर बोलना। ७. क्रोध विवेक - क्रोधत्याग - क्रोधयुक्त वचन न बोलना ८. लोभ विवेक - लोभत्याग - लोभयुक्त वचन न बोलना। ९. भय विवेक - भय का त्याग । १०. हास्य विवेक - हास्य का त्याग, ये पांच मृषावाद विरमण रूप दूसरे महाव्रत की पांच भावनाएँ हैं। ११. मकान आदि में ठहरने के लिए उसके स्वामी की आज्ञा लेना। १२. उपाश्रय की सीमा खोल कर आज्ञा लेना। १३. उपाश्रय की सीमा को स्वयं जान कर फिर उसमें रहना। १४. सम्भोगी साधुओं को उपाश्रय की सीमा बतला कर उसे भोगना अर्थात् काम में लेना। १५. लाये हुए आहार पानी को गुरु महाराज या अपने से बड़े साधु को दिखला कर और उनकी आज्ञा लेकर भोगना। ये अदत्तादान विरमण रूप तीसरे महाव्रत की पांच भावनाएं हैं। १६. स्त्री, पशु, नपुंसक युक्त उपाश्रय में नहीं ठहरना। १७. स्त्री कथा न करना। १८. स्त्रियों के नाक, कान आदि इन्द्रियों को विकार दृष्टि से नहीं देखना। १९. पहले भोगे हुए कामभोगों को स्मरण न करना २०. अति सरस और गरिष्ठ आहार का त्याग करना। ये मैथुन विरमण रूप चौथे महाव्रत की पांच भावनाएँ हैं। २१. श्रोत्रेन्द्रिय के विषय मधुर शब्दों में राग न करना। २२. चक्षु इन्द्रिय के विषय सुन्दर रूप आदि में राग न करना २३. घ्राणेन्द्रिय के विषय सुगन्धित पदार्थों में राग न करना २४. जिह्वा इन्द्रियं के विषय मनोज्ञ रस में राग न करना। २५. स्पर्शनेन्द्रिय के विषय मनोज्ञ स्पर्श में राग न करना। ये परिग्रह विरमण रूप पांचवें महाव्रत की पांच भावनाएं हैं। इस प्रकार इन पांचों महाव्रतों की पच्चीस भावनाएँ होती हैं। उन्नीसवें तीर्थङ्कर भगवान् मल्लिनाथ के शरीर की ऊँचाई पच्चीस धनुष थी। सब दीर्घ वैताढ्य पर्वत पच्चीस पच्चीस योजन के ऊंचे और पच्चीस पच्चीस गाऊ-कोस के ऊंडे कहे गये हैं। शर्कराप्रभा नामक दूसरी नरक में पच्चीस लाख नरकावास कहे गये हैं। चूलिका सहित आचारांग सूत्र के पच्चीस अध्ययन कहे गये हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं - १. शस्त्र परिज्ञा २. लोकविजय ३. शीतोष्णीय ४. सम्यक्त्व ५. आवंती ६. धूत ७. विमोक्ष ९. उपधान श्रुत १०. महा परिज्ञा ११. पिण्डैषणा १२. शय्या १३. ईर्या १४. भाषाध्ययन १५. पात्रैषणा १६. अवग्रह प्रतिमा १७-२३. सात सत्तिक्कया २४. भावना २५. विमुक्ति । निशीथ अध्ययन पच्चीसवां है। संक्लिष्ट परिणाम वाला मिथ्यादृष्टि अपर्याप्तक विकलेन्द्रिय अर्थात् बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जीवों में से कोई एक जीव नाम कर्म की पच्चीस उत्तर प्रकृतियाँ बांधता है, उनके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नाम इस प्रकार हैं - १. तिर्यञ्च गति नाम २. विकलेन्द्रिय जाति नाम ३. औदारिक शरीर नाम ४. तैजस शरीर नाम ५. कार्मण शरीर नाम ६. हुण्डक संस्थान नाम ७. औदारिक शरीराङ्गोपाङ्ग नाम ८. छेवट्ट सेवार्त-संहनन नाम ९. वर्ण नाम १०. गन्ध नाम ११. रस नाम १२. स्पर्श नाम १३. तिर्यञ्चानुपूर्वी नाम १४. अगुरुलघु नाम १५. उपघात नाम १६. त्रस नाम १७. बादर नाम १८. अपर्याप्तक नाम १९. प्रत्येक शरीर नाम २०. अस्थिर नाम २१. अशुभ नाम २२. दुर्भग नाम २३. अनादेय नाम २४. अयशःकीर्ति नाम २५. निर्माण नाम। गङ्गा और सिन्धू ये दो महानदियाँ पच्चीस गाऊ-कोस के चौड़े प्रवाह से पद्म द्रह से निकल कर हिमवंत पर्वत पर दक्षिण दिशा में पांच सौ योजन जाकर घड़े के मुख के आकार मुक्तावली हार के संस्थान वाले प्रपात से गङ्गा और सिन्धू प्रपात कुण्ड में गिरती हैं। इसी तरह रक्ता और रक्तवंती महानदियाँ पच्चीस गाऊ-कोस के चौड़े प्रवाह से पुण्डरीक द्रह में से निकल कर शिखरी पर्वत पर पांच सौ योजन दक्षिण दिशा में जाकर मकर के मुखाकार वाले मुक्तावली हार के संस्थान वाले प्रपात से रक्ता और रक्तवती प्रपात कुण्ड में गिरती हैं। चौदहवें लोक बिन्दुसार पूर्व की पच्चीस वस्तु-अध्ययन कहे गये हैं। इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति पच्चीस पल्योपम की कही गई है। महातमप्रभा (तमस्तमाः प्रभा) नामक सातवीं नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति पच्चीस सागरोपम की कही गई है। असुरकुमार देवों में कितनेक देवों की स्थिति पच्चीस पल्योपम की कही गई है। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति पच्चीस पल्योपम की कही गई है। मध्यम अधस्तन अर्थात् चौथे ग्रैवेयक वाले देवों की जघन्य स्थिति पच्चीस सागरोपम की कही गई है। जो देव अधस्तन उपरितन अर्थात् तीसरे ग्रैवेयक विमानों में देव रूप से उत्पन्न होते हैं उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति पच्चीस सागरोपम की कही गई है। वे देव पच्चीस पखवाड़ों से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को पच्चीस हजार वर्षों से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो पच्चीस भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ॥ २५॥

विवेचन - मनः एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः।

बन्धाय विषयासक्तं, मुक्त्यै निर्विषयं मनः॥

यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी॥

आदि उक्तियों से यह जाना जा सकता है कि मानसिक क्रियाओं का हमारे जीवन पर कितना अधिक असर होता है। हमारे अच्छे और बुरे विचार हमें अच्छा और बुरा बना देते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं। अतएव अपना विकास और उत्थान चाहने वाले व्यक्ति को तदनुकूल विचार रखने चाहिए। मोक्षाभिलाषी आत्मा के लिए आवश्यक है कि वह ज्ञान दर्शन चारित्र की वृद्धि करने वाली बातों पर विचार करे, उन्हीं का चिन्तन मनन और ध्यान करे। उनके मार्गदर्शन के लिए शास्त्रकारों ने धर्म भाव बढ़ाने वाली आध्यात्मिक भावनाओं का वर्णन किया है। मुमुक्षु की जीवन शुद्धि के लिये विशेष उपयोगी बारह विषयों को चुन कर शास्त्रकारों ने उनके चिन्तन और मनन का उपदेश दिया है। इससे यह स्पष्ट है कि - यहां भावना से सामान्य भावना इष्ट नहीं है। परन्तु विशेष शुभ भावना अभिप्रेत है।

भावना की व्याख्या यों की गयी हैं - संवेग, वैराग्य और भाव शुद्धि के लिए आत्मा और जड़ पदार्थों के संयोग वियोग पर गहरा उतर कर विचार करना। इस प्रकार की अनित्य भावना आदि बारह भावना हैं। जिनका वर्णन शान्त सुधा रस, भावना शतक, ज्ञानार्णव, प्रवचन सारोद्धार और तत्त्वार्थाधिगम भाष्य आदि अनेक ग्रन्थों में विस्तार पूर्वक किया गया है। जिसका सामान्य विवेचन जैन सिद्धान्त बोल संग्रह के चौथे भाग में हिन्दी में दिया गया है।

यहाँ उन भावनाओं का वर्णन नहीं है किन्तु पांच महाव्रतों की भावनाओं का वर्णन है। जिसका अर्थ टीकाकार ने इस प्रकार दिया है -

''प्राणातिपातादिनिवृत्तिलक्षणमहाव्रतसंरक्षणाय भाव्यन्ते इति भावना''

अर्थ - प्राणातिपात निवृत्ति रूप पांच महाव्रतों की सुरक्षा के लिए जो भावित की जाती हैं उन्हें भावना कहते हैं। इन भावनाओं को भावित करने से महाव्रतों के पालन में दृढ़ता आती है और उनमें किसी प्रकार का अतिचार नहीं लगता है। महाव्रतों का निरअतिचार पालन करने से उत्कृष्ट भावना बनने पर तीर्थङ्कर गोत्र बन्धता है। प्रत्येक महाव्रत की पांच-पांच भावनाएं हैं। जिनका वर्णन ऊपर भावार्थ में कर दिया है।

प्रश्नव्याकरण सूत्र के प्रथम संवर द्वार में तथा आवश्यक सूत्र में भी पांच महाव्रतों की पच्चीस भावनाओं का वर्णन किया गया है। किन्तु यहाँ के नामों में ओर वहाँ के नामों में परस्पर अन्तर है। वह वाचना भेद समझना चाहिये ।

जो विकलेन्द्रिय (बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय) मिथ्या दृष्टि है, अपर्याप्तक है और उसमें भी संक्लिष्ट परिणाम वाला है। वह तिर्यञ्च गति आदि २५ प्रकृतियों को बान्धता है। इसका अभिप्राय यह है कि जो विकलेन्द्रिय सम्यग्दृष्टि है, पर्याप्तक है और संक्लिष्ट परिणाम वाला नहीं है। वह इन अपर्याप्तक प्रायोग्य प्रकृतियों को नहीं बांधता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छब्बीसवां समवाय

छव्वीसं दसकप्पववहाराणं उद्देसणकाला पण्णत्ता तंजहा - दस दसाणं छ कप्पस्स दस ववहारस्स। अभवसिद्धियाणं जीवाणं मोहणिज्जस्स कम्मस्स छव्वीसं कम्मंसा संतकम्मा पण्णत्ता तंजहा - मिच्छत्तमोहणिज्जं सोलस कसाया इत्थीवेए पुरिसवेए णंपुसगवेए हासं अरइ रइ भयं सोगं दुगुंछा। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं छव्वीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं छव्वीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं छव्वीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं छव्वीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। मज्झिम मज्झिम गेविज्जयाणं देवाणं जहण्णेणं छव्वीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा मज्झिम हेट्ठिम गेविज्जयविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा, तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं छव्वीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा छव्वीसेहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा। तेसिणं देवाणं छव्वीसेहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे छव्वीसेहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्व दुक्खाणमंतं करिस्संति ।। २६ ।।

कठिन शब्दार्थ - दसकप्पववहाराणं - दस कल्प व्यवहार के, **उद्दसेणकाला** - उद्देशनकाल, **दसाणं** - दशाश्रुतस्कंध के, **कप्पस्स** - बृहत्कल्प के, **ववहारस्स** - व्यवहार के, **संतकम्मा** - सत्ता में रहती है, **मज्झिम हेट्ठिम गेविज्जय विमाणेसु** - मध्यम अधस्तन अर्थात् चौथे ग्रैवेयक विमानों में ।

भावार्थ - दश कल्प व्यवहार के छब्बीस उद्देशन काल कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं- दशाश्रुतस्कन्ध के दस, बृहत्कल्प के छह और व्यवहार सूत्र के दस ये सब मिला कर छब्बीस हुए। जिस श्रुतस्कन्ध में अथवा अध्ययन में जितने अध्ययन अथवा उद्देशक हों उसके उतने ही उद्देशनकाल कहे ज़ाते हैं। अभवी जीवों के मोहनीय कर्म की छब्बीस प्रकृतियाँ सत्ता में रहती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं - १. मिथ्यात्व मोहनीय, २-१७ अनन्तानुबन्धी क्रोध आदि सोलह कषाय, १८. स्त्रीवेद १९. पुरुषवेद २०. नपुंसक वेद २१. हास्य २२. अरति २३. रति २४. भय २५. शोक २६. दुर्गुंच्छा - जुगुप्सा। इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में कितनेक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नैरयिकों की स्थिति छब्बीस पल्योपम की कही गई है। महातमः प्रभा नामक सातवीं नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति छब्बीस सागरोपम की कही गई है। असुरकुमार देवों में कितनेक देवों की स्थिति छब्बीस पल्योपम की कही गई है। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति छब्बीस पल्योपम कही गई है। मध्यम मध्यम अर्थात् पांचवें ग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति छब्बीस सागरोपम की कही गई है। जो देव मध्यम अधस्तन अर्थात् चौथे ग्रैवेयक विमानों में देव रूप से उत्पन्न होते हैं उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति छब्बीस सागरोपम की कही गई है। वे देव छब्बीस पखवाड़ों से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को छब्बीस हजार वर्षों से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। कितनेक भव्य जीव ऐसे हैं जो छब्बीस भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ॥ २६ ॥

विवेचन - छेद सूत्र चार हैं। यथा - दशाश्रुतस्कंध, बृहत्कल्प, व्यवहार सूत्र और निशीथ सूत्र । इनमें से दशाश्रुतस्कन्ध की दस दशाएं हैं। बृहत्कल्प के छह उद्देशक हैं और व्यवहार सूत्र के दस उद्देशक हैं। ये सब मिलाकर २६ होते हैं। इसलिये इनके उद्देशन काल भी २६ होते हैं। किसी भी सूत्र को प्रारम्भ करना उद्देशन कहलाता है।

मोहनीय कर्म की २८ प्रकृतियाँ हैं। अभवसिद्धिक (अभवी) जीव को कभी भी सम्यक्त्व प्राप्त नहीं होती है। इसीलिये इसके सम्यक्त्व मोहनीय और मिश्र मोहनीय (सम्यक्त्व मिथ्यात्व मोहनीय) ये दो प्रकृतियाँ सत्ता में नहीं होती हैं।

सत्ताईसवां समवाय

सत्तावीसं अणगार गुणा पण्णत्ता तंजहा - पाणाइवायाओ वेरमणं (विरमणं), मुसावायाओ वेरमणं, अदिण्णादाणाओ वेरमणं, मेहुणाओ वेरमणं, परिग्गहाओ वेरमणं सोइंदिय णिग्गहे, चक्खुइंदिय णिग्गहे, घाणिंदिय णिग्गहे, जिब्भिंदिय णिग्गहे, फासिंदिय णिग्गहे, कोहविवेगे, माणविवेगे, मायाविवेगे, लोहविवेगे, भावसच्चे, करणसच्चे, जोगसच्चे, खमा, विरागया, मणसमाहरणया (मणसमाधारणया), वयसमाहरणया (वयसमाधारणया), कायसमाहरणया (कायसमाधारणया), णाणसंपण्णया, दंसणसंपण्णया, चरित्तसंपण्णया, वेयणअहियासणिया, मारणंतियअहियासणिया। जंबूद्दीवे दीवे अभिइवज्जेहिं सत्तावीसेहिं णक्खत्तेहिं संववहारे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वट्टइ। एगमेगे णं णक्खत्त मासे सत्तावीसाहिं राइंदियाहिं राइंदियग्गेणं पण्णत्ते। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु विमाणपुढवी सत्तावीसं जोयणसयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता। वेयग सम्मत्त बंधोवरयस्स णं मोहणिज्जस्स कम्मस्स सत्तावीसं उत्तर पयडीओ संतकम्मंसा पण्णत्ता। सावणसुद्ध सत्तमीसु णं सूरिए सत्तावीसंगुलियं पोरिसीच्छायं णिव्वत्तइत्ता णं दिवसखेत्तं णियट्टेमाणे रयणिखेत्तं अभिणिवड्ढमाणे चारं चरइ। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं सत्तावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहे सत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं सत्तावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं सत्तावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं सत्तावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। मज्झिम उवरिम गेविज्जयाणं देवाणं जहण्णेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा मज्झिम मज्झिम गेविज्जय विमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा सत्तावीसेहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा। तेसिणं देवाणं सत्तावीसेहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे सत्तावीसेहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ २७ ॥

कठिन शब्दार्थ - **वेरमणं** - विरमण-निवृत्ति, **णिग्गहे** - निग्रह, **खमा** - क्षमा, **विरागया** - विरागता-निर्लोभता, **मणसमाहरणया (मनसमाधारणया)** - मन समाहरणता (मनसमाधारणता) - मन की शुभ प्रवृत्ति, **णाणसंपण्णया** - ज्ञान संपन्नता, **वेयणअहियासणया** - वेदनातिसहनता (वेदनाधिसहनता) - वेदना को समभाव से सहन करना, **मारणंतिय अहियासणया** - मारणान्ति-कातिसहनता (मारणान्तिकाधिसहनता) - मृत्यु के समय होने वाले कष्टों को समभाव से सहन करना, **संववहारे** - लौकिक व्यवहार, **वट्टइ**- चलता है, **राइंदियग्गेणं** - रात्रिन्दियाअग्र-अहोरात्र की अपेक्षा से, **वेयगसम्मत्तबंधोवरयस्स**- वेदक सम्यक्त्व बन्धोपरत-वेदक सम्यक्त्व के बन्ध से निवर्तने वाले जीव के, **सावणसुद्धसत्तमीसु** - श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन, **दिवसखेत्तं** - दिवसक्षेत्र-दिन के प्रकाश को, **णियट्टेमाणे** - घटाता हुआ, **अभिणिवड्ढमाणे** - बढ़ाता हुआ।

भावार्थ - साधु के सत्ताईस गुण कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - १. प्राणातिपात विरमण - जीव हिंसा से निवृत्ति २. मृषावाद विरमण - झूठ से निवृत्ति ३. अदत्तादान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विरमण - चोरी से निवृत्ति ४. मैथुन विरमण-मैथुन से निवृत्ति ५. परिग्रह विरमण-परिग्रह से निवृत्ति ६. श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह ७. चक्षुइन्द्रिय निग्रह ८. घ्राणेन्द्रिय निग्रह ९. जिह्वा इन्द्रिय का निग्रह १०. स्पर्शनेन्द्रिय निग्रह अर्थात् पांचों इन्द्रियों को वश में रखना। ११. क्रोध विवेक-क्रोध का त्याग १२. मान विवेक-मान का त्याग १३. माया विवेक - माया का त्याग १४. लोभ विवेक - लोभ का त्याग १५. भाव सत्य अर्थात् अन्तःकरण की शुद्धि १६. करण सत्य अर्थात् वस्त्र, पात्र आदि की प्रतिलेखना तथा अन्य क्रियाओं को शुद्ध उपयोग पूर्वक करना। १७. योग सत्य अर्थात् मन वचन काया रूप तीनों योगों की शुभ प्रवृत्ति करना। १८. क्षमा अर्थात् क्रोध और मान को उदय में ही न आने देना १९. विरागता - निर्लोभता अर्थात् माया और लोभ को उदय में ही न आने देना २०. मन समाहरणता (मनसमाधारणता)- मन की शुभ प्रवृत्ति २१. वचन समाहरणता (वचनसमाधारणता) - वचन की शुभ प्रवृत्ति २२. काय समाहरणता (कायसमाधारणता) - काया की शुभ प्रवृत्ति २३. ज्ञान सम्पन्नता २४. दर्शन सम्पन्नता २५. चारित्र सम्पन्नता २६. वेदनातिसहनता (वेदनाधिसहनता) - शीत, ताप तथा शारीरिक वेदना को समभाव से सहन करना २७. मारणान्ति-कातिसहनता (मारणान्तिकाधिसहनता) - मृत्यु के समय होने वाले कष्टों को समभाव से सहन करना और ऐसा विचार करना कि ये मेरे कल्याण के लिए हैं। इस जम्बूद्वीप में अभिजित् नक्षत्र को छोड़ कर शेष सत्ताईस नक्षत्रों से लौकिक व्यवहार चलता है। प्रत्येक नक्षत्र मास अहोरात्र की अपेक्षा से सत्ताईस रात दिन का कहा गया है। नक्षत्र मास का यह परिमाण अहोरात्र की अपेक्षा से समझना चाहिए सर्वथा नहीं, क्योंकि उसका परिमाण $२७\frac{२१}{६७}$ दिन का है। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में विमानपृथ्वी अर्थात् विमानों की भूमि सत्ताईस सौ योजन मोटी-जाड़ी कही गई है। वेदक सम्यक्त्व के बन्ध से निवर्तने वाले जीव के मोहनीय कर्म की सत्ताईस उत्तर प्रकृतियाँ सत्ता में रहती हैं। श्रावणशुक्ला सप्तमी के दिन पोरिसी की छाया सत्ताईस अङ्गुल की होती है। उसके बाद दिन के प्रकाश को घटाता हुआ और रात्रि के अन्धकार को बढ़ाता हुआ सूर्य परिभ्रमण करता है। अर्थात् श्रावण शुक्ला सप्तमी को सत्ताईस अङ्गुल की पोरिसी मानी जाती है। उसके बाद दिन घटता जाता है और रात्रि बढ़ती जाती है। इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति सत्ताईस पल्योपम की कही गई है। तमःतमा नामक सातवीं नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति सत्ताईस सागरोपम की कही गई है। असुरकुमार देवों में कितनेक देवों की स्थिति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्ताईस पल्योपम की कही गई है। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति सत्ताईस पल्योपम की कही गई है। मध्यम उपरितन नामक छठे ग्रैवेयक में देवों की जघन्य स्थिति सत्ताईस सागरोपम की कही गई है। जो देव मध्यम मध्यम नामक पांचवें ग्रैवेयक में देव रूप से उत्पन्न होते हैं उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति सत्ताईस सागरोपम की कही गई है। वे देव सत्ताईस पखवाड़ो से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को सत्ताईस हजार वर्षों से आहार की इच्छा पैदा होती है। कितनेक भवसिद्धिक - भवी जीव ऐसे हैं जो सत्ताईस भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ॥ २७ ॥

विवेचन - उत्तराध्ययन सूत्र के ३१ वें अध्ययन में तथा आवश्यक सूत्र के प्रतिक्रमण अध्ययन में भी साधु के २७ गुणों का वर्णन किया गया है।

मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियाँ हैं। क्षायोपशमिक सम्यक्त्व प्राप्ति के एक समय पूर्व क्षायोपशमिक वेदक सम्यक्त्व कहलाती है। उस प्रकृति से जो निवृत्त हो चुका है ऐसे जीव के मोहनीय कर्म की सत्ताईस कर्म प्रकृतियाँ सत्ता में रहती हैं। क्योंकि वह जीव क्षायोपशमिक समकित के हेतु भूत शुद्ध दलिक रूप दर्शन मोहनीय की प्रकृति से उपरत हो चुका है। उपरत शब्द का पर्यायवाची शब्द उद्वलक अथवा वियोजक है।

श्रावण शुक्ला सप्तमी का अर्थ इस प्रकार समझना चाहिए कि कर्क संक्राति से लेकर २१ वें दिन २७ अङ्गुल की पोरिसी छाया होती है।

इस सूत्र में तथा आगे कई सूत्रों में पोरिसी की छाया के परिमाण का कथन किया गया है। अतः यहाँ पर थोड़ासा खुलासा कर दिया जाता है। बारह अङ्गुल का एक पैर अथवा एक बैंत होता है। दो बैंत अर्थात् चौबीस अङ्गुल का एक हाथ होता है। दिन या रात्रि के चौथे भाग को एक प्रहर - पोरिसी कहते हैं। शीतकाल में दिन छोटे होते हैं और रात्रि बड़ी होती है। जब रात्रि लगभग पौने चौदह घण्टे की होती है तो दिन सवा दस घन्टे का रह जाता है। उष्णकाल (गर्मी) में दिन बड़े होते हैं और रातें छोटी। जब दिन लगभग पौने चौदह घण्टे का होता है तो रात सवा दस घण्टे की रह जाती है। तदनुसार शीतकाल में रात्रि की पोरिसी बड़ी होती है और दिन की छोटी । उष्ण काल में दिन की पोरिसी बड़ी होती है और रात की पोरिसी छोटी हो जाती है।

पोरिसी का परिमाण चौबीस अङ्गुल का तिनका या लकड़ी लेकर अथवा घुटने तक की छाया से जाना जाता है। पौष मास की पूर्णिमा को जब कि दिन सब से छोटा होता है तब उस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिनके की अथवा घुटने की छाया चार पैर हो तब पोरिसी समझनी चाहिए। इसके बाद प्रति सप्ताह एक अङ्गुल छाया घटती जाती है। इस प्रकार घटते घटते आषाढी पूर्णिमा (जबकि दिन सबसे बड़ा होता है) को छाया दो पैर रह जाती है। इसके बाद प्रति सप्ताह छाया एक अङ्गुल बढ़ती जाती है। इस प्रकार बढ़ते बढ़ते पौष मास की पूर्णिमा के दिन छाया चार पैर हो जाती है। जब सूर्य उत्तरायण होता है अर्थात् मकर संक्रान्ति के दिन से छाया बढ़नी शुरू होती है और सूर्य के दक्षिणायन होने पर अर्थात् कर्क संक्रान्ति से छाया घटनी शुरू हो जाती है।

विस्तृत खुलासा जानने के लिये जिज्ञासुओं को "श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह" बीकानेर का चौथा भाग देखना चाहिए। वहाँ पर उत्तराध्ययन सूत्र के छब्बीसवें अध्ययन की टीका के अनुसार पोरिसी छाया का विस्तृत वर्णन दिया गया है।

अठाईसवां समवाय

अट्ठावीस विहे आयारपकप्पे पण्णत्ते तंजहा - मासिया आरोवणा, सपंच राइमासिया आरोवणा, सदस राइमासिया आरोवणा एवं चेव दो मासिया आरोवणा सपंच राइदोमासिया आरोवणा, एवं तिमासिया आरोवणा, चउमासिया आरोवणा, उवघाइया आरोवणा, अणुवघाइया आरोवणा, कसिणा आरोवणा, अकसिणा आरोवणा, एयावया आयारपकप्पे, एयावया य आयरियव्वे । भवसिद्धियाणं जीवाणं अत्थेगइयाणं मोहणिज्जस्स कम्मस्स अट्ठावीसं कम्मंसा संतकम्मा पण्णत्ता तंजहा - सम्मत्तवेयणिज्जं, मिच्छत्त वेयणिज्जं, सम्ममिच्छत्त वेयणिज्जं, सोलस कसाया, णव णोकसाया। आभिणिबोहिय णाणे अट्ठावीसइविहे पण्णत्ते तंजहा - सोइंदिय अत्थावग्गहे, चक्खिंदिय अत्थावग्गहे, घाणिंदिय अत्थावग्गहे, जिब्भिंदिय अत्थावग्गहे, फासिंदिय अत्थावग्गहे, णोइंदिय अत्थावग्गहे, सोइंदियवंजणोवग्गहे, घाणिंदिय-वंजणोवग्गहे, जिब्भिंदिय वंजणोवग्गहे, फासिंदिय वंजणोवग्गहे, सोइंदिय ईहा, चक्खिंदिय ईहा, घाणिंदिय ईहा, जिब्भिंदिय ईहा, फासिंदिय ईहा, णोइंदिय ईहा, सोइंदियावाए, चक्खिंदियावाए, घाणिंदियावाए, जिब्भिंदियावाए, फासिंदियावाए, णोइंदियावाए, सोइंदियधारणा, चक्खिंदियधारणा, घाणिंदिय धारणा, जिब्भिंदिय-धारणा, फासिंदियधारणा, णोइंदिय धारणा। ईसाणे णं कप्पे अट्ठावीसं विमाणा-वाससयसहस्सा पण्णत्ता। जीवे णं देवगइम्मि बंधमाणे णामस्स कम्मस्स अट्ठावीसं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तरपगडीओ णिबंधइ तंजहा - देव गइ णामं, पंचेंदिय जाइ णामं, वेउव्वियसरीर णामं, तेयगसरीर णामं, कम्मणसरीर णामं, समचउरंससंठाणं णामं, वेउव्विय सरीरंगोवंग णामं, वण्ण णामं गंध णामं, रस णामं फास णामं, देवाणुपुव्वि णामं, अगुरुलहु णामं, उवघाय णामं, पराघाय णामं, उस्सास णामं, पसत्थविहायोगइ णामं, तस णामं, बायर णामं, पज्जत्त णामं, पत्तेयसरीर णामं, थिराथिराणं, सुभासुभाणं आएज्जाणाएज्जाणं दोण्हं अण्णयरं एगं णामं णिबंधइ। सुभग णामं, सुस्सर णामं जसोकित्ति णामं णिम्माण णामं एवं चेव णेरइया वि णाणत्तं अपसत्थविहायोगइ णामं, हुंडगसंठाण णामं, अथिर णामं दुब्भग णामं, असुभ णामं, दुस्सर णामं, अणाइज्ज णामं, अजसोकित्ती णामं । इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं अट्ठावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहे सत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं अट्ठावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं अट्ठावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। उवरिम हेट्ठिम गेविज्जयाणं देवाणं जहण्णेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा मज्झिम उवरिम गेविज्जएसु विमाणेसु देवत्ताए उववण्णा। तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा अट्ठावीसेहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा। तेसिणं देवाणं अट्ठावीसेहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे अट्ठावीसेहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाण मंतं करिस्संति ।। २८ ॥

कठिन शब्दार्थ - **अट्ठावीसविहे** - अट्ठाईस प्रकार का, **आयार पकप्पे** - आचार प्रकल्प-साधु का आचार, **मासिया आरोहणा** - मासिकी आरोपणा, **सपंचराइ मासिया** - सपंच रात्रि मासिकी-एक मास और पांच रात्रि का, **उवघाइया** - उद्घातिक, **अणुवघाइया**- अनुद्घातिक, **कसिणा** - कृत्स्ना, **अकसिणा** - अकृत्स्ना, **एयावया** - इतना ही, **आयरियव्वे**- आचरण करना चाहिये, **अत्थावग्गहे** - अर्थावग्रह, **णोइंदिय** - नोइन्द्रिय यानी मन, **वंजणोवग्गहे** - व्यञ्जनावग्रह।

भावार्थ - अट्ठाईस प्रकार का आचार प्रकल्प यानी साधु का आचार कहा गया है। यथा - १. मासिकी आरोपणा - जैसे ज्ञानादि के विषय में कहीं दोष लग जाने पर कुछ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रायश्चित्त दिया गया। उसमें फिर कहीं दोष लग गया तब एक मास तक करने योग्य फिर प्रायश्चित्त दिया गया उसे मासिकी आरोपणा कहते हैं। २. पहले दिये हुए प्रायश्चित्त में एक मास और पांच रात्रि का प्रायश्चित्त फिर देना सो सपंच रात्रि मासिकी आरोपणा कहलाती है। ३. दस रात्रि तक मासिकी आरोपणा। ४-५-६ इसी तरह पन्द्रह रात्रि सहित मासिकी आरोपणा, बीस रात्रि सहित मासिकी आरोपणा और पच्चीस रात्रि सहित मासिकी आरोपणा जाननी चाहिए। ७-१२ इसी तरह द्विमासिकी आरोपणा के छह भेद जानने चाहिए। १३-१८ इसी तरह त्रिमासिकी आरोपणा के छह भेद और १९-२४ चतुर्मासिकी आरोपणा के भी छह भेद जानने चाहिए। २५. पहले दिये हुए प्रायश्चित्त में लघुमास यानी २७॥ दिन का फिर प्रायश्चित्त देना उद्‌घातिक आरोपणा कहलाती है। २६. लघुद्विमास यानी एक महीना साढे सत्ताईस दिन का प्रायश्चित्त फिर देना अनुद्‌घातिक आरोपणा कहलाती है। २७. जितना दोष लगा है उतना पूरा प्रायश्चित्त देना कृत्स्ना आरोपणा कहलाती है। २८. बहुत दोष लगने पर भी सब मिला कर छह महीनों से अधिक प्रायश्चित्त नहीं देना अकृत्स्ना आरोपणा कहलाती है। इस समय छह महीनों से अधिक तप का विधान नहीं है। इतना ही आचार प्रकल्प है और इतना ही आचरण करना चाहिए । कितनेक भव-सिद्धिक - भव्य जीवों के मोहनीय कर्म की अट्ठाईस कर्म प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं। वे इस प्रकार हैं- १. सम्यक्त्व वेदनीय २. मिथ्यात्व वेदनीय ३. सम्यग्मिथ्यात्व वेदनीय ४-१९ अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन इन प्रत्येक के क्रोध, मान, माया, लोभ ये सोलह कषाय और २०-२८ नौ नोकषाय। आभिनिबोधिक यानी मतिज्ञान अट्ठाईस प्रकार का कहा गया है यथा - १. श्रोत्रेन्द्रिय अर्थावग्रह २. चक्षुइन्द्रिय अर्थावग्रह ३. घ्राणेन्द्रिय अर्थावग्रह ४. जिह्वेन्द्रिय अर्थावग्रह ५. स्पर्शनेन्द्रिय अर्थावग्रह ६. नोइन्द्रिय यानी मन अर्थावग्रह ७. श्रोत्रेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह ८. घ्राणेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह ९. जिह्वेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह १०. स्पर्शनेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह ११. श्रोत्रेन्द्रिय ईहा १२. चक्षु इन्द्रिय ईहा १३. घ्राणेन्द्रिय ईहा १४. जिह्वेन्द्रिय ईहा १५. स्पर्शनेन्द्रिय ईहा १६. नोइन्द्रिय ईहा १७. श्रोत्रेन्द्रिय अवाय १८. चक्षुइन्द्रिय अवाय १९. घ्राणेन्द्रिय अवाय २०. जिह्वेन्द्रिय अवाय २१. स्पर्शनेन्द्रिय अवाय २२. नोइन्द्रिय अवाय २३. श्रोत्रेन्द्रिय धारणा २४. चक्षु इन्द्रिय धारणा २५. घ्राणेन्द्रिय धारणा २६. जिह्वेन्द्रिय धारणा २७. स्पर्शनेन्द्रिय धारणा २८. नोइन्द्रिय धारणा। ईशान नामक दूसरे देवलोक में अट्ठाईस लाख विमान कहे गये हैं। जो जीव देवगति का बन्ध करता है वह नाम कर्म की अट्ठाईस उत्तर प्रकृतियों का बन्ध करता है उनके नाम इस प्रकार हैं - १. देवगति नाम कर्म २. पञ्चेन्द्रिय जाति नाम ३. वैक्रिय शरीर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नाम ४. तैजस शरीर नाम ५. कार्मण शरीर नाम ६. समचतुरस्र संस्थान नाम ७. वैक्रिय शरीराङ्गोपाङ्ग नाम ८. वर्ण नाम ९. गन्ध नाम १०. रस नाम ११. स्पर्श नाम १२. देवानुपूर्वी नाम १३. अगुरुलघु नाम १४. उपघात नाम १५. पराघात नाम १६. उच्छ्वास नाम १७. प्रशस्त विहायोगति नाम १८. त्रस नाम १९. बादर नाम २०. पर्याप्त नाम २१. प्रत्येक शरीर नाम २२. स्थिर नाम या अस्थिर नाम, इन दोनों में से एक २३-२४. शुभ नाम और अशुभ नाम इन दोनों में से एक, आदेय नाम और अनादेय नाम, इन दोनों में से एक २५. सुभग नाम २६. सुस्वर नाम २७. यशःकीर्ति नाम २८. निर्माण नाम । इसी प्रकार नरक गति का बन्ध करने वाले जीव को भी नाम कर्म की २८ प्रकृतियों का बन्ध होता है। सिर्फ इतना फर्क है कि - १. अप्रशस्त विहायोगति नाम २. हुण्डक संस्थान नाम ३. अस्थिर नाम ४. दुर्भग नाम ५. अशुभ नाम ६. दुःस्वर नाम ७. अनादेय नाम ८. अयशःकीर्ति नाम ९. नरक गति नाम और १०. नरकानुपूर्वी नाम । ये दस और ऊपर कही हुई में से १८ प्रकृतियाँ, इस प्रकार २८ प्रकृतियों का बन्ध करता है। इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति अट्ठाईस पल्योपम की कही गई है। तमस्तमा नामक सातवीं नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति अट्ठाईस सागरोपम की कही गई हैं। असुरकुमार देवों में से कितनेक देवों की स्थिति अट्ठाईस पल्योपम की कही गई है। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति अट्ठाईस पल्योपम की कही गई है। उपरिम अधस्तन नामक सातवें ग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति अट्ठाईस सागरोपम की कही गई है। जो देव मध्यम उपरितन नामक छठे ग्रैवेयक में देव रूप से उत्पन्न होते हैं उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति अट्ठाईस सागरोपम की कही गई है। वे देव अट्ठाईस पखवाड़ों से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को अट्ठाईस हजार वर्षों से आहार की इच्छा पैदा होती है। कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो अट्ठाईस भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ॥ २८ ॥

विवेचन - आचार (आचाराङ्ग) प्रथम अङ्ग सूत्र है। उसका प्रकल्प अर्थात् अध्ययन विशेष। इसका दूसरा नाम निशीथ सूत्र है। अथवा साध्वाचार रूप ज्ञानादि विषय का प्रकल्प अर्थात् व्यवस्थापन को आचार-प्रकल्प कहते हैं। आचार प्रकल्प के २८ भेदों का वर्णन ऊपर भावार्थ में कर दिया गया है। निशीथ सूत्र के बीसवें उद्देशक में इसका विस्तृत वर्णन है। यहाँ पर आरोपणा को लेकर विवक्षित २८ प्रकल्प कहा गया है। इससे अतिरिक्त दूसरे प्रकल्पों का इन्हीं में अन्तर्भाव (समावेश) हो जाता है। देव गति के योग्य बन्धने वाली २८ प्रकृतियों का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वर्णन ऊपर भावार्थ में कर दिया गया है। स्थिर, अस्थिर तथा शुभ और अशुभ एवं आदेय और अनादेय ये तीन प्रकृतियाँ परस्पर विरोधी हैं। इसलिये इन छह प्रकृतियों का एक साथ बंध नहीं होता है। इसलिये इनमें से किसी तीन का बन्ध एक साथ हो सकता है।

नरक गति के विषय में भी इन २८ प्रकृतियों का बन्ध होता है। किन्तु इन आठ प्रकृतियों में फरक पड़ता है। यथा - नरक गति में अप्रशस्त विहायोगति नामकर्म, हुण्डक संस्थान, स्थिर, दुर्भग, अशुभ, दुःस्वर, अनादेय, अयशोकीर्ति। इसके अतिरिक्त २० ऊपर कही कई प्रकृतियाँ समझ लेनी चाहिये ।

मूल में **'णाणत्तं'** शब्द दिया है जिसका अर्थ है - 'नानात्व' (फर्क, विशेष)।

ज्ञान के पांच भेद हैं - १. मतिज्ञान २. श्रुतज्ञान ३. अवधिज्ञान ४. मनःपर्यव ज्ञान ५. केवलज्ञान । यहाँ मति ज्ञान के भेद बतलाये गये हैं - इसके मुख्य भेद चार हैं - १. अवग्रह २. ईहा ३. अवाय ४. धारणा।

अवग्रह - इन्द्रिय और पदार्थों के योग्य स्थान में रहने पर सामान्य प्रतिभास रूप दर्शन के बाद होने वाले अवान्तर सत्ता सहित वस्तु के सर्व प्रथम ज्ञान को अवग्रह कहते हैं। जैसे दूर से किसी चीज का ज्ञान होना।

ईहा - अवग्रह से जाने हुए पदार्थ के विषय में उत्पन्न हुए संशय को दूर करते हुए विशेष की जिज्ञासा को ईहा कहते हैं। जैसे - अवग्रह से किसी दूरस्थ चीज का ज्ञान होने पर संशय होता है कि यह दूरस्थ चीज मनुष्य है या स्थाणु (सूखे वृक्ष का ठूंठ)? ईहा ज्ञानवान् व्यक्ति, विशेष धर्म विषयक विचारणा द्वारा इस संशय को दूर करता है और यह जान लेता है कि यह मनुष्य होना चाहिये। यह ज्ञान दोनों पक्षों में रहने वाले संशय को दूर कर एक तरफ झुकता है। परन्तु इतना कमजोर होता है कि ज्ञाता को इससे पूर्ण निश्चय नहीं होता और उसको तद्विषयक निश्चयात्मक ज्ञान की आकांक्षा बनी ही रहती है।

अवाय - ईहा से जाने हुए पदार्थों में 'यह वही है, अन्य नहीं है' ऐसे निश्चयात्मक ज्ञान को अवाय कहते हैं। जैसे यह मनुष्य ही है।

धारणा - अवाय से जाना हुआ पदार्थों का ज्ञान इतना दृढ़ हो जाय कि कालान्तर में भी उसका विस्मरण न हो तो, उसे धारणा कहते हैं।

नन्दीसूत्र में अवग्रह आदि का समय इस प्रकार बताया है कि -

सूत्र - ३५ उग्गहे इक्कसमइए, अंतोमुहुत्तिया ईहा, अंतोमुहुत्तिए अवाए, धारणा संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ मतिज्ञान के २८ भेद बतलाये गये हैं। इन में अर्थावग्रह के छह भेद, ईहा के छह भेद, अवाय के छह भेद और धारणा के छह भेद । अर्थावग्रह से पहले जो अस्पष्ट अस्तित्व मात्र का ज्ञान होता है उसको व्यञ्जनावग्रह कहते हैं। इसके चार भेद हैं यथा - श्रोत्रेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह, घ्राणेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह रसनेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह, स्पर्शनेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह। व्यञ्जनावग्रह का अर्थ है-इन्द्रिय के साथ पुद्गल का एकमेक हो जाना। व्यञ्जनावग्रह प्राप्यकारी इन्द्रियों में ही होता है। चक्षुइन्द्रिय अप्राप्यकारी होने से उससे मात्र अर्थावग्रह होता है। असंख्यात समय के व्यंजनावग्रह के बाद एक समय का अर्थावग्रह होता है। चक्षु इन्द्रिय तथा मन से व्यञ्जनावग्रह नहीं होता।

मतिज्ञान के उपरोक्त अट्ठाईस मूल भेद हैं। इन अट्ठाईस भेदों में प्रत्येक के निम्नलिखित बारह-बारह भेद होते हैं -

१. बहु २. अल्प ३. बहुविध ४. अल्प विध ५. क्षिप्र ६. अक्षिप्र-चिर ७. निश्रित ८. अनिश्रित ९. सन्दिग्ध १०. असन्दिग्ध ११. ध्रुव १२. अध्रुव ।

इस प्रकार प्रत्येक के बारह-बारह भेद होने से मतिज्ञान के २८×१२ = ३३६ भेद हो जाते हैं। उपरोक्त सब भेद श्रुतनिश्रित मतिज्ञान के हैं। अश्रुतनिश्रित मतिज्ञान के चार भेद हैं - १ औत्पत्तिकी बुद्धि २. वैनयिकी ३. कार्मिकी ४. पारिणामिकी । ये चार भेद और मिलाने से मतिज्ञान के कुल ३४० भेद हो जाते हैं। जहाँ ३४१ भेद किये जाते हैं वहाँ जातिस्मरण का एक भेद और माना जाता है।

औत्पत्तिकी बुद्धि के २७ दृष्टान्त हैं। वैनयिकी बुद्धि के १५ दृष्टान्त हैं। कर्मजा (कम्मिया) बुद्धि के १२ दृष्टान्त हैं। पारिणामिकी बुद्धि के २१ दृष्टान्त हैं। इन सभी दृष्टान्तों का विस्तृत विवेचन जैन संस्कृति रक्षक संघ द्वारा प्रकाशित नन्दी सूत्र में है। 'श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह' के चौथे, पांचवें और छठे भाग में भी अनुवाद दिया गया है। दृष्टान्त बड़े रोचक हैं। जिज्ञासुओं को उन स्थलों पर देखना चाहिए ।

उनतीसवां समवाय

एगूणतीसइ विहे पावसुय पसंगे पण्णत्ते तंजहा - भोमे, उप्पाए, सुमिणे, अंतरिक्खे (अंतलिक्खे) अंगे, सरे, वंजणे, लक्खणे, भोमे तिविहे पण्णत्ते तंजहा- सुत्ते, वित्ती, वत्तिए एवं एक्केक्कं तिविहं विकहाणुजोगे, विज्जाणुजोगे, मंताणुजोगे, जोगाणुजोगे, अण्णतित्थिय पवत्ताणुजोगे । आसाढे णं मासे एगूणतीसराइंदियाइं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राइंदियग्गेणं पण्णत्ते। एवं चेव भद्दवए मासे, कत्तिए मासे, पोसे मासे, फग्गुणे मासे, वइसाहे मासे । चंददिणे एगूणतीसं मुहुत्ते साइरेगे मुहुत्तग्गेणं पण्णत्ते । जीवे णं पसत्थज्झवसाणजुत्ते भविए सम्मदिट्ठी तित्थयरणामसहियाओ णामस्स णियमा एगूणतीसं उत्तरपयडीओ णिबंधित्ता वेमाणिएसु देवेसु देवत्ताए उववज्जइ। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं एगूणतीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं एगूणतीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एगूणतीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं एगूणतीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। उवरिम मज्झिम गेविज्जयाणं देवाणं जहण्णेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा उवरिम हेट्ठिम गेविज्जय विमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा एगूणतीसेहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा। तेसिणं देवाणं एगूणतीसेहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे एगूणतीसेहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ २९ ॥

कठिन शब्दार्थ - **एगुणतीसइ विहे** - उनतीस प्रकार का, **पावसुय पसंगे** - पापश्रुत प्रसंग-पाप आगमन के कारणभूत श्रुत, **भोमे** - भौम-भूमि कंपनादि का फल बताने वाला शास्त्र, **उप्पाए** - उत्पात शास्त्र, **सुमिणे** - स्वप्न शास्त्र, **अंतरिक्खे-अंतलिक्खे** - अंतरिक्ष शास्त्र, **अंगे** - अंग शास्त्र, **सरे** - स्वर शास्त्र, **वंजण** - व्यञ्जन शास्त्र, **लक्खणे** - लक्षण शास्त्र, **वित्ती** - वृत्ति, **वत्तिए** - वार्तिक, **विकहाणुजोगे** - विकथानुयोग, **विज्जाणुजोगे** - विद्यानुयोग, **अण्णतित्थिय पवत्ताणुजोगे** - अन्यतीर्थिक प्रवृत्तानुयोग, **पसत्थज्झवसाणजुत्ते**- प्रशस्त शुभ अध्यवसाय वाला।

भावार्थ - पापश्रुत प्रसङ्ग - पाप उपादान के हेतुभूत अर्थात् पाप आगमन के कारण भूत श्रुत पापश्रुत कहलाते हैं, वे उनतीस प्रकार के हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं - १. भौम-भूमि कंपादि का फल बताने वाला निमित्त शास्त्र २. उत्पात्त - रुधिर की वृष्टि, दिशाओं का लाल होना आदि लक्षणों का शुभाशुभ फल बतलाने वाला निमित्त शास्त्र ३. स्वप्नशास्त्र - स्वप्नों का शुभाशुभ फल बताने वाला शास्त्र ४. अन्तरिक्ष शास्त्र - आकाश में होने वाले ग्रहवेधादि का शुभाशुभ फल बताने वाला शास्त्र ५. अङ्गशास्त्र - आंख, भुजा आदि के स्फुरण का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शुभाशुभ फल बताने वाला शास्त्र ६. स्वर शास्त्र - जीव और अजीव के स्वरों का शुभाशुभ फल बतलाने शास्त्र ७. व्यञ्जन शास्त्र - शरीर के तिल, मष आदि के शुभाशुभ फल बतलाने वाला शास्त्र। ८. लक्षण शास्त्र - स्त्री पुरुषों के लांछनादि रूप विविध लक्षणों का शुभाशुभ फल बतलाने वाला शास्त्र । इन आठों के सूत्र, वृत्ति और वार्तिक के भेद से २४ भेद हो जाते हैं। २५ विकथानुयोग - अर्थ और काम के उपायों को बतलाने वाला शास्त्र । २६ विद्यानुयोग- रोहिणी आदि विद्याओं की सिद्धि के उपाय बताने वाला शास्त्र । २७. मन्त्रानुयोग - मन्त्रों द्वारा सर्प आदि को वश में करने का उपाय बतलाने वाला शास्त्र । २८. योगानुयोग - वशीकरण आदि योग बतलाने वाले हरमेखला आदि शास्त्र २९. अन्य तीर्थिक प्रवृत्तानुयोग - अन्य तीर्थियों द्वारा माने हुए वस्तु तत्त्व का जिसमें प्रतिपादन किया गया हो वह अन्य तीर्थिक प्रवृत्तानुयोग कहलाता है। आषाढ, भाद्रपद, कार्तिक, पौष, फाल्गुन और वैशाख ये छह महीने उनतीस रात दिन के कहे गये हैं। चन्द्रदिन यानी प्रतिपदा आदि तिथि उनतीस मुहूर्त्त से कुछ अधिक कही गई है। प्रशस्त - शुभ अध्यवसाय वाला भव्य समदृष्टि जीव तीर्थङ्कर नाम सहित नामकर्म की नियमा - निश्चित रूप से उनतीस उत्तर प्रकृतियाँ यानी २८ वें समवाय में कही हुई २८ प्रकृतियाँ और १ तीर्थङ्कर नाम, इन उनतीस प्रकृतियों का बन्ध कर वैमानिक देवों में देव रूप से उत्पन्न होता है। इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति उनतीस पल्योपम की कही गई है। तमस्तमा नामक सातवीं नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति उनतीस सागरोपम की कही गई है। असुरकुमार देवों में कितनेक देवों की स्थिति उनतीस पल्योपम की कही गई है। सौधर्म और ईशान नाम पहले और दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति उनतीस पल्योपम की कही गई है। उपरिम मध्यम नामक आठवें ग्रैवेयक विमान के देवों की जघन्य स्थिति उनतीस सागरोपम की कही गई हैं। जो देव उपरिम अधस्तन नामक सातवें ग्रैवेयक विमान में देव रूप से उत्पन्न होते हैं। उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति उनतीस सागरोपम की कही गई है। वे देव उनतीस पखवाड़ों से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को उनतीस हजार वर्षों से आहार की इच्छा पैदा होती है। कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो उनतीस भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ॥ २९ ॥

विवेचन - मूल में २९ पाप सूत्रों के नाम कहे गये हैं। भावार्थ में उनका संक्षिप्त अर्थ बतला दिया गया है। पाप उपादान के हेतु भूत अर्थात् पाप आगमन के कारण भूत श्रुत को पापश्रुत कहते हैं। क्योंकि इनसे प्राणातिपात आदि कार्यों में वृद्धि होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैन सिद्धान्त में संवत्सर के पांच भेद किये गये हैं। यथा - नक्षत्र मास, चन्द्र मास, ऋतु मास, आदित्य मास और अभिवर्द्धित मास।

१. नक्षत्र संवत्सर -चन्द्रमा का अट्ठाईस नक्षत्रों में रहने का काल नक्षत्र मास कहलाता है। बारह नक्षत्र मासों का एक नक्षत्र संवत्सर होता है। नक्षत्र मास $२७\frac{२१}{६७}$ दिन का होता है। ऐसे बारह मास अर्थात् $३२७\frac{५१}{६७}$ दिनों का एक नक्षत्र संवत्सर होता है।

२. चन्द्र संवत्सर - कृष्ण प्रतिपदा से प्रारम्भ करके पूर्णमासी को समाप्त होने वाला $२९\frac{३२}{६२}$ दिन का चन्द्रमास कहलाता है। बारह चन्द्रमास अर्थात् $३५४\frac{१२}{६२}$ दिनों का एक चन्द्र संवत्सर होता है।

३. ऋतु संवत्सर - ६० दिन की एक ऋतु होती है अतः ऋतु के आधे भाग को ऋतुमास कहते हैं। श्रावण मास और कर्म मास ऋतुमास के ही पर्यायवाची शब्द हैं। ऋतुमास ३० दिन का होता है। बारह ऋतुमास अर्थात् ३६० दिनों का एक ऋतु संवत्सर होता है। तपस्या में और प्रायश्चित्त में ऋतुमास से ही गिनती की जाती है। ऐसा निशीथ सूत्र के २० वें उद्देशक में स्पष्ट निर्देश किया गया है।

४. आदित्य (सूर्य) संवत्सर - आदित्य (सूर्य) १८३ दिन दक्षिणायन में और १८३ दिन उत्तरायन में रहता है। इस प्रकार ३६६ दिनों का वर्ष आदित्य संवत्सर कहलाता है अथवा सूर्य के २८ नक्षत्र और बारह राशि के भोग का काल आदित्य संवत्सर कहलाता है। सूर्य ३६६ दिनों में उक्त नक्षत्र और राशियों का भोग करता है। आदित्य मास $३०\frac{१}{२}$ दिन का होता है।

५. अभिवर्द्धित संवत्सर - तेरह चन्द्रमास का संवत्सर अभिवर्द्धित संवत्सर कहलाता है। चन्द्र संवत्सर में एक मास अधिक होने से यह संवत्सर अभिवर्द्धित संवत्सर कहलाता है। $३१\frac{१२१}{१२४}$ दिनों का एक अभिवर्द्धित मास होता है अर्थात् $३८३\frac{८८}{१२४}$ दिन का अभिवर्द्धित संवत्सर होता है।

आषाढ़ मास रात दिन की गणना की अपेक्षा २९ रात दिन का कहा गया है। इसी प्रकार भाद्रपद, कार्तिक, पौष, फाल्गुन और वैशाख मास भी २९-२९ रात दिन के कहे गये हैं। चन्द्र दिन मुहूर्त्त गणना की अपेक्षा कुछ अधिक २९ मुहूर्त्त का कहा गया है। उत्तराध्ययन सूत्र के २६ वें अध्ययन में कहा गया है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आसाढ-बहुलपक्खे, भद्दवए कत्तिए य पोसे य।
फग्गुण-वइसाहेसु य, बोद्धव्वा ओमरत्ताओ ॥ १५ ॥

अर्थ - आषाढ़, भाद्रपद, कार्तिक, पौष, फाल्गुन और वैशाख इन सब महीनों के कृष्ण-पक्ष में एक-एक तिथि घटती है ऐसा जानना चाहिये अर्थात् उपरोक्त महीनों के कृष्ण पक्ष १४ दिन का होता है। अतः महीना २९ दिन का होता है।

शुभ अध्यवसाय वाला जीव जो वैमानिक में उत्पन्न होने वला है उसके नाम कर्म की २९ प्रकृतियों का बन्ध होता है। २८ प्रकृतियाँ तो २८ वें समवाय में बताई है यहाँ 'तीर्थङ्कर' नामकर्म प्रकृति अधिक समझनी चाहिए।

प्रश्न - सूत्र, वृत्ति और वार्तिक किसे कहते हैं?

उत्तर - सूत्र का लक्षण इस प्रकार है -

अल्पाक्षरमसंदिग्धं, सारवद् गूढनिर्णयम् (विश्वतोमुखम्)।
अस्तोभमनवद्यं च, सूत्रं सूत्रविदो विदुः ॥

अर्थ - जिसमें शब्द थोड़े हों और अर्थ बहुत हो, सन्देह रहित हो, सार युक्त हो, स्पष्ट निर्णय वाला हो अथवा चारों तरफ के अर्थों से युक्त हो। बहुत विस्तार वाला न हो तथा सूत्र के सभी दोषों से वर्जित हो, उसे सूत्र कहते हैं।

प्रश्न - वृत्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर - सूत्र का अर्थ जिसमें कहा गया हो उसे वृत्ति कहते हैं।

प्रश्न - वार्तिक किसे कहते हैं ?

उत्तर - वृत्ति की विशेष व्याख्या को वार्तिक कहते हैं।

टीकाकार ने लिखा है - अङ्ग सूत्रों को छोड़ कर शेष १००० प्रमाण सूत्र है, एक लाख प्रमाण वृत्ति है और एक करोड़ प्रमाण वार्तिक हैं। अङ्गों का तो एक लाख प्रमाण सूत्र, एक करोड प्रमाण वृत्ति है तथा वार्तिक तो अपरिमित है।

तीसवां समवाय

तीसं मोहणीय ठाणा पण्णत्ता तंजहा -
जे यावि तसे पाणे, वारिमज्झे विगाहिया।
उदएण कम्मा मारेइ, महामोहं पकुव्वइ ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सीसावेढेण जे केई, आवेढेइ अभिक्खणं ।
तिव्वासुभसमायारे, महामोहं पकुव्वइ ॥ २ ॥
पाणिणा संपिहित्ता णं, सोयमावरिय पाणिणं ।
अंतो णदंतं मारेइ, महामोहं पकुव्वइ ॥ ३ ॥
जायतेयं समारब्भ, बहुं ओरुंभिया जणं ।
अंतो धूमेणं मारेइ, महामोहं पकुव्वइ ॥ ४ ॥
सीसम्मि जे पहणइ, उत्तमंगम्मि चेयसा ।
विभज्ज मत्थयं फाले, महामोहं पकुव्वइ ॥ ५ ॥
पुणो पुणो पणिहिए, हरित्ता उवहसे जणं ।
फलेणं अदुवा दंडेणं, महामोहं पकुव्वइ ॥ ६ ॥
गूढायारी णिगूहिज्जा, मायं मायाए छायए ।
असच्चवाई णिण्हाई, महामोहं पकुव्वइ ॥ ७ ॥
धंसेइ जो अभूएणं, अकम्मं अत्तकम्मुणा।
अदुवा तुमकासि त्ति, महामोहं पकुव्वइ ॥ ८ ॥
जाणमाणो परिसओ, सच्चामोसाणि भासइ।
अक्खीण झंझे पुरिसे, महामोहं पकुव्वइ ॥ ९ ॥
अणागयस्स णयवं, दारे तस्सेव धंसिया।
विउलं विक्खोभइत्ताणं, किच्चाणं पडिबाहिरं ॥ १० ॥
उवगसंतं पि झंपित्ता, पडिलोमाहिं वग्गूहिं ।
भोगभोगे वियारेइ, महामोहं पकुव्वइ ॥ ११ ॥
अकुमारभूए जे केइ, कुमारभूए त्तिहं वए ।
इत्थीहिं गिद्धे वसए, महामोहं पकुव्वइ ॥ १२ ॥
अबंभयारी जे केइ, बंभयारीत्ति हं वए ।
गदहे व्व गवां मज्झे, विस्सरं णयइ णदं ॥ १३ ॥
अप्पणो अहिए बाले, मायामोसं बहुं भसे ।
इत्थीविसयगेहीए, महामोहं पकुव्वइ ॥ १४ ॥

Jain Education International　　For Personal & Private Use Only　　www.jainelibrary.org

जं णिस्सिए उव्वहइ, जससाहिगमेण वा।
तस्स लुब्भइ वित्तम्मि, महामोहं पकुव्वइ ॥ १५ ॥
ईसरेण अदुवा गामेणं, अणीसरे ईसरीकए ।
तस्स संपयहीणस्स, सिरी अतुलमागया ॥ १६ ॥
ईसादोसेण आविट्ठे, कलुसाविलचेयसे ।
जे अंतरायं चेएइ, महामोहं पकुव्वइ ॥ १७ ॥
सप्पी जहा अंडउडं, भत्तारं जो विहिंसइ।
सेणावइं पसत्थारं, महामोहं पकुव्वइ ॥ १८ ॥
जे णायगं च रट्ठस्स, णेयारं णिगमस्स वा।
सेट्ठिं बहुरवं हंता, महामोहं पकुव्वइ ॥ १९ ॥
बहु जणस्स णेयारं, दीवं ताणं च पाणिणं ।
एयारिसं णरं हंता, महामोहं पकुव्वइ ॥ २० ॥
उवट्ठियं पडिविरयं, संजयं सुतवस्सियं ।
वुक्कम्म धम्माओ भंसेइ, महामोहं पकुव्वइ ॥ २१ ॥
तहेवाणंत णाणीणं, जिणाणं वरदंसिणं ।
तेसिणं अवण्णवं बाले, महामोहं पकुव्वइ ॥ २२ ॥
णेयाइयस्स मग्गस्स, दुट्ठे अवयरइ बहुं ।
तं तिप्पयंतो भावेइ, महामोहं पकुव्वइ ॥ २३ ॥
आयरिय उवज्झाएहिं, सुयं विणयं च गाहिए ।
ते चेव खिंसई बाले, महामोहं पकुव्वइ ॥ २४ ॥
आयरियउवज्झायाणं, सम्मं णो पडितप्पइ।
अप्पडिपूयए थद्धे, महामोहं पकुव्वइ ॥ २५ ॥
अबहुस्सुए य जे केई, सुएण पविकत्थइ।
सज्झायवायं वयइ, महामोहं पकुव्वइ ॥ २६ ॥
अतवस्सीए य जे केई, तवेण पविकत्थइ।
सव्वलोयपरे तेणे, महामोहं पकुव्वइ ॥ २७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साहारणट्ठा य जे केई, गिलाणम्मि उवट्ठिए ।
पभू ण कुणई किच्चं, मज्झं पि से ण कुव्वइ ॥ २८ ॥
सढे णियडिपण्णाणे, कलुसाउल चेयसे ।
अप्पणो य अबोही य, महामोहं पकुव्वइ ॥ २९ ॥
जे कहाहिगरणाइं, संपउंजे पुणो पुणो ।
सव्व तित्थाण भेयाणं, महामोहं पकुव्वइ ॥ ३० ॥
जे य आहम्मिए जोए, संपउंजे पुणो पुणो ।
सहाहेउं सहीहेउं, महामोहं पकुव्वइ ॥ ३१ ॥
जे य माणुस्सए भोए, अदुवा पारलोइए ।
तेऽतिप्पयंतो आसयइ, महामोहं पकुव्वइ ॥ ३२ ॥
इड्ढी जुई जसो वण्णो, देवाणं बल वीरियं ।
तेसिं अवण्णवं बाले, महामोहं पकुव्वइ। ३३ ॥
अपस्समाणो पस्सामि, देवे जक्खे य गुज्झगे ।
अण्णाणी जिणपूयट्ठी, महामोहं पकुव्वइ ॥ ३४ ॥

थेरे णं मंडियपुत्ते तीसं वासाइं सामण्णपरियायं पाउणित्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे । एगमेगे णं अहोरत्ते तीस मुहुत्ते मुहुत्तग्गेणं पण्णत्ते । एएसि णं तीसाए मुहुत्ताणं तीसं णामधेज्जा पण्णत्ता तंजहा - रोद्दे, सत्ते, मित्ते, वाऊ, सुपीए, अभिचंदे, माहिंदे, पलंबे, बंभे, सच्चे, आणंदे, विजए, विस्ससेणे, पयावच्चे, उवसमे, ईसाणे, तुट्ठे, भावियप्पा, वेसमणे, वरुणे, सतरिसभे, गंधव्वे, अग्गिवेसायणे, आतवे, आवत्ते, तुट्ठवे, भूमहे, रिसभे, सव्वट्ठसिद्धे रक्खसे । अरे णं अरहा तीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। सहस्सारस्स णं देविंदस्स देवरण्णो तीसं सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ताओ। पासे णं अरहा तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए । समणे भगवं महावीरे तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए । रयणप्पभाए पुढवीए तीसं णिरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहे सत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं तीसं सागरोवमाइं ठिई

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। उवरिम उवरिम गेविज्जयाणं देवाणं जहण्णेणं तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा उवरिम मज्झिम गेविज्जएसु विमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा तीसेहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति णीससंति वा। तेसिणं देवाणं तीसेहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे तीसेहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्व दुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ ३० ॥

कठिन शब्दार्थ - **मोहणीय ठाणा** - मोहनीय कर्म बांधने के स्थान, **वारिमज्झे** - वारिमध्य-जल में, **विगाहिया** - डाल कर, **उदएण कम्मा** - पानी के आघात से, **महामोहं पकुव्वइ** - महा मोहनीय कर्म बांधता है, **तिव्वासुभ समायारे** - तीव्र अशुभ परिणामों से युक्त होकर, **सीसावेढेण आवेढेइ** - किसी त्रस प्राणी के शिर पर गीला चमड़ा बांध कर उसे मार देता है। **पाणिणं** - प्राणियों के, **सोयं** - स्रोत-इन्द्रिय द्वारों को, **पाणिणा** - हाथ से, **संपिहित्ता** - ढक कर, **आवरिय** - सांस रोक कर, **अंतो णदंतं** - अन्दर घुर घुर शब्द करते हुए, **ओरुंभिया** - मण्डप या बाड़े आदि स्थानों में घेर कर, **जायतेयं** - जाततेजस्-चारों ओर अग्नि, **समारब्भ** - जला कर, **अंतो धूमेण** - धूँए से दम घोट कर, **चेयसा** - किसी को मारने के लिए दुष्ट भाव से, **उत्तमंगम्मि सीसम्मि** - उत्तम अंग मस्तक पर, **पहणइ** - शस्त्रों से प्रहार करता है, **मत्थयं** - मस्तक को, **विभज्ज** - विदारण करके, **फाले** - फोड़ देता है, **पणिहिए** - अनेक प्रकार के वेष धारण करके, **हरित्ता** - हरण करके **उवहसे** - हंसता है, **गूढायारी** - गूढाचारी-गुप्त रूप से अनाचारों का सेवन करने वाला, **णिगूहिज्जा** - कपट पूर्वक छिपाता है, **छायए** - ढकता है, **णिण्हाई** - मूल गुण और उत्तर गुण में लगे दोषों को छिपाता है अथवा सूत्रों के वास्तविक अर्थ को छिपाकर मनमाना आगमविरुद्ध अर्थ करता है, **अभूएणं धंसेइ** - निर्दोष व्यक्ति पर झूठे दोषों का आरोप करता है, **अकम्मं अत्तकम्मुणा** - अपने किये हुए दुष्ट कार्य दूसरों के सिर मढता है, **तुममकासि** - यह पाप तुमने किया है, **सच्चामोसाणि** - सत्यामृषा-मिश्रभाषा बोलता है, ***अक्खीणझंझे*** *- कलह को शान्त न करके सदा बनाये रखता है,* ***णयवं*** *- नयमान्-नीतिमान्* राजा का मंत्री, **अणागयस्स** - अनायक अर्थात् जिसके ऊपर कोई नायक (राजा) न हो *यानी चक्रवर्ती का,* ***धंसिया*** *- नाश करके,* ***विक्खोभइत्ताणं*** *- क्षुब्ध कर के,* ***पडिलोमाहिं-***

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिलोभ-विपरीत, **वग्गूहिं** - वचनों से, **झंपित्ता** - अपमान करके, **अकुमारभूए** - अकुमारभूत-विवाहित अर्थात् बाल ब्रह्मचारी नहीं है, **कुमारभूएति हं** - अपने आपको अविवाहित अर्थात् बाल ब्रह्मचारी, **वए** - प्रकट करता है, **गवां मज्झे** - गायों के बीच में, **गदहे व्व** - गधे का स्वर शोभा नहीं देता वैसे ही, **इत्थी विसय गेहीए** - स्त्री सुखों में गृद्ध आसक्त रहने वाला, **जससाहिगमेण** - जिसकी सेवा करके अपना निर्वाह करता है, **अणीसरे** - अनीश्वर असमर्थ दीन व्यक्ति, **ईसरेण** - अपने स्वामी के द्वारा, **गामेणं** - ग्राम से-जनसमूह के द्वारा, **ईसरीकए**-ईश्वरीकृत-समर्थ बना दिया जाय, **सिरी** - श्री-सम्पत्ति, **ईसादोसेण** - ईर्ष्या दोष से अथवा ईर्ष्या द्वेष से, **आविट्ठे** - युक्त, **कलुसाविल चेयसे** - द्वेष तथा लोभ से दूषित चित्त वाला हो कर, **सप्पी** - सर्पिणी, **अंड उडं** - अंड कूट अथवा अंड पुट, **भत्तारं** - भर्तार-स्वामी की, **रट्ठस्स** - राष्ट्र-देश के, **णेयारं** - नेता, **बहुरवं** - बहुत यशस्वी, **उवट्ठियं** - उपस्थित - दीक्षा लेने को तैयार, **पडिविरयं** - दीक्षित, **सुतवस्सियं** - उग्र तपस्वी, **वुक्कम्म** - बलात्, **धम्माओ**-धर्म से, **भंसेइ** - भ्रष्ट करता है, **अवण्णवं**- अवर्णवाद, **दुट्ठे** - दुष्ट, **अवयरइ** - निन्दा करता है, **तिप्पयंतो भावेइ** - धर्म के प्रति द्वेष और निन्दा के भावों का प्रचार करके धर्म से विमुख करता है, **खिंसइ** - खीजाता - चिढाता (निन्दा करता) है, **थद्धे** - अभिमान करने वाला, **अप्पडिपूयए** - सेवा की उपेक्षा करने वाला, **सव्वलोय परे तेणे** - लोक में सबसे बड़ा चोर, **सढे** - शठ-धूर्त, **संपउंजे** - प्रयोग करता है, **सहाहेउं** - श्लाघा हेतु-अपनी प्रशंसा के लिये, **आहम्मिएजोए** - अधार्मिक योगों का, **संपओ** - प्रयोग करता है, **अतिप्पयंतो** - तृप्त न होता हुआ, **आसयइ** - आस्वादन करता है, **गुज्झगे** - गुह्यक-भवनपति देव।

भावार्थ - मोहनीय कर्म बांधने के तीस स्थान कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं -

१. जो जीव त्रस प्राणियों को जल में डाल कर पानी के आघात से यानी पानी में डूबा कर उन्हें मार देता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है।। १ ॥

२. जो जीव बार बार तीव्र अशुभ परिणामों से युक्त होकर किसी त्रस प्राणी के शिर पर गीला चमड़ा बांध कर उसे मार देता है वह महामोहनीय कर्म बांधता है ॥ २ ॥

३. जो जीव प्राणियों के नाक, मुख आदि इन्द्रिय द्वारों को हाथ से ढक कर और सांस रोक कर अन्दर घुरघुर शब्द करते हुए उसे मार देता है वह महामोहनीय कर्म उपार्जन करता है।। ३ ॥

४. जो व्यक्ति बहुत से प्राणियों को मण्डप या बाड़े आदि स्थानों में घेर कर चारों ओर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अग्नि जला देता है और धूएं से दम घोट कर निर्दयता पूर्वक मार देता है। क्रूर अध्यवसाय वाला वह दुरात्मा महामोहनीय कर्म उपार्जन करता है ॥ ४ ॥

५. जो व्यक्ति किसी प्राणी को मारने के लिए दुष्ट भाव से शरीर में सब से उत्तम (प्रधान) अङ्ग मस्तक पर तलवार, मुद्गर आदि शस्त्रों से प्रहार करता है। प्रकृष्ट प्रहार द्वारा मस्तक को विदारण करके फोड़ देता है। वह महामोहनीय कर्म उपार्जन करता है ॥ ५ ॥

६. जो धूर्त अनेक प्रकार के वेष धारण करके मार्ग में जाते हुए पथिकों को धोखा देता है। उन्हें निर्जन स्थान में ले जाकर योग भावित फल को खिला कर मारता है अथवा लाठी आदि के प्रहार से उनके प्राणों का विनाश करता है और उनके धन का हरण करके हंसता है अर्थात् अपनी धूर्तता पूर्ण सफलता पर प्रसन्न होता है, वह महामोहनीय कर्म उपार्जन करता है॥ ६॥

७. जो व्यक्ति गुप्त रीति से अनाचारों का सेवन करता है और कपट पूर्वक उन्हें छिपाता है। अपनी एक माया को दूसरी माया से ढकता है। असत्यवादी यानी दूसरों के प्रश्न का झूठा उत्तर देता है। मूलगुण और उत्तरगुण में लगे हुए दोषों को छिपाता है अथवा सूत्रों के वास्तविक अर्थ को छिपा कर अपनी इच्छानुसार आगम विरुद्ध अर्थ करता है, वह महामोहनीय कर्म उपार्जन करता है ॥ ७ ॥

८. जो व्यक्ति निर्दोष व्यक्ति पर झूठे दोषों का आरोप करता है और अपने किये हुए दुष्ट कार्य उसके सिर मढता है अथवा अमुक ने पापाचरण किया है यह जानते हुए भी 'यह पाप तुमने किया हैं' ऐसा बोलता है, वह महामोहनीय कर्म उपार्जन करता है ॥ ८ ॥

९. जो व्यक्ति यथार्थता को जानते हुए भी सभा में अथवा बहुत से लोगों के बीच में मिश्र भाषा का प्रयोग करता है यानी थोड़ा सत्य और बहुत झूठ बोलता है, कलह को शान्त न करके सदा बनाये रखता है, वह पुरुष महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।। ९ ॥

१०. नयमान् अर्थात् किसी राजा का मन्त्री राजा की रानियों का अथवा राज्य लक्ष्मी का विनाश करके राजा की भोगोपभोग सामग्री का नाश करता है। सामन्त वगैरह लोगों में भेद डाल कर राजा को क्षुब्ध कर देता है और राजा को राजगद्दी से हटा कर स्वयं राज्य का उपभोग करता है। यदि मन्त्री को अनुकूल करने के लिए राजा उसके पास आकर अनुनय विनय करता है तो दुर्वचन कह कर वह उसका अपमान करता है और उसे भोगोपभोग की सामग्री से वञ्चित कर देता है। इस प्रकार कृतघ्नता पूर्ण व्यवहार करने वाला विश्वासघाती मन्त्री महामोहनीय कर्म बांधता है।। १०-११ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

११. जो पुरुष बालब्रह्मचारी नहीं है किन्तु लोगों में अपने आपको बालब्रह्मचारी प्रकट करता है। स्त्रियों में गृद्ध होकर स्त्रियों के वश में रहता है वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ॥ १२॥

१२. जो पुरुष अब्रह्मचारी है यानी मैथुन से निवृत्त नहीं है फिर भी दूसरों को धोखा देने के लिए अपने आप को ब्रह्मचारी बतलाता है। जैसे गायों के बीच में गधे का स्वर शोभा नहीं देता वैसे ही उसका यह कथन भी सज्जनों में अनादेय और अशोभनीय होता है। ऐसा करने वाला वह अज्ञानी अपनी आत्मा का ही अहित करता है। उसे अपनी झूठी बात बनाये रखने के लिए बहुत बार मायामृषावाद का आश्रय लेना पड़ता है। स्त्री सुखों में आसक्त रहने वाला वह पुरुष महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ॥ १३-१४ ॥

१३. जो व्यक्ति जिस राजा या सेठ के आश्रय में रह कर आजीविका करता है। अथवा जिसके प्रताप से या जिसकी सेवा करके अपना निर्वाह करता है उसी राजा या सेठ के धन में ललचा कर अनुचित उपायों से उसे लेने का प्रयत्न करता है वह कृतघ्न पुरुष महामोहनीय कर्म का उपार्जन करता है ॥ १५ ॥

१४. कोई असमर्थ दीन व्यक्ति अपने स्वामी द्वारा अथवा जनसमूह के द्वारा समर्थ बना दिया जाय और उनके योग से उस निर्धन पुरुष के पास अतुल यानी बहुत सम्पत्ति आ जाय। इस प्रकार सम्पन्न होकर यदि वह अपने उपकारक स्वामी अथवा जनसमूह के उपकारों को भूल कर उन्हीं के साथ ईर्षा करने लगे और द्वेष तथा लोभ से दूषित चित्त वाला होकर उनकी धन प्राप्ति में और भोग सामग्री की प्राप्ति में विघ्न डाले तो वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ॥ १६-१७ ॥

१५. जैसे सर्पिणी अपने अण्डों के समूह को मार कर स्वयं खा जाती है, उसी प्रकार जो व्यक्ति सब का पालन करने वाले घर के स्वामी की, सेनापति की, राजा की, कलाचार्य या धर्माचार्य की हिंसा करता है वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है क्योंकि उपरोक्त व्यक्तियों की हिंसा करने से उनके आश्रित बहुत से व्यक्तियों की परिस्थिति शोचनीय बन जाती है ॥ १८ ॥

१६. जो व्यक्ति देश के स्वामी को अथवा निगम यानी वणिक् समूह के नेता बहुत यशस्वी सेठ को मारता है वह महामोहनीय कर्म बांधता है ॥ १९ ॥

१७. जैसे समुद्र में गिरे हुए प्राणियों के लिए द्वीप आधार भूत है और वह उनकी रक्षा करने में सहायक होता है, उसी प्रकार जो व्यक्ति बहुत से प्राणियों के लिए द्वीप की तरह

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

आधार भूत और रक्षा करने वाला है अथवा जो दीपक की तरह अज्ञानान्धकार को हटा कर ज्ञान का प्रकाश देने वाला है ऐसे नेता पुरुष की जो हिंसा करता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है ॥ २० ॥

१८. उपस्थित यानी जो दीक्षा लेने को तैयार हुआ है, दीक्षाभिलाषी है उसकी दीक्षा में बाधा डाल कर उसके भाव उतारे तथा जिसने दीक्षा अङ्गीकार कर रखी है, जो संयत और उग्र तपस्वी है ऐसे पुरुष को जो बलात् धर्म से भ्रष्ट करता है वह महामोहनीय कर्म बांधता है ॥ २१ ॥

१९. जो अज्ञानी अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन के धारण करने वाले, रागद्वेष के विजेता तीर्थङ्कर भगवान् का अवर्णवाद बोलता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है ॥ २२ ॥

२०. जो दुष्ट आत्मा सम्यग् ज्ञान दर्शन युक्त न्याय मार्ग की बहुत निन्दा करता है, धर्म के प्रति द्वेष और निन्दा के भावों का प्रचार करके भव्यात्माओं को धर्म से विमुख करता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है ॥ २३ ॥

२१. जिन आचार्य और उपाध्याय से श्रुत और विनय की शिक्षा प्राप्त की है उन्हीं की जो अज्ञानी शिष्य निन्दा करता है, ऐसा अविनीत कृतघ्न शिष्य महामोहनीय कर्म बांधता है ॥ २४ ॥

२२. जो शिष्य आचार्य उपाध्याय की सम्यक् प्रकार से सेवा भक्ति नहीं करता किन्तु अपने ज्ञान का अभिमान करता हुआ आचार्य उपाध्याय की सेवा की उपेक्षा करता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है ॥ २५ ॥

२३. जो अबहुश्रुत होते हुए भी "मैं श्रुतवान् हूँ, अनुयोगधर हूँ", इस प्रकार आत्मश्लाघा करता है। क्या तुम अनुयोगाचार्य हो ? वाचक हो ? इस प्रकार किसी के पूछने पर वैसा न होते हुए भी हां कह देता है तथा 'मैं ही शुद्ध स्वाध्याय करने वाला हूँ' इस प्रकार झूठी प्रशंसा करता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है ॥ २६ ॥

२४. जो तपस्वी नहीं होते हुए भी अपने आपको तपस्वी प्रसिद्ध करता है, ऐसा व्यक्ति लोक में सब से बड़ा चोर है, वह महामोहनीय कर्म उपार्जन करता है ॥ २७ ॥

२५. जो शिष्य आचार्य उपाध्याय और दूसरे साधुओं के बीमार होने पर शक्ति होते हुए भी उपकार के लिए उनकी यथोचित सेवा नहीं करता, किन्तु मन में सोचता है कि जब मैं बीमार था तो उन लोगों ने भी मेरी सेवा नहीं की थी तो फिर मैं इनकी सेवा क्यों करूँ ? ऐसा सोच कर सेवा से बचने के लिए छल कपट का आश्रय लेता है। छल-कपट करने में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निपुण कलुषित चित्त वाला वह धूर्त व्यक्ति तीर्थङ्कर भगवान् की आज्ञा की विराधना करके अपनी आत्मा के लिए अबोधि भाव मिथ्यात्व उत्पन्न करता है और महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ॥ २८-२९ ॥

२६. जो व्यक्ति बार बार हिंसाकारी शस्त्रों का और राजकथा आदि हिंसक और कामोत्पादक विकथाओं का प्रयोग करता है तथा कलह बढ़ाता है। संसार सागर से तिराने वाले ज्ञानादि तीर्थ का नाश करता है। वह दुरात्मा महामोहनीय कर्म उपार्जन करता है ॥ ३० ॥

२७. जो पुरुष अपनी प्रशंसा के लिए अथवा अपने मित्र की प्रशंसा के लिए अधार्मिक एवं हिंसायुक्त निमित्त वशीकरण आदि योगों का बार बार प्रयोग करता है। वह महामोहनीय कर्म उपार्जन करता है ॥ ३१ ॥

२८. जो मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों में तृप्त न होता हुआ अर्थात् उनमें अत्यन्त गृद्ध होता हुआ उनका आस्वादन करता है अथवा पारलौकिक-देव सम्बन्धी कामभोगों की अत्यन्त अभिलाषा करता है वह महामोहनीय कर्म उपार्जन करता है ॥ ३२ ॥

२९. जो अज्ञानी पुरुष अनेक अतिशय वाले वैमानिक आदि देवों की ऋद्धि, द्युति-कान्ति, यश, वर्ण, बल और वीर्य का अभाव बताते हुए उनका अवर्णवाद बोलता है। वह महामोहनीय कर्म का उपार्जन करता है ॥ ३३ ॥

३०. जो अज्ञानी सर्वज्ञ की तरह पूजा प्रतिष्ठा प्राप्त करने की इच्छा से देव-ज्योतिषी और वैमानिक, यक्ष-वाणव्यन्तर और गुह्यक - भवनपति, इन चार जाति के देवों को नहीं देखता हुआ भी "ये मुझे दिखाई देते हैं" इस प्रकार कहता है, ऐसा मिथ्या भाषण करने वाला व्यक्ति महामोहनीय कर्म उपार्जन करता है ॥ ३४ ॥

छठे गणधर श्री मण्डितपुत्र स्वामी तीस वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन करके सिद्ध, बुद्ध यावत् सब दुःखों से मुक्त हुए थे। प्रत्येक अहोरात्र मुहूर्त्त की अपेक्षा तीस मुहूर्त्त का होता है। इन तीस मुहूर्त्तों के तीस नाम कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं.- १. रौद्र २. शक्त ३. मित्र ४. वायु ५. सुप्रीत ६. अभिचन्द्र ७. महेन्द्र ८. प्रलम्ब ९. ब्रह्म १०. सत्य ११. आनन्द १२. विजय १३. विश्वसेन १४. प्राजापत्य १५. उपशम १६. ईशान १७. तष्ट १८. भावितात्मा १९. वैश्रमण २०. वरुणं २१. शतऋषभ २२. गन्धर्व २३. अग्निवैश्यायन २४. आतप २५. आवर्त्त २६. तष्टवान् २७. भूमहान् २८. ऋषभ २९. सर्वार्थ सिद्ध ३०. राक्षस। अठारहवें तीर्थङ्कर श्री अरनाथ स्वामी के शरीर की ऊँचाई तीस धनुष थी। देवों के राजा देवों के इन्द्र सहस्रार नामक आठवें इन्द्र के तीस हजार सामानिक देव कहे गये हैं। तेवीसवें तीर्थङ्कर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री पार्श्वनाथ भगवान् तीस वर्ष तक गृहस्थवास में रह कर फिर गृहस्थवास छोड़ कर अनगार-साधु बने थे। चौबीसवें तीर्थङ्कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी तीस वर्ष तक गृहस्थवास में रह कर फिर गृहस्थवास छोड़ कर अनगार-साधु बने थे। इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में तीस लाख नरकावास कहे गये हैं। इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति तीस पल्योपम की कही गई है। तमस्तमा नामक सातवीं नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति तीस सागरोपम की कही गई है। असुरकुमार देवों में कितनेक देवों की स्थिति तीस पल्योपम की कही गई है। उपरिम उपरिम नामक नववें ग्रैवेयक विमान में देवों की जघन्य स्थिति तीस सागरोपम की कही गई है। जो देव उपरिम मध्यम नामक आठवें ग्रैवयक विमानों में देव रूप से उत्पन्न होते हैं। उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति तीस सागरोपम की कही गई है। वे देव तीस पखवाड़ों से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को तीस हजार वर्षों से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं, जो तीस भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ॥ ३० ॥

विवेचन - सामान्यतः मोहनीय शब्द से आठों कर्म लिये जाते हैं और विशेष रूप से आठों कर्मों में से चौथा कर्म मोहनीय लिया जाता है। वैसे आठों कर्मों के और मोहनीय कर्म बन्ध के अनेक कारण हैं लेकिन शास्त्रकारों ने विशेष रूप से मोहनीय कर्म बन्ध के तीस स्थान गिनाये हैं। इन्हें सेवन करने वालों के अध्यवसाय अत्यन्त तीव्र एवं क्रूर होते हैं। जिन पर इनका प्रयोग किया जाता है उनके परिणाम भी तीव्र वेदनादि कारणों से अत्यन्त संक्लिष्ट एवं महामोह उत्पन्न करने वाले हो जाते हैं इस कारण इन स्थानों का कर्त्ता अपने कार्य के अनुरूप ही सैकड़ों भवों तक दुःख देने वाले महामोह रूप कर्म बांधता है।

मोहनीय कर्म आठ कर्मों का राजा है जैसा कि विनयचन्द चौबीसी के रचयिता प्रज्ञाचक्षु तत्त्ववेत्ता सुश्रावक श्री विनयचन्द जी कुम्भट (दहीकडा, जोधपुर) ने नववें भगवान् सुविधिनाथ की प्रार्थना करते हुए कहा है -

अष्ट कर्म नो राजवी हो, मोह प्रथम क्षय कीन ।
शुद्ध समकित चारित्रनो हो, परम क्षायिक गुण लीन ॥ ३ ॥

मोहकर्म का क्षय होने से ही क्षायिक समकित की प्राप्ति होती है और क्षायिक समकित की प्राप्ति होने से क्षायिक चारित्र (यथाख्यात चारित्र) की प्राप्ति होती है और फिर केवलज्ञान हो जाता है। कर्म क्षय का यही क्रम है - सबसे पहले मोहनीय कर्म क्षय होता है उसके बाद ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय और अन्तराय तो एक अन्तर्मुहूर्त्त में क्षय हो जाते हैं और केवलज्ञान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रगट हो जाता है। आयुष्य आदि चार कर्म तो जली हुई रस्सी के समान हो जाते हैं आयुष्य कर्म का क्षय होने पर चारों कर्म (वेदनीय, नाम, गोत्र, आयुष्य) एक साथ क्षय हो जाते हैं। इनके क्षय होते ही जीव सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होकर सिद्धि गति में विराजमान हो जाता है। इसी क्रम को बतलाते हुए दशाश्रुतस्कन्ध की पांचवीं दशा में इस प्रकार बतलाया है-

ताड़ वृक्ष बहुत लम्बा होता है, उसके अग्रभाग पर सूई सरीखा तीखा उसी वृक्ष का अंश रूप सूई रूप होता है। उसको नष्ट कर देने से सारा ताड़ वृक्ष सूख जाता है। सेनापति के मारे जाने पर सेना भाग जाती है। अग्नि में ईंधन डालना बन्द करने से अग्नि स्वयं बूझ जाती है उसी प्रकार "एवं कम्माणि खीयंति, मोहणिज्जे खयं गए" उपरोक्त दृष्टान्तों के अनुसार एक मोहनीय कर्म के क्षय होने पर सर्व कर्म क्षय हो जाते हैं। जो बीज जला दिये जाते हैं उन से फिर अंकुर पैदा नहीं होता । उसी प्रकार मोहनीय कर्म के क्षय होने पर भव (संसार) रूपी अंकुर पैदा नहीं होता है।

दग्धे बीजे यथात्यन्तं, प्रादुर्भवति नांकुरः ।
कर्म बीजे तथा दग्धे, न रोहति भवांकुरः ॥

अर्थ - जिस प्रकार बीज के सर्वथा जल जाने पर अंकुर पैदा नहीं होता है, उसी प्रकार कर्म रूपी बीज के जल जाने पर भव रूपी अंकुर पैदा नहीं होता है अर्थात् जन्मान्तर नहीं होता है तथा जिस वृक्ष का मूल सूख गया है उसके ऊपर कितना ही पानी डाला जाय हरा भरा नहीं हो सकता इसी प्रकार मोहनीय कर्म के क्षय होने पर दूसरे कर्म भी नहीं बन्धते हैं। बल्कि इसी भव में सर्व कर्म क्षय हो जाते हैं। इसीलिये कवि विनयचन्दजी ने तेरहवें तीर्थङ्कर श्री विमलनाथ स्वामी की स्तुति करते हुए भव्य जीवों को प्रेरणा दी है -

विमल जिनेश्वर सेविये, थारी बुध निर्मल हो जाय रे जीवा।
विषय-विकार बिसार ने, तू मोहनी करम खपाय रे जीवा ॥
विमल जिनेश्वर सेविये ॥ १ ॥

महामोहनीय कर्म बन्ध के तीस स्थान बताये हैं - यहाँ 'महामोहनीय' शब्द का अर्थ मिथ्यात्व भी किया है। अठारह पापों में मिथ्यात्व सब पापों का जनक (बाप) है, राजा है, सर्व शिरोमणि है। जैसे राजा के रहते हुए सब प्रजा सुखचैन पूर्वक निर्भय रहती है। उसी प्रकार मिथ्यात्व रूपी राजा के रहते हुए सतरह पाप फलते-फूलते हैं और निर्भय रहते हैं। वे सोचते हैं कि - हमारा राजा मिथ्यात्व मौजूद है इसलिये हमें कोई डर नहीं। हमारा कोई कुछ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं बिगाड़ सकता, हमें कोई नष्ट नहीं कर सकता परन्तु ज्यों ही मिथ्यात्व रूपी राजा की जड़ हिली अर्थात् मिथ्यात्व का क्षय हुआ त्यों ही सतरह ही पाप भयभीत हो जाते हैं डर जाते हैं कि - अब हम लम्बे समय तक स्थिर नहीं रह सकते, अब हमारा भी क्षय निकट भविष्य में अवश्यंभावी है। अतः ज्ञानी फरमाते हैं कि इन मोहनीय बन्ध के कारणों का किसी भी व्यक्ति को सेवन नहीं करना चाहिये ।

महामोहनीय के तीस स्थानों में से ११ वें स्थान में ये शब्द आये हैं कि - **'अकुमारभूए जे केइ, कुमारभूएत्तिहं वए'**

शब्द कोश में 'कुमार' शब्द के कई अर्थ किये हैं - यथा-

प्रथम उम्र वाला व्यक्ति, कार्तिकेय, शुक (तोता) पक्षी, घुडसवार, वरुण, वृक्ष, सिंधुनद, शुद्ध सोना, बालक, अविवाहित, युवराज (जिसका पिता राजा मौजूद है और वह स्वयं राजा नहीं बना है), बाल ब्रह्मचारी आदि आदि अनेक अर्थ दिये गये हैं -

जैसा कि ठाणाङ्ग सूत्र के पांचवें ठाणे के तीसरे उद्देशक में कहा है -

'पंच तित्थयरा कुमारवासमज्झे वसित्ता मुंडा जाव पव्वइया तंजहा - वासुपुज्जे मल्ली अरिट्ठणेमी पासे वीरे ।'

अर्थ - वासुपूज्य स्वामी, मल्लिनाथ, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ एवं महावीर स्वामी इन पांच तीर्थङ्करों ने कुमार अवस्था में दीक्षा ली थी। यहाँ 'कुमार' शब्द का अर्थ है राजा बने बिना अर्थात् राज्य भोग किये बिना। यही बात समवायाङ्ग सूत्र के १९ वें समवाय में भी कही है। वहाँ लिखा है कि - १९ तीर्थङ्करों ने राज्य भोग कर दीक्षा ली थी शेष पांच के लिये लिखा है -

शेषास्तु पञ्च कुमारभावे एवेत्याह च - "वीरं अरिट्ठनेमिं पासं, मल्लिं च वासुपुज्जं च । एए मोत्तूण जिणे अवसेसा आसी रायाणो ॥ १ ॥"

यहाँ दोनों जगह पर कुमार शब्द का अर्थ करना चाहिये - राज्य भोग किये बिना अर्थात् राजा बने बिना।

नव मोटी पदवियां गिनी गई हैं यथा - १. सम्यग्दृष्टि २. श्रावक ३. मांडलिकराजा ४. बलदेव ५. वासुदेव ६. चक्रवर्ती ७. साधु ८. केवली और ९. तीर्थङ्कर। इनमें से शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ इन तीन को इस भव में ६ पदवियाँ प्राप्त हुई थी (सम्यग्दृष्टि, मांडलिक राजा, चक्रवर्ती, साधु, केवली, तीर्थङ्कर)। उपरोक्त वासुपूज्य आदि पांच को सिर्फ चार पदवियाँ प्राप्त हुई थी (सम्यग्दृष्टि, साधु, केवली, तीर्थङ्कर) शेष सोलह तीर्थंकरों को पांच पदवियाँ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्राप्त हुई थी (सम्यग्दृष्टि, साधु, केवली, तीर्थङ्कर) शेष सोलह तीर्थंकरों को पांच पदवियाँ प्राप्त हुई थी (सम्यग्दृष्टि, माण्डलिक, राजा, साधु, केवली, तीर्थङ्कर)। तीर्थङ्करों में उस भव में कम से कम चार पदवियाँ और ज्यादा से ज्यादा छह पदवियाँ प्राप्त हो सकती हैं। इससे कम या ज्यादा प्राप्त नहीं हो सकती है।

महामोहनीय बन्ध के स्थानों में कुमार शब्द का अर्थ अविवाहित एवं बाल ब्रह्मचारी लेना चाहिये । अतः निष्कर्ष यह निकला कि - जो विवाहित हैं वह अपने आपको अविवाहित कहे तथा जो बाल-ब्रह्मचारी नहीं है वह अपने आपको बाल-ब्रह्मचारी कहे तो वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

इकतीसवां समवाय

एक्कतीसं सिद्धाइगुणा पण्णत्ता तंजहा-खीणे आभिणिबोहिय णाणावरणे, खीणे सुय णाणावरणे, खीणे ओहि णाणावरणे, खीणे मणपज्जव णाणावरणे, खीणे केवल णाणावरणे, खीणे चक्खु दंसणावरणे, खीणे अचक्खु दंसणावरणे, खीणे ओहि दंसणावरणे, खीणे केवल दंसणावरणे, खीणे णिद्दा, खीणे णिद्दाणिद्दा, खीणे पयला, खीणे पयला पयला, खीणे थीणद्धी, खीणे सायावेयणिज्जे, खीणे असाया वेयणिज्जे, खीणे दंसणमोहणिज्जे, खीणे चरित्तमोहणिज्जे, खीणे णेरइयाउए, खीणे तिरियाउए, खीणे मणुस्साउए, खीणे देवाउए, खीणे उच्चागोए, खीणे णीयागोए (णीच्चागोए), खीणे सुभणामे, खीणे असुभणामे, खीणे दाणंतराए, खीणे लाभंतराए, खीणे भोगंतराए, खीणे उवभोगंतराए, खीणे वीरियंतराए । मंदरे णं पव्वए धरणितले एक्कतीसं जोयण-सहस्साइं छच्चेव तेवीसे जोयणसए किंचिदेसूणा परिक्खेवेणं पण्णत्ते। जया णं सूरिए सव्व बाहिरियं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं इहगयस्स मणुस्सस्स एक्कतीसेहिं जोयणसहस्सेहिं अट्ठहि य एक्कतीसेहिं जोयणसएहिं तीसाए सट्ठिभागे जोयणस्स सूरिए चक्खुफासं हव्वमागच्छइ। अभिवड्डिए णं मासे एक्कतीसं साइरेगाइं राइंदियाइं राइंदियग्गेणं पण्णत्ते। आइच्चे णं मासे एक्कतीसं राइंदियाइं किंचि विसेसूणाइं राइंदियग्गेणं पण्णत्ते। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं एक्कतीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं एक्कतीसं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एक्कतीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं एक्कतीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। विजय वेजयंत जयंत अपराजियाणं देवाणं जहण्णेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा उवरिमउवरिम गेविज्जय विमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसिणं देवाणं उक्कोसेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा एक्कतीसेहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा णीससंति वा। तेसिणं देवाणं एक्कतीसेहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे एक्कतीसेहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ ३१ ॥

कठिन शब्दार्थ - सिद्धाइगुणा - सिद्धादिगुण-सिद्ध भगवान् आदि (प्रथम समय) के गुण, **खीणे** - क्षय, **थीणद्धी** - स्त्यानगृद्धि, **धरणितले** - पृथ्वी पर, **परिक्खेवेणं** - परिक्षेप-परिधि, **इहगयस्स मणुस्सस्स** - इस भरत क्षेत्र में रहे हुए मनुष्य के।

भावार्थ - सिद्ध भगवान् के इकतीस गुण कहे गये हैं। ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों का सर्वथा क्षय कर जो सिद्धिगति में विराजमान हैं वे सिद्ध कहलाते हैं। ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों की इकतीस प्रकृतियाँ हैं। सिद्ध भगवान् ने इन प्रकृतियों का सर्वथा क्षय कर दिया है। इसलिए उनमें क्षय से उत्पन्न होने वाले इकतीस गुण होते हैं। वे इस प्रकार हैं- १. आभिनिबोधिक यानी मति ज्ञानावरण का क्षय, २. श्रुत ज्ञानावरण का क्षय ३. अवधि ज्ञानावरण का क्षय ४. मनःपर्यय ज्ञानावरण का क्षय ५. केवल ज्ञानावरण का क्षय ६. चक्षु दर्शनावरण का क्षय ७. अचक्षु दर्शनावरण का क्षय ८. अवधि दर्शनावरण का क्षय ९. केवल दर्शनावरण का क्षय, १०. निद्रा का क्षय ११. निद्रानिद्रा का क्षय १२. प्रचला का क्षय १३. प्रचला प्रचला का क्षय १४. स्त्यानगृद्धि का क्षय १५. सातावेदनीय का क्षय १६. असाता वेदनीय का क्षय १७. दर्शनमोहनीय का क्षय १८. चारित्र मोहनीय का क्षय १९. नरक आयु का क्षय २०. तिर्यञ्च आयु का क्षय २१. मनुष्य आयु का क्षय २२. देव आयु का क्षय २३. उच्च गोत्र का क्षय २४. नीच गोत्र का क्षय २५. शुभ नाम का क्षय २६. अशुभ नाम का क्षय २७. दानान्तराय का क्षय २८. लाभान्तराय का क्षय २९. भोगान्तराय का क्षय ३०. उपभोगान्तराय का क्षय ३१. वीर्यान्तराय का क्षय। पृथ्वी पर मेरु पर्वत की परिधि ३१६२३ योजन में कुछ कम कही गई है। सूर्य के १८४ मंडल कहे गये हैं उनमें से जब सूर्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सब से बाहर के मंडल में आकर भ्रमण करता है। तब इस भरत क्षेत्र में रहे हुए मनुष्य को ३१८३१॥ योजन की दूरी से सूर्य दिखाई देता है। प्रत्येक तीसरे वर्ष जो अधिक मास आता है उसे अभिवर्द्धित मास कहते हैं। वह अभिवर्द्धित मास कुछ अधिक इकतीस रात्रि दिन का होता है। एक रात्रि के १२४ भाग में से १२१ भाग अधिक होता है। जिस समय सूर्य राशि का भोग करता है वह आदित्य मास कहलाता है। वह आदित्य मास कुछ अधिक इकतीस रात्रि दिन का होता है। इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति इकतीस पल्योपम की कही गई है। तमस्तमा नामक सातवीं नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति इकतीस सागरोपम की कही गई है। असुरकुमार देवों में कितनेक देवों की स्थिति इकतीस पल्योपम की कही गई है। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति इकतीस पल्योपम की कही गई है।

विजय वैजयन्त जयन्त और अपराजित इन चार अनुत्तर विमान के देवों की जघन्य स्थिति इकतीस सागरोपम की कही गई है। जो देव उपरिम उपरिम नामक नवमें ग्रैवेयक विमानों में देव रूप से उत्पन्न होते हैं। उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति इकतीस सागरोपम की कही गई है। वे देव इकतीस पखवाड़ों से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाह्य श्वासोचछ्वास लेते हैं। उन देवों को इकतीस हजार वर्षों से आहार की इच्छा पैदा होती है। कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो इकतीस भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे॥ ३१ ॥

विवेचन - यहाँ सिद्ध भगवन्तों के ३१ गुण बताये गये हैं।

प्रश्न - सिद्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर - **ध्मातं सितं येन पुराण कर्म, यो वा गतो निर्वृत्तिसौधमूर्ध्नि ।**

ख्यातोनुशास्ता परिनिष्ठितार्थो, यः सोऽस्तु सिद्धः कृतमंगलो मे ॥

अर्थ - जिसने पुराने बन्धे हुए सब कर्मों का क्षय कर दिया है अतएव लोक के अग्रभाग पर स्थित है, प्रसिद्ध, अनुशास्ता, परिनिष्ठितार्थ (कृतकार्य) है उसे सिद्ध कहते हैं वे सिद्ध हमारे कल्याण के लिये होवे।

प्रश्न - यहाँ 'सिद्धादि' गुण कहा है सो यहाँ पर 'आदि' शब्द का क्या अर्थ है ?

उत्तर - जीव जब आठ कर्मों से मुक्त हो जाता है तब सिद्ध कहलाता है। सिद्ध के 'आदि' अर्थात् प्रारम्भ काल में यानी प्रथम समय में ही ३१ गुण प्रकट हो जाते हैं। अतः यहाँ 'आदि' शब्द का अर्थ है सिद्ध का प्रथम समय।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीव अनादि काल से आठ कर्मों से बन्धा हुआ है। जीव में पांच प्रकार की शक्ति है - उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरस्कार (पुरुषार्थ) पराक्रम। इन पांचों शक्तियों के समवेत पुरुषार्थ से जीव आठों कर्मों का क्षय कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो सकता है जैसा कि कहा है -

सिद्धां जैसो जीव है, जीव सोही सिद्ध होय।
कर्म मैल का आंतरो, बूझे विरला कोय ॥
सिद्ध और संसारी में, कर्म ही का भेद है ।
काट दे अगर कर्म को, तो न भेद है न खेद है ॥

पुरुषार्थ के दो भेद हैं - सत् पुरुषार्थ और असत् पुरुषार्थ। सत् पुरुषार्थ से जीव की सद्गति होती है और असत् पुरुषार्थ से जीव की दुर्गति होती है। जैसा कि कहा है -

यात्य धोऽधो व्रजत्युचैः, नरः स्वैरेव कर्मभिः।
कूपस्य खनिता यद्वद्, प्राकारास्येव कारकः॥

यही बात हिन्दी दोहे में भी कही गई है -

करता उन्नति स्वयं ही, सत्पुरुषार्थ परिमाण।
जो नर चिणता कोट (भींत) को, वह चढ़ता आसमान ॥
असंत् पुरुषार्थ जो करे, बनता वह कङ्गाल।
जो नर खोदे कूप को, नीचे जाय पाताल॥

अर्थ - कोट (भींत) आदि को चिनने वाला पुरुष ज्यों ज्यों चिनता जाता है त्यों त्यों ऊपर चढ़ता जाता है और कुआं खोदने वाला पुरुष ज्यों ज्यों खोदता है त्यों त्यों नीचे जाता है। दोनों पुरुषार्थ तो करते हैं परन्तु एक का सत्पुरुषार्थ है और दूसरे का असत् पुरुषार्थ । यह दृष्टान्त देकर ज्ञानी पुरुष फरमाते हैं कि जीव को सत् पुरुषार्थ करना चाहिये जिससे वह क्रमशः उन्नति करता हुआ सद्गति और सिद्धिगति को प्राप्त कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो जाय।

कर्म की ज्ञानावरणीयादि आठ मूल प्रकृतियाँ हैं। इन आठों कर्मों का क्षय करने से जीव में आठ गुण प्रकट होते हैं। यथा - केवलज्ञान, केवलदर्शन, अव्याबाध सुख क्षायिक सम्यक्त्व, अक्षयस्थिति, अरूपीपन, अगुरुलघुत्व और अनन्त आत्मिक शक्ति।

कवि विनयचन्द जी ने नववें भगवान् की प्रार्थना करते हुए इन आठ गुणों का वर्णन इस प्रकार किया है -

अष्टकर्म नो राजवी हो, मोह प्रथम क्षय कीन ।
शुद्ध समकित चारित्रनो हो, परम क्षायिक गुण लीन ॥ श्री ॥ ३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानावरणी दर्शनावरणी हो, अन्तराय कियो अन्त ।
ज्ञान दर्शन बल ये तिहूँ हो, प्रकट्या अनन्तानन्त ॥ श्री ॥ ४ ॥
अव्याबाध सुख पामिया हो, वेदनी करम खपाय।
अवगाहना अटल लही हो, आयु क्षय कर जिनराय ॥ श्री ॥ ५ ॥
नाम करम नो क्षय करी हो, अमूर्तिक कहाय।
अगुरु लघुपणो अनुभव्यो हो, गोत्र करम थी मुकाय ॥ श्री ॥ ६ ॥

आठ कर्मों की संक्षेप में ३१ उत्तर प्रकृतियाँ होती हैं – ज्ञानावरणीय की पांच, दर्शनावरणीय की नौ, वेदनीय की दो, मोहनीय की दो, आयुकर्म की चार, नामकर्म की दो, गोत्रकर्म की दो और अन्तराय की पांच । इनमें मोहनीय की सिर्फ दो प्रकृतियाँ ली है किन्तु होती हैं २८ । इसी प्रकार यहाँ नामकर्म की दो प्रकृतियाँ ली हैं। किन्तु अपेक्षा से इस कर्म की ४२, ६७, ९३ और १०३ भी उत्तर प्रकृतियाँ होती हैं। इस प्रकार आठों कर्मों की प्रकृतियाँ ९३, १२२, १४८ तथा १५८ हो जाती हैं।

मेरु पर्वत समतल धरती पर १०००० योजन का चौड़ा है किसी भी गोल वस्तु की परिधि (परिक्षेप-घेराव) तिगुणे से कुछ अधिक होती है। इसलिये सम धरती पर मेरु पर्वत की परिधि ३१६२३ योजन से कुछ अधिक होती है।

ज्योतिषी देवों के गमनागमन के मार्ग को 'मण्डल' कहते हैं। सूर्य के १८४ मण्डल हैं। सूर्य जम्बूद्वीप में एक सौ अस्सी योजन अन्दर आता है वहाँ तक सूर्य के ६५ मण्डल हैं। सूर्य लवण समुद्र में ३३० योजन जाता है वहाँ सूर्य के ११९ मण्डल हैं। वहाँ सर्व बाह्य मण्डल में जब सूर्य पहुँचता है वहाँ उसकी लम्बाई चौड़ाई एक लाख छह सौ साठ योजन होती है। गोल क्षेत्र के गणित के न्याय से वहाँ उसकी परिधि ३१८३१५ योजन होती है। इतना क्षेत्र सूर्य दो रात दिन में पहुँचता है। उसके गणित के हिसाब से ३१८३१३$\frac{३०}{६०}$ योजन की दूरी से यहाँ के मनुष्य को दृष्टिगोचर होता है।

पांच वर्ष का एक युग होता है। उसमें चन्द्र संवत्सर के ६२ मास होते हैं। इसलिये इसे अभिवर्द्धित संवत्सर कहते हैं। उसका एक मास ३१$\frac{१२१}{१२४}$ रात दिन का होता है। अतएव वर्ष ३८३$\frac{८८}{१२४}$ रात्रि दिन का होता है। आदित्य मास ३०$\frac{३०}{६०}$ रात्रि दिन का होता है इस हिसाब से वर्ष ३६६ रातदिन का होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बत्तीसवां समवाय

बत्तीसं जोगसंग्गहा पण्णत्ता तंजहा -

आलोयण णिरवलावे, आवइसु दढधम्मया।
अणिस्सिओवहाणे य, सिक्खा णिप्पडिकम्मया ॥ १ ॥
अण्णायया अलोभे य, तितिक्खा अज्जवे सुई ।
सम्मदिट्ठी समाही य, आयारे विणओवए ॥ २ ॥
धिइमई य संवेगे, पणिही सुविही संवरे ।
अत्तदोसोवसंहारे, सव्वकाम विरत्तया ॥ ३ ॥
पच्चक्खाणे विउस्सग्गे, अप्पमाए लवालवे ।
झाण संवर जोगे य, उदए मारणंतिए ॥ ४ ॥
संगाणं च परिण्णाया, पायच्छित्त करणे वि य।
आराहणा य मरणंते, बत्तीसं जोगसंग्गहा ॥ ५ ॥

बत्तीसं देविंदा पण्णत्ता तंजहा - चमरे, बली, धरणे, भूयाणंदे, जाव घोसे, महाघोसे, चंदे, सूरे, सक्के, ईसाणे, सणंकुमारे जाव पाणए, अच्चुए । कुंथुस्स णं अरहओ बत्तीसहिया बत्तीसं जिणसया होत्था। सोहम्मे कप्पे बत्तीसं विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता। रेवईणक्खत्ते बत्तीसइ तारे पण्णत्ते । बत्तीसइविहे णट्टे पण्णत्ते । इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं बत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं बत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं बत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा विजय वेजयंत जयंत अपराजिय विमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसिणं देवाणं अत्थेगइयाणं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा बत्तीसेहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा णीससंति वा। तेसिणं देवाणं बत्तीसेहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे बत्तीसेहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ।। ३२ ॥

कठिन शब्दार्थ - **जोगसंग्गहा** - योग संग्रह, **णिरवलावे** - निरपलाप, **आवइसु**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दढधम्मया - आपत्सु दृढधर्मता-आपत्ति आने पर भी साधु साध्वी को धर्म में दृढ़ रहना, **अणिस्सिओवहाणे** - अनिश्रित उपधान-तप में दूसरों की सहायता की इच्छा न करना, **णिपडिकम्मया** - निष्प्रतिकर्मता-शरीर संस्कार एवं शृंगार न करना, **अणायया** - अज्ञातता-अज्ञात तप करना, **तितिक्खा** - तितिक्षा-सहनशील हो कर परीषह-उपसर्गों को सहन करना, **सुविही** - सुविधि-सदनुष्ठान-उत्तम कार्य करना, **अत्तदोसोवसंहारे** - आत्मदोषोपसंहार-अपने दोषों की शुद्धि व उनका निरोध करना।

भावार्थ - योग संग्रह - मन वचन काया के शुभ व्यापार प्रवृत्ति को 'योग' कहते हैं। योगों का संग्रह करना 'योग संग्रह' कहलाता है। इसके बत्तीस भेद कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. मोक्ष के साधन भूत शुभयोगों का संग्रह करने के लिए शिष्य को गुरु के पास सम्यक् आलोचना करनी चाहिए २. निरपलाप - गुरु को भी मुक्ति के योग्य शुभ योगों का संग्रह करने के लिए शिष्य द्वारा की गई आलोचना किसी से भी न कहनी चाहिए ३. आपत्ति आने पर भी चतुर्विध संघ को अपने धर्म में दृढ़ रहना चाहिए ४. अनिश्रितोपधान - इहलौकिक और पारलौकिक फल की इच्छा रहित होकर तप करना चाहिए। तप में दूसरे की सहायता की अपेक्षा भी न करनी चाहिए ५. शिक्षा - सूत्रार्थ ग्रहण रूप ग्रहण शिक्षा और प्रतिलेखन आदि आसेवन शिक्षा का अभ्यास करना चाहिए ६. नि तिकर्मता - साधु को अपने शरीर का संस्कार एवं शृङ्गार न करना चाहिए ७. अज्ञातता - साधु को यश और पूजा की कामना न करते हुए इस प्रकार तप करना चाहिए कि किसी के आगे प्रकाशित न करना चाहिए ८. अलोभ-साधु को निर्लोभी होना चाहिए ९. तितिक्षा - साधु को सहनशील होकर परीषह उपसर्गों पर विजय प्राप्त करनी चाहिए १०. आर्जव साधु को सरल होना चाहिए। ११. शुचि-साधु को सत्यवादी और संयमी होना चाहिए १२. समदृष्टि - साधु को सम्यग् दृष्टि होना चाहिए और सम्यग् दर्शन की शुद्धि रखनी चाहिए १३. समाधि-साधु को समाधिवन्त अर्थात् प्रसन्न चित्त रहना चाहिए १४. आचार-साधु को चारित्रशील होना चाहिए, साधु का आचार पालने में माया न करनी चाहिए १५. विनयोपगत - साधु को विनीत-नम्र होना चाहिए, मान नहीं करना चाहिए १६. धृतिमान् - साधु को धैर्यवान् होना चाहिए, उसे कभी दीन भाव न लाना चाहिए १७. संवेग - साधु में संवेगभाव यानी संसार का भय और मोक्ष की अभिलाषा होनी चाहिए १८. प्रणिधि - साधु को छल कपट का त्याग करना चाहिए, उसे कभी माया शल्य का सेवन न करना चाहिए १९. सुविधि - साधु को सदनुष्ठान-उत्तम कार्य करना चाहिए २०. संवर - साधु को संवरशील होना चाहिए, उसे नवीन कर्मों को आत्मा में आने से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रोकना चाहिए २१. आत्म दोषोपसंहार - साधु को अपने दोषों की शुद्धि कर उनका निरोध करना चाहिए २२. सर्वकाम विरक्तता - साधु को पांचों इन्द्रियों के अनुकूल विषयों से विमुख रहना चाहिए २३. प्रत्याख्यान - मूलगुण विषयक प्रत्याख्यान करना चाहिए और २४. उत्तर गुण विषयक प्रत्याख्यान भी करना चाहिए। २५. व्युत्सर्ग - द्रव्य और भाव दोनों प्रकार का व्युत्सर्ग - त्याग करना चाहिए २६. अप्रमाद - साधु को प्रमाद का त्याग करना चाहिए २७. साधु को प्रतिक्षण शास्त्रोक्त समाचारी के अनुष्ठान में लगे रहना चाहिए । २८. ध्यानसंवरयोग- साधु को शुभ ध्यान रूप संवर क्रिया का आश्रय लेना चाहिए २९. मारणान्तिकोदय - साधु को मारणान्तिक वेदना का उदय होने पर भी घबराना न चाहिए ३०. संपरिज्ञात - साधु को ज्ञपरिज्ञा से विषय संग हेय जान कर प्रत्याख्यान परिज्ञा द्वारा उसका त्याग करना चाहिए ३१. प्रायश्चित्त करण - साधु को दोष लगने पर प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध होना चाहिए ३२. मारणान्तिक आराधना - साधु को अन्तिम समय में संलेखना कर पण्डित मरण की आराधना करनी चाहिए। ये बत्तीस बातें प्रशस्त योग संग्रह में कारण होने से आलोचना आदि क्रियाओं को भी प्रशस्त योग संग्रह कहा गया है ॥ ५ ॥

बत्तीस देवेन्द्र कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. चमरेन्द्र २. बलीन्द्र ३. धरणेन्द्र ४. भूतानन्द ५. वेणुदेव ६. वेणुदाल ७. हरिकान्त ८. हरिसिंह ९. अग्नि सिंह १०. अग्निमाणव ११. पूर्ण १२. वशिष्ठ १३. जलकान्त १४. जलप्रभ १५. अमितगति १६. अमितवाहन १७. वेलम्ब १८. प्रभञ्जन १९. घोष २०. महाघोष । ये बीस भवनपतियों के इन्द्र हैं। २१. चन्द्र २२. सूर्य, ये दो ज्योतिषी देवों के इन्द्र हैं। २३. शक्रेन्द्र २४. ईशानेन्द्र २५. सनत्कुमारेन्द्र २६. माहेन्द्र २७. ब्रह्मलोकेन्द्र २८. लान्तकेन्द्र २९. महाशुक्रेन्द्र ३०. सहस्रारेन्द्र ३१. प्राणतेन्द्र ३२. अच्युतेन्द्र। सतरहवें तीर्थङ्कर श्री कुन्थुनाथ भगवान् के ३२३२ केवलज्ञानी थे।

सौधर्म नामक पहले देवलोक में बत्तीस लाख विमान कहे गये हैं। रेवती नक्षत्र बत्तीस तारों वाला कहा गया है। बत्तीस प्रकार का नाटक कहा गया है। इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति बत्तीस पल्योपम की कही गई है। तमस्तमा नामक सातवीं नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति बत्तीस सागरोपम की कही गई है। असुरकुमार देवों में कितनेक देवों की स्थिति बत्तीस पल्योपम की कही गई है। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति बत्तीस पल्योपम की कही गई है। जो देव विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित इन चार अनुत्तर विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं। उन देवों में से कितनेक देवों की स्थिति बत्तीस सागरोपम की कही गई है। वे देव बत्तीस पखवाड़ों से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बत्तीस हजार वर्षों से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो बत्तीस भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ॥ ३२ ॥

विवेचन - मन, वचन, काया की प्रवृत्ति को योग कहते हैं। पण्णवणा सूत्र में योग के १५ भेद किये गये हैं। वहाँ योग शब्द के बदले प्रयोग शब्द का उपयोग किया गया है। योग की प्रवृत्ति शुभ और अशुभ दोनों तरह की होती है किन्तु यहाँ शुभ प्रवृत्ति को ही ग्रहण किया गया है। शिष्य की आलोचना, गुरु का उसे किसी को न कहना इत्यादि क्रियाओं से प्रशस्त योगों का संग्रह होता है। प्रशस्त योग संग्रह में कारण होने से आलोचना आदि क्रियाओं को भी प्रशस्त योग संग्रह कहा गया है। जिनका नाम निर्देश मूल में तथा अर्थ-भावार्थ में दे दिया गया है।

जैन सिद्धान्त में भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक ये चार प्रकार के देव कहे गये हैं। इनके ६४ इन्द्र होते हैं। उनमें से भवनपति के २० इन्द्र हैं।

प्रश्न - भवनपति देव कहाँ रहते हैं?

उत्तर - इस समतल भूमि भाग से ४०,००० योजन नीचे जाने पर भवनपति देवों के भवन और आवास हैं। अर्थात् पहली नरक के १३ प्रस्तट (पाथडे) और उनके बीच में बारह आंतरे हैं उनमें से तीसरे आंतरे से लेकर १२ वें आंतरे तक दस जाति के भवनपति देव रहते हैं। मेरु पर्वत से दक्षिण में रहने वाले दक्षिण भवनपति और उत्तर में रहने वाले उत्तर भवनपति कहलाते हैं। उनके बीस इन्द्र हैं। वे इस प्रकार हैं -

भवनपति देवों के नाम	दक्षिण के इन्द्र	उत्तर के इन्द्र
१. असुरकुमार	चमरेन्द्र	बलीन्द्र
२. नागकुमार	धरणेन्द्र	भूतानन्द
३. सुवर्णकुमार (सुपर्णकुमार)	वेणुदेव	विचित्रपक्ष
४. विद्युतकुमार	हरिकान्त	सुप्रभकान्त
५. अग्निकुमार देव	अग्निसिंह	तेजप्रभ
६. द्वीपकुमार	पूर्ण	रूपप्रभ
७. उदधिकुमार	जलकान्त	जलप्रभ
८. दिशाकुमार	अमितगति	सिंह विक्रमगति
९. वायुकुमार	वेलम्ब	रिष्ट
१०. स्तनितकुमार	घोष	महाघोष(महानंद्यावर्त)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कल्पोपन्न बारह देवलोकों के दस इन्द्र

१. सौधर्म देवलोक का इन्द्र शक्रेन्द्र
२. ईशान देवलोक का इन्द्र ईशानेन्द्र
३. सनत्कुमार देवलोक का इन्द्र सनत्कुमारेन्द्र
४. माहेन्द्र देवलोक का इन्द्र माहेन्द्र
५. ब्रह्मलोक देवलोक का इन्द्र ब्रह्मलोकेन्द्र
६. लान्तक देवलोक का इन्द्र लान्तकेन्द्र
७. शुक्र देवलोक का इन्द्र शुक्रेन्द्र
८. सहस्रार देवलोक का इन्द्र सहस्रारेन्द्र
९-१०. आणत और प्राणत देवलोक का इन्द्र प्राणतेन्द्र
११-१२. आरण और अच्युत देवलोक का इन्द्र अच्युतेन्द्र

नववें दसवें देवलोक का एक इन्द्र है इसी प्रकार ग्यारहवें तथा बारहवें देवलोक का भी एक ही इन्द्र है।

यद्यपि ज्योतिषियों के इन्द्र सूर्य और चन्द्र असंख्यात हैं किन्तु यहाँ जाति की अपेक्षा ज्योतिषियों के दो ही इन्द्र लिये गये हैं। यथा - चन्द्र इन्द्र और सूर्य इन्द्र।

वाणव्यन्तरों के ३२ इन्द्र हैं वे इस प्रकार हैं -

नाम	दक्षिण का इन्द्र	उत्तर का इन्द्र
१. पिशाच	काल	महाकाल
२. भूत	सुरूप	प्रतिरूप
३. यक्ष	पूर्णभद्र	माणिभद्र
४. राक्षस	भीम	महाभीम
५. किन्नर	किन्नर	किम्पुरुष
६. किम्पुरुष	सत्पुरुष	महापुरुष
७. महोरग	अतिकाय	महाकाय
८. गन्धर्व	गीतरति	गीतयश
९. आणपण्णे (आणपण्णिक)	सन्निहित	सामान्य
१०. पाणपण्णे (पाणपण्णिक)	धाता	विधाता
११. इसिवाई (ऋषिवादी)	ऋषि	ऋषिपाल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नाम	दक्षिण का इन्द्र	उत्तर का इन्द्र
१२. भूयवाई (भूतवादी)	ईश्वर	महेश्वर
१३. कंदे (कंदित)	सुवत्स	विशाल
१४. महाकंदे (महाकंदित)	हास	रति
१५. कुम्हांड (कुष्माण्ड)	श्वेत	महाश्वेत
१६. पयंग (पतंग)	पतंग	पतंग गति

यह बत्तीसवाँ समवाय है इसलिये बत्तीस इन्द्रों के नाम दिये हैं। वाणव्यन्तर देवों के बत्तीस इन्द्रों के नाम मूल पाठ में नहीं दिये हैं। इस विषय में तो टीकाकार ने लिखा है कि - ये अल्प ऋद्धिवाले हैं। इसलिये यहाँ इनको गौण कर दिया गया है।

बत्तीस प्रकार का नाटक तथा उनका अभिनय और विषय वस्तु पात्र आदि का विस्तृत वर्णन राजप्रश्नीय सूत्र में है।

तेतीसवां समवाय

तेत्तीसं आसायणाओ पण्णत्ताओ तंजहा - १. सेहे राइणियस्स पुरओ गंता भवइ आसायणा सेहस्स २. सेहे राइणियस्स सपक्खं गंता भवइ आसायणा सेहस्स ३. सेहे राइणियस्स आसण्णं गंता भवइ आसायणा सेहस्स ४. सेहे राइणियस्स पुरओ चिट्ठित्ता भवइ आसायणा सेहस्स ५. सेहे राइणियस्स सपक्खं चिट्ठित्ता भवइ आसायणा सेहस्स ६. सेहे राइणियस्स आसण्णं चिट्ठित्ता भवइ आसायणा सेहस्स ७. सेहे राइणियस्स पुरओ णिसीइत्ता भवइ आसायणा सेहस्स ८. सेहे राइणियस्स सपक्खं णिसीइत्ता भवइ आसायणा सेहस्स ९. सेहे राइणियस्स आसण्णं णिसीइत्ता भवइ आसायणा सेहस्स १०. सेहे राइणिएणं सद्धिं बहिया वियारभूमिं णिक्खंते समाणे तत्थ सेहे पुव्वतरागं आयमइ पच्छा राइणिए भवइ आसायणा सेहस्स ११. सेहे राइणिएणं सद्धिं बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा णिक्खंते समाणे तत्थ सेहे पुव्वतरागं आलोएइ पच्छा राइणिए भवइ आसायणा सेहस्स १२. केइ राइणियस्स पुव्व संलवित्तए सिया, तं सेहे पुव्वतरागं आलवइ पच्छा राइणिए भवइ आसायणा सेहस्स १३. सेहे राइणियस्स राओ वा वियाले वा वाहरमाणस्स अज्जो! के सुत्ता के जागरा? तत्थ सेहे जागरमाणे राइणियस्स अपडिसुणित्ता भवइ आसायणा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सेहस्स १४. सेहे असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहित्ता तं पुव्वमेव सेहतरागस्स आलोएइ पच्छा राइणियस्स भवइ आसायणा सेहस्स १५. सेहे असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहित्ता तं पुव्वमेव सेहतरागस्स उवदंसेइ पच्छा राइणियस्स भवइ आसायणा सेहस्स १६. सेहे असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहित्ता तं पुव्वमेव सेहतरागं उवणिमंतेइ पच्छा राइणिए भवइ आसायणा सेहस्स १७. सेहे राइणिएणं सद्धिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहित्ता तं राइणियं अणापुच्छित्ता जस्स जस्स इच्छइ तस्स तस्स खद्धं खद्धं तं दलयइ भवइ आसायणा सेहस्स १८. सेहे असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहित्ता राइणिएणं सद्धिं भुंजमाणे तत्थ सेहे खद्धं खद्धं डागं डागं ऊसढं ऊसढं रसियं रसियं मणुण्णं मणुण्णं मणामं मणामं णिद्धं णिद्धं लुक्खं लुक्खं आहारित्ता भवइ आसायणा सेहस्स १९. सेहे राइणियस्स वाहरमाणस्स अपडिसुणित्ता भवइ आसायणा सेहस्स। सेहे राइणियस्स वाहरमाणस्स तत्थ गए चेव पडिसुणित्ता भवइ आसायणा सेहस्स २०. सेहे राइणियस्स किं त्ति वत्ता भवइ आसायणा सेहस्स २१. सेहे राइणियं तुमं ति वत्ता भवइ आसायणा सेहस्स २२. सेहे राइणियं खद्धं खद्धं वत्ता भवइ आसायणा सेहस्स २३. सेहे राइणियं तज्जाएणं तज्जाएणं पडिहणित्ता भवइ आसायणा सेहस्स। सेहे राइणियस्स कहं कहेमाणस्स इइ एवं वत्ता भवइ आसायणा सेहस्स २४. सेहे राइणियस्स कहं कहेमाणस्स णो सुमरसि त्ति वत्ता भवइ आसायणा सेहस्स २५. सेहे राइणियस्स कहं कहेमाणस्स णो सुमणसे भवइ आसायणा सेहस्स २६. सेहे राइणियस्स कहं कहेमाणस्स परिसं भेत्ता भवइ आसायणा सेहस्स २७. सेहे राइणियस्स कहं कहेमाणस्स कहं अच्छिंदित्ता भवइ आसायणा सेहस्स २८. सेहे राइणियस्स कहं कहेमाणस्स तीसे परिसाए अणुट्ठियाए अभिण्णाए अवुच्छिण्णाए अवोगडाए दोच्चं पि तच्चं पि तमेव कहं कहित्ता भवइ आसायणा सेहस्स २९. सेहे राइणियस्स सिज्जा संथारगं पाएणं संघट्टित्ता हत्थेण अणणुतावित्ता (अणणुवित्ता) गच्छइ, भवइ आसायणा सेहस्स ३०. सेहे राइणियस्स सिज्जा संथारए चिट्ठित्ता वा णिसीइत्ता वा तुयट्टित्ता वा भवइ आसायणा सेहस्स ३१. सेहे राइणियस्स उच्चासणंसि वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समासणंसि वा चिट्ठित्ता वा णिसीइत्ता वा तुयट्टित्ता वा भवइ आसायणा सेहस्स। चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो चमरचंचाए रायहाणीए एक्कमेक्क वाराए तेत्तीसं तेत्तीसं भोमा पण्णत्ता। महाविदेह वासे तेत्तीसं जोयणसहस्साइं साइरेगाइं विक्खंभेणं पण्णत्ते। जया णं सूरिए बाहिराणंतरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता णं चारं चरइ तया णं इहगयस्स पुरिसस्स तेत्तीसेहिं जोयणसहस्सेहिं किंचिविसेसूणेहिं चक्खुफासं हव्वमागच्छइ। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं णेरइयाणं तेत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अहेसत्तमाए पुढवीए काल महाकाल रोरुय महारोरुएसु णेरइयाणं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। अप्पइट्ठाण णरए णेरइयाणं अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं तेत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं तेत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। विजय वेजयंत जयंत अपराजिएसु विमाणेसु उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। जे देवा सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे देवत्ताए उववण्णा तेसिणं देवाणं अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ते णं देवा तेत्तीसेहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा णीससंति वा। तेसिणं देवाणं तेत्तीसेहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे तेत्तीसेहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ ३३ ॥

कठिन शब्दार्थ - **सेहे** - शैक्ष (नवदीक्षित), दीक्षा पर्याय में छोटा, **पुरओ** - सामने (आगे-आगे), **गंता** - जाना, **सपक्ख** - सपक्ष-पसवाड़ा, **आसण्णं** - आसन्न-पास-पास, **चिट्ठित्ता** - ठहरना, खड़े रहना, **णिसीइत्ता** - बैठना, **बहिया** - बाहर, **वियारभूमि** - विचारभूमि, स्थण्डिल भूमि, **आयमइ** - आचमन करना, मलद्वार की शुद्धि करना, **विहारभूमि**- स्वाध्याय का स्थान, **पुव्वतरागं** - पहले, **संलवित्तए** - बातचीत करना, **राओ** - रात्रि, **वियाले** - विकाल (संध्या समय), **खद्धं खद्धं** - जल्दी जल्दी और प्रचुर मात्रा में, **डागं डागं** - खट्टे रस वाला, **ऊसढं ऊसढं** - प्रधान रस वाला, **मणुण्णं** - मनोज्ञ, **मणामं** - मन को रुचिकर, **णिद्धं** - स्निग्ध-घृत आदि से युक्त, **लुक्खं** - रूक्ष, स्वादिष्ट लगने वाला पापड़ चणा, मुरमुरा आदि, **वाहरमाणस्स** - आवाज देना, बुलाना, **वत्ता** - वक्ता-बोलना, **तज्जाएणं**- उसी प्रकार के शब्द कहना, **पडिहणित्ता** - अपमानित करना, **परिसं** - परिषद् सभा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भेत्ता - भेदन करना, **अच्छिंदित्ता** - छिन्न भिन्न करना, **अणुट्ठियाए** - सभा ऊठी न हो, **अभिण्णाए** - छिन्न भिन्न न हुई हो, **अवुच्छिण्णाए** - बिखरी न हो, **अवोगडाए** - सभा के लोग सम्पूर्ण चले गये न हों, **अणणुतावित्ता** - आसन को वापिस ठीक किये बिना, **भोमा** - नगर के आकार वाले विशिष्ट स्थान, **चक्खुफासं** - चक्षु स्पर्श-आँख से दिखाई देना, **अजहण्णमणुक्कोसेणं** - अजघन्य अनुत्कृष्ट - जहाँ जघन्य तथा उत्कृष्ट इस प्रकार स्थिति के दो भेद न होते हों अर्थात् एक ही प्रकार की स्थिति होती है।

भावार्थ - सम्यग् दर्शन आदि की घात करने वाली क्रियाओं को आशातना कहते हैं। आशातनाएं तेतीस कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं - १. शैक्ष यानी शिष्य तथा दीक्षा पर्याय में छोटा रत्नाकर यानी ज्ञान दर्शन चारित्र रूप रत्नों में बड़े एवं दीक्षा पर्याय में बड़े साधु के आगे आगे चले तो शिष्य को आशातना लगती है २. शिष्य रत्नाकर के बराबर चले तो शिष्य को आशातना लगती है ३. शिष्य रत्नाकर के बहुत पास पास चले तो शिष्य को आशातना लगती है ४. शिष्य रत्नाकर के आगे खड़ा रहे ५. बराबरी में खड़ा रहे ६. बहुत नजदीक चिपता हुआ खड़े रहे तो शिष्य को आशातना लगती है। ७. शिष्य रत्नाकर के आगे बैठे, ८. बराबर बैठे ९. बहुत नजदीक चिपता हुआ बैठे तो शिष्य को आशातना लगती है १०. शिष्य रत्नाकर के साथ बाहर विचार भूमि यानी जंगल गया हो और कारणवशात् दोनों एक ही पात्र में जल ले गये हों, ऐसी अवस्था में यदि शिष्य रत्नाकर से पहले आचमन यानी शौच करे। रत्नाकर पीछे शोच करे तो शिष्य को आशातना लगती है ११. शिष्य रत्नाकर के साथ बाहर विचार भूमि यानी जंगल गया हो अथवा स्वाध्याय करने के स्थान पर गया हो वहाँ से वापिस लौट कर यदि शिष्य पहले ईर्यापथ सम्बन्धी आलोचना करे तो शिष्य को आशातना लगती है। १२. कोई पुरुष ऐसा है जिसके साथ रत्नाकर को पहले बातचीत करनी चाहिए। उसके साथ यदि शिष्य पहले बातचीत करे और रत्नाकर पीछे बातचीत करे तो शिष्य को आशातना लगती है। १३. रात्रि के समय अथवा विकाल यानी सन्ध्या के समय रत्नाकर शिज्य को बुलाये कि हे आर्यो! कौन सोता है और कौन जागता है? ऐसा पूछने पर शिष्य जागते हुए भी रत्नाकर के वचनों को न सुने यानी कुछ भी उत्तर न दे तो शिष्य को आशातना लगती है। १४. शिष्य अशन, पान, खादिम, स्वादिम गृहस्थ के घर से लाकर उसकी आलोचना यदि पहले अन्य शिष्यों के पास करे और पीछे रत्नाकर के पास करे तो शिष्य को आशातना लगती है। १५. शिष्य अशन पान खादिम स्वादिम गृहस्थ के घर से लाकर उस आहार पानी को यदि पहले छोटे साधुओं को दिखलावे और रत्नाकर को पीछे दिखलावे तो शिष्य को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आशातना लगती है। १६. शिष्य अशन, पान, खादिम, स्वादिम गृहस्थ के घर से लाकर पहले शिष्य को एवं छोटे साधु को निमन्त्रित करे और रत्नाकर को पीछे निमन्त्रित करे तो शिष्य को आशातना लगती है। १७. शिष्य रत्नाकर के साथ अशन, पान, खादिम, स्वादिम गृहस्थ के घर से लाकर रत्नाकर को बिना पूछे ही जिसको चाहता है उसको वह आहार प्रचुर मात्रा में दे देता है तो शिष्य को आशातना लगती है। १८. शिष्य अशन, पान, खादिम, स्वादिम गृहस्थ के घर से लाकर रत्नाकर के साथ आहार करते हुए यदि प्रचुर मात्रा में खट्टे रस वाले शाक आदि को, रसादि गुणों से प्रधान सरस, मनोज्ञ, मनोहर- मन को प्रिय लगने वाला, घृतादि से स्निग्ध,रूक्ष- स्वादिष्ट लगने वाला पापड़ आदि को जल्दी-जल्दी खाने लगे तो शिष्य को आशातना लगती है। १९. यदि रत्नाकर शिष्य को बुलावे-आवाज दे, किन्तु शिष्य उनके वचनों को ध्यान पूर्वक न सुने तो शिष्य को आशातना लगती है। २०. रत्नाकर के बुलाने पर शिष्य यदि अपने स्थान पर बैठा हुआ ही उनके वाक्य को सुने किन्तु कार्य करने के भय से उनके पास न जावे तो शिष्य को आशातना लगती है। २१. रत्नाकर के बुलाने पर यदि शिष्य "क्या कहते हो" ऐसा कहे तो शिष्य को आशातना लगती है। २२. शिष्य रत्नाकर को यदि 'तू' कहता है तो शिष्य को आशातना लगती है। २३. शिष्य रत्नाकर को अत्यन्त कठोर और आवश्यकता से अधिक वाक्यों का प्रयोग करके पुकारे तो शिष्य को आशातना लगती है। २४. शिष्य रत्नाकर के वचनों से ही रत्नाकर का तिरस्कार करे तो शिष्य को आशातना लगती है। जैसे कि रत्नाकर कहे कि 'हे आर्य! तुम ग्लान साधुओं की सेवा क्यों नहीं करते? तुम आलसी हो'। रत्नाकर के ऐसा कहने पर यदि शिष्य उन्हीं के शब्दों को दोहराते हुए उन्हें कहे कि - तुम स्वयं ग्लान साधुओं की सेवा क्यों नहीं करते? तुम खुद आलसी हो तो शिष्य को आशातना लगती है। २५. रत्नाकर जब कथा कह रहे हों तब शिष्य यदि बीच ही में बोल उठे कि 'अमुक बात इस तरह है, अथवा अमुक पदार्थ का स्वरूप इस प्रकार है' तो शिष्य को आशातना लगती है। २६. रत्नाकर धर्मकथा कह रहे हों, उस समय शिष्य यदि कहे कि आपको याद नहीं है, आप भूल रहे हैं, यह बात इस तरह नहीं है तो शिष्य को आशातना लगती है। २७. रत्नाकर धर्मकथा कह रहे हों उस समय यदि शिष्य प्रसन्न चित्त न हो एवं उनके वचन एकाग्रचित्त से न सुने तो शिष्य को आशातना लगती है। २८. रत्नाकर धर्मकथा कह रहे हों उस समय यदि शिष्य कहे 'अब गोचरी का समय हो गया है, कथा समाप्त होनी चाहिए' इत्यादि कह कर सभा को छिन्न भिन्न करे तो शिष्य को आशातना लगती है। २९. रत्नाकर धर्मकथा कह रहे हों, उस समय यदि शिष्य किसी उपाय से कथा विच्छेद करे तो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शिष्य को आशातना लगती है। ३०. जिस सभा में रत्नाकर धर्मकथा कह रहे हों, वह सभा उठी न हो, सभा छिन्न-भिन्न न हुई हो यानी लोग गये न हों, सभा छिन्न न हुई हो यानी लोग बिखरे न हों, सभा बिखरी न हो, उसी सभा में यदि शिष्य रत्नाकर की लघुता और अपना गौरव बताने के लिए उसी कथा को दो बार तीन बार विस्तार पूर्वक कहे तो शिष्य को आशातना लगती है। ३१. शिष्य के पैर से यदि रत्नाकर की शय्या संस्तारक बिछौने का स्पर्श हो जाय और शिष्य हाथ जोड़ कर उस अपराध की क्षमा मांगे बिना तथा उस आसन को वापिस ठीक किये बिना ही चला जाय तो शिष्य को आशातना लगती है। ३२. शिष्य रत्नाकर के शय्या संस्तारक पर खड़ा रहे, बैठे अथवा सोवे तो शिष्य को आशातना लगती है। ३३. शिष्य यदि रत्नाकर से ऊंचे आसन पर अथवा बराबर आसन पर खड़ा रहे, बैठे अथवा सोवे तो शिष्य को आशातना लगती है। ये तेतीस आशातनाएं हैं। शिष्य को इन आशातनाओं का त्याग करना चाहिए अर्थात् उन आशातनाओं से बचना चाहिये। असुरों के राजा असुरों के इन्द्र चमरेन्द्र की चमरचञ्चा राजधानी के प्रत्येक द्वार पर तेतीस तेतीस मझले महल अथवा नगर के आकार वाले उत्तम स्थान कहे गये हैं। महाविदेह क्षेत्र तेतीस हजार योजन से कुछ अधिक विस्तार वाला कहा गया है। जब सूर्य बाहर के तीसरे मण्डल में आकर भ्रमण करता है तब इस भरत क्षेत्र में रहे हुए पुरुष को कुछ विशेष न्यून (कम) तेतीस हजार योजन की दूरी से सूर्य दृष्टिगोचर होता है। इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक में कितनेक नैरयिकों की स्थिति तेतीस पल्योपम की कही गई है। तमस्तमा नामक सातवीं नरक में काल, महाकाल, रोरुक (रौरव) और महारोरुक (महारौरव) इन चार नरकावासों में नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की कही गई है। सातवीं नरक में अप्रतिष्ठान नरकावास में नैरयिकों की अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की कही गई है। असुरकुमार देवों में कितनेक देवों की स्थिति तेतीस पल्योपम की कही गई है। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में कितनेक देवों की स्थिति तेतीस पल्योपम की कही गई है। विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित इन चार अनुत्तरविमानों में देवों की उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की कही गई है। जो देव सर्वार्थ सिद्ध महाविमान में देव रूप से उत्पन्न होते हैं। उन देवों की अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की कही गई है। वे देव तेतीस पखवाड़ों से आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उन देवों को तेतीस हजार वर्षों से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो तेतीस भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ॥ ३३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रश्न - आशातना किसे कहते हैं ?

उत्तर - आशातना शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है -

'आ - सामस्त्येन शात्यन्ते अपध्वंस्यन्ते ज्ञानादिगुणाः याभिः ताः आशातनाः ।'

अर्थ - जिनका सेवन करने से ज्ञानादि गुण नष्ट हो जाय उन्हें आशातना कहते हैं अर्थात् सम्यग्दर्शनादि गुणों का घात करने वाली अविनय की क्रियाओं को आशातना कहते हैं।

''एवं धम्मस्स विणओ मूलं'' कह कर शास्त्रकारों ने विनय का महत्त्व बतलाते हुए उसकी अनिवार्य आवश्यकता भी बतला दी है। धर्म का प्रासाद (महल) विनय की नींव पर खड़ा होता है इसीलिये विनय रहित क्रियाओं को आशातना (सम्यग्दर्शनादि गुणों का नाश करने वाली) कहना ठीक ही है। वे आशातनाएँ तेतीस प्रकार की हैं। शैक्ष (नवदीक्षित) और छोटी दीक्षा वाले साधु-साध्वी को रत्नाधिक (दीक्षा में बड़े साधु सध्वियों) के साथ रहते हुए रत्नाधिक के प्रति विनय और बहुमान रख कर इन आशातनाओं का परिहार करना चाहिये जिससे विनय और धर्म की यथार्थ आराधना होती है और मुमुक्षु अपने मुक्ति प्राप्ति रूप ध्येय के अधिकाधिक समीप पहुँचता है। इसका फल बतलाते हुए उत्तराध्ययन सूत्र के ३१ वें अध्ययन में बतलाया है -

'से ण अच्छइ मंडले'

अर्थात् - वह संसार में परिभ्रमण नहीं करता है अपितु शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।

'आवश्यक' सूत्र में दूसरे प्रकार से भी तेतीस आशातनाएं बतलाई हैं। यथा -

'अरिहंताणं आसायणाए, सिद्धाणं आसायणाए जाव सज्झाइए ण सज्झाइयं' इन आशातनाओं का स्वरूप हरिभद्रीय आवश्यक सूत्र अथवा श्रमण सूत्र से जानना चाहिये ।

सूर्य के १८४ मण्डल कहे गये हैं। उनमें से जब सूर्य बाहर के तीसरे मण्डल में परिभ्रमण करता है तब भरत क्षेत्र में रहने वाले मनुष्य को तेतीस हजार योजन से कुछ कम दूरी से सूर्य दृष्टिगोचर होता है। इस गणित का हिसाब जम्बूद्वीप पण्णत्ति सूत्र में बतलाया गया है।

चार गति के जीवों की स्थिति तीन प्रकार की बतलाई गई है - जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। जैसे कि - नरक के नैरयिकों की और देवलोक के देवों की जघन्य स्थिति १०००० वर्ष और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की बतलाई गयी है। १०००० वर्ष से एक समय अधिक से लेकर तेतीस सागरोपम में एक समय कम तक सब मध्यम स्थिति होती है। किन्तु कुछ स्थान ऐसे हैं जहाँ जघन्य और मध्यम स्थिति एवं उत्कृष्ट स्थिति नहीं होती किन्तु एक ही प्रकार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की स्थिति होती है। उस स्थिति को शास्त्रकार अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थिति कहते हैं। जैसे कि - सातवीं नरक के अप्रतिष्ठान नरकेन्द्र में तेतीस सागरोपम की ही स्थिति है कम नहीं। इसी प्रकार सर्वार्थ सिद्ध विमान में भी तेतीस सागरोपम की ही स्थिति होती है।

प्रश्न - इसे उत्कृष्ट स्थिति ही क्यों न कह दी जाय?

उत्तर - जहाँ जघन्य स्थिति होती है उस जघन्य की अपेक्षा उत्कृष्ट स्थिति बताई जाती है। परन्तु जहाँ जघन्य स्थिति नहीं है तो किस की अपेक्षा से उत्कृष्ट बताई जाय? जैसे - देवदत्त नामक व्यक्ति के तीन लड़के हों तो छोटा, मझला और बड़ा ऐसे कहा जा सकता है। परन्तु देवदत्त के एक ही लड़का हो तो किससे छोटा व किससे बड़ा कहा जाय? इसी प्रकार स्थिति के सम्बन्ध में भी समझना चाहिये। अतः एक ही प्रकार की स्थिति को "अजघन्य अनुत्कृष्ट" शब्द से बतलाया गया है। तेतीस सागरोपम से अधिक किसी भी जीव की स्थिति नहीं होती। इसलिये स्थिति सम्बन्धी समवाय भी यहाँ पूरा कर दिया गया है। इसके आगे स्थिति का बोल नहीं चलता है।

भवसिद्धिक जीवों के भवग्रहण के बोल भी तेतीस तक ही दिये गये हैं। इससे आगे बोल नहीं दिये गये हैं। भवसिद्धिक जीव इससे भी अधिक भव करने वाले होते हैं फिर आगे के बोल क्यों नहीं दिये इसका रहस्य या तो बहुश्रुत ज्ञानी जानते हैं अथवा केवली भगवान् जानते हैं। यथा - "**तत्त्वं तु बहुश्रुता विदन्ति**" अथवा "**तत्त्वं तु केवलि गम्यम्**"

चौतीसवां समवाय

चोत्तीसं बुद्धाइसेसा पण्णत्ता तंजहा - १. अवट्ठिए केसमंसुरोमणहे २. णिरामया णिरुवलेवा गायलट्ठी ३. गोक्खीरपंडुरे मंससोणिए ४. पउमुप्पलगंधिए उस्सासणिस्सासे ५. पच्छण्णे आहार णीहारे अदिस्से मंस चक्खुणा ६. आगासगयं चक्कं ७. आगासगयं छत्तं ८. आगासगयाओ सेयवरचामराओ ९. आगासफालियामयं सपायपीढं सीहासणं १०. आगासगओ कुडभीसहस्स परिमंडियाभिरामो इंदज्झओ पुरओ गच्छइ ११. जत्थ जत्थ वि य णं अरहंता भगवंतो चिट्ठति वा णिसीयंति वा तत्थ तत्थ वि य णं तक्खणादेव संछण्ण पत्तपुप्फपल्लवसमाउलो सच्छत्तो सज्झओ सघंटो सपडागो असोगवरपायवो अभिसंजायइ १२ ईसिं पिट्ठओ मउडठाणम्मि तेयमंडलं अभिसंजायइ अंधकारे वि य णं दस दिसाओ पभासेइ १३. बहुसमरमणिज्जे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भूमिभागे १४. अहोसिरा कंटया जायंति १५. उऊ विवरीया सुहफासा जायंति (भवंति) १६. सीयलेणं सुहफासेणं सुरभिणा मारुएणं जोयण परिमंडलं सव्वओ समंता संपमज्जिज्जइ, १७. जुत्तफुसिएणं मेहेण य णिहयरयरेणुयं किज्जइ १८. जलथलय भासुरपभूएणं बिंटट्ठाइणा दसद्धवण्णेणं कुसुमेणं जाणुस्सेह प्पमाणमित्ते पुप्फोवयारे किज्जइ १९.अमणुण्णाणं सद्दफरिस-रसरूवगंधाणं अवकरिसो भवइ २०. मणुण्णाणं सद्द फरिसरसरूवगंधाणं पाउब्भावो भवइ, २१. पच्चाहरओ वि य णं हिययगमणीओ जोयणणीहारी सरो, २२. भगवं च णं अद्धमागहीए भासाए धम्ममाइक्खइ २३. सा वि य णं अद्धमागही भासा भासिज्ज-माणी तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं दुप्पयचउप्पयमियपसुपक्खि सरीसिवाणं अप्पणो हिय सिव सुहय भासत्ताए परिणमइ २४. पुव्वबद्धवेरा वि य णं देवासुर णागसुवण्णजक्खरक्खस किण्णर किंपुरिसगरुलगंधव्व महोरगा अरहओ पायमूले पसंतचित्तमाणसा धम्मं णिसामंति २५. अण्णउत्थिय पावयणिया वि य णं आगया वंदंति २६. आगया समाणा अरहओ पायमूले णिप्पलिवयणा हवंति २७ जओ जओ वि य णं अरहंतो भगवंतो विहरंति तओ तओ वि य णं जोयण पणवीसाए णं ईई ण भवइ २८. मारी ण भवइ २९. सचक्कं ण भवइ ३०. परचक्कं ण भवइ ३१. अइवुट्ठी ण भवइ ३२. अणावुट्ठी ण भवइ ३३. दुब्भिक्खं ण भवइ ३४. पुव्वुप्पण्णा वि य णं उप्पाइया वाही खिप्पमेव उवसमंति । जंबूद्दीवे णं दीवे चोत्तीसं चक्कवट्टि विजया पण्णत्ता तंजहा - बत्तीसं महाविदेहे दो भरहे एरवए । जंबूद्दीवे णं दीवे चोत्तीसं दीहवेयड्ढा पण्णत्ता। जंबूद्दीवे णं दीवे उक्कोसए चोत्तीसं तित्थयरा समुप्पज्जंति। चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो चोत्तीसं भवणावाससयसहस्सा पण्णत्ता। पढम पंचम छट्ठी सत्तमासु चउसु पुढवीसु चोत्तीसं णिरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।।३४ ।।

कठिन शब्दार्थ - बुद्धाइसेसा - बुद्धातिशेषा-तीर्थङ्कर भगवान् के अतिशय, **अवट्ठिए केस मंसु रोम णहे** - तीर्थङ्कर के मस्तक और दाढी मूछ के केश, शरीर के रोम और नख बढ़ते नहीं, अवस्थित रहते हैं, **णिरामया णिरुवलेवा गायलट्ठी** - निरामय निरुपलेप गात्रयष्टि-आमय=रोग रहित उनका शरीर नीरोग रहता है और मल आदि अशुचि का लेप नहीं लगता है, **गोक्खीरपंडुरे** - गोखीरपण्डुरः-गाय के दूध की तरह सफेद, **पउमुप्पलगंधिए** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पद्मउत्पलगंध-पद्म और नील कमल की सुगंध युक्त, **पच्छण्णे** - प्रच्छन्न, **मंसचक्खुणा** - चर्म चक्षु वालों को, **आगासगयं चक्कं** - आकाश में धर्म चक्र रहता है, **सेयवर चामराओ**- दोनो तरफ श्वेत चंवर बिंजाते रहते हैं, **कुडभीसहस्स परिमंडियाभिरामो** - छोटी छोटी हजारों पताकाओं से परिमण्डित, **इंदज्झओ** - इन्द्रध्वज, **संछण्णपत्तपुप्फपल्लवसमाउलो** - पत्र, पुष्प और पल्लवों से आच्छादित, **सच्छत्तो सज्झओ सघंटो सपडागो** - छत्र, ध्वजा, घण्टा और पताका सहित, **असोगवर पायवो** - श्रेष्ठ अशोक वृक्ष, **अभिसंजायए** - प्रकट हो कर छाया करता है, **तेयमंडलं** - तेजमण्डल-देदीप्यमान भामण्डल, **अहोसिरा** - अधोमुख, **उऊ** - ऋतुएं, **अविवरीय** - अविपरीत, **सुहफासा** - सुख स्पर्श वाली, **जायंति** - हो जाती हैं, **मारुएणं** - संवर्तक वायु से, **संपमज्जिज्जइ** - शुद्ध साफ हो जाता है, **जुत्तफुसिएण** - उचित जलबिन्दु का गिरना, **मेहेण** - मेघ के द्वारा, **णिहयरयरेणुयं** - आकाश और पृथ्वी पर रही हुई रज को शान्त कर देना, **जलथलयभासुरपभूएणं** - जल और स्थल में उत्पन्न होने वाले कमल चम्पा आदि, **जाणुस्सेहप्पमाणमित्ते** - जानु प्रमाण-घुटने तक, **पच्चाहरओ** - उपदेश देते समय, **हिययगमणीओ** - हृदय स्पर्शी, **जोयणणीहारी** - एक योजन तक सुनाई देता है, **दुप्पयचउप्पय-मियपसुपक्खि सरीसिवाणं** - द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी, **सरीसृप**- सांप आदि, **हियसिव सुहय भासत्ताए** - हितकारी, कल्याणकारी और सुखकारी प्रतीत होती है, **पुव्वबद्धवेरा** - पहले का बंधा हुआ वैर, **पसंतचित्तमाणसा** - शांत चित्त होकर, **णिसामंति** - सुनते हैं, **णिप्पलिवयणा** - निष्प्रतिवचना-निरुत्तर, **अइवुट्ठी** - अति वृष्टि, **पुव्वुप्पण्णा** - पहले से उत्पन्न हुए, **उप्पाइया** - उत्पात, **वाही** - व्याधियाँ, **उवसमंति** - शांत हो जाती हैं।

भावार्थ - तीर्थङ्कर भगवान् के चौतीस अतिशय कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - १. तीर्थङ्कर भगवान् के मस्तक और दाढी मूछ के केश बढ़ते नहीं हैं। उनके शरीर के रोम और नख भी बढ़ते नहीं हैं, सदा अवस्थित रहते हैं। २. उनका शरीर नीरोग रहता है और मल वगैरह अशुचि का लेप नहीं लगता है। ३. उनके शरीर का मांस और रक्त गाय के दूध की तरह सफेद होते हैं। ४. उनके श्वासोच्छ्वास में पद्म और नील कमल की तथा पद्मक और उत्पल कुष्ट गन्ध द्रव्य विशेष की सुगन्ध आती है। ५. उनका आहार और नीहार प्रच्छन्न होता है, चर्मचक्षु वालों को (छद्मस्थों को) दिखाई नहीं देता है। उपरोक्त पांच अतिशयों में से पहले अतिशय को छोड़ कर बाकी चार अतिशय उनके जन्म से ही होते हैं ६. तीर्थङ्कर भगवान् के आगे आकाश में धर्मचक्र रहता है। ७. उनके ऊपर तीन छत्र रहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

८. उनके दोनों तरफ श्रेष्ठ-श्वेत (सफेद) चंवर बिंजाते रहते हैं। ९. तीर्थङ्कर भगवान् के लिए आकाश के समान स्वच्छ, स्फटिक मणियों का बना हुआ पादपीठिका सहित सिंहासन होता है। १०. आकाश में बहुत ऊंचा छोटी छोटी हजारों पताकाओं से परिमण्डित इन्द्रध्वज तीर्थङ्कर भगवान् के आगे चलता है। ११. जहाँ जहाँ पर तीर्थङ्कर भगवान् खड़े रहते हैं अथवा बैठते हैं वहाँ वहाँ पर उसी समय पत्र, पुष्प और पल्लवों से सुशोभित छत्र ध्वजा घण्टा और पताका सहित अशोक वृक्ष प्रकट होकर उन पर छाया करता है १२. भगवान् के कुछ पीछे मस्तक के पास अत्यन्त देदीप्यमान भामण्डल रहता है, वह अन्धकार में भी दसों दिशाओं को प्रकाशित करता है १३. जहाँ भगवान् विचरते हैं वहाँ का भूमिभाग बहुत समतल और रमणीय हो जाता है। १४. जहाँ भगवान् विचरते हैं वहाँ कांटे अधोमुख हो जाते हैं। १५. जहाँ भगवान् विचरते हैं वहाँ ऋतुएं सुख स्पर्श वाली यानी अनुकूल हो जाती हैं। १६. जहाँ भगवान् विचरते हैं वहाँ शीतल सुख स्पर्श वाले सुगन्धित संवर्तक वायु से चारों तरफ एक एक योजन तक क्षेत्र शुद्ध साफ हो जाता है। १७.जहाँ भगवान् विचरते हैं वहाँ मेघ उचित परिमाण में बरस कर आकाश और पृथ्वी पर रही हुई रज को शान्त कर देते हैं। १८. भगवान् जहाँ विचरते हैं वहाँ जल में उत्पन्न होने वाले कमल और स्थल में उत्पन्न होने वाले चम्पा आदि पांच प्रकार के अचित्त फूलों की जानुप्रमाण - घुटने तक देवकृत पुष्पवृष्टि होती है। १९. भगवान् जहाँ विचरते हैं वहाँ अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध नहीं रहते हैं। २०. भगवान् जहाँ विचरते हैं वहाँ मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध प्रकट होते हैं २१. उपदेश देते समय भगवान् का स्वर अतिशय हृदय स्पर्शी होता है और एक योजन तक सुनाई देता है। २२. तीर्थङ्कर भगवान् अर्द्धमागधी भाषा में धर्मोपदेश फरमाते हैं २३. भगवान् के मुख से फरमाई हुई उस अर्द्धमागधी भाषा में यह विशेषता होती है कि उसको आर्य, अनार्य, द्विपद चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी, सरीसृप-सांप आदि सब अपनी अपनी भाषा में समझते हैं और वह उन्हें हितकारी, कल्याणकारी एवं सुखकारी प्रतीत होती है। २४. पहले से जिनके वैर बंधा हुआ है ऐसे वैमानिक देव, असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, गरुड़, गन्धर्व और महोरग आदि सब तीर्थङ्कर भगवान् के चरणों में आकर अपना वैर भूल जाते हैं और शान्त चित्त होकर धर्मोपदेश सुनते हैं। २५. भगवान् के पास आये हुए अन्यतीर्थिक उन्हें वन्दना करते हैं। २६. भगवान् के चरणों में आते ही वे निरुत्तर हो जाते हैं। २७. जहाँ जहाँ तीर्थङ्कर भगवान् विहार करते हैं वहाँ वहाँ पर पच्चीस योजन यानी सौ कोस के अन्दर ईति-चूहे आदि जीवों से धान्य का उपद्रव नहीं होता है। २८. मारी - जनसंहारक प्लेग आदि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपद्रव नहीं होता है। २९. स्वचक्र का भय यानी स्वराज्य की सेना से उपद्रव नहीं होता है। परचक्र का भय -दूसरे राजा की सेना का उपद्रव नहीं होता है। ३१. अतिवृष्टि -अधिक वर्षा नहीं होती है। अनावृष्टि - वर्षा का अभाव नहीं होता है ३३. दुर्भिक्ष - दुष्काल नहीं होता है। ३४. पहले से उत्पन्न हुए उत्पात और व्याधियाँ शीघ्र ही शान्त हो जाती हैं। इन चौतीस अतिशयों में से दो से पांच तक के चार अतिशय तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म से ही होते हैं। इक्कीस से चौतीस तक तथा भामण्डल ये पन्द्रह अतिशय घाती कर्मों के क्षय होने पर प्रकट होते हैं। शेष पन्द्रह अतिशय देवकृत होते हैं। इस जम्बूद्वीप में चौतीस चक्रवर्ती विजय कहे गये हैं यथा - महाविदेह में बत्तीस विजय हैं और भरत तथा ऐरवत । ये चौतीस विजय क्षेत्र हैं। इन चौतीस क्षेत्रों में चक्रवर्ती उत्पन्न होते हैं, इसलिए ये चक्रवर्ती विजय कहलाते हैं। जम्बूद्वीप में चौतीस दीर्घ वैताढ्य पर्वत कहे गये हैं। जम्बूद्वीप में एक साथ उत्कृष्ट चौतीस तीर्थङ्कर होते हैं। असुरों के राजा असुरों के इन्द्र चमरेन्द्र के चौत्तीस लाख भवन कहे गये हैं। पहली में तीस लाख, पांचवीं में तीन लाख, छठी में पांच कम एक लाख और सातवीं में पांच नरकावास हैं, इस तरह चारों नरकों के मिला कर चौतीस लाख नरकावास कहे गये हैं॥ ३४॥

विवेचन - यहाँ तीर्थङ्कर भगवन्तों के ३४ अतिशय बताये गये हैं। मूल में '**बुद्धाइसेसा**' शब्द दिया है। वैसे '**बुद्ध**' शब्द का अर्थ है ज्ञानी, किन्तु यहाँ पर '**बुद्ध**' शब्द से तीर्थङ्कर अर्थ लिया गया है। 'अइसेस' का अर्थ है - 'अतिशेष' अर्थात् अतिशय। दूसरे जीवों की अपेक्षा जिस जीव में जिस गुण की विशेषता पाई जाती हो, उसको अतिशय कहते हैं।

कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य द्वारा रचित स्याद्वादमञ्जरी ग्रन्थ में बतलाया गया है कि - ये ३४ अतिशय तो गिनकर बतला दिये गये हैं किन्तु तीर्थङ्कर भगवन्तों के अनन्त अतिशय होते हैं। जिस प्रकार तीर्थङ्करों के १००८ बाहरी लक्षण बतलाये गये हैं जैसा कि उत्तराध्ययन सूत्र के २२ वें अध्ययन में कहा है -

"अट्ठसहस्सलक्खणधरो, गोयमो कालगच्छवी"

जिस प्रकार शरीर के बाहरी १००८ लक्षण होते हैं उसी प्रकार आंतरिक अतिशय भी अनन्त होते हैं। ३४ अतिशयों में से दूसरे से लेकर पांचवें तक चार अतिशय जन्म से होते हैं। पांचवें अतिशय का विवेचन करते हुए पूज्य आचार्य श्री आत्माराम जी म. सा. के सुशिष्य पण्डित रत्न श्री ज्ञानमुनि जी ने 'प्रश्नों के उत्तर' नामक पुस्तक के दूसरे भाग में लिखा है कि - तीर्थङ्कर भगवान् के सर्व अङ्गोपाङ्ग सुन्दर और शोभनिक तो होते ही हैं इसी प्रकार वे छद्मस्थों की दृष्टि में साधु के वेश सहित दिखाई देते हैं किन्तु वस्त्र रहित नग्न नहीं दिखाई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देते हैं। क्योंकि नीहार (बड़ीनीत) करते वक्त थोड़े समय के लिये भी नग्न दिखाई नहीं देते हैं तो जीवनपर्यंत सारे दिन नग्न दिखाई देते हों, यह संभव नहीं है।

तीर्थङ्कर भगवान् की वाणी सब प्राणियों को अपनी अपनी भाषा में परिणत हो जाती है यह उस वाणी की विशेषता है जैसे कि कहा है -

देवाः दैवीं नराः नारीं, शबराश्चापि शाबरीम् ।
तिर्यञ्चोऽपि तैरिश्चीं, मेनिरे भगवद् गिरम् ॥

अर्थात् तीर्थङ्कर भगवान् की वाणी देवता देव भाषा में, मनुष्य मनुष्यों की भाषा में, शबर अर्थात् अनार्य लोग अनार्य भाषा में और तिर्यञ्च तिर्यञ्चों की भाषा में समझते हैं यह तीर्थङ्कर वाणी की विशेषता है। भगवान् तो अर्द्धमागधी भाषा में फरमाते हैं। उनकी वाणी एक योजन तक सुनाई देती है इसका अर्थ यह है कि - परिषद् लम्बी चौड़ी फैली हुई हो तो वह वाणी एक योजन तक भी सुनाई दे सकती है किन्तु यदि वे धीरे बातचीत करना चाहें तो धीरे भी कर सकते हैं। जैसे कि - गौतम स्वामी आदि प्रश्नोत्तर के समय।

'ईति' सात प्रकार की बतलायी गई है -

अतिवृष्टिरनावृष्टिः, मूषकाः शलभाः खगाः ।
स्वचक्रं परचक्रं च, सप्तैताः ईतयः समृताः ॥

अर्थ - अधिक वर्षा होना, जिससे कि फसल नष्ट हो जाय। अनावृष्टि - वर्षा का सर्वथा अभाव जिससे कि धान्य पैदा न हो और दुष्काल सा पड़ जाय। चूहों की तथा टीड पतंगों की और पक्षियों की अधिक उत्पत्ति हो जिससे कि पैदा हुई खेती को नुकसान पहुँचा दे। अपने देश के राजा का भय-अपनी प्रजा को लूट ले, दुःखित करे आदि। दूसरे राजा का भय-वह राजा अपने देश पर कब आक्रमण कर दे।

तीर्थङ्कर भगवान् जहाँ विचरते हैं वहाँ ये 'ईतियाँ' नहीं होती हैं।

प्रत्येक चक्रवर्ती छह खण्ड को साध कर चक्रवर्ती पद को प्राप्त करता है। इन छह खण्डों को विजय करता है। इसलिये इनको 'विजय' कहते हैं।

वैताढ्य पर्वत दो प्रकार के होते है - दीर्घ (लम्बा) वैताढ्य और वृत्त (गोल) वैताढ्य। भरत क्षेत्र और ऐरवत क्षेत्र में एक-एक दीर्घ वैताढ्य पर्वत है और महाविदेह क्षेत्र में बत्तीस दीर्घ वैताढ्य पर्वत हैं। इस प्रकार जम्बूद्वीप में कुल ३४ दीर्घ वैताढ्य पर्वत हैं।

मूल पाठ में लिखा है -

'जंबूद्दीवे णं दीवे उक्कोसए चोत्तीसं तित्थयरा समुप्पज्जंति ।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ पर 'समुप्पज्जंति' का अर्थ 'होते हैं' ऐसा करना चाहिये। किन्तु 'उत्पन्न होते हैं' ऐसा अर्थ नहीं करना चाहिये क्योंकि तीर्थङ्कर का जन्म आधी रात को होता है। जब महाविदेह क्षेत्र में दिन होता है तब भरत क्षेत्र और ऐरवत क्षेत्र में रात होती है और जब भरत और ऐरवत में दिन होता है तब महाविदेह क्षेत्र में रात होती है। इसलिये चौंतीस तीर्थङ्करों का जन्म एक साथ नहीं हो सकता है किन्तु चार तीर्थङ्करों का जन्म एक साथ होता है। चौंतीस तीर्थङ्कर एक साथ पाये जा सकते हैं। महाविदेह के ३२ ही विजय में तीर्थङ्कर हों और उसी समय में भरत और ऐरवत में भी तीर्थङ्कर हों तो चौंतीस तीर्थङ्कर एक साथ पाये जा सकते हैं। इसीलिये ५ भरत और ५ ऐरवत के दस तीर्थङ्कर तथा महाविदेह के १६० तीर्थङ्कर इस प्रकार उत्कृष्ट १७० तीर्थङ्कर (देवाधिदेव) एक साथ पाये जा सकते हैं। चक्रवर्ती एक साथ एक सौ पचास तथा वासुदेव भी एक सौ पचास एक साथ पाये जा सकते हैं। किन्तु एक सौ सित्तर नहीं ।

मेरु पर्वत पर पण्डकवन है। उस वन में तीर्थङ्कर भगवन्तों का जन्माभिषेक करने के लिये चार अभिषेक शिलायें हैं। यथा - १. पंडुशिला २. पंडुकंबलशिला ३. रक्तशिला ४. रक्तकम्बलशिला। मेरु पर्वत के पूर्व दिशा में पण्डुशिला है उस पर दो सिंहासन हैं। उन दोनों पर पूर्व महाविदेह के दो तीर्थङ्करों का जन्माभिषेक किया जाता है। मेरु पर्वत के पश्चिम में पण्डक वन में रक्तशिला है उस पर दो सिंहासन पश्चिम महाविदेह के दो तीर्थङ्करों का जन्माभिषेक किया जाता है। इस प्रकार चार तीर्थङ्करों का जन्म एक साथ हो सकता है। यह पहले बताया जा चुका है कि तीर्थङ्करों का जन्म आधी रात्रि में होता है। इसलिये जब महाविदेह में तीर्थङ्करों का जन्म होता है उस समय भरत क्षेत्र और एरवत क्षेत्र में दिन होता है। इसलिये वहाँ उस समय तीर्थङ्करों का जन्म नहीं होता है। मेरु पर्वत के दक्षिण में पण्डकवन में पण्डुकम्बलशिला है। उस पर एक सिंहासन है। उस पर भरत क्षेत्र के तीर्थङ्करों का जन्माभिषेक किया जाता है। इसी प्रकार मेरु पर्वत के उत्तर में पण्डक वन में रक्तकम्बलशिला है उस पर एक सिंहासन है। वहाँ ऐरवत क्षेत्र के तीर्थङ्करों का जन्माभिषेक किया जाता है। निष्कर्ष यह है कि - चार तीर्थङ्करों का जन्म एक साथ हो सकता है इससे अधिक नहीं ।

३४ अतिशयों में से दूसरे से लेकर पांचवें तक के चार अतिशय तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म से ही होते हैं। २१ से ३४ तक तथा भामण्डल (बारहवाँ) अतिशय, ये कुल १५ अतिशय घाती कर्म के क्षय से उत्पन्न होते हैं। शेष १५ अतिशय देवकृत होते हैं अर्थात् पहला तथा छठे से लेकर बीसवें तक (बारहवाँ भामण्डल नामक अतिशय को छोड़ कर) ये पन्द्रह अतिशय।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिगम्बर परम्परा में भी प्रायः ये ही अतिशय कुछ पाठ भेद से मिलते हैं। वहाँ जन्मजात १० अतिशय, घातिकर्मों के क्षय से १० अतिशय और देवकृत १४ अतिशय कहे गये हैं।

पहली, पांचवी, छठी और सातवीं इन चार पृथ्वियों में ३४००००० (३०+३+पांच कम एक लाख और ५) नरकावास कहे गये हैं।

पैंतीसवां समवाय

पणतीसं सच्चवयणाइसेसा पण्णत्ता। कुंथू णं अरहा पणतीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। दत्ते णं वासुदेवे पणतीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। णंदणे णं बलदेवे पणतीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। सोहम्मे कप्पे सुहम्माए सभाए माणवए चेइयक्खंभे हेट्ठा उवरिं च अद्धतेरस अद्धतेरस जोयणाणि वज्जित्ता मज्झे पणतीस जोयणेसु वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु जिण सकहाओ पण्णत्ताओ। बितियचउत्थीसु दोसु पुढवीसु पणतीसं णिरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ॥ ३५ ॥

कठिन शब्दार्थ - सच्चवयणाइसेसा - सत्य वचन के अतिशय, **उड्ढं उच्चत्तेणं** - ऊंचाई, **वइरामएसु** - वज्रमय, **गोलवट्टसमुग्गएसु** - गोल वर्तुलाकार समुद्गक (पेटी), **जिण सकहाओ** - तीर्थंकर भगवान् की अस्थियाँ।

भावार्थ - तीर्थङ्कर भगवान् की वाणी सत्य वचन के अतिशयों से सम्पन्न होती है। सत्यवचन के पैंतीस अतिशय कहे गये हैं।

१. संस्कारवत्त्व - संस्कार युक्त होना अर्थात् भाषा और व्याकरण की दृष्टि से निर्दोष होना। २. उदात्तत्त्व - ऊंचे स्वर से बोला जाना। ३. उपचारोपेतत्त्व - शिष्टाचार युक्त एवं ग्राम्य दोष से रहित होना। ४. गम्भीर शब्दता - आवाज में मेघ की तरह गम्भीरता होना। ५ अनुनादित्त्व - आवाज का प्रतिध्वनि सहित होना। ६. दक्षिणत्व - भाषा में सरलता होना। ७. उपनीत रागत्व - माल कोश आदि ग्राम राग से युक्त होना अथवा वाणी में ऐसी विशेषता होना कि श्रोताओं में उसके प्रति बहुमान के भाव उत्पन्न हो। ८. महार्थत्व-महान् अर्थ से युक्त होना अर्थात् थोड़े शब्दों में अधिक अर्थ कहना। ९. अव्याहतपौर्वापर्यत्व- वचनों में पूर्वापर विरोध नहीं होना। १०. शिष्टत्व - अभिमत सिद्धान्त का कथन करना अथवा बोलने वाले की शिष्टता सूचित हो ऐसे वचन कहना। ११. असन्दिग्धत्व - स्पष्टता पूर्वक बोलना जिससे कि श्रोताओं के दिल में सन्देह न हो । १२. अपहृतान्योत्तरत्व - वचन ऐसा स्पष्ट और निर्दोष हो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कि श्रोताओं को शंका करने का अवसर ही न आवे। १३. हृदय ग्राहित्व - ऐसा वचन बोलना कि श्रोताओं का मन आकृष्ट हो जाय और कठिन विषय भी सरलता से समझ में आ जाय। १४. देश काला व्यतीत्व - देश काल के अनुसार वचन बोलना। १५. तत्त्वानुरूपत्व - वस्तु का जैसा रूप हो वैसा ही उसका विवेचन करना। १६. अप्रकीर्णप्रसृतत्त्व - उचित विस्तार के साथ व्याख्यान करना अथवा असम्बद्ध अर्थ का कथन न करना एवं सम्बन्ध अर्थ का भी अत्यधिक विस्तार न करना। १७. अन्योन्यप्रगृहीतत्त्व - पद और वाक्यों का सापेक्ष होना। १८. अभिजातत्व - भूमिकानुसार विषय कहना। १९. अति स्निग्धमधुरत्व - भूखे को जैसे घी खांड का भोजन रुचिकर होता है। वैसे ही श्रोता के लिए वचन का रुचिकर होना। २०. अपरमर्मवेधित्व - दूसरे के मर्म - रहस्य का प्रकाश न करना। २१. अर्थधर्माभ्यासानपेतत्व- मोक्ष रूप अर्थ और श्रुत चारित्र रूप धर्म से सम्बद्ध होना। २२. उदारत्व - शब्द और अर्थ की उदारता होना। २३. परनिन्दात्मोत्कर्ष विप्रयुक्तत्व- दूसरे की निन्दा और आत्मप्रशंसा से रहित वचन बोलना। २४. उपगतश्लाघत्व - वचन में उपरोक्त गुण होने से वक्ता की श्लाघा- प्रशंसा होना। २५. अनपनीतत्व - कारक, काल, लिंग, वचन आदि की विपरीतता रूप दोष न होना। २६. उत्पादिताविच्छिन्नकुतूहलत्व - श्रोताओं के चित्त में चमत्कार करने वाला वचन होना। २७. अद्भुतत्व - वचनों के अश्रुतपूर्व होने के कारण श्रोता के दिल में हर्ष रूप विस्मय का बना रहना। २८. अनतिविलम्बितत्व - विलम्ब रहित होना अर्थात् धारा प्रवाह से उपदेश देना। २९. विभ्रमविक्षेप किलिकिञ्चतादिविप्रयुक्त्व - वक्ता के मन में भ्रान्ति होना विभ्रम है। कहे जाने वाले विषय में उसका दिल न लगना विक्षेप है। रोष, भय, लोभ आदि भावों के सम्मिश्रण को किलिकिञ्चित कहते हैं। इन दोषों से तथा मन के अन्य दोषों से रहित होना। ३०. विचित्रत्व - वर्णनीय वस्तुओं के विविध प्रकार की होने के कारण वाणी में विचित्रता होना। ३१. आहितविशेषत्व- दूसरें पुरुषों की अपेक्षा वचनों में विशेषता होने के कारण श्रोताओं को विशिष्ट बुद्धि प्राप्त होना। ३२. साकारत्व - वर्ण, पद और वाक्यों का अलग अलग होना ३३. सत्त्वपरिगृहीतत्व - भाषा का ओजस्वी, प्रभावशाली होना। ३४. अपरिखेदित्व - उपदेश देते हुए थकावट का अनुभव न करना। ३५. अव्युच्छेदित्व - जो विषय समझाना है उसकी जब तक सम्यक् प्रकार से सिद्धि न हो तब तक बिना व्यवधान के व्याख्यान करते रहना। इनमें पहले सात अतिशय शब्द की अपेक्षा से हैं और बाद के अट्ठाईस अतिशय अर्थ की अपेक्षा से हैं।

सतरहवें तीर्थङ्कर श्री कुन्थुनाथ स्वामी के शरीर की ऊंचाई पैंतीस धनुष की थी। सातवें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वासुदेव दत्त की और सातवें बलदेव नन्दन के शरीर की ऊंचाई पैंतीस धनुष की थी। पहले सौधर्म देवलोक में सुधर्मा सभा में माणवक नाम का चैत्य स्तम्भ है। वह ६० योजन का है, उसमें साढे बारह योजन ऊपर और साढे बाहर योजन नीचे छोड़ कर बीच में पैंतीस योजन में वज्रमय गोलवर्तुलाकार समुद्‌गक - पेटी के आकार है, उनमें तीर्थङ्कर भगवान् की अस्थियाँ रखी हुई हैं। दूसरी नरक में पचीस लाख नरकावास हैं और चौथी नरक में दस लाख नरकावास हैं, कुल मिलाकर दोनों नरकों में पैंतीस लाख नरकावास कहे गये हैं ॥ ३५ ॥

विवेचन - सत्य वचन के ३५ अतिशय बताये गये हैं। उनके नाम और अर्थ टीका के अनुसार ऊपर भावार्थ में दिये गये हैं।

यहाँ मूल में 'दत्त' नाम के सातवें वासुदेव और 'नन्दन' नाम के सातवें बलदेव के शरीर की ऊंचाई ३५ धनुष बतलाई गई है। किन्तु आवश्यक सूत्र में इनके शरीर की ऊंचाई २६ धनुष बतलाई है। यह बात सरलता से समझ में आ सकती है। क्योंकि कहा है -

'अर मल्लि अंतरे दोण्णि केसवा पुरिस पुंडरीय दत्त ति' अर्थात् पुरुषपुंडरीक नामक छठा वासुदेव और दत्त नामक सातवाँ वासुदेव, भगवान् अरनाथ और मल्लिनाथ स्वामी के अन्तराल में हुए थे। छठे पुरुषपुंडरीक वासुदेव के शरीर की अवगाहना २९ धनुष थी और सातवें दत्त वासुदेव की अवगाहना २६ धनुष थी। यह बात सुघटित होती है क्योंकि भगवान् अरनाथ की अवगाहना ३० धनुष और मल्लिनाथ स्वामी की अवगाहना २५ धनुष थी। इसलिये इसके अन्तराल में होने वाले छठे और सातवें वासुदेवों की अवगाहना क्रमशः २९ और २६ धनुष होना संगत हो जाता है। परन्तु यहाँ पर सातवें दत्त वासुदेव और नन्दन बलदेव की अवगाहना ३५ धनुष कही गई है। यह बात तब हो सकती है जब कि इन को भगवान् कुन्थुनाथ के समय में माना जावे । परन्तु ऐसी मान्यता नहीं है। इसलिये दत्त वासुदेव और नन्दन बलदेव की अवगाहना ३५ धनुष की बतलाने वाले इस पाठ की संगति होना दुरवबोध है। ऐसा टीकाकार ने लिखा है।

सौधर्म कल्प आदि देवलोकों में प्रत्येक में पांच पांच सभाएं होती हैं। यथा - १. सुधर्मा सभा २. उपपात सभा ३. अभिषेक सभा ४. अलंकार सभा ५. व्यवसाय सभा ।

सुधर्मा सभा के मध्यभाग में मणिपीठिका के ऊपर साठ योजन का माणवक नामक चैत्यस्तम्भ है। उसके १२॥ योजन ऊपर और १२॥ योजन नीचे छोड़ कर बीच में ३५ योजन में वज्रमय गोलवर्तुलाकार समुद्‌गक (पेटी के आकार) हैं, उनमें 'जिण सकहाओ' रखी हुई है 'जिण सकहाओ' का अर्थ टीकाकार ने इस प्रकार किया है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"जिनानां तीर्थकराणां मनुजलोक निर्वृतानां 'सकहा' सक्थीनि अस्थीनि"

अर्थात् उन गोल डिब्बों में तीर्थङ्करों की अस्थियाँ (हड्डियाँ) रखी हुई हैं। यहाँ पर विचारणीय बात यह है कि – जम्बूद्वीप पण्णत्ति सूत्र के दूसरे वक्षस्कार में बतलाया है कि – जब तीर्थङ्कर भगवान् का दाह संस्कार हो जाता है तब शक्रेन्द्र भगवान् की ऊपर की दक्षिण तरफ की दाढ़ को एवं ईशानेन्द्र ऊपर की उत्तर की तरफ बांयी दाढ को ग्रहण करता है। इसी प्रकार नीचे की दक्षिण की दाढ को चमरेन्द्र और उत्तर की दाढ़ को बलीन्द्र ग्रहण करता है। शेष दूसरे देव यथायोग्य उनकी अस्थियों को ग्रहण करते हैं। किन्तु वे अस्थियाँ भी सब देवों को प्राप्त नहीं होती हैं। जलने के बाद शेष रही अस्थियाँ परिमित रहती हैं और देव असंख्यात हैं।

विचारणीय बात यह है कि – ये पांचों सभायें शाश्वत हैं। माणवक चैत्य भी शाश्वत है। उसमें रखे हुये समुद्गक भी शाश्वत हैं। उनमें रखी हुई दाढायें और अस्थियाँ भी शाश्वत हैं इसलिये ये पृथ्वीकाय के शाश्वत पुद्गल हैं और वे दाढायें और अस्थियों के आकार वाली हैं। परन्तु यहाँ से ले जायी गई तीर्थङ्कर भगवान् की असली दाढा और अस्थियाँ नहीं है। उनको देवता भक्ति वश ले जाते हैं। परन्तु वे तो कृत्रिम वस्तुएं हैं इसलिये संख्यात काल से अधिक नहीं रहती हैं। अतः फिर स्वतः विलीन हो जाती हैं अर्थात् नष्ट हो जाती है। किन्तु वहाँ रही हुई दाढायें और अस्थियाँ तो अनादि काल से है अर्थात् अनन्त काल बीत चुका और अनन्त काल तक ज्यों की त्यों रहेंगी। अतः वे शाश्वत हैं।

वे तीर्थङ्कर की दाढा और अस्थि नहीं है।

छत्तीसवां समवाय

छत्तीसं उत्तरज्झयणा पण्णत्ता तंजहा – १. विणयसुयं २. परीसहो ३. चाउरंगिज्जं ४. असंखयं ५. अकाममरणिज्जं ६. पुरिसविज्जा ७. उरब्भिज्जं ८. काविलीयं ९. णमिपव्वज्जा १०. दुमपत्तयं ११. बहुसुयपूजा १२. हरिएसिज्जं १३. चित्तसंभूयं १४. उसुयारिज्जं १५. सभिक्खुयं १६. समाहि ठाणाइं १७. पाव समणिज्जं १८. संजइज्जं १९. मिय चरिया २०. अणाह पव्वज्जा २१. समुद्दपालियं २२. रहणेमिज्जं २३. गोयमकेसिज्जं २४. समिईओ २५. जण्णइज्जं २६. सामायारी २७. खलुंकिज्जं २८. मोक्खमग्ग गई २९. अप्पमाओ ३०. तवो मग्गो ३१. चरणविही ३२. पमाय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ठाणाइं ३३. कम्मपयडी ३४. लेस्सज्झयणं ३५. अणगार मग्गे ३६. जीवाजीवविभत्ती य। चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो सभा सुहम्मा छत्तीसं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। समणस्स णं भगवओ महावीरस्स छत्तीसं अज्जाणं साहस्सीओ होत्था। चित्ता सोएसु मासेसु सइ छत्तीसंगुलियं सूरिए पोरिसीछायं णिव्वत्तइ ॥ ३६ ॥

कठिन शब्दार्थ - उत्तरज्झयणा - उत्तराध्ययन सूत्र के अध्ययन, **चाउरंगिज्जं** - चतुरंगीय, **असंखयं**- असंस्कृत, **पुरिसविज्जा** - पुरुषविद्या-क्षुल्लक निर्ग्रन्थ, **उरब्भिज्जं** - औरभ्रीय, **दुमपत्तयं** - द्रुमपत्रक, **बहुसुयपूजा** - बहुश्रुत पूजा, **उसुयारिज्जं** - इषुकारीय, **पावसमणिज्जं** - पाप श्रमणीय, **मिय चरिया** - मृगचर्या, **अणाह पव्वज्जा** - अनाथ प्रव्रज्या, **जण्णइज्जं** - यज्ञीय, **खलुंकिज्जं** - खलुंकीय, **पमाय ठाणाइं** - प्रमाद स्थान, **लेसज्झयणं**- लेश्या अध्ययन, **अणगार मग्गो** - अनगार मार्ग, **जीवाजीवविभत्ती** - जीवाजीव विभक्ति।

भावार्थ - उत्तराध्ययन सूत्र के छत्तीस अध्ययन कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. विनयश्रुत-विनीत और अविनीत के लक्षण २. परीषह - बाईस परीषहों का कथन ३. चतुरङ्गीय - मनुष्यत्व, धर्म श्रवण, श्रद्धा और संयम में पुरुषार्थ, इन चार बातों का मिलना दुर्लभ ४. असंस्कृत - टूटा हुआ आयुष्य फिर जोड़ा नहीं जा सकता ५. अकाम मरणीय - अकाम मरण और सकाम मरण का कथन ६. पुरुष विद्या-क्षुल्लक निर्ग्रन्थ - बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह के त्याग का कथन ७. औरभ्रीय - भोगी पुरुष की बकरे के साथ तुलना ८. कापिलिक - कपिल मुनि का वृत्तान्त ९. नमिप्रव्रज्या - नमिराज की प्रव्रज्या और नमिराज के साथ इन्द्र का तात्त्विक प्रश्नोत्तर, १०. द्रुमपत्रक - वृक्ष के पके हुए पत्ते के साथ मनुष्य जीवन की तुलना ११. बहुश्रुतपूजा - बहुश्रुत साधु की १६ उपमाएं १२. हरिकेशीय - हरिकेशी मुनि का वर्णन १३. चित्तसंभूतीय-चित्त और सम्भूत इन दोनों भाइयों के पूर्व भव का वर्णन, चित्त मुनि का ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को उपदेश, १४. इषुकारीय-इषुकार राजा का वर्णन १५. सभिक्खु-सच्चा साधु कौन है? इसका वर्णन। १६. समाधिस्थान - ब्रह्मचर्य और उसकी नव वाड़ों तथा दसवाँ कोट का वर्णन १७. पाप श्रमणीय - पापी श्रमण किसको कहते हैं? इसका वर्णन। १८. संयतीय - कम्पिलपुर के राजा संजय का वर्णन १९. मृगचर्या-सुग्रीव नगर के बलभद्र राजा के तरुण युवराज मृगापुत्र का वर्णन। २०. अनाथ प्रव्रज्या या महानिर्ग्रन्थीय - अनाथी मुनि का वर्णन तथा अनाथ सनाथ का स्वरूप २१. समुद्रपालीय - समुद्रपाल मुनि का वर्णन २२. रथनेमीय - भगवान् अरिष्टनेमि और उनके छोटे भाई रथनेमि का तथा सती राजीमती का वर्णन। २३. गौतम केशी या केशी गौतमीय - केशी स्वामी और गौतम स्वामी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का परस्पर मिलना और उनके तात्त्विक प्रश्नोत्तर। २४. पांच समिति तीन गुप्ति रूप आठ प्रवचन माता का वर्णन २५. यज्ञीय - जयघोष और विजयघोष का वर्णन। २६. समाचारी - साधु समाचारी का वर्णन २७. खलुङ्कीय-गर्गाचार्य और उनके अविनीत शिष्यों का वर्णन। २८. मोक्ष मार्ग गति २९. अप्रमाद - सम्यक्त्व पराक्रम-तहतर बोलों की पृच्छा ३०. तपो मार्ग - तप के भेदों का वर्णन ३१. चरण विधि - एक से लेकर तेतीस तक की वस्तुओं का वर्णन ३२. प्रमाद स्थान - प्रमाद स्थानों का तथा उनसे छूटने के उपायों का वर्णन। ३३. कर्म प्रकृति - आठ कर्म और उनकी प्रकृतियों का वर्णन ३४. लेश्या अध्ययन - छह लेश्याओं का वर्णन ३५. अनगार मार्ग - साधु के मार्ग का वर्णन । ३६. जीवाजीव विभक्ति -जीव अजीव के भेदों का वर्णन। असुरों के राजा असुरों के इन्द्र चमरेन्द्र की सुधर्मा सभा छत्तीस योजन ऊंची है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के छत्तीस हजार आर्याएं थी। चैत्र मास और आश्विन मास में छत्तीस अंगुल प्रमाण पोरिसी की छाया होती है अर्थात् घुटने प्रमाण तृण को खड़ा करके देखें, जब छत्तीस अंगुल छाया पड़े तब पोरिसी आई हुई समझनी चाहिए।। ३६॥

विवेचन - उत्तराध्ययन सूत्र के ३६ अध्ययन कहे गये हैं। 'उत्तर' शब्द के अनेक अर्थ बतलाये गये हैं। यथा - उत्तर दिशा, ऊंचा, श्रेष्ठ, प्रधान, प्रश्न का उत्तर, पिछला, बांया, शक्तिशाली आदि अनेक अर्थ हैं। परन्तु यहाँ सिर्फ दो अर्थ लिये गये हैं - प्रधान और पिछला (बाद)। इस सूत्र में विनयश्रुत आदि छत्तीस अध्ययन हैं। इन में आगे से आगे प्रधान (उत्तर) अध्ययन कहे गये हैं। इसलिये यह सूत्र उत्तराध्ययन कहलाता है। अथवा सब से पहले शिष्य को आचाराङ्ग सूत्र पढ़ाया जाता है। उसमें साधु के आचार गोचर का वर्णन है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पांचवें पाट पर १४ पूर्वधारी आचार्य शय्यम्भव हुए हैं उन्होंने अपने पुत्र मनखमुनि का आयुष्य अल्प जान कर १४ पूर्वों में से दशवैकालिक सूत्र के दस अध्ययनों का निर्यूहण (उद्धरण) किया। 'आत्मप्रवाद' नामक सातवें पूर्व में से चौथे अध्ययन का तथा 'कर्म प्रवाद' नामक आठवें पूर्व में से ५ वाँ अध्ययन एवं 'सत्यप्रवाद' नामक छठे पूर्व में से सातवाँ अध्ययन और शेष सात अध्ययन नववें 'प्रत्याख्यान' पूर्व की तीसरी आचार वस्तु से निर्यूहण किया गया। तब से आचारांग सूत्र के बदले दशवैकालिक सूत्र पढाया जाने लगा । इसलिये उत्तर में अर्थात् बाद में पढाया जाने वाला होने से यह सूत्र उत्तराध्ययन कहलाता है। इसकी संक्षिप्त किन्तु कुछ विस्तार वाली विषय सूची श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह बीकानेर के प्रथम भाग के बोल नं. २०४ में दी गई है।

उनतीसवें अध्ययन का मुख्य नाम 'अप्रमाद' दिया है जिसका दूसरा नाम 'सम्यक्त्व

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पराक्रम' है। धार्मिक जीवन का मुख्य आधार सम्यक्त्व है। उसके पालन में एवं अतिचार निवारण करने में किसी प्रकार का प्रमाद नहीं करना चाहिये । यद्यपि उत्तराध्ययन सूत्र श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की अपुट्ठ वागरणा (अपृष्ट व्याकरण-प्रश्न पूछे बिना ही शिष्यों के हितार्थ शिक्षा देना) है, तथापि प्रश्नोत्तर रूप से बात सरलता से समझ में आ सकती है इसलिये इस अध्ययन में प्रश्नोत्तर की शैली अपनाई गई है। ७३ प्रश्न और उत्तर हैं। जिनमें चतुर्विध संघ के सभी धार्मिक कार्यों का निरूपण किया गया है। यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि - मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में कोई प्रश्नोत्तर नहीं दिया गया है। मूर्तिपूजा को न तो चतुर्विध संघ के लिये आवश्यक कार्य बतलाया गया है और न उसका फल बतलाया गया है। अतः मूर्तिपूजा आगमानुकूल नहीं है। उसके लिये फूल चढाना, फल चढाना, स्नान कराना आदि अनर्थदण्ड होने से पाप कर्म का बन्ध होता है।

चैत्र मास और आसोज मास की पूर्णिमा को पोरिसी छाया ३६ अङ्गुल प्रमाण होती है। यह कथन व्यवहार की अपेक्षा समझना चाहिये । निश्चय में तो मेष संक्रान्ति के दिन और तुला संक्रान्ति के दिन पौरुषी छाया छत्तीस अङ्गुल (३पाद प्रमाण) होती है। जैसा कि - उत्तराध्ययन सूत्र के सामाचारी नामक २६ वें अध्ययन में कहा है -

"चित्तासोएसु मासेसु, तिपया होइ पोरिसी ।"

अर्थात् चैत्र और आसोज महीने में पोरिसी की छाया तीन पैर प्रमाण होती है।

विशेष - बारह महीनों में पोरिसी छाया कितने कितने अङ्गुल की होती है यह बात उत्तराध्ययन सूत्र के २६ वें अध्ययन में बतलाई गई है। जिसका हिन्दी अनुवाद टीकानुसार जैन सिद्धान्त बोल संग्रह के चौथे भाग के बोल नं. ८०३ में विस्तार से खुलासा पूर्वक दिया है। जिज्ञासुओं को वहाँ देखना चाहिये ।

सैंतीसवां समवाय

कुंथुस्स णं अरहओ सत्ततीसं गणा, सत्ततीसं गणहरा होत्था। हेमवय हिरण्णवयाओ णं जीवाओ सत्ततीसं जोयण सहस्साइं छच्च चउसत्तरे जोयणसए सोलस य एगूणवीसइभाए जोयणस्स किंचिविसेसूणाओ आयामेणं पण्णत्ताओ। सव्वासु णं विजय वेजयंत जयंत अपराजियासु रायहाणीसु पागारा सत्ततीसं सत्ततीसं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। खुड्डियाए णं विमाणपविभत्तीए पढमे वग्गे सत्ततीसं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उद्देसण काला पण्णत्ता। कत्तिय बहुलसत्तमीए णं सूरिए सत्ततीसंगुलियं पोरिसी छायं णिव्वत्तइत्ता णं चारं चरइ ॥ ३७ ॥

कठिन शब्दार्थ - सत्ततीसं - सैंतीस, **हेमवय हिरण्णवयाओ** - हैमवय हिरण्णवय क्षेत्रों की, **सत्ततीसं जोयणसहस्साइं छच्च चउसत्तरे जोयणसए सोलसयएगूणवीसइभाए जोयणस्स किंचि विसेसूणाओ** - ३७६७४ योजन और १ योजन के १९ भागों में से १६ भाग से कुछ न्यून (कम), **रायहाणीसु** - राजधानियों में, **पागारा** - प्राकार-कोट, **खुड्डियाए विमाणपविभत्तीए** - क्षुद्र विमान प्रविभक्ति नामक कालिक सूत्र के।

भावार्थ - सतरहवें तीर्थङ्कर श्री कुन्थुनाथ स्वामी के सैंतीस गण और सैंतीस गणधर थे। हैमवय हिरण्णवय क्षेत्रों की जीवाएँ ३७६७४ योजन और एक योजन के १९ भागों में से १६ भाग से कुछ न्यून (कम) लम्बी कही गई हैं।

विजय, वैजयन्त, जयंत और अपराजित इन सब जम्बूद्वीप के पूर्वादि द्वारों की राजधानियों के कोट सैंतीस सैंतीस योजन के ऊँचे कहे गये हैं। क्षुद्र विमान प्रविभक्ति नामक कालिक सूत्र के पहले वर्ग में सैंतीस उद्देशन काल कहे गये हैं। कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की सप्तमी के दिन पौरिसी की छाया सैंतीस अङ्गुल की करके सूर्य परिभ्रमण करता है अर्थात् उस दिन जब सैंतीस अंगुल प्रमाण छाया आवे तब पोरिसी होती है, ऐसा समझना चाहिये ॥ ३७ ॥

विवेचन - यहाँ पर सतरहवें तीर्थङ्कर श्री कुन्थुनाथ स्वामी के ३७ गणधर और ३७ गण बतलाये हैं। किन्तु आवश्यक सूत्र में ३३ गणधर और ३३ गण बतलाये हैं। यह मतान्तर समझना चाहिये । आगम का मूल पाठ विशेष महत्त्व रखता है।

जम्बूद्वीप के चारों दिशाओं में चार द्वार (दरवाजे) बतलाये गये हैं - विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित । यहाँ से असंख्यात द्वीप समुद्र उल्लंघने के बाद असंख्यातवाँ द्वीप जम्बूद्वीप आता है। उसमें इन द्वारों के देवों की राजधानियाँ हैं। इन द्वारों के अधिपति देव और इनकी राजधानियों के नाम भी ये ही हैं। यथा - विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित ।

धनुष के दोनों किनारों को एक करने की दृष्टि से जो रस्सी बांधी जाती है उसको 'जीवा' कहते हैं। हेमवय (हैमवत) हेरण्यवय (हैरण्यवत) दोनों युगलिक क्षेत्र हैं। ये दोनों गोलाई में आये हुए हैं। इसलिये इनकी जीवा ३७६७४ $\frac{१६}{१९}$ योजन कही गई है।

'क्षुद्रिका विमान प्रविभक्ति' नामक कालिक सूत्र अभी उपलब्ध नहीं है। इस प्रकार आगे भी जहाँ जहाँ 'विमानप्रविभक्ति' का वर्णन आवे, वहाँ ऐसा ही समझ लेना चाहिये कि वह उपलब्ध नहीं है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अड़तीसवां समवाय

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अट्ठतीसं अज्जिया साहस्सीओ उक्कोसिया अज्जिया संपया होत्था। हेमवय हेरण्णवइयाणं जीवाणं धणुपिट्ठे अट्ठतीसं जोयणसहस्साइं सत्त य चत्ताले जोयणसए दस एगूणवीसइभागे जोयणस्स किंचि विसेसूणा परिक्खेवेणं पण्णत्ताओ। अत्थस्स णं पव्वयरण्णो बिईए कंडे अट्ठतीसं जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। खुड्डियाए णं विमाणपविभत्तीए बीईए वग्गे अट्ठतीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता ॥ ३८ ॥

कठिन शब्दार्थ - **पुरिसादाणीयस्स** - पुरुषादानीय-जिनके वचन पुरुषों में विशेष रूप से आदानीय (ग्रहण करने योग्य) हैं, पुरुषों में प्रधान, **अज्जिया** - आर्यिकाएं, **धणुपिट्ठे** - धनुःपृष्ठ-धनुष पृष्ठ, **अत्थस्स पव्वयरण्णो** - अस्ताचल पर्वतराज-मेरु, **कंडे** - काण्ड, **बिईए वग्गे** - दूसरा वर्ग।

भावार्थ - पुरुषों में प्रधान एवं पुरुषों में जिनके वचन विशेष रूप से आदानीय (ग्रहण करने योग्य) हैं ऐसे भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के उत्कृष्ट अड़तीस हजार आर्यिकाएं थीं । हैमवय हिरण्णवय क्षेत्रों की जीवा का धनुःपृष्ठ ३८७४० योजन और एक योजन के १९ भागों में से १० भाग से कुछ न्यून (कम) विस्तृत कहा गया है। अस्ताचल पर्वतराज यानी मेरु पर्वत का दूसरा काण्ड अड़तीस हजार योजन का ऊँचा कहा गया है। क्षुद्र विमान प्रविभक्ति नामक कालिक सूत्र के दूसरे वर्ग में अड़तीस उद्देशन काल कहे गये हैं ॥ ३८ ॥

विवेचन - २३ वें तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ के लिये आगमों में अनेक स्थलों पर पुरुषादानीय ऐसा विशेषण आता है। वैसे तो सभी तीर्थङ्करों के वचन आदानीय (ग्रहण करने योग्य) होते हैं किन्तु भगवान् पार्श्वनाथ के लिये ही पुरुषादानीय इस विशेषण का प्रयोग होता है इससे यह ध्वनित होता है कि भगवान् पार्श्वनाथ के 'आदेय' नाम कर्म का उदय विशेष रूप से था।

वृत्त (गोल) क्षेत्र की 'जीवा' (रस्सी या डोरी) बतलाई गई है। वह डोरी धनुष की होती है। इसलिये हैमवत और हैरण्यवत इन दोनों युगलिक क्षेत्रों का धनुष पृष्ठ भी होता है। यहाँ उस धनुष पृष्ठ की (परिधि-परिक्षेप) बतलाई गई है। वह इस प्रकार है - ३८७४० $\frac{१०}{१९}$ योजन से कुछ न्यून (कम) है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ 'अस्त' शब्द का प्रयोग किया गया है। यद्यपि सूर्य निरंतर गति करता ही रहता है कभी अस्त नहीं होता । किन्तु मेरुपर्वत की आड़ में आ जाने पर सूर्य अस्त हो गया है ऐसा व्यवहार में कहा जाता है इसलिये यहाँ पर 'अस्त' शब्द से मेरु पर्वत लिया गया है। इसीलिये इसको अस्ताचल पर्वत भी कहते हैं। यहाँ मेरु पर्वत का दूसरा काण्ड (विभाग) ३८००० योजन ऊंचा कहा गया है। परन्तु दूसरी जगह तो मेरुपर्वत के तीन काण्ड बतलाये गये हैं। उनमें पहला काण्ड १००० योजन का है। वह पृथ्वी (मिट्टी) उपल (पत्थर) वज्र (कठोर पत्थर), शर्करा (पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े) - रूप है। दूसरा काण्ड ६३ हजार योजन ऊंचा है। वह (रजत) चांदी, जात रूप (विशेष शुद्ध चांदी एवं स्वर्ण रूप) अंक रत्न और स्फटिक रत्न रूप है। तीसरा काण्ड ३६०००० योजन ऊंचा है और एक ही प्रकार का है अर्थात् जाम्बूनद रूप स्वर्णमय है। अतः मेरु पर्वत का दूसरा काण्ड ६३ हजार योजन ऊंचा है, यह ठीक है। यहाँ ३८००० योजन ऊंचा कहा, इसका कारण समझ में नहीं आया।

जम्बूद्वीप पण्णत्ति सूत्र के चौथे वक्षस्कार में मेरु पर्वत के अधिकार में बतलाया गया है कि पहला काण्ड १००० योजन का है। दूसरा काण्ड ६३००० योजन का है तथा तीसरा काण्ड ३६००० योजन का ऊंचा कहा गया है।

उनचालीसवां समवाय

णमिस्स णं अरहओ एगूण चत्तालीसं आहोहिय सया होत्था। समय खेत्ते एगूणचत्तालीसं कुल पव्वया पण्णत्ता तंजहा - तीसं वासहरा, पंच मंदरा, चत्तारि उसुकारा। दोच्च चउत्थ पंचम छट्ठ सत्तमासु णं पंचसु पुढवीसु एगूण चत्तालीसं णिरयावास सयसहस्सा पण्णत्ता। णाणावरणिज्जस्स मोहणिज्जस्स गोत्तस्स आउयस्स एएसि णं चउण्हं कम्मपगडीणं एगूण चत्तालीसं उत्तर पगडीओ पण्णत्ताओ॥३९॥

कठिन शब्दार्थ - एगुणचत्तालीसं सया - ३९००, **आहोहिय** - अवधिज्ञानी, **समय खेत्ते** - समय क्षेत्र, **कुल पव्वया** - कुल पर्वत, **वासहरा** - वर्षधर पर्वत, **मंदरा** - मेरु पर्वत, **उसुकारा** - इषुकार पर्वत ।

भावार्थ - इक्कीसवें तीर्थङ्कर श्री नमिनाथ स्वामी के ३९०० अवधिज्ञानी थे। समय क्षेत्र अर्थात् अढाई द्वीप में उनचालीस कुल पर्वत कहे गये हैं। यथा - तीस वर्षधर पर्वत, पांच मेरु पर्वत और चार इषुकार पर्वत, ये सब मिला कर उनचालीस होते हैं। दूसरी नरक में २५ लाख

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नरकावास हैं, चौथी में १० लाख, पांचवी में ३ लाख, छठी में पांच कम एक लाख और सातवीं में ५, इस प्रकार इन पांचों नरकों में कुल मिला कर उनचालीस लाख नरकावास हैं। ज्ञानावरणीय कर्म की ५ प्रकृतियाँ हैं, मोहनीय की २८, गोत्र की २, आयु कर्म की ४ प्रकृतियाँ हैं, इस प्रकार इन चार कर्मों की उनचालीस उत्तर प्रकृतियाँ कही गई हैं ॥ ३९ ॥

विवेचन – **'आहोहिय'** का अर्थ टीकाकार ने किया है कि – नियत क्षेत्र को विषय करने वाले अवधिज्ञानी मुनि थे। कुल पर्वत का अर्थ – जिस प्रकार लौकिक व्यवहार में कुल (जाति, कुल, कुटुम्ब आदि) मर्यादा बांधने वाले होते हैं इसी प्रकार क्षेत्र की मर्यादा करने वाले होने से इन पर्वतों को भी 'कुल पर्वत' कहा है। वे कुल पर्वत ३९ हैं। यथा – हिमवान् (चुलहिमवान्), महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी । ये कुल छह पर्वत जम्बूद्वीप में हैं इससे दुगुने अर्थात् बारह कुल पर्वत धातकी खण्ड में है। इसी प्रकार पुष्करार्द्ध में भी बारह कुल पर्वत हैं, ये तीस। जम्बूद्वीप में एक मेरु पर्वत है, धातकी खण्ड में दो और अर्द्ध पुष्कर में दो, इस प्रकार पांच मेरु पर्वत हैं। इनमें जम्बूद्वीप का पर्वत १ लाख योजन का ऊंचा है। शेष चारों मेरु पर्वत ८५००० – ८५००० योजन ऊंचे हैं। धातकी खण्ड के दो विभाग अर्थात् पूर्व धातकी खण्ड और पश्चिम धातकी खण्ड ऐसे दो विभाग करने वाले दो इषुकार (इषु का अर्थ है बाण, जो बाण की तरह एकदम सीधे हैं) पर्वत हैं इसी प्रकार पुष्करार्द्ध के भी दो विभाग करने वाले दो इषुकार पर्वत हैं। इस प्रकार ३०+५+४ ये ३९ कुल पर्वत हैं।

यहाँ मूल में 'समयक्षेत्र' शब्द दिया है जिसका अर्थ इस प्रकार है – सूर्य की गति से होने वाले घडी, घण्टा, दिन, रात, पक्ष, मास, वर्ष, युग आदि समय की कल्पना भी इन्हीं क्षेत्रों में की जाती है इसलिये इन्हें 'समय क्षेत्र' भी कहते हैं। जम्बूद्वीप. धातकी खण्ड द्वीप और पुष्करवर द्वीप का आधा भाग ये अढाई द्वीप हैं। इनमें मनुष्य रहते है। इनसे आगे के द्वीपों में मनुष्य नहीं है इसलिये इन अढाई द्वीप को 'मनुष्य क्षेत्र' भी कहा जाता है।

चालीसवां समवाय

अरहओ णं अरिट्ठणेमिस्स चत्तालीसं अज्जिया साहस्सीओ होत्था। मंदरचूलिया णं चत्तालीसं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। संती अरहा चत्तालीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। भूयाणंदस्स णं णागकुमारिंदस्स णाग रण्णो चत्तालीसं भवणावाससयसहस्सा पण्णत्ता। खुड्डियाए णं विमाणपविभत्तीए तइए वग्गे चत्तालीसं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उद्देसण काला पण्णत्ता। फग्गुणपुण्णिमासिणीए सूरिए चत्तालीसंगुलियं पोरिसीछायं णिव्वट्टइत्ता चारं चरइ एवं कत्तियाए वि पुण्णिमाए । महासुक्के कप्पे चत्तालीसं विमाणावास सहस्सा पण्णत्ता ॥ ४० ॥

कठिन शब्दार्थ - **मंदरचूलिया** - मंदरचूलिका-मेरु पर्वत की चूलिका, **चत्तालीसं** - चालीस, **संती अरहा** - १६ वें तीर्थङ्कर श्री शांतिनाथ भगवान्, **णाग रण्णो** - नागकुमारों के राजा, **भूयाणंदस्स** - भूतानन्द के।

भावार्थ - बाईसवें तीर्थङ्कर श्री अरिष्टनेमि भगवान् के चालीस हजार आर्यिकाएँ थी। मेरु पर्वत की चूलिका चालीस योजन ऊंची है। सोलहवें तीर्थङ्कर श्री शान्तिनाथ भगवान् के शरीर की ऊंचाई चालीस धनुष थी। नागकुमारों के इन्द्र नागकुमारों के राजा भूतानन्द के चालीस लाख विमान कहे गये हैं। क्षुद्रिका विमान प्रविभक्ति नामक कालिक सूत्र के तीसरे वर्ग में चालीस उद्देशन काल कहे गये हैं। फाल्गुन पूर्णिमा और कार्तिक पूर्णिमा को पोरिसी की छाया चालीस अङ्गुल की होती है। महाशुक्र नामक सातवें देवलोक में चालीस हजार विमान कहे गये हैं ॥ ४० ॥

विवेचन - '**वइसाहपुण्णिमासिणीए**' ऐसा पाठ किसी प्रति में है किन्तु वह ठीक नहीं है। '**फग्गुणपुण्णिमासिणीए**' यह पाठ ठीक है क्योंकि - "**पोसे मासे चउप्पया**" ऐसा कथन होने से पौष मास की पूर्णिमा को ४८ अङ्गुल पोरिसी छाया होती है तब माघ महीने में और फाल्गुन महीने में चार चार अङ्गुल कम करने से फाल्गुन मास की पूर्णिमा को पोरिसी छाया चालीस अङ्गुल रह जाती है। इस प्रकार कार्तिक पूर्णिमा को भी समझना चाहिये।

इकतालीसवां समवाय

णमिस्स णं अरहओ एक्कचत्तालीसं अज्जिया साहस्सीओ होत्था। चउसु पुढवीसु एक्कचत्तालीसं णिरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता तंजहा - रयणप्पभाए पंकपभाए तमाए तमतमाए। महालियाए णं विमाणपविभत्तीए पढमे वग्गे एक्कचत्तालीसं उद्देसण काला पण्णत्ता ॥ ४१ ॥

कठिन शब्दार्थ - **एक्कचत्तालीसं** - इकतालीस, **महालियाए विमाणपविभत्तीए** - महालिका विमान प्रविभक्ति ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इक्कीसवें तीर्थङ्कर श्री नमिनाथ स्वामी के इकतालीस हजार आर्यिकाएँ थी। रत्नप्रभा नरक में ३० लाख नरकावास हैं, पंकप्रभा में १० लाख, तमप्रभा में पांच कम एक लाख, तमस्तमाप्रभा में पांच नरकावास हैं, इस प्रकार पहली, चौथी, छठी और सातवीं इन चार नरकों में कुल मिला कर इकतालीस लाख नरकावास हैं। महालिका विमान प्रविभक्ति नामक कालिक सूत्र के पहले वर्ग में इकतालीस उद्देशन काल कहे गये हैं ॥ ४१ ॥

विवेचन - इस अवसर्पिणी काल के चौबीस तीर्थङ्करों में से २१ वें तीर्थङ्कर भगवान् का नाम 'नमिनाथ' है। वे जब मिथिला नगरी के राजा विजय सेन की पटरानी श्री वप्रादेवी के गर्भ में आये तब विजयसेन राजा के शत्रु सब राजा नम गये । इसलिये जन्म के बाद माता-पिता ने इनका गुणनिष्पन्न नाम 'नमि' दिया। कुछ लोग भ्रान्ति के वश इनको 'नेमिनाथ' कह देते हैं परन्तु यह यथार्थ नहीं है। क्योंकि बाईसवें तीर्थङ्कर का नाम तो 'अरिष्टनेमि' है। इस नाम को कोई नेमिनाथ भी कहते हैं। ये सहोदर सगे चार भाई थे। १. अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) रहनेमि (रथनेमि) इन दोनों का वर्णन उत्तराध्ययन सूत्र के बाईसवें अध्ययन में है। तीसरा है - सत्यनेमि और चौथा दृढनेमि । इन दोनों भाइयों का वर्णन अंतगडसूत्र के चौथे वर्ग में है। इन सब भाइयों के नाम के पीछे 'नेमि' लगता है। ये चारों भाई उसी भव में मोक्ष में गये हैं।

बयालीसवां समवाय

समणे भगवं महावीरे बायालीसं वासाइं साहियाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता सिद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे। जंबूद्दीवस्स णं दीवस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोथूभस्स णं आवास पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्ले चरमंते एस णं बायालीसं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं चउदिसिं पि दगभासे, संखे, दगसीमे य। कालोए णं समुद्दे बायालीसं चंदा जोइंसु वा जोइंति वा जोइस्संति वा। बायालीसं सूरिया पभासिंसु वा पभासंति वा पभासिस्संति वा। सम्मुच्छिम भुयपरिसप्पाणं उक्कोसेणं बायालीसं वाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता। णामकम्मे बायालीसविहे पण्णत्ते तंजहा - गइणामे जाइणामे सरीरणामे सरीरंगोवंगणामे सरीरबंधणणामे सरीर-संघायणणामे संघयणणामे संठाणणामे वण्णणामे गंधणामे रसणामे फासणामे अगुरुलहुणामे उवघायणामे पराघायणामे आणुपुव्वीणामे उस्सासणामे आयवणामे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उज्जोयणामे विहग गइणामे तसणामे थावरणामे सुहुमणामे बायरणामे पज्जत्तणामे अपज्जत्तणामे साहारणसरीरणामे पत्तेयसरीरणामे थिरणामे अथिरणामे सुभणामे असुभणामे सुभगणामे दुब्भगणामे सुसरणामे दुस्सरणामे आएज्जणामे अणाएज्जणामे जसोकित्तिणामे-अजसोकित्तिणामे णिम्माणणामे तित्थयरणामे । लवणे णं समुद्दे बायालीसं णागसाहस्सीओ अब्भिंतरियं वेलं धारंति । महालियाए णं विमाणपविभत्तीए बिइएवग्गे बायालीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता। एगमेगाए ओसप्पिणीए पंचम छट्ठीओ समाओ बायालीसं वाससहस्साइं कालेणं पण्णत्ताओ। एगमेगाए उस्सप्पिणीए पढम बीयाओ समाओ बायालीसं वाससहस्साइं कालेणं पण्णत्ताओ ॥ ४२ ॥

कठिन शब्दार्थ - **बायालीसं** - बयालीस, **साहियाइं** - कुछ अधिक, **सामण्णपरियागं**- श्रमण पर्याय का, **पाउणित्ता** - पालन करके, **पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ** - पश्चिम दिशा के बाहरी अंतिम प्रदेश से, **गोथूभस्स आवास पव्वयस्स** - गोस्तूभ आवास पर्वत के, **अबाहाए अंतरे** - व्यवधान की अपेक्षा अंतर, **चउदिसिं पि** - चारों दिशाओं में, **सम्मुच्छिम भुयपरिसप्पाणं** - सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्पों की, **सरीरंगोवंगणामे** - शरीर अंगोपांग नाम, **उवघायणामे** - उपघात नाम, **आयवणामे** - आतपनाम, **विहगगइणामे** - विग्रहगति नाम या विहायोगति नाम, **अणाएज्ज णामे** - अनादेय नाम, **णिम्माण णामे**- निर्माण नाम, **अब्भितरियं वेलं** - आभ्यन्तर वेल को, **धारंति** - धारण करते हैं अर्थात् रोक रखते हैं, **महालियाए विमाणपविभत्तीए** - महालिका विमान प्रविभक्ति नामक सूत्र के, **पढम बीया समाओ** - प्रथम द्वितीय-पहला और दूसरा दोनों आरों का समय (काल) मिला कर ।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी बयालीस वर्ष से कुछ अधिक श्रमण पर्याय का पालन करके सिद्ध हुए थे यावत् सब दुःखों से मुक्त हुए थे। इस जम्बूद्वीप की जगती के पश्चिम दिशा में बाहरी अन्तिम प्रदेश से गोस्तूभ आवास पर्वत के पूर्व दिशा के अन्तिम प्रदेश का व्यवधान् की अपेक्षा अन्तर बयालीस हजार योजन का कहा गया है। इस प्रकार चारों दिशाओं में कह देना चाहिए अर्थात् दक्षिण दिशा में जम्बूद्वीप की जगती से बयालीस हजार के अन्तर पर दगभास पर्वत है। पश्चिम में शंख पर्वत है और उत्तर दिशा में दगसीम पर्वत है। कालोदधि समुद्र में बयालीस चन्द्रमाओं ने गतकाल में प्रकाश किया था, वर्तमान काल में प्रकाश करते हैं और भविष्य काल में प्रकाश करेंगे । इसी प्रकार बयालीस सूर्य प्रकाशित हुए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

थे, प्रकाशित होते हैं और प्रकाशित होंगे । सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्पों की उत्कृष्ट स्थिति बयालीस हजार वर्ष की कही गई है। नाम कर्म बयालीस प्रकार का कहा गया है यथा- १. गति नाम- गति नाम कर्म के उदय से प्राप्त होने वाली नरक तिर्यञ्च आदि पर्याय। २. जाति नाम- जिस कर्म के उदय से जीव एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय आदि कहे जायं उसको जाति कहते हैं। ३. शरीर नाम - जो उत्पत्ति समय से लेकर प्रतिक्षण जीर्णशीर्ण होता रहता है तथा शरीर नामकर्म के उदय से उत्पन्न होता है वह शरीर कहलाता है। ४. शरीर अङ्गोपाङ्ग नाम - शरीर के अङ्ग और उपाङ्गों के रूप में पुद्गलों का परिणमन होना। ५. शरीर बन्धन नाम - जिस प्रकार लाख, गोंद आदि चिकने पदार्थों से दो चीजें आपस में जोड़ दी जाती हैं उसी प्रकार जिस नाम कर्म से प्रथम ग्रहण किये हुए शरीर के पुद्गलों के साथ वर्तमान में ग्रहण किये जाने वाले शरीर के पुद्गल परस्पर बन्धन को प्राप्त होते हैं वह शरीर-बन्धन नाम कर्म कहा जाता है। ६. शरीर संघात नाम - पहले ग्रहण किये हुए शरीर के पुद्गलों को और वर्तमान में ग्रहण किये जाने वाले शरीर के पुद्गलों को एकत्रित कर व्यवस्थापूर्वक स्थापित कर देना संघात नाम कर्म है। ७. संहनन नाम - हड्डियों की रचना विशेष को संहनन कहते हैं। ८. संस्थान नाम- शरीर का आकार संस्थान कहलाता है। ९. वर्ण नाम - शरीर का काला नीला आदि वर्ण । १०. गन्ध नाम - शरीर की अच्छी या बुरी गन्ध । ११. रस नाम - कटु कषैला आदि रस १२. स्पर्श नाम - शरीर का कोमल, रूक्ष आदि स्पर्श । १३. अगुरुलघु नाम - जिसके उदय से जीव का शरीर न लोहे जैसा भारी हो और न आक की रूई जैसा हल्का हो । १४. उपघात नाम - जिस कर्म के उदय से जीव अपने ही अवयवों से स्वयं क्लेश पाता है, जैसे प्रतिजिह्वा, चोर दांत, छठी अङ्गुली सरीखे अवयवों से उनके स्वामी को ही कष्ट होता है। १४. पराघात नाम - जिसके उदय से जीव बलवानों के द्वारा भी पराजित न किया जा सके । १५. आनुपूर्वी नाम - जिस कर्म के उदय से जीव विग्रह गति से अपने उत्पत्ति स्थान पर पहुँचाया जाता है वह आनुपूर्वी नाम कर्म है। १६. उच्छ्वास नाम - जिससे श्वासोच्छ्वास लिया जाता है वह उच्छ्वास नाम कर्म है। १७. आतप नाम - जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर स्वयं उष्ण न होकर भी उष्ण प्रकाश करता है वह आतप नाम कर्म है, जैसे सूर्यमण्डल के बादर एकेन्द्रिय पृथ्वीकाय के जीवों का शरीर ठण्डा है परन्तु आतप नाम कर्म के उदय से वे उष्ण प्रकाश करते हैं। सूर्य मण्डल के बादर एकेन्द्रिय पृथ्वीकाय के जीवों के सिवाय अन्य जीवों के आतप नाम कर्म का उदय नहीं होता है। १८. उद्योत नाम -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिसके उदय से जीव का शरीर शीतल प्रकाश फैलाता है, जैसे लब्धिधारी मुनि जब वैक्रिय शरीर धारण करते हैं तथा जब देव अपने मूल शरीर की अपेक्षा उत्तर वैक्रिय शरीर धारण करते हैं उस समय उनके शरीर से शीतल प्रकाश निकलता है वह उद्योत नाम कर्म से निकलता है। १९. विहग गति नाम या विहायो गति नाम - जिसके उदय से जीव की गति हाथी या बैल के समान शुभ अथवा ऊंट या गधे के समान अशुभ होती है उसे विहायो गति नाम कर्म कहते हैं। २०. त्रस नाम - जो जीव अपना बचाव करने के लिए सर्दी से गर्मी में और गर्मी से सर्दी में आ सकते हैं और जा सकते हों, वे त्रस कहलाते हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीव त्रस हैं। जिस कर्म के उदय से जीवों को त्रस काय की प्राप्ति हो उसे त्रस नाम कर्म कहते हैं। २१. स्थावर नाम- जिस कर्म के उदय से जीव स्थिर रहें, सर्दी गर्मी से बचने का उपाय न कर सकें, वह स्थावर नाम कर्म है। पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय ये स्थावर जीव हैं। २२. सूक्ष्म नाम - जिस कर्म के उदय से जीव को सूक्ष्म अर्थात् चक्षु से अग्राह्य शरीर की प्राप्ति हो । २३. बादर नाम - जिस कर्म के उदय से जीव को बादर शरीर की प्राप्ति हो । २४. पर्याप्त नाम - जिस कर्म के उदय से जीव अपने योग्य पर्याप्तियों से युक्त होता है वह पर्याप्त नाम कर्म है। २५. अपर्याप्त नाम - जिस कर्म के उदय से जीव अपने योग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण न कर सके वह अपर्याप्त नाम कर्म है। २६. साधारण शरीर नाम - जिस कर्म के उदय से अनन्त जीवों का एक ही शरीर हो वह साधारण नाम कर्म है। २७. प्रत्येक शरीर नाम - जिस कर्म के उदय से जीव में पृथक् पृथक् शरीर होता है, वह प्रत्येक नाम कर्म है। २८. स्थिर नाम - जिस कर्म के उदय से दांत, हड्डी, गरदन आदि शरीर के अवयव स्थिर-निश्चल होते हैं वह स्थिर नाम कर्म है। २९. अस्थिर नाम - जिस कर्म के उदय से कान, भौंह, जीभ आदि अवयव अस्थिर अर्थात् चपल होते हैं वह अस्थिर नाम कर्म है। ३०. शुभ नाम - जिस कर्म के उदय से नाभि के ऊपर के अवयव शुभ होते हैं वह शुभ नाम कर्म है। सिर आदि अवयवों का स्पर्श होने पर किसी को अप्रीति नहीं होती जैसे कि पैर के स्पर्श से होती है, यही नाभि के ऊपर के अवयवों का शुभपना है। ३१. अशुभ नाम - जिस कर्म के उदय से नाभि के नीचे के अवयव पैर आदि अशुभ होते हैं वह अशुभ नाम कर्म है। ३२. सुभग नाम - जिस कर्म के उदय से जीव किसी प्रकार का उपकार किये बिना या किसी तरह के सम्बन्ध के बिना भी सब का प्रीतिपात्र होता है वह सुभग नाम कर्म है। ३३. दुर्भग नाम - जिस कर्म के उदय से उपकारी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होते हुए भी या सम्बन्धी होते हुए भी जीव लोगों को अप्रिय लगता है वह दुर्भग नामकर्म है। ३४. सुस्वर नाम - जिस कर्म के उदय से जीव का स्वर मधुर और प्रीतिकारी हो वह सुस्वर नाम कर्म है। ३५. दुःस्वर नाम - जिस कर्म के उदय से जीव का स्वर कर्कश हो अर्थात् सुनने में अप्रिय लगे वह दुःस्वर नाम कर्म है। ३६. आदेय नाम - जिस कर्म के उदय से जीव का वचन सर्वमान्य हो । ३७. अनादेय नाम - जिस कर्म के उदय से जीव का वचन युक्तियुक्त होते हुए भी ग्राह्य नहीं होता वह अनादेय नाम कर्म है। ३८. यशःकीर्ति नाम - जिस कर्म के उदय से संसार में यश और कीर्ति का प्रसार हो वह यशःकीर्ति नाम कहलाता है। ४०. अयशःकीर्ति नाम - जिस कर्म के उदय से संसार में अपयश और अपकीर्ति हो वह अयशःकीर्ति नाम है। ४१. निर्माण नाम - जिस कर्म के उदय से जीव के अङ्ग उपाङ्ग यथास्थान व्यवस्थित होते हैं उसे निर्माण नाम कर्म कहते हैं। यह कर्म कारीगर के समान है, जैसे कारीगर मूर्ति में हाथ पैर आदि अवयवों को उचित स्थान पर बना देता है, उसी प्रकार यह कर्म भी शरीर के अवयवों को अपने अपने नियत स्थान पर व्यवस्थित करता है। ४२. तीर्थङ्कर नाम - जिस कर्म के उदय से जीव तीर्थङ्कर पद पाता है उसे तीर्थंकर नाम कर्म कहते हैं।

लवण समुद्र में बयालीस हजार नाग देवता आभ्यन्तर वेल को यानी जम्बूद्वीप की तरफ आने वाली पानी की धारा को रोक रखते हैं। महालिका विमान प्रविभक्ति नामक कालिक सूत्र के दूसरे वर्ग में बयालीस उद्देशन काल कहे गये हैं। प्रत्येक अवसर्पिणी के पांचवां और छठा दोनों आरे मिला कर बयालीस हजार वर्ष के कहे गये हैं। प्रत्येक उत्सर्पिणी के पहला और दूसरा दोनों आरे मिला कर बयालीस हजार वर्ष के कहे गये हैं ॥ ४२ ॥

विवेचन - चौबीसवें तीर्थङ्कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी तीस वर्ष गृहस्थावस्था में रह कर फिर दीक्षित हुए । १२ वर्ष ६॥ महीने छद्मस्थ रहे । तीस वर्ष केवली पर्याय का पालन कर मोक्ष पधारे। चैत्र सुदी १३ को भगवान् का जन्म हुआ और कार्तिक वदी अमावस्या को मोक्ष पधारे। इस प्रकार चैत्र सुदी तेरस से लेकर कार्तिक वदी अमावस्या तक छह महीने से कुछ अधिक समय होता है। इस हिसाब से भगवान् की दीक्षापर्याय ४२ वर्ष से कुछ अधिक होती है। इसीलिये यहाँ मूल पाठ में लिखा है कि - **'बायालीसं वासाइं साहियाइं सामण्णपरियागं'** अर्थात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने ४२ वर्ष से कुछ अधिक श्रमण-पर्याय का पालन किया था।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जम्बूद्वीप में दो सूर्य दो चन्द्र हैं। लवण समुद्र में चार चन्द्र और चार सूर्य हैं। धातकी खण्ड में बारह चन्द्र और बारह सूर्य हैं। इसके आगे चन्द्र सूर्य की संख्या जानने के लिये यह गणित है -

चन्द्र सूर्य की अन्तिम द्वीप और समुद्र में जितनी संख्या आई हो उनको तीन से गुणा करके पिछले द्वीप समुद्रों की जितनी संख्या है उसको उस संख्या में जोड़ देना चाहिए । यह गणित धातकी खण्ड से आगे लागू होता है। जैसे कि धातकी खण्ड में बारह चन्द्र हैं इनको तीन से गुणा करने पर छत्तीस होते हैं। इन छत्तीस में पिछले छह चन्द्र (जम्बू द्वीप के दो, लवण समुद्र के चार) को जोड़ देने से कालोदधि समुद्र में बयालीस चन्द्रों की संख्या आ जाती है। इसी प्रकार सूर्यों की भी संख्या समझनी चाहिए । क्योंकि चन्द्रों की और सूर्यों की संख्या सब द्वीप समुद्रों में बराबर होती है। इस गणित के अनुसार अगले द्वीप समुद्रों में भी चन्द्र सूर्यों की संख्या समझ लेनी चाहिए। जैसे कि कालोदधि समुद्र में बयालीस चन्द्र और बयालीस सूर्य हैं। इन बयालीस को तीन से गुणा करना चाहिए ४२×३=१२६। इन में पिछली संख्या अठारह (जम्बूद्वीप के २, कालोदधि के ४ धातकी खण्ड के बारह - २+४+१२=१८) मिलाने से पुष्करवर द्वीप में १४४ चन्द्र और १४४ सूर्य (१२६+१८=१४४) की संख्या आती है। इन १४४ में से आधे अर्थात् ७२ चन्द्र और ७२ सूर्य अर्ध पुष्कर द्वीप में हैं। ये सब मिलाकर १३२ चन्द्र और १३२ सूर्य हैं। इस प्रकार अढाई द्वीप में (जम्बूद्वीप, लवण समुद्र, घातकीखण्ड द्वीप, कालोदधि समुद्र और अर्ध पुष्कर द्वीप इस प्रकार दो समुद्र और अढाई द्वीप) १३२ सूर्य और १३२ चन्द्र चर (गति शील-निरन्तर गति करने वाले) हैं। इन के गति करते रहने से घड़ी, घण्टा, दिन, रात, पक्ष, मास, वर्ष आदि का व्यवहार होता है। इसलिये इसे समय क्षेत्र भी कहते हैं तथा इन अढ़ाई द्वीपों में ही मनुष्यों का निवास है। इसलिये इसको मनुष्य लोक भी कहते है। इससे आगे के द्वीपों में मनुष्यों का निवास नहीं है और चन्द्र सूर्य अचर (एक ही जगह स्थिर) रहने के कारण घड़ी, घण्टा, दिन रात आदि का व्यवहार नहीं होता है। ऊपर पुष्करवर द्वीप में १४४ चन्द्र और १४४ सूर्य लिखे हैं इनमें से आधे अर्थात् ७२ चन्द्र और ७२ सूर्य मनुष्य क्षेत्र में होने से चर हैं और इससे बाहर अर्धपुष्कर द्वीप में ७२ चन्द्र और ७२ सूर्य अचर (स्थिर) हैं। इसी प्रकार आगे के सभी द्वीप समुद्रों के चन्द्र और सूर्य अचर (स्थिर) हैं।

नाम कर्म की प्रकृतियों का संक्षिप्त अर्थ भावार्थ में लिख दिया है। विशेष विस्तार कर्मग्रन्थ में हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तयालीसवां समवाय

तेयालीसं कम्मविवागज्झयणा पण्णत्ता। पढम चउत्थ पंचमासु पुढवीसु तेयालीसं णिरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता। जंबूद्दीवस्स णं दीवस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स पुरच्छिमिल्ले चरमंते एस णं तेयालीसं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं चउद्दिसिं वि दगभासे, संखे, दगसीमे । महालियाए णं विमाणपविभत्तीए तइए वग्गे तेयालीसं उद्देसण काला पण्णत्ता।

कठिन शब्दार्थ - कम्म विवागज्झयणा - कर्म के विपाक (फल) बतलाने वाले अध्ययन, **पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ** - पूर्व के चरमान्त से, **गोथूभस्स आवास पव्वयस्स**- गोस्थूभ आवास पर्वत का।

भावार्थ - पुण्य और पाप रूप कर्म के विपाक-फल बतलाने वाले तयालीस अध्ययन कहे गये हैं अर्थात् सूत्रकृताङ्ग सूत्र के २३ अध्ययन और विपाक सूत्र के २० अध्ययन, ये दोनों मिला कर ४३ अध्ययन कहे गये हैं। पहली नरक में ३० लाख, चौथी नरक में १० लाख और पांचवीं नरक में ३ लाख, इस प्रकार इन तीनों नरकों के कुल मिला कर तयालीस लाख नरकावास कहे गये हैं। इस जम्बूद्वीप की जगती के कोट के पूर्व के चरमान्त से गोस्थूभ आवास पर्वत का पूर्व का चरमान्त तयालीस हजार योजन की दूरी पर है अर्थात् गोस्थूभ पर्वत ४२ हजार योजन का लम्बा है और १ हजार योजन का चौड़ा है, इस प्रकार कुल मिला कर ४३ हजार योजन का है। इसी प्रकार चारों दिशाओं में जानना चाहिए अर्थात् दक्षिण दिशा में दगभास पर्वत है। पश्चिम दिशा में शंख पर्वत है और उत्तर दिशा में दगसीम पर्वत है। महालिका विमान प्रविभक्ति नामक कालिक सूत्र के तीसरे वर्ग में तयालीस उद्देशन काल कहे गये हैं ॥ ४३ ॥

विवेचन - मूल में कर्म विपाक के ४३ अध्ययन कहे गये हैं। किन्तु उन अध्ययनों का नाम निर्देश नहीं किया है। इस विषय में टीकाकार ने लिखा है -

"एतानि च एकादशाङ्गद्वितीयाङ्गयोः संभाव्यन्त इति ।"

- अर्थात् ग्यारहवाँ अङ्गसूत्र विपाक के २० अध्ययन (दु:खविपाक के दस अध्ययन और सुखविपाक के भी दस अध्ययन) तथा दूसरा अङ्गसूत्र सूयगडाङ्ग के २३ अध्ययन इन दोनों को मिलाकर ४३ अध्ययन हुए हैं, ऐसी सम्भावना की जाती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चंवालीसवां समवाय

चोयालीसं अज्झयणा इसिभासिया दियलोगचुयाभासिया पण्णत्ता। विमलस्स णं अरहओ चोयालीसं पुरिस जुगाइं अणुपिट्ठिं सिद्धाइं जाव सव्वदुक्खप्पहीणाइं। धरणस्स णं णागिंदस्स णाग रण्णो चोयालीसं भवणावाससयसहस्सा पण्णत्ता। महालियाए णं विमाणपविभत्तीए चउत्थे वग्गे चोयालीसं उद्देसण काला पण्णत्ता ॥ ४४ ॥

कठिन शब्दार्थ - दियलोगचुयाभासिया - देवलोक से चव कर आये हुए ऋषियों द्वारा भाषित, **इसिभासिया** - ऋषियों के द्वारा कहे हुए, **चोयालीसं** - चंवालीस, **अणुपिट्ठीं**- अनुक्रम से पाटानुपाट, **पुरिसजुगाइं** - पुरुष युग।

भावार्थ - देवलोक से चव कर आये हुए ऋषियों के द्वारा कहे हुए अर्थात् जो जीव देवलोक से चव कर मनुष्य गति में आये और यहाँ संयम स्वीकार कर ऋषि बने, उन ऋषियों के द्वारा कहे हुए चंवालीस अध्ययन हैं। अथवा इसका पाठान्तर यह है - देवलोक से चव कर जो मनुष्यगति में उत्पन्न हुए, फिर संयम स्वीकार कर ऋषि बने, उन ऋषियों के विषय में चंवालीस अध्ययन ऋषियों ने कहे हैं। तेरहवें तीर्थङ्कर श्री विमलनाथ स्वामी के मोक्ष जाने के बाद अनुक्रम से पाटानुपाट चंवालीस पुरुष युग अर्थात् चंवालीस पाट तक सिद्ध हुए थे यावत् सब दुःखों से रहित होकर मोक्ष गये थे। नागकुमारों के राजा नागकुमारों के इन्द्र धरणेन्द्र के चंवालीस लाख भवन कहे गये हैं। महालिका विमान प्रविभक्ति नामक कालिक सूत्र के चौथे वर्ग में चंवालीस उद्देशन काल कहे गये हैं ॥ ४४ ॥

विवेचन - "**पुरिसजुगाइं**" का अर्थ है शिष्य प्रशिष्य आदि क्रम से कितनेक पाट तक मुनि मोक्ष गये उतने को 'पुरुष युग' कहते हैं। तेरहवें तीर्थङ्कर श्री विमलनाथ स्वामी के पाटानुपाट ४४ केवलज्ञानी हुए। प्रत्येक तीर्थङ्कर की दो भूमिकाएँ होती हैं। युगान्तकर भूमि और पर्यायान्तकर भूमि। युगान्तकर भूमि का अर्थ है कि इतने पाट तक मोक्ष गये। उसको पुरुषयुग भी कहते हैं। तीर्थङ्कर भगवान् को केवलज्ञान होने के बाद कितने समय बाद उनके शासन में से मोक्ष जाना प्रारंभ हुआ। इसे पर्यायान्तकर भूमि कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पेंतालीसवां समवाय

समयखेत्ते णं पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते । सीमंतए णं णरए पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते । एवं उडुविमाणे वि, ईसिपब्भारा णं पुढवी एवं चेव । धम्मे णं अरहा पणयालीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। मंदरस्स णं पव्वयस्स चउदिसिं वि पणयालीसं पणयालीसं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । सव्वे वि दिवड्ढखेत्तिया णक्खत्ता पणयालीसं मुहुत्ते चंदेणं सद्धिं जोगं जोइंसु वा जोइंति वा जोइस्संति वा।

तिण्णिव उत्तराइं, पुण्णवसू रोहिणी विसाहा य।
एए छ णक्खत्ता, पणयालमुहुत्त संजोगा ॥ १ ॥

महालियाए णं विमाणपविभत्तीए पंचमे वग्गे पणयालीसं उद्देसण काला पण्णत्ता ॥ ४५ ॥

कठिन शब्दार्थ - **समयखेत्ते** - समय क्षेत्र (मनुष्य लोक) **सीमंतए णरए** - पहली नरक का सीमन्तक नरकावास, **उडुविमाणे** - सौधर्म ईशान देव लोक का उडु विमान, **ईसिपब्भारा पुढवी** - ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी (सिद्ध शिला) **पणयालीसं** - पैंतालीस, **दिवड्ढ खेत्तिया** - द्व्यर्द्ध क्षेत्री, **पण्णयाल मुहुत्त संजोगा** - चन्द्रमा के साथ ४५ मुहूर्त्त तक योग करने वाले ।

भावार्थ - समयक्षेत्र अर्थात् मनुष्य लोक, पहली नरक का सीमन्तक नरकावास, सौधर्म और ईशान देवलोक का उडु विमान और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी यानी सिद्धशिला, ये चारों पैंतालीस लाख योजन के लम्बे चौड़े कहे गये हैं। पन्द्रहवें तीर्थङ्कर श्री धर्मनाथ स्वामी के शरीर की ऊंचाई पैंतालीस धनुष थी। मेरु पर्वत के चारों तरफ लवण समुद्र की भीतरी परिधि की अपेक्षा ४५००० योजन का अन्तर बिना किसी बाधा के कहा है। सब द्व्यर्द्ध क्षेत्री नक्षत्रों ने चन्द्रमा के साथ पैंतालीस मुहूर्त्त तक योग किया था, योग करते हैं और योग करेंगे। वे द्व्यर्द्धक्षेत्री नक्षत्र छह हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं -

उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरा भाद्रपदा, पुनर्वसु, रोहिणी और विशाखा, ये छह नक्षत्र चन्द्रमा के साथ पैंतालीस मुहूर्त्त तक योग करने वाले हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महालिका विमानप्रविभक्ति नामक कालिक सूत्र के पांचवें वर्ग में पैंतालीस उद्देशन काल कहे गये हैं ॥ ४५ ॥

विवेचन - अढाई द्वीप में चार वस्तुएं पैंतालीस लाख पैंतालीस लाख योजन की लम्बी चौड़ी कही गई है। यथा - पहली नरक के प्रथम प्रतर (प्रस्तट) में गोल मध्यभागवर्ती नरकेन्द्र है जिसका नाम ''सीमन्तक'' है। सौधर्म और ईशान अर्थात् पहले और दूसरे देवलोक के पहले प्रतर में चारों दिशाओं में आवलिका प्रविष्ट विमानों का मध्यवर्ती गोल विमान केन्द्र उडु विमान तथा ईषत्प्राग्भारा (सिद्धि) पृथ्वी और समय क्षेत्र अर्थात् मनुष्य लोक। ये सब पैंतालीस - पैंतालीस लाख योजन लम्बे चौड़े कहे गये हैं। ये चारों दिशा और विदिशाओं में समान रूप से आये हुए हैं। थोकड़ा वाले इनको 'चार पेंताला' कहते हैं। इसका आशय भी यही है।

जम्बूद्वीप एक लाख योजन विस्तृत है तथा मन्दर (मेरु) पर्वत धरणीतल पर १०००० योजन विस्तृत है। एक लाख में से दस हजार योजन घटाने पर नव्वें हजार योजन शेष रहते हैं। उसके आधे पैंतालीस हजार योजन होते हैं। अतः मेरु पर्वत से चारों दिशाओं में लवण समुद्र की वेदिका ४५ हजार योजन के अन्तराल पर पाई जाती है।

चन्द्रमा का ३० मुहुर्त्त भोग्य क्षेत्र समक्षेत्र कहलाता है। उसके ड्योढे ४५ मुहूर्त्त भोग्य क्षेत्र को द्व्यर्द्ध (द्वि अर्ध) क्षेत्र भी कहते हैं।

छियालीसवां समवाय

दिट्ठिवायस्स णं छायालीसं माउयापया पण्णत्ता। बंभीए णं लिवीए छायालीसं माउयक्खरा पण्णत्ता। पभंजणस्स णं वाउकुमारिंदस्स छायालीसं भवणावाससयसहस्सा पण्णत्ता ॥ ४६ ॥

कठिन शब्दार्थ - छायालीसं - छियालीस, **माउयापया** - मातृका पद, **माउयक्खरा**- मातृकाक्षर, **वाउकुमारिंदस्स पभंजणस्स** - वायु कुमार देवों के इन्द्र प्रभञ्जन के।

भावार्थ - दृष्टिवाद नामक बारहवें अङ्ग के छियालीस मातृकापद कहे गये हैं। ब्राह्मी लिपि के छयालीस मातृकाक्षर कहे गये हैं।

वायुकुमार देवों के इन्द्र प्रभञ्जन के छियालीस लाख भवन कहे गये हैं ॥ ४६ ॥

विवेचन - ब्राह्मी लिपि के ४६ मातृका अक्षर कहे गये हैं। यथा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः (ऋ ॠ ऌ ॡ) ये चार अक्षर नहीं गिने गये हैं।

व्यञ्जन चौतीस हैं – पच्चीस स्पर्श, चार अन्तःस्थ, चार उष्म और क्ष ।

क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म, य र ल व, श ष स ह, क्ष ।

"कादयोमावसाना स्पर्शाः" अर्थात् 'क' से लेकर 'म' तक इन पच्चीस अक्षरों की स्पर्श संज्ञा है, य र ल व ये चार अन्तःस्थ हैं। श ष स ह इनको उष्म कहा है। 'क्ष' अक्षर है।

संस्कृत भाषा में तो बावन अक्षर कहे गये हैं – और उनको भी मातृका अक्षर कहा गया है। यथा -

व्यञ्जनानि त्रयस्त्रिंशत् स्वराश्चैव चतुर्दश।
अनुस्वारो विसर्गश्च जिह्वामूलीय एव च॥
उपध्मानीय विज्ञेयः प्लुतश्च परिकीर्तितः।
एवं वर्णा द्विपञ्चाशन्मातृकायामुदाहृताः॥

क और ख के पहले आधीविसर्ग के समान जो चिह्न होता है उसे जिह्वामूलीय कहते हैं। यथा – ≍क ≍ख । इसी तरह प और फ से पहले आने वाले ऐसे चिह्न को उपध्मानीय कहते हैं। यथा – ≍प ≍फ

दृष्टिवाद के ४६ मातृका पद कहे गये हैं। अङ्ग सूत्रों में दृष्टिवाद बारहवाँ अङ्ग सूत्र है। इसके ४६ मातृका पद हैं। मातृका पद का अर्थ किया है – **'उत्पादविगमध्रौव्यलक्षणानि'**। प्रत्येक वस्तु द्रव्य की अपेक्षा ध्रुव है। पर्याय की अपेक्षा पुराना पर्याय नष्ट होता है और नया पर्याय उत्पन्न होता है। जैसा कि कहा है –

'उप्पण्णे इ वा, विगमे इ वा, धुवे इ वा'

दृष्टिवाद में सिद्ध श्रेणि आदि विषय भेद से किसी अपेक्षा ४६ भेद होते हैं। ऐसी संभावना की जाती है।

सैंतालीसवां समवाय

जया णं सूरिए सव्वब्भिंतरमंडलं उवसंकमित्ता णं चारं चरइ तया णं इहगयस्स मणुंसस्स सत्तचत्तालीसं जोयण सहस्सेहिं दोहि य तेवट्ठि जोयणसएहिं एक्कवीसाए य सट्ठिभागेहिं जोयणस्स सूरिए चक्खुफासं हव्वमागच्छइ। थेरे णं अग्गिभूई सत्तचत्तालीसं वासाइं अगारमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ॥ ४७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **सव्वब्भिंतरमंडलं** - सर्वाभ्यन्तर मंडल में, **इहगयस्स** - इस भरत क्षेत्र में रहे हुए, **सत्तचत्तालीसं** - सैंतालीस।

भावार्थ - जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल में आकर परिभ्रमण करता है। तब इस भरत क्षेत्र में रहे हुए मनुष्य को ४७२६३ योजन और एक योजन के ६० भाग में से २१ भाग की दूरी पर से दृष्टि गोचर होता है। भगवान् महावीर स्वामी के दूसरे गणधर श्री अग्निभूति सैंतालीस वर्ष गृहस्थवास में रह कर फिर मुण्डित होकर अनगार बने थे ॥ ४७ ॥

विवेचन - यहाँ पर दूसरे गणधर अग्निभूति का गृहवास ४७ वर्ष लिखा है। किन्तु आवश्यक सूत्र में ४६ वर्ष लिखा है। इसका कारण शायद यह मालूम होता है कि - ४७ वर्ष पूरे न हुए हों तो ऊपर के महीनों को यहाँ गौण कर देने से वहाँ ४६ वर्ष ही लिखा है।

अड़तालीसवां समवाय

एगमेगस्स रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स अडयालीसं पट्टणसहस्सा पण्णत्ता। धम्मस्स णं अरहओ अडयालीसं गणा अडयालीसं गणहरा होत्था। सूरमंडले णं अडयालीसं एकसट्ठिभागे जोयणस्स विक्खंभेणं पण्णत्ते ॥ ४८ ॥

कठिन शब्दार्थ - **एगमेगस्स रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स** - प्रत्येक चक्रवर्ती राजा के, **अडयालीसं पट्टणसहस्सा** - अड़तालीस हजार पाटण-नगर विशेष, **अडयालीसं एकसट्ठिभागे जोयणस्स** - एक योजन के इकसठिये अड़तालीस भाग का।

भावार्थ - प्रत्येक चक्रवर्ती के अड़तालीस हजार पाटण-नगर विशेष कहे गये हैं। पन्द्रहवें तीर्थङ्कर श्री धर्मनाथ स्वामी के अडतालीस गण और अड़तालीस गणधर थे। सूर्य मण्डल एक योजन के इकसठिये अड़तालीस भाग का चौड़ा कहा गया है ॥ ४८ ॥

विवेचन - 'पट्टण' शब्द का अर्थ टीकाकार ने लिखा है -

"विविधदेशपण्यान्यागत्य यत्र पतन्ति तत्पत्तनं - नगरविशेषः"

अर्थ - जहाँ अनेक देशों से बेचने की वस्तुएँ आकर उतरती हैं उसको पाटण (पत्तन) कहते हैं। किसी ग्रंथ में इसको 'रत्नभूमि' कहा गया है।

पन्द्रहवें तीर्थङ्कर श्री धर्मनाथ स्वामी के ४८ गणधर कहे हैं किन्तु आवश्यक सूत्र में ४३ कहे हैं। यह मतान्तर मालूम होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उनपचासवां समवाय

सत्तसत्तमियाए णं भिक्खुपडिमाए एगूण पण्णाए राइंदिएहिं छण्णउइ-भिक्खासएणं अहासुत्तं जाव आराहिया भवइ। देवकुरु उत्तरकुरुएसु णं मणुया एगूणपण्णा राइंदिएहिं संपण्ण जोव्वणा भवंति । तेइंदियाणं उक्कोसेणं एगूणपण्णा राइंदिया ठिई पण्णत्ता ॥ ४९ ॥

कठिन शब्दार्थ - सत्तसत्तमियाए भिक्खुपडिमाए - सप्त सप्तमिका भिक्षु प्रतिमा, **एगूणपण्णाए** - उनपचास, **राइंदिएहिं** - रात दिन में, **अहासुत्तं** - सूत्रानुसार, **छण्णउइ भिक्खासएणं** - १९६ दत्ति, **संपण्णजोव्वणा** - सम्पन्न यौवना-पूर्ण जवान ।

भावार्थ - सप्तसप्तमिका भिक्षु प्रतिमा उनपचास रात दिन में सूत्रानुसार आराधित होती है, इसकी १९६ दत्ति होती है। देवकुरु और उत्तरकुरु में मनुष्य उनपचास दिन में सम्पूर्ण जवान हो जाते हैं। तेइन्द्रियों की उत्कृष्ट स्थिति उनपचास रात दिन की होती है ॥ ४९ ॥

विवेचन - पडिमा (प्रतिमा) का अर्थ है - अभिग्रह विशेष । सप्तसप्तमिका पडिमा ४९ दिन में पूरी होती है इसमें प्रतिसप्ताह एक-एक भिक्षा (दत्ति) की वृद्धि करने से १९६ दत्तियाँ होती हैं। इसकी विस्तृत व्याख्या दशाश्रुत स्कन्ध और अन्तगड़ सूत्र में है।

देवकुरु और उत्तरकुरु युगलिक क्षेत्र हैं। वहाँ माता-पिता अपने सन्तान की पालना ४९ दिन तक करते हैं। इसके बाद वे सम्पूर्ण यौवनावस्था को प्राप्त हो जाते हैं इसलिये माता-पिता के पालन की अपेक्षा नहीं रखते हैं। जूं, लीख, चांचड, माकड (खटमल) आदि तेइन्द्रिय जीव हैं। इनका जघन्य आयुष्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट ४९ रातदिन का होता है।

पचासवां समवाय

मुणिसुव्वयस्स णं अरहओ पण्णासं अज्जिया साहस्सीओ होत्था। अणंते णं अरहा पण्णासं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। पुरिसुत्तमे णं वासुदेवे पण्णासं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। सव्वे वि णं दीहवेयड्ढा मूले पण्णासं पण्णासं जोयणाणि विक्खंभेणं पण्णत्ता। लंतए कप्पे पण्णासं विमाणावास सहस्सा पण्णत्ता। सव्वाओ णं तिमिस्सगुहा खंडगप्पवायगुहाओ पण्णासं पण्णासं जोयणाइं आयामेणं पण्णत्ताओ। सव्वे वि णं कंचणग पव्वया सिहरतले पण्णासं पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता ॥ ५० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - तिमिस गुहा खंडगप्पवाय गुहाओ - तिमिस्र गुफाएं और खण्ड प्रपात गुफाएं, **कंचणगपव्वया** - काञ्चन पर्वत, **सिहरतले** - शिखर पर।

भावार्थ - बीसवें तीर्थङ्कर श्री मुनिसुव्रत स्वामी के पचास हजार आर्यिकाएं थीं। चौदहवें तीर्थङ्कर श्री अनन्त स्वामी के शरीर की ऊंचाई पचास धनुष थी। पुरुषोत्तम नामक चौथे वासुदेव के शरीर की ऊंचाई पचास धनुष थी। सब दीर्घ वैताढ्य पर्वत मूल में पचास-पचास योजन चौड़े कहे गये हैं। छठे लान्तक देवलोक में पचास हजार विमान कहे गये हैं। सब तिमिस्र गुफाएं और खण्ड प्रपात गुफाएं पचास-पचास योजन लम्बी कही गई हैं। सब काञ्चन पर्वत शिखर पर पचास-पचास योजन चौड़े कहे गये हैं ॥ ५० ॥

विवेचन - पुरुषोत्तम नामक चौथा वासुदेव, चौदहवें तीर्थङ्कर श्री अनन्तनाथ स्वामी के शासन में हुए थे। इसलिये अनंतनाथ स्वामी की तरह उनकी शरीर की ऊंचाई भी ५० धनुष की थी।

वैताढ्य पर्वत दो तरह के होते हैं। यथा - दीर्घ वैताढ्य अर्थात् लम्बे वैताढ्य और वृत्त वैताढ्य अर्थात् गोल वैताढ्य पर्वत।

तिमिस्रा गुफा और खण्डप्रपात गुफा ये दोनों गुफायें दीर्घ वैताढ्य पर्वत के अन्दर हैं। खण्ड साधन करने के लिये जब चक्रवर्ती जाता है तब वह इनके दरवाजे उघाड़ता है। ये सभी दीर्घ वैताढ्य पर्वत मूल में पचास योजन के विस्तार वाले हैं।

महाविदेह क्षेत्र में मेरु पर्वत के उत्तर में 'उत्तरकुरु' युगलिक क्षेत्र और दक्षिण में देवकुरु नामक युगलिक क्षेत्र है। उत्तर कुरु में पांच द्रह हैं। यथा - नीलवंत, ऐरावण, उत्तरकुरु, चन्द्र और माल्यवन्त। प्रत्येक द्रह के पूर्व में और पश्चिम में दस दस काञ्चन पर्वत हैं। इस प्रकार पांचों द्रहों पर १०० काञ्चन पर्वत हैं। इसी तरह देवकुरु में भी निषध आदि पांच द्रह हैं। उन पर भी एक सौ काञ्चन पर्वत हैं। ये पर्वत १०० योजन ऊंचे हैं और मूल में भी १०० योजन विस्तृत हैं और शिखर पर पचास योजन का विस्तार है। इस प्रकार जम्बूद्वीप में दो सौ काञ्चन पर्वत हैं और इसी नाम वाले इनके स्वामी देव हैं। उनके भवन इनके शिखर पर हैं।

इकावनवां समवाय

णवण्हं बंभचेराणं एकावण्णं उद्देसण काला पण्णत्ता। चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो सभा सुहम्मा एकावण्णं खंभसयसण्णिविट्ठा पण्णत्ता। एवं चेव बलिस्स वि। सुप्पभे णं बलदेवे एकावण्णं वाससयसहस्साइं परमाउं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाव सव्वदुक्खप्पहीणे। दंसणावरण णामाणं दोण्हं कम्माणं एकावण्णं उत्तरकम्मपयडीओ पण्णत्ताओ।। ५१ ॥

कठिन शब्दार्थ - णवण्हं बंभचेराणं - आचारांग सूत्र के ब्रह्मचर्य नामक प्रथम श्रुतस्कंध के ९ अध्ययन, **सुहम्मा सभा** - सुधर्मा सभा, **एकावण्णं खंभसय सण्णिविट्ठा** - इकावन सौ खंभों पर स्थित, **परमाउं** - उत्कृष्ट आयु।

भावार्थ - आचाराङ्ग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के नौ अध्ययनों के इकावन उद्देशन काल कहे गये हैं। असुरों के राजा असुरों के इन्द्र चमरेन्द्र की सुधर्मा सभा इकावन सौ खम्भों पर स्थित है। इसी तरह बलीन्द्र की सभा भी इकावन सौ खम्भों पर अवस्थित है। सुप्रभ नामक चौथा बलदेव इकावन लाख वर्ष की उत्कृष्ट आयु को भोग कर सिद्ध, बुद्ध यावत् सब दुःखों से रहित हुए। दर्शनावरणीय कर्म की नौ प्रकृतियाँ और नाम कर्म की बयालीस प्रकृतियाँ हैं, इस प्रकार दोनों कर्मों की कुल मिला कर इकावन उत्तर कर्म प्रकृतियाँ कही गई हैं ॥ ५१ ॥

विवेचन - आचाराङ्ग प्रथम श्रुतस्कन्ध के शस्त्रपरिज्ञा आदि ९ अध्ययन हैं। शास्त्रकार ने इनको नौ ब्रह्मचर्य अध्ययन कहा है। इनके इकावन उद्देशक हैं इसलिये उद्देशनकाल (प्रारम्भ करने का समय) भी इकावन हैं।

सुप्रभ नामक चौथे बलदेव, चौदहवें तीर्थङ्कर अनन्तनाथ स्वामी के समय में हुए थे। उनका सम्पूर्ण आयुष्य इकावन लाख वर्ष का था। आवश्यक सूत्र में तो इनका आयुष्य पचपन लाख वर्ष लिखा है, यह मतान्तर मालूम होता है।

दर्शनावरणीय कर्म की नौ उत्तरप्रकृतियाँ हैं और नाम कर्म की बयालीस प्रकृतियाँ हैं इस प्रकार दोनों कर्मों की मिला कर इकावन उत्तर कर्म प्रकृतियाँ कही गई हैं।

बावनवां समवाय

मोहणिज्जस्स कम्मस्स बावण्णं णामधेज्जा पण्णत्ता तंजहा - कोहे कोवे रोसे दोसे अखमा संजलणे कलहे चंडिक्के भंडणे विवाए १०। माणे मदे दप्पे थंभे अत्तुक्कोसे गव्वे परपरिवाए अक्कोसे अवक्कोसे (परिभवे) उण्णए उण्णामे २१। माया उवही णियडी वलए गहणे णूमे कक्के कुरुए दंभे कूडे जिम्हे किव्विसे अणायरणया गूहणया वंचणया पलिकुंचणया साइजोगे ३८। लोभे इच्छा मुच्छा कंखा गेही तिण्हा भिज्जा अभिज्जा कामासा भोगासा जीवियासा मरणासा णंदी रागे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५२। गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ वलयामुहस्स महापायालस्स पच्चत्थिमिल्ले चरमंते एस णं बावण्णं जोयण सहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं दगभासस्स केउगस्स संखस्स जूयगस्स, दगसीमस्स ईसरस्स। णाणावरणिज्जस्स णामस्स अंतरायस्स एएसिं तिण्हं कम्मपयडीणं बावण्णं उत्तरकम्मपयडीओ पण्णत्ताओ। सोहम्म सणंकुमार माहिंदेसु तिसु कप्पेसु बावण्णं विमाण वाससयसहस्सा पण्णत्ता।। ५२ ।।

कठिन शब्दार्थ - चंडिक्के - चाण्डिक्य, **भंडणे** - भंडन, **दप्पे** - दर्प, **थंभे** - स्तम्भ, **अत्तुक्कोसे** - आत्मोत्कर्ष (अत्युत्कर्ष) **अक्कोसे** - आक्रोश, **अवक्कोसे** - अपकर्ष, **उण्णए** - उन्नत, **उण्णामे** - उन्नाम, **णियडी** - निकृति, **कक्के** - कल्क, **कूडे** - कूट, **जिम्हे** - जिम्ह, **अणायरणया** - अनाचरणता, **पलिकुंचणया** - परिकुञ्चनता, **गेही** - गृद्धि, **कामासा** - काम आशा, **वलयामुहस्स महापायालस्स** - बडवामुख महापाताल कलश के।

भावार्थ - मोहनीय कर्म के अर्थात् क्रोध मान माया लोभ इन चार कषायों के बावन नाम कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - क्रोध के १० नाम - १. क्रोध, २. कोप, ३. रोष ४. दोष, ५. अक्षमा, ६. संज्वलन, ७. कलह, ८. चाण्डिक्य, ९. भंडन, १०. विवाद। मान के ग्यारह नाम - ११. मान १२. मद, १३. दर्प, १४. स्तम्भ, १५. आत्मोत्कर्ष या अत्युत्कर्ष, १६. गर्व, १७. परपरिवाद, १८. आक्रोश, १८. अपकर्ष, १९. उन्नत २०. उन्नाम। माया के सत्तरह नाम - २२. माया, २३. उपधि, २४. निकृति, २५. वलय, २६. गहन, २७. नूम २८. कल्क, २९. कुरुक, ३०. दम्भ ३१. कूट, ३२. जिम्ह, ३३. किल्विषिक ३४. अनाचरणता, ३५. गूहनता, ३६. वञ्चनता ३७. परिकुञ्चनता, ३८. सातियोग। लोभ के चौदह नाम - ३९. लोभ, ४०. इच्छा, ४१. मूर्च्छा ४२. कांक्षा, ४३. गृद्धि, ४४. तृष्णा, ४५. भिद्या, ४६. अभिद्या, ४७. काम आशा, ४८. भोग आशा ४९. जीवित आशा, ५०. मरण आशा, ५१. नन्दी, ५२. राग । लवण समुद्र में गोस्थूभ नामक बेलंधर नागकुमार नागकुमारेन्द्र राजा के आवास पर्वत के पूर्व चरमान्त से बडवामुख महापाताल कलश के पश्चिम चरमान्त के बीच में बावन हजार योजन का अन्तर कहा गया है अर्थात् जम्बूद्वीप की जगती से ९५ हजार योजन लवणसमुद्र में जाने पर पूर्व दिशा में बड़वामुख, दक्षिण में केतु, पश्चिम में यूपक और उत्तर में ईसर नामक चार महापाताल कलश हैं। जम्बूद्वीप की जगती से ४२ हजार योजन लवण समुद्र में जाने पर चारों दिशाओं में चार गोस्थूभ आदि आवास पर्वत हैं। वे एक हजार योजन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के चौड़े हैं। सब मिला कर ४३ हजार योजन होते हैं। अब पूर्वोक्त ९५ हजार योजन में से ४३ हजार योजन निकाल देने पर ५२ हजार बाकी बचते हैं। इस प्रकार गोस्थूभ आवास पर्वत और बडवामुख महापाताल कलश के बीच में ५२ हजार योजन का अन्तर है। इसी प्रकार दक्षिण में दगभास पर्वत के और केतुक महापाताल कलश के बीच में ५२ हजार योजन का अन्तर है। पश्चिम में शंख पर्वत के और यूपक नामक महापाताल कलश के बीच में तथा उत्तर में दगसीम पर्वत के और ईसर (ईश्वर) नामक महापाताल कलश के बीच में बावन बावन हजार योजन का अन्तर है। ज्ञानावरणीय की पांच, नाम कर्म की बयालीस और अन्तराय की पांच, इस प्रकार इन तीनों कर्मों की सब मिला कर बावन उत्तर कर्म प्रकृतियाँ कही गई हैं। पहले सौधर्म देवलोक में ३२ लाख विमान हैं, तीसरे सनत्कुमार देवलोक में बारह लाख और चौथे माहेन्द्र देवलोक में आठ लाख विमान हैं, इस प्रकार इन तीन देवलोकों में सब मिला कर बावन लाख विमान कहे गये हैं ॥ ५२ ॥

विवेचन - यहाँ पर मूल में मोहनीय कर्म के ५२ नाम कहे हैं सो मोहनीय कर्म का अर्थ क्रोध, मान, माया, लोभ लेना चाहिए। इनके नामों का सामान्य अर्थ भावार्थ में कर दिया गया है।

महापाताल कलश और गोस्थूभ पर्वत के बीच में ५२००० योजन का अन्तर **है। जिसका** खुलासा भावार्थ में अच्छी तरह कर दिया गया है।

तरेपनवां समवाय

देवकुरु उत्तरकुरुयाओ णं जीवाओ तेवण्णं तेवण्णं जोयणसहस्साइं साइरेगाइं आयामेणं पण्णत्ताओ। महाहिमवंतरुप्पीणं वासहरपव्वयाणं जीवाओ तेवण्णं तेवण्णं जोयणसहस्साइं णव य एगतीसे जोयणसए छच्च एगूणवीसइभाए जोयणस्स आयामेणं पण्णत्ताओ। समणस्स भगवओ महावीरस्स तेवण्णं अणगारा संवच्छर परियाया पंचसु अणुत्तरेसु महइमहालएसु महाविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा। सम्मुच्छिम उरपरिसप्पाणं उक्कोसेणं तेवण्णं वास सहस्सा ठिई पण्णत्ता ॥ ५३ ॥

कठिन शब्दार्थ - महाहिमवंतरुप्पीणं वासहरपव्वयाणं - महाहिमवान् और रुक्मी वर्षधर पर्वतों की, **जीवाओ** - जीवाएं, **संवच्छर परियाया** - एक वर्ष की प्रव्रज्या (दीक्षा)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाले, **पंचसु अणुत्तरेसु महइमहालएसु महाविमाणेसु** - पांच अनुत्तर विमानों के अत्यन्त उत्तम और महा विस्तीर्ण विमानों में, **सम्मुच्छिम उरपरिसप्पाणं** - सम्मूर्च्छिम उरपरिसर्पों की।

भावार्थ - देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्र की जीवाएं तरेपन तरेपन हजार योजन से कुछ अधिक लम्बी कही गई हैं। महाहिमवान् और रुक्मी वर्षधर पर्वतों की जीवाएँ ५३९३१ योजन और एक योजन के १९ भागों में से ६ कलाएं लम्बी कही गई हैं। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के तरेपन अनगार एक वर्ष की प्रव्रज्या पाल कर पांच अनुत्तर विमानों के अत्यन्त उत्तम और महाविस्तीर्ण विमानों में देव रूप से उत्पन्न हुए। सम्मूर्च्छिम उरपरिसर्पों की उत्कृष्ट स्थिति तरेपन हजार वर्ष की कही गई हैं ॥ ५३ ॥

विवेचन - महाहिमवान् वर्षधर पर्वत की जीवा का परिमाण बतलाने के लिए संवाद गाथा इस प्रकार है -

तेवन्नसहस्साइं नव य सए जोयणाण इगतीसे ।
जीवा महाहिमवओ अद्धकला छच्च य कलाओ ॥ १ ॥

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के तरेपन अनगार एक वर्ष का संयम पालन कर अनुत्तर विमानों में गये। वे अनगार कौनसे हैं ? इसका खुलासा देखने में नहीं आया है। 'अणुत्तरोववाईय' सूत्र में अनुत्तर विमान में जाने वाले व्यक्तियों का वर्णन तो अवश्य है। किन्तु वे तो ३३ महापुरुष हैं और उन्होंने तो बहुत वर्षों तक संयम का पालन किया था। इसलिये वे तो इन से भिन्न हैं।

चौपनवां समवाय

भरहेरवएसु णं वासेसु एगमेगाए उस्सप्पिणीए ओसप्पिणीए चउवण्णं चउवण्णं उत्तमपुरिसा उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा तंजहा - चउव्वीसं तित्थयरा बारस चक्कट्टी णव बलदेवा णव वासुदेवा। अरहा णं अरिट्ठणेमी चउवण्णं राइंदियाइं छउमत्थपरियायं पाउणित्ता जिणे जाए केवली सव्वण्णू सव्वभाव दरिसी । समणे भगवं महावीरे एगदिवसेणं एगणिसिज्जाए चउवण्णाइं वागरणाइं वागरित्था। अणंतस्स णं अरहओ चउवण्णं गणा चउवण्णं गणहरा होत्था ॥ ५४ ॥

कठिन शब्दार्थ - **भरहेरवएसु वासेसु** - भरत क्षेत्र और ऐरवत क्षेत्र में, **चउवण्णं** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चौपन, **छउमत्थपरियायं पाउणित्ता** - छद्मस्थ रह कर, **सव्वण्णू** - सर्वज्ञ, **सव्वभावदरिसी**- सर्वभावदर्शी, **एगणिसिज्जाए** - एक आसन से बैठ कर, **वागरणाइं** - व्याकरण-प्रश्नों के उत्तर।

भावार्थ - भरत क्षेत्र और ऐरवत क्षेत्र में प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी में चौपन चौपन उत्तम पुरुष उत्पन्न हुए थे उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होवेंगे । यथा - चौबीस तीर्थङ्कर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव और नौ वासुदेव। बाईसवें तीर्थङ्कर श्री अरिष्टनेमिनाथ चौपन दिन छद्मस्थ रह कर जिन-राग द्वेष के विजेता केवलज्ञानी सर्वज्ञ सर्वदर्शी हुए थे। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने एक दिन में एक आसन से बैठ कर चौपन व्याकरण यानी प्रश्नों के उत्तर फरमाये थे। चौदहवें तीर्थङ्कर श्री अनन्तनाथ स्वामी के चौपन गण और चौपन गणधर थे।।५४।।

विवेचन - यहाँ पर उत्तम पुरुष ५४ बतलाये गये हैं। यथा - २४ तीर्थङ्कर, बारह चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव। 'त्रिसष्टिशलाका पुरुष चरित्र' में ६३ महापुरुषों को शलाका (श्लाघ्य-प्रशंसनीय) पुरुष बतलाया है। वहाँ ९ प्रतिवासुदेवों को भी श्लाघ्य पुरुषों में लिया गया है। किन्तु यहाँ उत्तम पुरुषों में उनकी गिनती नहीं की गई है इसका कारण ऐसा मालूम होता है कि - प्रतिवासुदेवों के पिछली उम्र में ऐसी कोई अव्यावहारिक और अप्रशंसनीय घटना बन जाती है। जिससे वासुदेव के निमित्त से उनके (प्रतिवासुदेवों के) चक्र से ही मृत्यु होती है। वे लोक में निंदा के पात्र बन जाते हैं। अन्यथा प्रतिवासुदेव भी वासुदेवों की तरह **'खेमंकरे, खेमंधरे'** और **'सीमंकरे, सीमंधरे'** अर्थात् प्रजा में क्षेम-कुशल बरताते हैं यानी परचक्र (दूसरे राजा के आक्रमण) के भय से प्रजा की रक्षा करते हैं और आप स्वयं भी प्रजा पर अत्याचार, जुल्म आदि नहीं करते हैं किन्तु शांति बरताते हैं।

सीमा (मर्यादा) बांधते हैं कि - किसी भी जीव की हिंसा न करना, झूठ कपट धोखाबाजी न करना, परस्त्री गमन बलात्कार न करना। इस मर्यादा का उल्लंघन करने वाले सजा (दण्ड) के पात्र होंगे। इस मर्यादा का प्रतिवासुदेव स्वयं भी पालन करते हैं। रावण प्रतिवासुदेव था। वह न्यायनीति सम्पन्न मर्यादा पालक सदाचारी पुरुष था। किन्तु **'विनाशकाले विपरीत बुद्धिः'** उक्ति के अनुसार उसने सीता का अपहरण किया और वासुदेव लक्ष्मण के निमित्त से अपने ही चक्र से मृत्यु को प्राप्त हुआ और लोक में निंदनीय बन गया।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने एक दिन में एक आसन से बैठ कर चौपन वागरण (व्याकरण-प्रश्नों के उत्तर) फरमाये। वे कौनसे हैं इसका खुलासा नहीं मिलता है।

चौदहवें तीर्थङ्कर अनन्त नाथ भगवान् के ५४ गणधर और ५४ गण बतलाये हैं। किन्तु आवश्यक सूत्र में ५० गणधर और ५० गण बतलाये गये हैं सो यह मतान्तर मालूम होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पचपनवां समवाय

मल्लि णं अरहा पणवण्णं वाससहस्साइं परमाउं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे। मंदरस्स णं पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरमंताओ विजयदारस्स पच्चत्थिमिल्ले चरमंते एस णं पणवण्णं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं चउदिसिं वि वेजयंत जयंत अपराजियं त्ति। समणे भगवं महावीरे अंतिमराइयंसि पणवण्णं अज्झयणाइं कल्लाणफल विवागाइं पणवण्णं अज्झयणाइं पावफलविवागाइं वागरित्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे। पढम बिइयासु दोसु पुढवीसु पणवण्णं णिरयावास सयसहस्सा पण्णत्ता। दंसणावरणिज्ज णामाउयाणं तिण्णं कम्म पयडीणं पणवण्णं उत्तरकम्मपयडीओ पण्णत्ताओ ॥ ५५ ॥

कठिन शब्दार्थ - **पणवण्णं वाससहस्साइं** - पचपन हजार वर्ष का, **परमाउं** - पूर्ण आयु, **अंतिमराइयंसि** - अंतिम रात्रि में, **वागरित्ता** - फरमा कर।

भावार्थ - उन्नीसवें तीर्थङ्कर श्री मल्लिनाथ स्वामी पचपन हजार वर्ष का पूर्ण आयु भोग कर सिद्ध बुद्ध यावत् सर्व दुःखों से रहित हुए । मेरु पर्वत के पश्चिम के चरमान्त से विजय द्वार का पश्चिम चरमान्त तक पचपन हजार योजन का अन्तर कहा गया है। क्योंकि मेरु पर्वत से विजयद्वार ४५ हजार योजन है और मेरु पर्वत दस हजार योजन का चौड़ा है, इस प्रकार सब मिला कर ५५ हजार योजन होते हैं। इसी तरह चारों दिशाओं में अर्थात् दक्षिण में वैजयन्त पश्चिम में जयन्त और उत्तर में अपराजित द्वारों का अन्तर समझ लेना चाहिए। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अन्तिम रात्रि में अर्थात् कार्तिक कृष्णा अमावस्या को कल्याणफल विपाक अर्थात् पुण्य के फल बतलाने वाले पचपन अध्ययन और पापफलविपाक यानी पाप के फल बतलाने वाले पचपन अध्ययन फरमा कर सिद्ध बुद्ध यावत् सर्व दुःखों से रहित हुए। पहली नरक में तीस लाख नरकावास हैं और दूसरी नरक में पचीस लाख नरकावास हैं, इस प्रकार दोनों नरकों में पचपन लाख नरकावास कहे गये हैं। दर्शनावरणीय कर्म की ९ प्रकृतियाँ हैं, नाम कर्म की ४२ और आयु कर्म की ४ हैं, इस प्रकार इन तीन कर्मों की कुल मिलाकर पचपन उत्तर कर्म प्रकृतियाँ कही गई हैं ॥ ५५ ॥

विवेचन - यहाँ पर जम्बूद्वीप के विजय-द्वार का पश्चिमान्त लिखा है किन्तु जगती का पूर्वान्त समझना चाहिये। जम्बूद्वीप की जगती ८ योजन की ऊंची है। मूल में बारह योजन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चौड़ी है। उस जगती को शामिल गिनने से ही जम्बूद्वीप एक लाख योजन का पूरा होता है। इसी प्रकार लवण समुद्र की जगती को भी शामिल गिनने से लवण समुद्र दो लाख योजन का पूरा होता है। द्वीप और समुद्रों की जगती के परिमाणों को अलग गिना जाय तो मनुष्य क्षेत्र ४५ लाख योजन से अधिक हो जायेगा और उसकी परिधि भी अधिक हो जायेगी। जो कि आगमानुसार नहीं है। टीकाकार तो सब द्वीप-समुद्रों की जगती मानते हैं किन्तु शास्त्रकार तो सिर्फ जम्बूद्वीप की जगती मानते हैं। दूसरे द्वीप समुद्रों की जगती नहीं मानते किन्तु वेदिका मानते हैं आगमों में ऐसा ही वर्णन है।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तिम चौमासा मध्यम अपापा नगरी में हस्तीपाल राजा की करण-सभा (लेख शाला) में किया था। कार्तिक वदी अमावास्या को स्वाति नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग जुड़ने पर रात्रि के पीछले भाग में पर्यंक आसन से बैठे हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी, पुण्य के फल बतलाने वाले ५५ अध्ययन और पाप के फल बतलाने वाले ५५ अध्ययन फरमाकर मोक्ष पधारे । मूल पाठ में **'सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे'** शब्द दिये हैं जिनका अर्थ इस प्रकार हैं -

१. सिद्ध - **''सिद्धयति कृतकृत्यो भवति, सेधयति स्म वा अगच्छत् अपुनरावृत्त्या लोकाग्रमिति सिद्धः। सिद्धो - निष्ठितार्थः।''**

अर्थ - जिन के सब कार्य **सिद्ध** हो चुके हैं कोई काम करना बाकी नहीं रहा है, जहाँ जाकर जीव वापिस नहीं लौटता है किन्तु लोक के अग्रभाग पर जाकर स्थित हो जाता है, उसे सिद्ध कहते हैं।

२. **बुद्ध** - **'ज्ञाततत्त्वः'**

अर्थ - जिसने जीव अजीव आदि सभी तत्त्वों को जान लिया है उसे **बुद्ध कहते हैं**। अर्थात् केवलज्ञानी, केवलदर्शी-सर्वज्ञ सर्वदर्शी ।

३. **मुक्त** - **'भवोपग्राहिकर्मांशेभ्यः'**

अर्थ - ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन ४ घाती कर्मों के क्षय से केवलज्ञानी केवलदर्शी (सर्वज्ञ सर्वदर्शी) बने। वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र इन चार कर्मों को भवोपग्राहि-अघाती कर्म कहते हैं। ये जब तक क्षय नहीं होते हैं तब तक जीव भवस्थ केवली रूप में संसार में रहता है। इनके क्षय हो जाने पर अर्थात् आठों कर्मों का क्षय हो जाता है। तब जीव मुक्त कहलाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४. अंतगड (अन्तकृत) - **'अन्तो-भवान्तः, कृतो-विहितो येन स अन्तकृतः'** जिसने भवभ्रमण रूप संसार का अन्त कर दिया है। उसे अन्तकृत कहते हैं।

५. परिणिव्वुडे - परिनिर्वृत्तः - **'समन्ताच्छीतीभूतः कर्मकृतसकलसन्ताप विरहात् कर्मक्षय सिद्धेः, सर्वतः शारीर मानसास्वास्थ्य विरहितः।'**

अर्थ - जिस प्रकार चूल्हे में अग्नि जलती हो और ऊपर पानी रखा हुआ हो तो वह गरम होकर उबलता रहता है परन्तु नीचे की अग्नि बुझ जाने पर उसमें उबाल नहीं आता अपितु शान्त होकर शीतल बन जाता है। इसी प्रकार कषाय रूपी अग्नि (**कसाया अग्गिणो वुत्ता**) जब तक जलती रहती है तब तक जीव संसार में परिभ्रमण करता रहता है। शारीरिक और मानसिक दुःख रूप अग्नि में जलता रहता है। परन्तु कषाय रूपी अग्नि जब सर्वथा क्षय हो जाती है एवं आठों कर्म क्षय हो जाते हैं तब जीव शारीरिक और मानसिक सब दुःखों से रहित हो कर परम शीतल और शान्त बन जाता है।

पुण्य के फल बतलाने वाले ५५ अध्ययन और पाप के फल बतलाने वाले ५५ अध्ययन कौनसे हैं, उसका खुलासा नहीं मिलता है। वे अभी उपलब्ध नहीं है। जो विपाक सूत्र अभी उपलब्ध है उसमें दुःख विपाक के दस अध्ययन और सुख विपाक के भी दस अध्ययन; इस प्रकार विपाक सूत्र में बीस अध्ययन हैं।

छप्पनवां समवाय

जंबूद्दीवे णं दीवे छप्पण्णं णक्खत्ता चंदेण सद्धिं जोगं जोइंसु वा जोइंति वा जोइस्संति वा। विमलस्स णं अरहओ छप्पण्णं गणा छप्पण्णं गणहरा होत्था ॥ ५६ ॥

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप में छप्पन नक्षत्रों ने चन्द्रमा के साथ योग किया था, योग करते हैं और योग करेंगे । तेरहवें तीर्थङ्कर श्री विमलनाथ स्वामी के छप्पन गण और छप्पन गणधर थे ॥ ५६ ॥

विवेचन - जम्बूद्वीप में दो चन्द्र हैं। एक-एक चन्द्र के २८-२८ नक्षत्र होने से दोनों चन्द्रमाओं के मिलाकर ५६ नक्षत्र हो जाते हैं। आवश्यक सूत्र में विमलनाथ भगवान् के ५७ गण और ५७ गणधर बतलाये हैं। यह मतान्तर मालूम होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्तावनवां समवाय

तिण्हं गणिपिडगाणं आयारचूलियावज्जाणं सत्तावण्णं अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा- आयारे सूयगडे ठाणे। गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ वलयामुहस्स महापायालस्स बहुमज्झदेसभाए एस णं सत्तावण्णं जोयण सहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते, एवं दगभाससस्स केउयस्स य, संखस्स य जूयस्स य, दगसीमस्स य ईसरस्स य। मल्लिस्स णं अरहओ सत्तावण्णं मणपज्जवणाणीसया होत्था। महाहिमवंतरुप्पीणं वासहरपव्वयाणं जीवा णं धणुपिट्ठं सत्तावण्णं सत्तावण्णं जोयणसहस्साइं दोण्णि य तेणउए जोयणसए दस य एगूणवीसइभाए जोयणस्स परिक्खेवेणं पण्णत्तं ॥ ५७ ॥

कठिन शब्दार्थ - गणिपिडगाणं - गणि पिटकों में, **आयार चूलियावज्जाणं** - आचारांग सूत्र की चूलिका को छोड़ कर बाकी, **बहुमज्झदेसभाए** - मध्य भाग तक, **परिक्खेवेणं** - परिक्षेपविस्तृत ।

भावार्थ - आचाराङ्ग, सूयगडाङ्ग और स्थानाङ्ग, इन तीन गणिपिटकों में आचाराङ्ग सूत्र की चूलिका को छोड़ कर बाकी सत्तावन अध्ययन कहे गये हैं। आचाराङ्ग सूत्र के दोनों श्रुतस्कन्धों में २५ अध्ययन हैं उनसे एक चूलिका को छोड़ देने से बाकी २४ रहे, सूयगडाङ्ग सूत्र के दोनों श्रुतस्कन्धों के २३ अध्ययन हैं और स्थानाङ्ग सूत्र के १० अध्ययन हैं, इस प्रकार ये सब मिला कर ५७ अध्ययन होते हैं। गोस्तूभ आवास पर्वत के पूर्व चरमान्त से बडवामुख महापाताल कलश के मध्य भाग तक सत्तावन हजार योजन का अन्तर कहा गया है। जगती के कोट से लवण समुद्र में ४२ हजार योजन जाने पर बेलंधर नागराज का गोस्तूभ आवास पर्वत है। उससे पूर्व दिशा में बडवामुख महापाताल कलश ५२ हजार योजन है। वह कलश १० हजार योजन का चौड़ा है, उसका मध्य भाग ५ हजार योजन का होता है, इस प्रकार ५२ और ५ मिला कर ५७ हजार योजन होता है। इसी प्रकार दक्षिण में दगभास पर्वत से केतु महापाताल कलश के मध्यभाग, पश्चिम में शंख पर्वत से यूपक महापाताल कलश का मध्य भाग और उत्तर में दगसीम पर्वत से ईश्वर महापाताल कलश के मध्य भाग तक ५७ हजार योजन का अन्तर है। उन्नीसवें तीर्थङ्कर श्री मल्लिनाथ स्वामी के सत्तावन सौ मनःपर्ययज्ञानी थे। महा हिमवान् और रुक्मी वर्षधर पर्वतों की जीवा का धनुःपृष्ठ ५७२९३ योजन और एक योजन के १९ में से १० का विस्तृत कहा गया है ॥ ५७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - वृत्त (गोल) क्षेत्र की धनुष की डोरी के आकार की जीवा होती है। इसलिये उसका धनुःपृष्ठ भी होता है। यहाँ धनुःपृष्ठ का परिमाण बतलाने वाली संवाद गाथा इस प्रकार है -

'सत्तावन्न सहस्सा धणुपिट्ठं तेणउय दुसय दस कल' (गाथा अर्द्ध)

अठावनवां समवाय

पढम दोच्च पंचमासु तिसु पुढवीसु अट्ठावण्णं णिरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता। णाणावरणिज्जस्स वेयणिय आउय णाम अंतराइयस्स एएसिं पंचण्हं कम्म पयडीणं अट्ठावण्णं उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ। गोथूभस्स णं आवास पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरमंताओ वलयामुहस्स महापायालस्स बहुमज्झदेसभाए एस णं अट्ठावण्णं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते एवं चउदिसिं वि णेयव्वं ॥५८॥

कठिन शब्दार्थ - वलयामुहस्स महापायालस्स - बडवामुख महापाताल कलश के, **चउदिसिं वि** - चारों दिशाओं में, **णेयव्वं** - जानना चाहिए।

भावार्थ - पहली नरक में ३० लाख नरकावास हैं, दूसरी में २५ लाख नरकावास हैं और पांचवीं में ३ लाख नरकावास हैं, इस प्रकार इन तीनों नरकों के सब मिला कर अठावन लाख नरकावास कहे गये हैं। ज्ञानावरणीय की ५ प्रकृतियाँ, वेदनीय की २, आयु की ४, नाम कर्म की ४२ और अन्तराय की ५, इस प्रकार इन पांच कर्मों की सब प्रकृतियों को मिला कर अठावन उत्तर प्रकृतियाँ कही गई हैं। गोस्तूभ आवास पर्वत के पश्चिम के चरमान्त से बडवामुख महापाताल कलश के मध्य भाग तक ५८ हजार योजन का अन्तर कहा गया है। क्योंकि पूर्व दिशा के चरमान्त से ५७ हजार योजन का अन्तर होता है और एक हजार योजन का गोस्थूभ पर्वत चौड़ा है, इसलिए पश्चिम चरमान्त तक ५८ हजार योजन का अन्तर होता है। इसी तरह चारों दिशाओं में जानना चाहिए॥ ५८ ॥

विवेचन - जिस प्रकार गोस्थूभ आवास पर्वत का और बडवामुख पातालकलश की अन्तर बतलाया है उसी प्रकार दक्षिण में दकभास आवास पर्वत का और केतुक महापाताल का तथा पश्चिम में शंख आवास पर्वत और यूपक महापाताल कलश का और उत्तर में दकसीम पर्वत से ईश्वर महापाताल कलश का ५८००० योजन का अन्तर होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उनसठवां समवाय

चंदस्स णं संवच्छरस्स एगमेगे उऊ एगूणसट्ठिं राइंदियाइं राइंदियग्गेणं पण्णत्ता। संभवे णं अरहा एगूणसट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं अगारमज्झे वसित्ता मुंडे जाव पव्वइए । मल्लिस्स णं अरहओ एगूणसट्ठिं ओहिणाणिसया होत्था ॥ ५९ ॥

कठिन शब्दार्थ - चंदस्स संवच्छरस्स - चन्द्र संवत्सर की, उऊ - ऋतु, **अगारमज्झे**- अगारमध्य-गृहस्थवास में, **वसित्ता** - रह कर, **मुंडे जाव पव्वइए** - मुण्डित यावत् प्रव्रजित हुए थे।

भावार्थ - चन्द्रमा की गति को मान कर जो संवत्सर गिना जाता है, उसे चन्द्र संवत्सर कहते हैं, उस चन्द्र संवत्सर की प्रत्येक ऋतु (दो मास की एक ऋतु होती है) रात्रि दिवस की अपेक्षा उनसठ रात दिन की होती है। चौथे तीर्थङ्कर श्री सम्भवनाथ स्वामी उनसठ लाख पूर्व तक गृहस्थवास में रह कर मुण्डित हुए थे, यावत् प्रव्रजित हुए थे। मल्लिनाथ भगवान् के उनसठ सौ अवधिज्ञानी थे ॥ ५९ ॥

विवेचन - ठाणाङ्ग सूत्र के पांचवें ठाणे में पांच प्रकार के संवत्सर बतलाये गये हैं। चन्द्रमा की गति को मान कर जो संवत्सर बतलाया जाता है उसे चन्द्र संवत्सर कहते हैं। इसके बारह महीने होते हैं और छह ऋतुएं होती हैं। एक ऋतु ५९ रात्रि दिन की होती है। एक रात दिन के ६० भागों में से ३२ भाग अधिक होती है यथा - $५९\frac{३२}{६०}$ । परन्तु यहाँ ऊपर के भाग को गौण कर दिया है।

यहाँ पर संभवनाथ स्वामी का गृहस्थ पर्याय ५९ लाख पूर्व का बतलाया है। किन्तु आवश्यक सूत्र में ६५ लाख पूर्व और ४ पूर्वाङ्ग अधिक बताया है।

साठवां समवाय

एगमेगे णं मंडले सूरिए सट्ठिए सट्ठिए मुहुत्तेहिं संघाइए । लवणस्स णं समुद्दस्स सट्ठिं नागसाहस्सीओ अग्गोदयं धारंति । विमले णं अरहा सट्ठिं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स सट्ठिं सामाणिय साहस्सीओ पण्णत्ताओ। बंभस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सट्ठिं सामाणिय साहस्सीओ पण्णत्ताओ। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु सट्ठिं विमाणावास सयसहस्सा पण्णत्ता ॥ ६० ॥

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **सट्ठिए** - साठ, **संघाइए** - रहता है, **बलिस्स वइरोयणिंदस्स** - बलि नामक वैरोचनेन्द्र, **देवरण्णो** - देवों के राजा, **देविंदस्स** - देवों के इन्द्र।

भावार्थ - सूर्य के १८४ मण्डल हैं, उनमें से प्रत्येक मण्डल पर सूर्य साठ साठ मुहूर्त तक रहता है। साठ हजार नाग देवता लवण समुद्र के अग्रोदक यानी शिखर के पानी को दबाते रहते हैं। तेरहवें तीर्थङ्कर श्री विमलनाथ स्वामी के शरीर की ऊंचाई साठ धनुष की थी। बलि नामक वैरोचनेन्द्र के साठ हजार सामानिक देव कहे गये हैं। देवों के राजा देवों के इन्द्र ब्रह्म देवेन्द्र के साठ हजार सामानिक देव कहे गये हैं। सौधर्म देवलोक में ३२ लाख विमान हैं और ईशान देवलोक में २८ लाख विमान हैं, दोनों देवलोकों के सब मिला कर साठ लाख विमान हैं ॥ ६० ॥

विवेचन - सूर्य के १८४ मण्डलों में से प्रत्येक मण्डल पर सूर्य साठ-साठ मुहूर्त तक रहता है। इसका अभिप्राय यह है कि - एक दिन में सूर्य जहाँ उदय हुआ है उस स्थान पर सूर्य दो रात्रि दिन में वापिस आता है।

लवण समुद्र में दगमाला १६००० योजन ऊँचा गया है। उसके ऊपर दो कोस की पानी की बेला चढ़ती है और घटती है उसे 'अगोदक' कहते हैं। साठ हजार नाग कुमार देवता उसे दबाते रहते हैं। यह अनादि की व्यवस्था है। जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति में द्वीप समुद्रों के वर्णन में बताया है कि - जम्बूद्वीप में तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, साधु-साध्वी, श्रावक, श्राविका आदि धार्मिक पुरुषों के माहात्म्य के कारण लवण समुद्र का दगमाला और उसकी बेल जम्बूद्वीप में पड़ कर उसे प्लावित नहीं कर सकती अर्थात् इसको जलमग्न नहीं कर सकती है।

इकसठवां समवाय

पंच संवच्छरियस्स णं जुगस्स रिउमासेणं मिज्जमाणस्स इगसट्ठिं उऊ मासा पण्णत्ता। मंदरस्स णं पव्वयस्स पढमे कंडे एगसट्ठि जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते । चंदमंडले णं एगसट्ठिविभाग विभाइए समंसे पण्णत्ते । एवं सूरस्स वि ॥ ६१ ॥

कठिन शब्दार्थ - **पंच संवच्छरियस्स जुगस्स** - पांचवर्ष का एक युग होता है, **रिउ मासेण** - ऋतु मास से, **मिज्जमाणस्स** - गिनती करने पर, **पढमे कंडे** - प्रथम कांड, **एगसट्ठिविभाग विभाइए** - इकसठ भाग से विभाजित करने पर समंसे - समांश।

भावार्थ - पांच वर्ष का एक युग होता है। ऋतुमास से गिनती करने पर एक युग में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इकसठ ऋतु मास होते हैं अर्थात् ३५४ १२/६२ दिन का एक चन्द्र संवत्सर होता है, इस प्रकार तीन चन्द्र संवत्सरों के १०६२ ३६/६२ दिन होते हैं। ३८३ ४४/६२ दिन का एक अभिवर्द्धित संवत्सर होता है। दो अभिवर्द्धित संवत्सरों के ७६७ २६/६२ दिन होते हैं। पांच संवत्सरों के कुल मिला कर १८३० दिन होते हैं। ऋतु मास ३० दिन का होता है। इसलिये इन में ३० का भाग देने से ६१ ऋतु मास होते हैं। इस प्रकार एक युग में ६१ ऋतुमास होते हैं। मेरु पर्वत का प्रथम काण्ड इगसठ हजार योजन का ऊंचा है। मेरु पर्वत के दो विभाग करने से पहला काण्ड ६१ हजार योजन का और दूसरा काण्ड ३८ हजार योजन का है। चन्द्र मण्डल को इगसठ भाग से विभाजित करने से छप्पन समांश रहते हैं। इसी तरह सूर्य को भी इगसठ भाग से विभाजित करने से ४८ समांश रहते हैं ॥ ६१ ॥

विवेचन - यहाँ मेरु पर्वत को ९९००० योजन ऊँचा मान कर उसके दो विभाग किये हैं। उनमें से पहला भाग ६१००० योजन का तथा दूसरा भाग ३८००० योजन का कहा है किन्तु क्षेत्र समास में तो मेरु पर्वत को १००००० योजन का मान कर १००० योजन जमीन में यह पहला काण्ड है। दूसरा ६१००० योजन और तीसरा ३८००० योजन का है।

चन्द्र मण्डल एक योजन के ५६/६१ भाग चौड़ा है अतः सूर्य ४८/६१ भाग चौड़ा है यह समांश है। कोई अंश बाकी नहीं बचता है।

बासठवां समवाय

पंच संवच्छरिए णं जुगे बासट्ठिं पुण्णिमाओ बासट्ठिं अमावसाओ पण्णत्ताओ। वासुपुज्जस्स णं अरहओ बासट्ठिं गणा बासट्ठिं गणहरा होत्था। सुक्क पक्खस्स णं चंदे बासट्ठिं भागे दिवसे दिवसे परिवड्ढइ। ते चेव बहुल पक्खे दिवसे दिवसे परिहायइ। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु पढमे पत्थडे पढमावलियाए एगमेगाए दिसाए बासट्ठिं विमाणा पण्णत्ता। सव्वे वेमाणियाणं बासट्ठिं विमाण पत्थडा पत्थडग्गेणं पण्णत्ता ॥ ६२ ॥

कठिन शब्दार्थ - **बासट्ठिं** - बासठ, **पुण्णिमाओ** - पूर्णिमाएं, **अमावसाओ** - अमावस्याएं, **सुक्कपक्खस्स** - शुक्ल पक्ष का, **परिवड्ढइ** - बढ़ता है, **परिहायइ** - घटता है, **पढमावलियाए** - प्रथम आवलिका-पहली पंक्ति में, **विमाण पत्थडा** - विमान प्रस्तट-प्रत्तर।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - पांच संवत्सर का एक युग होता है, उसमें बासठ पूर्णिमाएँ और बासठ अमावस्याएं कही गई हैं। अर्थात् एक युग में तीन चन्द्र संवत्सर और दो अभिवर्द्धित संवत्सर होते हैं। तीन संवत्सरों के ३६ महीने होते हैं जिनकी ३६ पूर्णिमाएं और ३६ अमावस्याएं होती हैं। दो अभिवर्द्धित संवत्सरों के २६ महीने होते हैं जिनकी २६ पूर्णिमाएं और २६ अमावस्याएं होती हैं। इस प्रकार एक युग में ६२ पूर्णिमाएं और ६२ अमावस्याएं होती हैं। बारहवें तीर्थङ्कर श्री वासुपूज्य स्वामी के बासठ गण और बासठ गणधर थे।

शुक्लपक्ष का चन्द्रमा प्रतिदिन बासठ भाग बढ़ता है और कृष्ण पक्ष में प्रतिदिन बासठ भाग घटता जाता है। सौधर्म और ईशान देवलोक में पहले प्रतर की पहली पंक्ति में प्रत्येक दिशा में बासठ बासठ विमान कहे गये हैं। सब विमानों के बासठ प्रतर कहे गये हैं अर्थात् सौधर्म ईशान में १३, सनत्कुमार माहेन्द्र में १२, ब्रह्मलोक में ६, लान्तक में ५, शुक्र में ४, सहस्रार में ४, आणत प्राणत में ४, आरण अच्युत में ४, इस प्रकार बारह देवलोकों के ५२ प्रतर हैं। नवग्रैवेयक के ९ प्रतर और पांच अनुत्तर विमानों का १ प्रतर है, कुल मिला कर ६२ प्रतर होते हैं ॥ ६ ॥

विवेचन - बारहवें तीर्थङ्कर वासुपूज्य स्वामी के ६६ गण और ६६ गणधर आवश्यक सूत्र में बतलाये गये हैं। यह मतान्तर मालूम होता है।

तेरेसठवां समवाय

उसभे णं अरहा कोसलिए तेसट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं महारायमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए। हरिवासरम्मगवासेसु मणुस्सा तेसट्ठिए राइंदिएहिं संपत्तजोव्वणा भवंति। णिसढे णं पव्वए तेसट्ठिं सूरोदया पण्णत्ता। एवं णीलवंते वि ॥ ६३ ॥

कठिन शब्दार्थ - कोसलिए उसभे अरहा - कौशल गोत्रोत्पन्न भगवान् ऋषभदेव स्वामी, **तेसट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं** - ६३लाख पूर्व तक, **महारायमज्झे वसित्ता** - राज्य भोग कर।

भावार्थ - कौशल गोत्रोत्पन्न भगवान् ऋषभदेव स्वामी ने ६३ लाख पूर्व तक राज्य भोग कर फिर मुण्डित होकर गृहवास छोड़ कर प्रव्रज्या अङ्गीकार की थी। हरिवर्ष और रम्यक वर्ष क्षेत्रों के मनुष्य - युगलिए ६३ रात दिनों में पूर्ण यौवन अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् हरिवर्ष और रम्यक वर्ष क्षेत्र में युगलिए ६३ दिन तक अपनी सन्तान का पालन पोषण करते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं। निषध पर्वत पर ६३ सूर्य मण्डल कहे गये हैं। इसी प्रकार नीलवान् पर्वत पर भी ६३ सूर्य मण्डल हैं ॥ ६३ ॥

विवेचन - देवकुरु और उत्तरकुरु युगलिक क्षेत्र में माता-पिता ४९ दिन तक अपनी सन्तान का पालन पोषण करते हैं। हरिवास और रम्यक्वास में ६४ दिन तक और हेमवय और एरण्यवय में ७९ दिन तक अपनी सन्तान का पालन पोषण करते हैं। फिर वे बच्चे और बच्ची पूर्ण जवान हो जाते हैं। फिर वे माता-पिता की अपेक्षा नहीं रखते हैं परन्तु यहाँ पर हरिवास रम्यकवास में ६३ दिन तक सन्तान का पालन पोषण करने का कहा है । सो यहाँ जन्म का दिन ग्रहण नहीं किया गया है ऐसा संभव है।

सूर्य के १८४ मण्डल होते हैं। उनमें से ६५ मण्डल जम्बूद्वीप में हैं और ११९ मण्डल लवण समुद्र में हैं। निषध पर्वत पर ६३ और नीलवान पर्वत पर भी ६३ सूर्य के मण्डल हैं। तात्पर्य यह है कि - जब सूर्य उत्तरायण होता है तब उसका उदय ६३ बार निषध पर्वत के ऊपर होता है। फिर दक्षिणायन होते हुए जम्बूद्वीप की वेदिका (जगती) के ऊपर दो बार उदय होता है। तत्पश्चात् उसका उदय लवण समुद्र के ऊपर से होता है। इस प्रकार परिभ्रमण करते हुए नीलवंत पर्वत पर भी ६३ बार उदय होता है और ११९ मण्डल लवण समुद्र में हैं इस प्रकार ६३+२+११९ = १८४ मण्डल होते हैं। एक सूर्य दो दिन में मेरु की एक प्रदक्षिणा करता है।

चौसठवां समवाय

अट्ठट्ठमिया णं भिक्खुपडिमा चउसट्ठिए राइंदिएहिं दोहिं य अट्ठासीएहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव भवइ। चउसट्ठिं असुरकुमारा वाससयसहस्सा पण्णत्ता। चमरस्स णं रण्णो चउसट्ठिं सामाणिय साहस्सीओ पण्णत्ताओ। सव्वे वि णं दधिमुहा पव्वया पल्लासंठाण संठिया सव्वत्थसमा विक्खंभुस्सेहेणं चउसट्ठिं जोयणसहस्साइं पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु बंभलोए य तिसु कप्पेसु चउसट्ठिं विमाणावास सयसहस्सा पण्णत्ता। सव्वस्स वि य णं रण्णो चाउरंत चक्कवट्टिस्स चउसट्ठिलट्ठीए महग्घे मुत्तामणिहारे पण्णत्ते ॥ ६४ ॥

कठिन शब्दार्थ - अट्ठट्ठमिया भिक्खुपडिमा - अष्ट अष्टमिका भिक्षु प्रतिमा, **दधिमुहा पव्वया** - दधिमुख पर्वत, **पल्लासंठाण संठिया** - पाला के आकार हैं, **सव्वत्थसमा** - सब

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जगह समान, **विक्खंभुस्सेहेणं** - विष्कम्भ उत्सेध-चौडाई और ऊंचाई में, **चउसट्ठिलट्ठीए महग्घे मुत्तामणिहारे** - चौसठ लडा महामूल्यवान् मोती और मणियों का हार।

भावार्थ - अष्ट अष्टमिका भिक्षुप्रतिमा चौसठ दिनों में पूर्ण होती है और उसमें २८८ भिक्षा की दत्तियाँ होती है। असुरकुमारों के चौसठ लाख भवन कहे गये हैं अर्थात् असुरकुमारों के दो इन्द्र हैं जिन में से दक्षिण दिशा के चमरेन्द्र के ३४ लाख भवन हैं और उत्तर दिशा के बलीन्द्र के ३० लाख भवन हैं। इस तरह दोनों के मिला कर ६४ लाख भवन होते हैं। असुरकुमारों के इन्द्र चमरेन्द्र के ६४ हजार सामानिक देव कहे गये हैं। आठवें नन्दीश्वर द्वीप के चारों दिशाओं में चार अञ्जन गिरि पर्वत हैं। प्रत्येक अञ्जन गिरि के चारों तरफ चार चार पुष्करिणी हैं। उनके बीच में एक एक दधिमुख पर्वत हैं, वे सब दधिमुख पर्वत पाला के आकार हैं सब जगह समान हैं। चौड़ाई और ऊंचाई में चौसठ हजार योजन के कहे गये हैं। सौधर्म देवलोक में ३२ लाख विमान हैं, ईशान देव लोक में २८ लाख विमान हैं और ब्रह्मलोक देवलोक में ४ लाख विमान हैं, इस प्रकार इन तीनों देवलोकों में ६४ लाख विमान कहे गये हैं। सब चक्रवर्ती राजाओं के चौसठ लड़ा महामूल्यवान् मोती और मणियों का हार होता है ॥ ६४ ॥

विवेचन - जिस अभिग्रह-विशेष की आराधना में आठ-आठ दिन के आठ दिनाष्टक लगते हैं, उसे अष्टाष्टमिका भिक्षु प्रतिमा कहते हैं। इसकी आराधना करते हुए प्रथम के आठ दिनों में एक-एक भिक्षा (दत्ति) ग्रहण की जाती है। पुनः दूसरे आठ दिनों में दो-दो भिक्षाएँ ग्रहण की जाती हैं। इसी प्रकार तीसरे आदि आठ-आठ दिनों में एक-एक भिक्षा बढाते हुए अन्तिम आठ दिनों में प्रतिदिन आठ-आठ भिक्षाएं ग्रहण की जाती हैं। इस प्रकार चौसठ दिनों में सर्व भिक्षाएँ दो सौ अठासी (८+१६+२४+३२+४०+४८+५६+६४=२८८) हो जाती हैं।

पैंसठवां समवाय

जंबूद्दीवे णं दीवे पणसट्ठिं सूरमंडला पण्णत्ता। थेरे णं मोरियपुत्ते पणसट्ठिं वासाइं अगारवास मज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए । सोहम्म वडिंसयस्स णं विमाणस्स एगमेगाए बाहाए पणसट्ठिं पणसट्ठिं भोमा पण्णत्ता।

कठिन शब्दार्थ - **पणसट्ठिं** - पैंसठ, **सूरमंडला** - सूर्य मण्डल, **थेरे मोरियपुत्ते** - सातवें स्थविर-गणधर श्री मौर्यपुत्र, **सोहम्म वडिंसयस्स विमाणस्स** - सौधर्म देवलोक के बीच में सौधर्मावतंसक विमान, **भोमा** - भोम-नगर के आकार वाले विशिष्ट स्थान।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप में पैंसठ सूर्य मण्डल कहे गये हैं। भगवान् महावीर स्वामी के सातवें गणधर श्री मौर्यपुत्र पैंसठ वर्ष तक गृहस्थवास में रह कर, फिर मुण्डित होकर गृहस्थवास छोड़ कर प्रव्रजित हुए थे। सौधर्म देवलोक के बीच में सौधर्मावतंसक विमान है, उसके प्रत्येक दिशा में पैंसठ पैंसठ नगर के आकार वाले विशिष्ट स्थान कहे गये हैं, जिनको भोम कहते हैं ॥ ६५॥

विवेचन - प्रश्न - भगवान् महावीर स्वामी के छठे गणधर मण्डित पुत्र और सातवें गणधर मौर्यपुत्र को कई लोग एक माता और भिन्न-भिन्न पिता की सन्तान मानते हैं। सो क्या यह ठीक है?

उत्तर - टीकाकार आदि दोनों गणधरों को सहोदर किन्तु भिन्न-भिन्न पिता के पुत्र होना मानते हैं। वे लिखते हैं कि - 'मण्डित पुत्र के जन्म के बाद उसका पिता काल कर गया। उसके बाद उसकी माता ने पुनर्विवाह (नाता) किया जिससे मौर्यपुत्र की उत्पत्ति हुई।' किन्तु यह लेख समवायाङ्ग सूत्र के मूल पाठ से विरुद्ध है। समवायाङ्ग सूत्र के तीसवें समवाय में मण्डित पुत्र के विषय में लिखा है कि वे तीस वर्ष की दीक्षा पर्याय पाल कर सिद्ध हुए और ८३ वें समवाय में उनकी सर्व आयु ८३ वर्ष की लिखी है। इन दोनों पाठों से इनका गृहस्थ वास त्रेपन वर्ष का साबित होता है और इस पैंसठवें समवाय के मूल पाठ में मौर्यपुत्र के विषय में लिखा है कि - वे ६५ वर्ष गृहस्थवास में रह कर दीक्षित हुए। सभी गणधरों की दीक्षा एक ही दिन हुई। इस पर विचार करने से टीकाकार आदि का उल्लेख गलत सिद्ध होता है क्योंकि एक ही माता से जन्मे हुए दो पुत्रों की दीक्षा एक साथ हुई तब दीक्षा के दिन बड़े भाई मण्डित पुत्र की आयु ५३ वर्ष और छोटे भाई मौर्यपुत्र की आयु ६५ वर्ष कैसे हो सकती है। इसीलिए टीका आदि का उल्लेख विश्वसनीय नहीं है। स्वयं टीकाकार इस विषय में शंकाशील हैं। मण्डित पुत्र मौर्य नामक गांव के निवासी धनदेव ब्राह्मण के पुत्र थे। माता का नाम विजया था। मौर्यपुत्र के पिता का नाम मौर्यग्राम निवासी मौर्य ब्राह्मण था और माता का नाम विजया था। इन दोनों गणधरों की माताओं का नाम विजया होने से टीकाकार को यह सन्देह हुआ है, किन्तु यह उनका भ्रम है। क्योंकि अनके व्यक्तियों के माता का नाम विजया हो सकता है किन्तु वे सब माताएँ भिन्न भिन्न होती हैं। इसलिये इन दोनों गणधरों की माताएँ भी भिन्न भिन्न थी। ये दोनों सहोदर (सगे-एक माता से जन्मे हुए) भाई नहीं थे। गणधर सब जातिवन्त होते हैं। इसलिये उनकी माता एक पति के मर जाने पर दूसरा पति कर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लेवें, यह जाति हीनता हो जाती है। अतः महापुरुषों के जातिसम्पन्न और कुलसम्पन्न ऐसे दो विशेषण तो लगते ही हैं।

छासठवां समवाय

दाहिणड्ढ माणुस्सखेत्ताणं छावट्ठिं चंदा पभासिंसु वा पभासंति वा पभासिस्संति वा। छावट्ठिं सूरिया तविंसु वा तवंति वा तविस्संति वा। उत्तरड्ढ माणुस्सखेत्ताणं छावट्ठिं चंदा पभासिंसु वा पभासंति वा पभासिस्संति वा। छावट्ठिं सूरिया तविंसु वा तवंति वा तविस्संति वा। सिज्जंसस्स णं अरहओ छावट्ठिं गणा छावट्ठिं गणहरा होत्था। आभिणिबोहिय णाणस्स णं उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता ॥ ६६ ॥

कठिन शब्दार्थ - **दाहिणड्ढमाणुस्सखेत्ताणं** - मनुष्यक्षेत्र के दक्षिणार्द्ध में, **छावट्ठिं** - छासठ, **पभासिंसु** - प्रकाशित हुए थे, **पभासंति** - प्रकाशित होते हैं, **पभासिस्संति** - प्रकाशित होवेंगे, **तविंसु** - तपे थे, **तवंति** - तपते हैं, **तविस्संति** - तपेंगे।

भावार्थ - मनुष्य क्षेत्र के दक्षिणार्द्ध में छासठ चन्द्र गत काल में प्रकाशित हुए थे, वर्तमान काल में प्रकाशित होते हैं और भविष्यत् काल में प्रकाशित होवेंगे। इसी तरह छासठ सूर्य तपे थे, तपते हैं और तपेंगे। मनुष्य क्षेत्र के उत्तरार्द्ध में छासठ चन्द्र प्रकाशित हुए थे, प्रकाशित होते हैं और प्रकाशित होंगे। इसी तरह छासठ सूर्य तपे थे, तपते हैं और तपेंगे। अर्थात् जम्बूद्वीप में २ चन्द्र और २ सूर्य हैं। लवण समुद्र में ४ चन्द्र, ४ सूर्य हैं, धातकीखण्ड द्वीप में १२ चन्द्र, १२ सूर्य हैं, कालोदधि में ४२ चन्द्र, ४२ सूर्य हैं और पुष्करार्द्ध द्वीप में ७२ चन्द्र, ७२ सूर्य हैं। सब मिलाकर १३२ चन्द्र और १३२ सूर्य हैं। उनमें से ६६ चन्द्र और ६६ सूर्य दक्षिणार्द्ध मनुष्य क्षेत्र में हैं और ६६ चन्द्र और ६६ सूर्य उत्तरार्द्ध मनुष्य क्षेत्र में हैं। दसवें तीर्थंकर श्री श्रेयांशनाथ स्वामी के छासठ गण और छासठ गणधर थे। आभिनिबोधिक ज्ञान की उत्कृष्ट स्थिति छासठ सागरोपम से कुछ अधिक कही गई है।। ६६।।

विवेचन - आवश्यक सूत्र में श्री श्रेयांसनाथ स्वामी के ७६ गण और ७६ गणधर बतलाये हैं। यह मतान्तर मालूम होता है।

यहाँ आभिनिबोधिक ज्ञान (मतिज्ञान) की उत्कृष्ट स्थिति ६६ सागरोपम की बतलाई है। किन्तु होती है छासठ सागर से कुछ अधिक। जैसा कि कहा है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दो वारे विजयादिसु गयस्स तिन्निऽच्चुए अहव ताइं ।
अइरेगं नरभवियं नाणा जीवाण सव्वद्धा ॥ १ ॥

अर्थ - मतिज्ञानी जीव दो वक्त चार अनुत्तर विमानों में ३३ सागरोपम की स्थिति में जावें अथवा अच्युत नामक बारहवें देवलोक में बाईस सागरोपम की स्थिति में तीन वक्त जावे तो इस तरह देव भव की स्थिति ६६ सागरोपम की होती है। बीच में जो मनुष्य का भव करता है उसकी स्थिति अधिक हो जाती है। इस प्रकार छासठ सागर से कुछ अधिक स्थिति मतिज्ञान की बन जाती है। नाना जीवों की अपेक्षा सव्वद्धा (सर्वकाल) की स्थिति है।

सड़सठवां समवाय

पंच संवच्छरियस्स णं जुगस्स णक्खत्त मासेणं मिज्जमाणस्स सत्तसट्ठिं णक्खत्त मासा पण्णत्ता। हेमवय-एरण्णवयाओ णं बाहाओ सत्तसट्ठिं सत्तसट्ठिं जोयणसयाइं पणपण्णाइं तिण्णि य भागा जोयणस्स आयामेणं पण्णत्ताओ। मंदरस्स णं पव्वयस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोयम दीवस्स पुरच्छिमिल्ले चरमंते एस णं सत्तसट्ठिं जोयण सहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। सव्वेसिं वि णक्खत्ताणं सीमा विक्खंभेणं सत्तसट्ठिं भागं भइए समंसे पण्णत्ते।। ६७॥

कठिन शब्दार्थ - **मिज्जमाणस्स** - मापने पर (विभाजित करने पर) **बाहाओ** - बाहु, **गोयमदीवस्स** - गौतम द्वीप का, **सत्तसट्ठिं भागं भइए** - ६७ से विभाजित करने पर, **समंसे** - समांश।

भावार्थ - पांच संवत्सर का एक युग होता है, उस युग को नक्षत्र मास से मापने पर अर्थात् विभाजित करने पर ६७ नक्षत्र मास होते हैं। नक्षत्र मास २७ $\frac{२१}{६७}$ दिन का होता है, इसलिए एक युग में ६७ नक्षत्र मास होते हैं। हैमवत और एरण्यवत क्षेत्र की बाहू ६७५५ योजन और ३ कला की लम्बी कही गई है। मेरु पर्वत के पूर्व चरमान्त से लवण समुद्र में रहे हुए गौतम द्वीप का पूर्व चरमान्त तक ६७ हजार योजन का अन्तर कहा गया है, क्योंकि मेरु पर्वत १० हजार का चौड़ा है। वहाँ से ४५ हजार योजन पर जगती है और वहाँ से लवण समुद्र में १२ हजार योजन का गौतम द्वीप है। इस प्रकार सब मिला कर ६७ हजार योजन का अन्तर होता है। सब नक्षत्रों की सीमा विष्कम्भ को ६७ से विभाजित करने पर समांश कहा गया है।। ६७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - दो चन्द्रमाओं के ५६ नक्षत्र होते हैं। उन सब नक्षत्रों का सीमा विष्कंभ अर्थात् दिन रात में चन्द्र द्वारा भोगने योग्य क्षेत्र को सड़सठ भागों से विभाजित करने पर सम अंश वाला क्षेत्र आ जाता है। अर्थात् उसके ऊपर कला आदि नहीं आती है। इसलिये इस को सम अंश वाला कहा है।

अडसठवां समवाय

धायइसंडे णं दीवे अडसट्ठिं चक्कवट्टि विजया अडसट्ठिं रायहाणीओ पण्णत्ताओ। उक्कोसपए अडसट्ठिं अरहंता समुप्पज्जिंसु वा समुप्पजंति वा समुप्पज्जिस्संति वा एवं चक्कवट्टी, बलदेवा, वासुदेवा। पुक्खरवर दीवड्ढे णं अडसट्ठिं विजया एवं चेव जाव वासुदेवा। विमलस्स णं अरहओ अडसट्ठिं समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समण संपया होत्था ॥ ६८ ॥

कठिन शब्दार्थ - **चक्कवट्टि विजया** - चक्रवर्ती विजय, **समुप्पज्जिंसु** - उत्पन्न हुए थे, **समुप्पजंति** - उत्पन्न होते हैं और **समुप्पज्जिस्संति** - उत्पन्न होंगे, **पुक्खरवरदीवड्ढे** - पुष्करवरद्वीपार्द्ध-अर्द्ध-पुष्करवरद्वीप में, **समणसंपया** - श्रमण संपदा।

भावार्थ - धातकीखण्ड द्वीप में अडसठ चक्रवर्ती विजय और अडसठ राजधानियाँ कही गई हैं। धातकीखण्ड द्वीप में उत्कृष्ट अडसठ तीर्थङ्कर उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे। इसी प्रकार ६८ चक्रवर्ती, ६८ बलदेव और ६८ वासुदेव उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे। अर्द्ध पुष्करवर द्वीप में भी इसी तरह अडसठ चक्रवर्ती विजय और अड़सठ राजधानियाँ कही गई हैं तथा उत्कृष्ट ६८ तीर्थङ्कर, ६८ चक्रवर्ती, ६८ बलदेव और ६८ वासुदेव उत्पन्न हुए थे उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे। तेरहवें तीर्थङ्कर श्री विमलनाथ स्वामी के उत्कृष्ट अडसठ हजार श्रमण (साधु) संपदा थी।। ६८ ॥

विवेचन - जम्बूद्वीप के मध्य में मेरु पर्वत अवस्थित है। इस कारण से महाविदेह क्षेत्र दो भागों में बंट जाता है। यथा - पूर्वी महाविदेह और पश्चिमी महाविदेह । फिर पूर्व में सीता नदी के बहने से और पश्चिम में सीतोदा नदी के बहने से पूर्वी महाविदेह के दो भाग हो जाते हैं और इसी तरह पश्चिमी महाविदेह के भी दो भाग हो जाते हैं। साधारण रूप से उक्त चारों क्षेत्र में एक एक तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव उत्पन्न होते हैं। अतः एक समय में चार ही तीर्थङ्कर, चार ही चक्रवर्ती, चार ही बलदेव और चार ही वासुदेव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्पन्न होते हैं। उक्त चारों खण्डों के तीन तीन अन्तर नदियाँ और चार पर्वतों से विभाजित होने पर बत्तीस खण्ड हो जाते हैं। इन बत्तीस खण्डों को चक्रवर्ती जीतता है। अर्थात् विजय करता है। इसलिए इन खण्डों को बत्तीस विजय कहते हैं। उन में चक्रवर्ती रहता है। जिस नगर में चक्रवर्ती रहता है उसको राजधानी कहते हैं। इस प्रकार जम्बूद्वीप के महाविदेह में सब मिलाकर बत्तीस विजय और बत्तीस राजधानियाँ होती हैं। भरत और ऐरवत क्षेत्र ये दो विजय और दो राजधानियों को मिला देने से चौतीस विजय और चौतीस राजधानियाँ हो जाती है। जम्बूद्वीप से दुगुनी दुगुनी रचना धातकीखण्ड द्वीप में और पुष्करवरद्वीपार्द्ध में है। अतः उनकी संख्या (३४×२=) ६८ हो जाती है। इसी बात को ध्यान में रख कर उक्त सूत्र में ६८ विजय, ६८ राजधानी, ६८ तीर्थङ्कर, ६८ चक्रवर्ती, ६८ बलदेव और ६८ वासुदेवों के होने का निरूपण किया गया है। पांचों महाविदेहों में कम से कम २० तीर्थङ्कर सदा विद्यमान रहते हैं और अधिक से अधिक एक सौ साठ तक तीर्थङ्कर उत्पन्न हो जाते हैं। ये अपने अपने क्षेत्र में ही विचरण करते हैं। उक्त संख्या में पांचों मेरु सम्बन्धी पांच भरत और पांच ऐरवत क्षेत्रों को मिलाने से एक सौ सित्तर (१६०+१०) तीर्थङ्कर एक साथ उत्पन्न हो सकते हैं। एक समय में चार तीर्थङ्कर जन्म ले सकते हैं।

चक्रवर्ती और वासुदेवों के विषय में ऐसा समझना चाहिये कि - जिस विजय में चक्रवर्ती विद्यमान होते हैं उस समय उस विजय में वासुदेव नहीं होता। यही बात वासुदेवों के लिए भी समझनी चाहिये। अर्थात् जिस विजय में वासुदेव विद्यमान होते हैं। उस समय में वहाँ चक्रवर्ती नहीं होते हैं। अतः कम से कम चार चक्रवर्ती और चार वासुदेव महाविदेह क्षेत्र में हर समय में विद्यमान होते हैं। इस अपेक्षा से अधिक से अधिक एक सौ पचास चक्रवर्ती एक साथ हो सकते हैं और इसी तरह १५० और वासुदेव एक साथ हो सकते हैं। इस सूत्र में ६८ चक्रवर्ती और ६८ वासुदेव का उत्पन्न होने का कहा है किन्तु इतने एक समय में ऐसा विशेषण नहीं दिया। इसीलिये उक्त बात में किसी प्रकार का विरोध नहीं आता है। काल भेद से तो वहाँ उत्पन्न होते ही हैं।

उनसित्तरवां समवाय

समयखित्ते णं मंदरवज्जा एगूणसत्तरिं वासा, वासहरपव्वया पण्णत्ता तंजहा - पणतीसं वासा, तीसं वासहरा, चत्तारि उसुयारा। मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लाओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चरमंताओ गोयम दीवस्स पच्चत्थिमिल्ले चरमंते एस णं एगूणसत्तरिं जोयण सहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। मोहणिज्ज वजाणं सतण्हं कम्मपयडीणं एगूणसत्तरिं उत्तर पयडीओ पण्णत्ताओ ॥ ६९ ॥

कठिन शब्दार्थ - **मंदरवज्जा** - मेरु पर्वत को छोड़ कर, **एगुणसत्तरिं** - ६९, **वासा** - क्षेत्र, **वासहरपव्वया** - वर्षधर पर्वत, **उसुयारा** - इषुकार पर्वत।

भावार्थ - मनुष्य क्षेत्र में मेरु पर्वत को छोड़ कर ६९ क्षेत्र और ६९ वर्षधर पर्वत कहे गये हैं। यथा - अढाई द्वीप में ५ मेरु पर्वत हैं। एक एक मेरु पर्वत के पास सात सात क्षेत्र और छह छह वर्षधर पर्वत हैं। इस तरह ३५ क्षेत्र और ३० वर्षधर पर्वत हुए और धातकीखण्ड में दो इषुकार पर्वत हैं और अर्द्धपुष्कर द्वीप में भी दो इषुकार पर्वत हैं, ये चार इषुकार पर्वत हैं, ये सब मिल कर ६९ हुए। मेरु पर्वत के पश्चिम के चरमान्त से गौतम द्वीप के पश्चिम चरमान्त के बीच में ६९ हजार योजन का अन्तर है। मेरु पर्वत से ४५ हजार योजन पर जगती है, जगती से १२ हजार योजन दूर लवण समुद्र में गौतम द्वीप है और वह १२ हजार योजन चौड़ा है, इस तरह सब मिला कर ६९ हजार योजन हुए। मोहनीय कर्म को छोड़ कर शेष सात कर्मों की ६९ उत्तर प्रकृतियाँ हैं। जैसे कि ज्ञानावरणीय की ५, दर्शनावरणीय की ९, वेदनीय की २, आयुष्य की ४, नाम की ४२, गोत्र की २ और अन्तराय की ५, ये सब मिला कर ६९ प्रकृतियाँ हुई।। ६९ ॥

विवेचन - समय क्षेत्र अर्थात् मनुष्य क्षेत्र रूप अढाई द्वीप में मेरु पर्वत को छोड़ कर ३५ क्षेत्र, ३० वर्षधर और चार इषुकार पर्वत इस तरह ६९ हो जाते हैं। एक मेरु सम्बन्धी ७ क्षेत्र होते हैं यथा - भरत, ऐरवत, महाविदेह, हैमवत, हैरण्यवत्, हरिवास, रम्यक्वास ये सात क्षेत्र जम्बूद्वीप में हैं। देवकुरु और उत्तरकुरु महाविदेह क्षेत्र के अन्तर्गत आ गये हैं। इसलिये उनको यहाँ अलग से नहीं गिना गया है। धातकी खण्ड द्वीप में और अर्द्धपुष्करवर द्वीप में इनसे दुगुने दुगुने क्षेत्र हैं। अर्थात् चौदह चौदह क्षेत्र हैं। इस प्रकार ७+१४+१४ ये ३५ क्षेत्र हैं। जम्बूद्वीप में छह वर्षधर पर्वत हैं यथा - चुल्लहिमवान, महाहिमवान, निषध, नील, रुक्मी, शिखरी। इससे दुगुने बारह धातकी खण्ड द्वीप में और बारह अर्द्ध पुष्करवर द्वीप में हैं। अतः ६+१२+१२ = ३० वर्षधर पर्वत हैं। क्षेत्रों का विभाग करने वाले होने से इन्हें वर्षधर पर्वत कहते हैं। धातकी खण्ड में दो और अर्द्धपुष्करवर द्वीप में दो इषुकार पर्वत हैं। इन सबको मिलाने से ६९ हो जाते हैं यथा - ३५+३०+४=६९।

मेरु पर्वत से पश्चिम में एवं लवण समुद्र की पश्चिम दिशा में १२००० योजन लवण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समुद्र में जाने पर गौतम द्वीप है। वह १२००० योजन का लम्बा चौड़ा है। वहाँ पर लवणसमुद्र के अधिपति सुस्थित देव का भवन है। मेरु पर्वत के पश्चिम चरमान्त से गौतम द्वीप का पश्चिम चरमान्त ६९००० योजन अन्तर वाला बिना किसी व्यवधान के कहा गया है। मेरु से लवण समुद्र ४५००० योजन दूर है। वहाँ से गौतम द्वीप १२ हजार योजन दूर है और वह स्वयं १२००० योजन चौड़ा है। इस प्रकार ४५०००+१२०००+१२००० इस प्रकार ६९ हजार योजन का अन्तर सिद्ध हो जाता है।

सित्तरवां समवाय

समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे वइक्कंते सत्तरिएहिं राइंदिएहिं सेसेहिं वासावासं पज्जोसवेइ। पासे णं अरहा पुरिसादाणीए सत्तरिं वासाइं बहु पडिपुण्णाइं सामण्ण परियागं पाउणित्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे। वासुपुज्जे णं अरहा सत्तरिं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। मोहणिज्जस्स णं कम्मस्स सत्तरि सागरोवम कोडाकोडीओ अबाहूणिया कम्मठिई कम्मणिसेगे पण्णत्ते। माहिंदस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सत्तरिं सामाणिय साहस्सीओ पण्णत्ताओ ॥ ७० ॥

कठिन शब्दार्थ - सवीसइराए मासे वइक्कंते - एक मास और बीस रात-दिन व्यतीत होने पर, **सत्तरिएहिं राइंदिएहिं सेसेहिं** - ७० रात-दिन शेष रहने पर, **वासावासं पज्जोसवेइ**- संवत्सरी पर्व किया, **अबाहूणिया कम्मठिई** - बाधाकाल रहित ऊन (कम) स्थिति, **कम्मणिसेगे** - कर्म निषेक अर्थात् - कर्म उदय आने की रचना विशेष।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने वर्षाकाल प्रारम्भ होने पर अर्थात् सावण वदी १ से लेकर एक मास और बीस रात-दिन बीतने पर तथा ७० रात-दिन शेष रहने पर सांवत्सरिक पर्व किया। पुरुषादानीय अर्थात् पुरुषों में विशेष आदेय वचन वाले आदरणीय भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी सत्तर वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन करके सिद्ध बुद्ध यावत् सब दुःखों से मुक्त हुए। बारहवें तीर्थङ्कर श्री वासुपूज्य स्वामी के शरीर की ऊंचाई सित्तर धनुष की थी। मोहनीय कर्म की ❖ बाधा काल रहित स्थिति और ❀ कर्म निषेक सित्तर कोडाकोडी

❖ मोहनीय कर्म का अबाधाकाल ७ हजार वर्ष का है और उत्कृष्ट स्थिति ७० कोडाकोडी सागरोपम की है।

❀ कर्म पुद्गलों की रचना को निषेक कहते हैं ।

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

सागरोपम का कहा गया है। देवों के राजा देवों के इन्द्र माहेन्द्र के सत्तर हजार सामानिक देव कहे गये हैं ॥ ७० ॥

विवेचन - इस शास्त्रीय पाठ से यह सिद्ध होता है कि - वर्षाकाल के एक मास और बीस रात्रि-दिन व्यतीत होने पर और ७० रात्रि-दिन शेष रहने पर हमारे शासनपति श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने संवत्सरी पर्व किया था। इसी प्रकार हमें भी करना चाहिये।

प्रश्न - श्रावण मास दो हों तथा भादवा दो हों तब संवत्सरी कब करनी चाहिये?

उत्तर - पञ्चाङ्ग के अनुसार जो महीना बढ़ता है उसमें प्रथम मास को नगण्य किया जाता है। उसको अधिक मास, काल चूला, पुरुषोत्तम मास अथवा नपुंसक मास कह कर गौण कर दिया जाता है और दूसरे मास को ही असली मास गिना जाता है। इसीलिये दो सावण होने पर पहले सावण को गौण कर देना चाहिये। इसी प्रकार भादवा दो होने पर पहले भादवे को नगण्य कर देना चाहिये। तब संवत्सरी दूसरे भादवा सुदी ५ की आ जाती है।

प्रश्न - जब महीना बढता है तो उसे गौण क्यों करना चाहिये?

उत्तर - एक वर्ष में तीन चौमासी प्रतिक्रमण होते हैं - यथा - आषाढी पूर्णिमा, कार्तिकी पूर्णिमा और फाल्गुनी पूर्णिमा। मिगसर मास से लेकर फाल्गुन तक बीच में पौष महीना आदि कोई महीना बढ़ जाने पर भी फाल्गुनी पूर्णिमा को चौमासी प्रतिक्रमण किया जाता है। उसमें "चौमासी मिच्छामि दुक्कडं" दिया जाता है किन्तु 'पञ्चमासी मिच्छामि दुक्कडं' नहीं दिया जाता है। चैत्र से लेकर आषाढ तक बीच में कोई महीना बढ़ जाने पर तथा सावण से लेकर कार्तिक तक बीच में कोई महीना बढ़ जाने पर आषाढी पूर्णिमा को तथा कार्तिक पूर्णिमा को चौमासी प्रतिक्रमण किया जाता है, पञ्चमासिक नहीं तथा 'चौमासी मिच्छामि दुक्कडं' दिया जाता है, "पञ्चमासी मिच्छामि दुक्कडं' नहीं । इसी प्रकार सावण या भाद्रपद दो होने पर पहले महीने को गौण कर देने पर संवत्सरी भादवा सुदी ५ को आ जाती है। उसमें किसी प्रकार का विवाद नहीं रहता है। यह ध्रुव और अटल नियम है।

प्रश्न - श्रावण दो हो जाने पर दूसरे श्रावण में संवत्सरी करने का कोई आगम में उल्लेख है?

उत्तर - आगमों में, टीका में, भाष्य और चूर्णि में श्रावण में संवत्सरी करने का कहीं पर भी उल्लेख नहीं है।

प्रश्न - भादवा सुदी ५ को संवत्सरी करने का उल्लेख कहीं है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - भादवा सुदी ५ को संवत्सरी करने का उल्लेख आगमों में कई जगह है। यथा - समवायाङ्ग सूत्र में नवाङ्गी टीकाकार श्री अभयदेवसूरिजी ने टीका में लिखा है-

"भाद्रपदशुक्लपञ्चम्याम् ।"

अभिधान राजेन्द्र कोश ५ वाँ भाग में 'पज्जुसवणाकप्प' शब्द का पृष्ठ २३५ से २५५ तक (२१ पृष्ठों) में २८ प्रकार की विषय सूची देकर खूब विस्तृत विवेचन और व्याख्या की है। पृष्ठ २३९ पर लिखा है -

एवं यत्र कुत्राऽपि पर्युषणनिरूपणं तत्र भाद्रपदविशेषितमेव न तु क्वाप्यागमे "भद्दवयसुद्धपंचमीए पज्जोसविज्जइ त्ति" पाठवत् "अभिवड्ढिअवरिसे सावण-सुद्धपंचमीए पज्जोसविजइ त्ति" पाठ उपलभ्यते ।

अर्थ - जहाँ कहीं भी पर्युषण अर्थात् संवत्सरी का निरूपण हुआ है वहाँ भाद्रपद मास ही लिया गया है किन्तु सावण दो हो जाने पर 'भादवा सुद पञ्चमी को संवत्सरी करना चाहिये' इस पाठ की तरह दो सावण हो जाने पर दूसरे सावण सुदी पञ्चमी को संवत्सरी करनी चाहिये' ऐसा पाठ आगम में कहीं भी नहीं मिलता है।

जैन जगत् के महान् ज्योतिधर जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. के सुशिष्य पूज्य श्री घासीलाल जी म. संस्कृत के महान् विद्वान् और पण्डित हो गये हैं, उन्होंने आचाराङ्गादि ३२ सूत्रों पर संस्कृत में टीका लिखी है। उन्होंने निशीथ सूत्र उद्देशा १० के सूत्र क्रमाङ्क ४६ की टीका में लिखा है -

"यः कश्चिद् भिक्षुः श्रमण श्रमणी वा पर्युषणायां सांवत्सरिक प्रतिक्रमणदिवसे भाद्रपदशुक्लपञ्चम्याम् ।"

अर्थ - जो साधु-साध्वी संवत्सरी प्रतिक्रमण के दिन अर्थात् भादवासुदी पञ्चमी को संवत्सरी प्रतिक्रमण नहीं करता है और चौविहार उपवास नहीं करता है उसे गुरु चौमासी प्रायश्चित्त आता है।

निष्कर्ष यह है कि - साधु साध्वी को भादवा सुदी पाञ्चम को संवत्सरी प्रतिक्रमण करना चाहिये और चौविहार उपवास भी करना चाहिये।

कुछ लोग उत्सर्पिणी काल के दूसरे आरे के प्रारम्भ में सात-सात दिन के सात मेघ के ४९ दिन बताकर तथा कोई ५ मेघ और सात-सात दिन के दो उघाड़ अन्तर बता कर आषाढी चौमासी के पचासवें दिन संवत्सरी कायम करने की युक्ति दूसरे सावण और प्रथम भाद्रपद में

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

संवत्सरी करने के लिये लगाते हैं। परन्तु यह युक्ति भी ठीक नहीं है। क्योंकि जम्बूद्वीप पण्णत्ति सूत्र के दूसरे वक्षस्कार में पांच मेघ ही बतलाये हैं - यथा - १. पुष्कर संवर्तक मेघ, २. खीर मेघ, ३. घृत मेघ, ४. अमृत मेघ और ५. रस मेघ। ये पांच मेघ ही निरंतर सात-सात दिन बरसते हैं। बीच में उघाड़ अर्थात् अन्तर भी नहीं पड़ता है। इसीलिये पांच मेघ के ३५ दिन ही होते हैं। सावण वदी एकम से ४९ या ५० वें दिन संवत्सरी करने के लिये 'गजेन्द्र व्याख्यान माला भाग - १' के पृष्ठ १८४ पर पांच मेघों की वर्षा के पांच सप्ताह और बीच में दो सप्ताह खुले रहने के लिये बतलाये हैं और इसके समर्थन में 'तित्थोगाली पइण्णा' की गाथा नं. ९७९ से ९९० तक उद्धृत की हैं। परन्तु इन गाथाओं से उपरोक्त ४९ या ५० दिन का समर्थन नहीं होकर खण्डन हो जाता है। क्योंकि गाथा ९८२ में कहा है-"पंचतीसे दिवसे बद्दलिया होंति सोमा उ" गाथा ९८५ में 'पंचतीसं अहोरत्ता' लिखा है अर्थात् ३५ वें दिन बादल साफ हो जाते हैं। अतः दो सप्ताह खुला करने का कथन मूल, टीका, पइण्णा में कहीं पर नहीं है। इस प्रकार 'गजेन्द्र व्याख्यान माला' के कथन का खण्डन उसमें उद्धृत की हुई गाथाओं से ही हो जाता है। इस प्रकार स्वयं के कथन का खण्डन स्वयं से ही हो जाता है।

एक बात और ध्यान में रखने की है वह यह है कि - उत्सर्पिणी काल को दुषमा नामक दूसरा आरा २१ हजार वर्ष का होता है। इस आरे के प्रारम्भ में सात दिन तक भरत क्षेत्र जितने विस्तार वाला पुष्कर संवर्तक मेघ बरसेगा। सात दिन की इस वर्षा से छठे आरे के अशुभ भाव रूक्षता, उष्णता आदि नष्ट हो जायेंगे। इसके तुरन्त बाद ७ दिन तक क्षीर मेघ बरसेगा इससे पृथ्वी में शुभ वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्श की उत्पत्ति हो जायेगी। क्षीर मेघ के तुरन्त बाद में ७ दिन तक घृत (घी) मेघ बरसेगा इससे पृथ्वी में स्नेह (चिकनाहट) उत्पन्न हो जायेगा। इसके तुरन्त बाद ७ दिन तक अमृत मेघ बरसेगा जिसके प्रभाव से वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता आदि वनस्पतियों में अङ्कुर फुट जायेंगे। अमृत मेघ के तुरन्त बाद सात दिन तक रस मेघ बरसेगा। रसमेघ की वृष्टि से वनस्पतियों में ५ प्रकार का रस उत्पन्न हो जायेगा और उनमें पत्र, प्रवाल, पुष्प और फल की वृद्धि हो जायेगी । उक्त प्रकार से वृष्टि होने पर जब पृथ्वी सरस हो जायेगी तथा वृक्ष, लता आदि विविध वनस्पतियों से हरी भरी हो जायेगी तब वे बिलवासी लोग बिलों से बाहर निकलेंगे। वे पृथ्वी को सरस, सुन्दर और रमणीय देखकर बहुत प्रसन्न होंगे। वे अब तक मांस का आहार करते थे अर्थात् गंगा और सिन्धु नदियों में से मत्स्य आदि पकड कर उनका मांस खाते थे। अब वृक्षों पर फल देख कर उनका स्वादिष्ट और मधुर रस चख कर बड़े प्रसन्न होंगे। इसलिये घृणित मांस को खाना छोड़ कर फलों से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपना जीवन निर्वाह करेंगे। उनमें धर्म की प्रवृत्ति नहीं होगी अर्थात् धर्म, अधर्म, पुण्य, पाप आदि में वे कुछ नहीं समझेंगे। इसलिये मेघों की वर्षा के बाद ४९ वें दिन संवत्सरी करने का कहना अयुक्त है क्योंकि वे बिलवासी लोग संवत्सरी में कुछ समझते ही नहीं है। इसीलिये फिर प्रतिवर्ष संवत्सरी मनाना कैसे सम्भव हो सकेगा? क्योंकि उत्सर्पिणी काल का दुषम-सुषमा नामक तीसरा आरा लगने पर पहले तीर्थङ्कर की उत्पत्ति होगी । गृहस्थावस्था को त्याग कर जब वे संयम लेकर केवली बनेंगे तब धर्म तीर्थ की स्थापना कर धर्म की प्रवृत्ति चालू करेंगे। अतः दूसरे आरे में संवत्सरी पर्व या अहिंसा दिवस चालू होने का कथन आगम से बाधित है। अतः आगमज्ञ पुरुषों को संवत्सरी के लिये मेघों की युक्ति देना उचित नहीं है।

इस सूत्र की व्याख्या करते हुए टीकाकार ने लिखा है - 'वर्षाणां - चतुर्मास प्रमाणस्य वर्षाकालस्य सविंशतिरात्रे-विंशतिदिवसाधिके मासे व्यतिक्रान्ते पञ्चाशति दिनेष्वतीतेष्वित्यर्थः, सप्तत्यां च रात्रिदिनेषु शेषेषु भाद्रपदशुक्लपञ्चम्यामित्यर्थः, वर्षास्वावासो वर्षावासः - वर्षावस्थानं 'पज्जोसवेइ' त्ति परिवसति सर्वथा वासं करोति, पञ्चाशति प्राक्तनेषु दिवसेषु तथाविधवसत्य भावादिकारणे स्थानान्तर-मप्याश्रयति, भाद्रपदशुक्ल पञ्चम्यां तु वृक्षमूलादावपि निवसतीति हृदयमिति।'

अर्थ - वर्षाकाल अर्थात् चातुर्मास के एक महीना और बीस रात-दिन बीतने पर तथा सित्तर रात-दिन शेष रहने पर एक जगह सर्वथा निवास करना । वह तिथि है भाद्रपद शुक्ल पञ्चमी (भादवा सुदी ५)। यदि कदाचित् उस प्रकार अनुकूलतानुसार स्थान नहीं मिले तो पहले के पचास दिनों में तो दूसरी दूसरी जगह में विहार कर जा सकता है। किन्तु योग्य स्थान नहीं मिले पर भादवा सुदी ५ को तो वृक्ष के नीचे भी क्यों न हो साधु-साध्वी को ठहर जाना चाहिये। इसके पहले साधु साध्वी विहार कर सकते हैं।

टीकाकार का यह लिखना आगमानुकूल नहीं है। क्योंकि बृहत्कल्प सूत्र उद्देशक ३ में इस प्रकार विधान किया गया है।

णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा वासावासासु चारए ।
कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा हेमंतगिम्हासु चारए ॥

अर्थात् - साधु-साध्वी को वर्षाकाल अर्थात् चातुर्मास काल (श्रावण, भादवा, आसोज और कार्तिक) में विहार करना नहीं कल्पता है। किन्तु हेमन्तऋतु (मिगसर, पौष, माघ और फाल्गुन) और ग्रीष्मऋतु (चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ) में विहार करना कल्पता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यदि कोई साधु-साध्वी वर्षाकाल के चातुर्मास में विहार करता है तो निशीश सूत्र में उसका प्रायश्चित्त बतलाया है यथा -

जे भिक्खू पढम-पाउसम्मि गामाणुगामं दूइज्जइ, दूइज्जंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू वासावासं पज्जोसवियंसि गामाणुगामं दूइज्जइ दूइज्जंतं वा साइज्जइ ॥

अर्थ - जो साधु अथवा साध्वी प्रथम प्रावृट ऋतु अर्थात् संवत्सरी से पहले ग्रामानुग्राम विहार करता है, दूसरों को करवाता है तथा करने वाला का अनुमोदन करता है उसे गुरु चौमासी (१२० उपवास) प्रायश्चित्त आता है।

जो साधु साध्वी संवत्सरी के बाद अर्थात् संवत्सरी के बाद के ७० दिनों में ग्रामानुग्राम विहार करता है, दूसरों को करवाता है और करने वालों का अनुमोदन करता है तो उसे गुरु चौमासी प्रायश्चित्त आता है।

उपरोक्त विधान से यह स्पष्ट है कि वर्षावास के चार महीने साधु साध्वी को एक ही जगह स्थिर रहना चाहिये। इस नियम का उल्लंघन करने वाले को प्रायश्चित्त आता है। ऐसी स्थिति में भादवा सुदी पञ्चमी तक विहार करने का टीकाकार का कथन आगम से विपरीत आता है। योग्य स्थान न मिलने का कथन भी उचित प्रतीत नहीं होता है। फिर पञ्चमी के दिन वृक्ष के नीचे ठहरने का कथन भी युक्ति संगत नहीं है। क्योंकि वृक्ष के नीचे ठहरने का स्थान क्या योग्य स्थान है? ऊपर से पड़ती हुई वर्षा को क्या वृक्ष रोक सकता है? तथा वृक्ष के नीचे बहने वाले पानी में साधु-साध्वी खड़े रहना, बैठना सोना आहार पानी करना आदि क्रियाएँ कर सकता है? वृक्ष के नीचे तो दूसरे दूसरे लोग भी आकर ठहर सकते हैं, उनके सामने आहार पानी करना, रात्रि विश्राम करना, लघुनीत बड़ी नीत आदि करना क्या मुनि को कल्प सकता है? इसलिये चौमासे के पीछले सित्तर दिन भी वृक्ष के नीचे ठहरने का कथन युक्तिसंगत नहीं है। श्रावण और भादवा ये दो महीने वर्षा के मुख्य महीने हैं। उन दिनों में मुनि का विहार करना जीवों की यतना के लिये क्या उचित कहा जा सकता है? लोक व्यवहार भी दूषित होता है। अन्य मतावलम्बियों का कथन होगा कि - जैन के साधु-साध्वी चातुर्मास में भी विहार करते रहते हैं। अतः संवत्सरी के पहले पचास दिन विहार करते रहने का टीकाकार का कथन आगम से सर्वथा विपरीत है।

वहाँ टीकाकार ने "पज्जोसवेइ' त्ति परिवसति सर्वथा वासं करोति" अर्थात् एक जगह सर्वथा निवास करता है' ऐसा जो अर्थ किया है वह आगमानुकूल नहीं है। क्योंकि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निशीथ सूत्र के दसवें उद्देसक में 'पज्जोसवेइ' क्रिया का अर्थ 'संवत्सरी करना' किया है और 'संवत्सरी' शब्द के लिये 'पज्जोसवणा' शब्द का प्रयोग किया है। यही अर्थ संगत है। यथा-

जे भिक्खू पज्जोसवणाए ण पज्जोसवेइ ण पज्जोसवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू अपज्जोसवणाए पज्जोसवेइ, पज्जोसवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू पज्जोसवणाए इत्तरियंपि आहारं आहारेइ, आहारेंतं वा साइज्जइ ।

अर्थ - जो साधु साध्वी संवत्सरी के दिन संवत्सरी प्रतिक्रमण न करे एवं जो दिन संवत्सरी का नहीं है उस दिन संवत्सरी प्रतिक्रमण करे तथा संवत्सरी के दिन चारों प्रकार के आहार में से कोई आहार करे अर्थात् चौविहार उपवास नहीं करे तो गुरु चौमासी (१२० उपवास या दीक्षा छेद) प्रायश्चित्त आता है। इसी प्रकरण में केशलोच के विषय में विधान किया है -

जे भिक्खू पज्जोसवणाए गोलोमाइं पि बालाइं उवाइणावेइ, उवाइणावेंतं वा साइज्जइ ।

अर्थ - जो साधु साध्वी संवत्सरी के दिन तक केश लोच न करे, गाय के रोम जितने केश भी मस्तक एवं दाढी मूंछ के रह जाय तो उसे भी गुरु चौमासी प्रायश्चित्त आता है।

कहने का अभिप्राय यह है कि - यहाँ संवत्सरी के लिये '**पज्जोसवणा**' शब्द दिया है और '**पज्जोसवेइ**' शब्द का अर्थ किया है संवत्सरी का प्रतिक्रमण करना अतः '**पज्जोसवेइ**' का अर्थ 'एक स्थान पर निवास करना' यह संगत नहीं है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने पहला चातुर्मास अस्थिक ग्राम में किया था। जिसमें एक पक्ष एक पक्ष (पन्द्रह-पन्द्रह दिन) की तपस्या की थी। दूसरा चातुर्मास राजगृह के नालंदी पाड़ा (मोहल्ला) में किया था। उसमें मास-मासखमण की तपस्या की थी अर्थात् चार मासखमण किये थे। ऐसा वर्णन भगवती सूत्र पन्द्रहवें शतक में है। दूसरे चौमासों का वर्णन ग्रन्थों में मिलता है। ये सभी चार-चार मास के चातुर्मास ही हैं। इसलिये टीकाकार का यह लिखना कि - 'योग्य स्थान न मिलने पर सावण वदी १ से पांच पांच दिन बढ़ाते हुए भादवा सुदी चतुर्थी तक विहार करते रहना चाहिये और भादवा सुदी पञ्चमी को तो वृक्ष के नीचे ही क्यों न हो एक जगह स्थित हो जाना चाहिये' यह बात उपरोक्त आगम पाठों से मेल नहीं खाती है। अतः साधु-साध्वी को आषाढी चौमासी प्रतिक्रमण के बाद कार्तिक पूर्णिमा तक एक ही जगह स्थिर रहना चाहिये। इसी में भगवान् की आज्ञा की आराधना है।

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

निशीथ सूत्र के उपरोक्त पाठ से यह स्पष्ट होता है कि - संवत्सरी का एक ही दिन होता है। पहले के सात दिन तो धर्मध्यान कर संवत्सरी के लिये तैयारी करने के हैं। उपरोक्त सारे कथन का निष्कर्ष यह है कि - दो सावण होने पर भादवें में और दो भादवा होने पर दूसरे भादवें में संवत्सरी करने का आगम का विधान है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने ऐसा ही किया था। जैसा भगवान् ने किया वैसा ही गणधरों ने व आचार्यों ने किया। उनकी परम्परा अभी भी चालू है। अतः चतुर्विध संघ को ऐसा ही करना चाहिये। यही भगवान् की आज्ञा है और इसी में आराधकपना है।

दूसरी बात यह भी है कि अवसर्पिणी काल में इन पांच मेघों की वर्षा होती ही नहीं परन्तु संवत्सरी पर्व तो भादवा सुदी पञ्चमी को मनाया ही जाता है। अतः ४९ या पचास दिन से संवत्सरी करने के लिये इन पांच मेघों की युक्ति देना युक्तिसंगत नहीं है।

कई यह युक्ति देते हैं कि धर्मकार्य तो पहले ही कर लेना चाहिये। इसलिये संवत्सरी दूसरे सावण में या प्रथम भाद्रपद में कर लेनी चाहिये परन्तु यह युक्ति भी ठीक नहीं है। क्योंकि - फिर तो दो आषाढ होने पर प्रथम आषाढ की पूर्णिमा को चौमासी प्रतिक्रमण करके चौमासा लगा देना चाहिये। परन्तु ऐसा कोई भी नहीं करता है। किन्तु दूसरे आषाढ में ही चौमासी प्रतिक्रमण करके चातुर्मास लगाया जाता है। यहाँ पहले आषाढ को गौण कर दिया जाता है। इसी प्रकार पहले सावण और पहले भादवे को भी गौण कर देना चाहिये। तब ही आगम के अनुसार संवत्सरी पर्व भादवा सुदी ५ को निश्चित्त रूप से आ जाता है। यह एक दिन (संवत्सरी के लिये) निश्चित्त हो जाता है किन्तु कभी दूसरे सावण में और कभी पहले भादवें में इस प्रकार अनिश्चित फिरती संवत्सरी करना आगमानुसार नहीं है।

१५ दिन का पक्ष होता है किन्तु कभी १६ दिन का पक्ष भी हो जाता है तथा कभी १४ दिन का और कभी कभी १३ दिन का भी पक्ष हो जाता है। किन्तु बढ़ी हुई तिथि और घटी हुई तिथि को गौण कर उसे पक्ष मान लिया जाता है इसी प्रकार महीना घटे या बढ़े तो उसे भी गौण कर देना चाहिये। किन्तु यह ध्यान में रखना चाहिये कि - जिस वर्ष एक महीना घटता है उस वर्ष में दूसरे दो महीने बढ़ा देते हैं। इस प्रकार वह वर्ष तेरह महीने का होता है। ११ महीने का कोई वर्ष नहीं होता। इसलिये बढ़े हुए महीने को गौण कर देना चाहिये।

श्रमण संघ के युवाचार्य पण्डित रत्न पूज्य श्री मिश्रीमल जी म. सा. 'मधुकरजी' के प्रधान सम्पादकत्व में सम्पादित समवायाङ्ग सूत्र के सित्तरवें समवाय में इस सूत्र की व्याख्या करते हुए संवत्सरी भाद्रपद शुक्ला पंचमी को करने का लिखा है। इन्हीं द्वारा सम्पादित निशीथ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र के १० वें उद्देशक में इस सूत्र की व्याख्या करते हुए उनके आगमिक प्रमाण देकर यह सिद्ध किया है कि - संवत्सरी भादवा सुदी पंचमी को ही होती है। आगमों में मुनि के लिये 'ऋषि' शब्द का प्रयोग भी हुआ है। इसलिये ऋषिपञ्चमी भादवासुदी पञ्चमी को ही होती है।

कई धार्मिक पर्व और लौकिक त्यौहार जो कि महीने के शुक्ल पक्ष में आते हैं वे सब महीना बढ़ने पर दूसरे महीने में ही किये जाते हैं। जैसे कि -

चैत्र में महावीर जयन्ती, राम नवमी और आयंबिल ओली, वैशाख में अक्षय तृतीया (आखातीज), ज्येष्ठ में श्रुत पञ्चमी, निर्जला इग्यारस, आषाढ में सु नवमी (शुभ नवमी), देवशयनी ग्यारस, श्रावण में रक्षा-बन्धन, भादवे में गणेश चौथ, ऋषि पञ्चमी, अनंत चतुर्दशी, आसोज में आयम्बिल ओली विजयादशमी, कार्तिक में ज्ञान पञ्चमी, देव उठणी ग्यारस, मिगसर में मौन एकादशी (भगवान् मल्लिनाथ का जन्म दिवस) पौष में भगवान् मल्लिनाथ की दीक्षा और केवल ज्ञान (पौष सुदी ११), माघ में बसन्तपञ्चमी और फाल्गुन में होली । इस प्रकार उपरोक्त महीने दो-दो होने पर ये सब पर्व और त्यौहार दूसरे महीने में मनाये जाते हैं। इसी प्रकार संवत्सरी पर्व भी सुद पक्ष का पर्व है। इसलिये दो भादवा होने पर दूसरे भादवे में ही मनाना चाहिये। श्रावण में संवत्सरी पर्व मनाने का कहीं भी उल्लेख नहीं है। यह बात अभिधान राजेन्द्र कोष आदि का प्रमाण देकर पहले बताई जा चुकी है। लोक व्यवहार में भी दो श्रावण आने पर रक्षा-बंधन दूसरे श्रावण में ही मनाया जाता है। इसलिये दूसरे श्रावण में संवत्सरी कर लेने पर ब्राह्मण समाज एवं अन्य मतावलम्बी आश्चर्य-ताज्जुब करते हुए हंसी भी कर देते हैं कि - रक्षा बन्धन के पहले क्या कभी संवत्सरी हो सकती है? संवत्सरी तो हमेशा रक्षा-बन्धन के बाद ही होती है।

निष्कर्ष यह है कि - आगमिक प्रमाणों के द्वारा तथा लौकिक पञ्चाग और लौकिक व्यवहारों के द्वारा यह सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि - संवत्सरी पर्व भादवा सुदी ५ (दो भादवा होने पर दूसरे भादवा सुदी ५ को) ही मनाना चाहिये। श्रावण में संवत्सरी करना तो सर्वथा आगमविरुद्ध है।

यह संवत्सरी सम्बन्धी सूत्र सित्तरवें समवाय में दिया है। इसलिये शास्त्रकार ने पीछले सित्तर दिनों को पहले के पचास दिनों की तरह पूरा महत्त्व दिया है। इसलिये संवत्सरी सम्बन्धी सूत्र सित्तरवें समवाय में दिया है पचासवें समवाय में नहीं। इस प्रकार इस सूत्र का अर्थ है एक महीना बीस दिन बीतने पर और पीछे सित्तर दिन बाकी रहने पर संवत्सरी करनी चाहिये। ये दोनों बातें एक साथ रहनी चाहिये और यह तब ही बन सकता है जब कि बढ़ने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाले महीने को गौण कर दिया जाय-गिनती में न लिया जाय। यदि पचास दिनों को महत्त्व देकर दूसरे श्रावण में या पहले भादवें में संवत्सरी कर ली जाय तो पीछे सित्तर दिन के बजाय सौ दिन रह जाते हैं। यह बात इस सूत्र के विपरीत जाती है। क्यों कि रहने चाहिये सित्तर दिन। अन्यथा सूत्रोक्त यह नियम टूट जाता है। इस नियम का यथावत् पालन तभी हो सकता है जब कि बढ़ने वाले महीने को गौण नगण्य कर दिया जाय। फिर कोई विवाद ही नहीं रहता और यह भगवान् की आज्ञा रूप सूत्र का यथावत् पालन हो जाता है। जीव आज्ञा का आराधक बन जाता है। इसे विपरीत करने पर भगवान् की आज्ञा की विराधना होती है। अतः जीव विराधक बन जाता है।

वर्तमान में प्रचलित निर्णयसागरीय आदि पञ्चाङ्गों में चन्द्र संवत्सर को आधार माना है। चन्द्र संवत्सर में २९ $\frac{३२}{६२}$ भाग का दिन और ३५४ $\frac{१२}{६२}$ दिनों का एक चन्द्र संवत्सर होता है। इस हिसाब से श्रावण वदी एकम से लेकर कार्तिक सुदी पूर्णिमा तक चार महीनों के १२० दिन नहीं होते हैं। किन्तु कभी ११९ और कभी ११८ दिन ही रह जाते हैं। उन घटी हुई तिथियों को भी गौण कर दिया जाता है। इसलिये इस सूत्र में बताये हुए संवत्सरी के पहले पचास और पीछे सित्तर दिन रहने का नियम बराबर बैठ जाता है। जिस प्रकार घटी हुई या बढी हुई तिथियों को उन्हीं पक्ष में या महीने में शामिल कर दिया जाता है। इसी प्रकार बढ़े हुए महीने को भी गौण कर देना चाहिये।

इस सूत्र में एक वाक्य है। इसमें समयवाचक शब्दों के बीच में 'वा' 'अथवा' आदि 'आदि' अर्थवाचक शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ है। इसलिये संवत्सरी के समय पूर्व में पचास दिन व्यतीत होना तथा बाद में सित्तर दिन शेष रहना ये दोनों बातें नितांत आवश्यक है। क्योंकि सूत्र में दोनों समय वाचक शब्दों का स्पष्ट उल्लेख है। अतः यह निर्विवाद सिद्ध है कि भादवा सुदी पञ्चमी को ही संवत्सरी पर्व होता है।

मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट बन्ध स्थिति ७० कोडाकोडी सागरोपम की है। ८ कर्मों में और किसी कर्म की इतनी लम्बी स्थिति नहीं है इसलिये इसे आठ कर्मों का राजा कहा जाता है। जब तक बंधा हुआ कर्म उदय में आकर बाधा न देवे, उसे 'अबाधाकाल' कहते हैं। अबाधाकाल का सामान्य नियम यह है - कि एक कोडाकाडी सागरोपम की स्थिति बन्धने वाले कर्म का अबाधा काल १०० वर्ष का होता है। इस नियम के अनुसार सित्तर कोडाकोडी सागरोपम स्थिति का बन्ध होने पर इसका अबाधा काल ७० सौ अर्थात् ७००० वर्ष का होता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। इतने अबाधा काल को छोड़ कर शेष रही हुई स्थिति में कर्म परमाणुओं की फल देने के योग्य रचना को 'निषेक' कहते हैं।

उसका क्रम यह है कि अबाधा काल पूरा होने के बाद प्रथम समय में बहुत कर्म दलिक निषिक्त होते हैं अर्थात् कर्मों का फल देने के लिये अधिक कर्म दलिक उदय में आते हैं। दूसरे समय में उससे कम तीसरे समय में उससे कम निषिक्त होते हैं। इस प्रकार उत्तरोत्तर कम होते होते स्थिति के अन्तिम समय में सब से कम कर्म दलिक निषिक्त होते हैं। ये निषिक्त हुए कर्म दलिक अपना अपना समय आने पर फल दे कर निर्जरित हो जाते हैं अर्थात् झड़ जाते हैं। यह व्यवस्था कर्मशास्त्र के अनुसार है किन्तु कुछ आचार्यों की मान्यता यह है कि जिस कर्म की उत्कृष्ट स्थिति बन्धती है उसका अबाधा-काल उससे अतिरिक्त होता है। अतः बंधी हुई स्थिति के समयों में कर्मदलिकों का निषेक होता है अर्थात् बन्धी हुई कर्म स्थिति के समयों में कर्म दलिकों का निषेक होता है अर्थात् बन्धी हुई कर्म स्थिति पूरी की पूरी भोगनी पड़ती है। अतः उसकी अबाधा काल की छूट नहीं मिलती है। यह मान्यता आगम अनुकूल नहीं लगती है।

इकहत्तरवां समवाय

चउत्थस्स णं चंदसंवच्छरस्स हेमंताणं एक्कसत्तरीए राइंदिएहिं वीइक्कंतेहिं सव्व बाहिराओ मंडलाओ सूरिए आउट्टिं करेइ । वीरियप्पवायस्स णं पुव्वस्स एक्कसत्तरिं पाहुडा पण्णत्ता। अजिए णं अरहा एक्कसत्तरिं पुव्वसयसहस्साइं अगारमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता जाव पव्वइए। एवं सगरो वि राया चाउरंत चक्कवट्टी एक्कसत्तरिं पुव्वसयसहस्साइं अगारमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता जाव पव्वइए॥ ७१ ॥

कठिन शब्दार्थ - **आउट्टिं** - आवृत्ति, **वीरियप्पवायस्स** - वीर्य प्रवाद नामक तीसरे पूर्व के, **एक्कसत्तरिं** - इकहत्तर, **पाहुडा** - प्राभृत (अध्ययन विशेष)।

भावार्थ - चौथे चन्द्र संवत्सर की हेमन्त ऋतु के ७१ दिन बीत जाने पर सूर्य सब से बाहर के मण्डल से आवृत्ति करता है अर्थात् उत्तरायण में भ्रमण करता है। यानी माघ महीने की बद तेरस को सूर्य दक्षिणायन से लौट कर उत्तरायण में परिभ्रमण करता है। वीर्यप्रवाद नामक तीसरे पूर्व के इकहत्तर प्राभृत-अध्ययन विशेष कहे गये हैं। दूसरे तीर्थङ्कर श्री अजितनाथ स्वामी ७१ लाख पूर्व तक गृहस्थवास में रह कर फिर मुण्डित होकर यावत् प्रव्रजित हुए थे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी तरह दूसरें चक्रवर्ती सगर राजा भी ७१ लाख पूर्व तक गृहस्थ वास में रह कर फिर मुण्डित होकर यावत् प्रव्रजित हुए ॥ ७१ ॥

विवेचन - दूसरे तीर्थङ्कर श्री अजितनाथ स्वामी १८ लाख पूर्व कुमार अवस्था में रहे थे ५३ लाख पूर्व और एक पूर्वाङ्ग अधिक राज्य किया था। किन्तु यहाँ एक पूर्वाङ्ग अधिक कहा है। वह अल्प होने से उसकी विवक्षा नहीं की गई है। इसलिये यह कहा गया है कि - अजितनाथ स्वामी ७१ लाख पूर्व (१८+५३=७१) गृहस्थावस्था में रहे थे। दूसरा सगर नाम का चक्रवर्ती भगवान् अजितनाथ के समय में ही हुआ था वह भी इकहत्तर लाख पूर्व गृहस्थ अवस्था में रह कर चक्रवर्ती पद को छोड़ कर मुण्डित यावत् प्रव्रजित हुआ था।

बहत्तरवां समवाय

बावत्तरिं सुवण्ण कुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता। लवणस्स णं समुद्दस्स बावत्तरिं णागसाहस्सीओ बाहिरियं वेलं धारंति। समणे भगवं महावीरे बावत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्व दुक्खप्पहीणे । थेरे णं अयलभाया बावत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे। अब्भिंतरपुक्खरद्धे णं बावत्तरिं चंदा पभासिंसु वा पभासंति वा पभासिस्संति वा। बावत्तरिं सूरिया तविंसु वा तवंति वा तविस्संति वा। एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंत चक्कवट्टिस्स बावत्तरि पुरवरसाहस्सीओ पण्णत्ताओ। बावत्तरि कलाओ पण्णत्ताओ तंजहा - लेहं, गणियं, रूवं, णट्टं, गीयं, वाइयं, सरगयं, पुक्खरगयं, समतालं, जूयं, जणवायं, पोक्खच्चं, अट्ठावयं, दगमट्टियं, अण्णविही, पाणविही, वत्थविही, सयणविही, अज्जं, पहेलियं, मागहियं, गाहं, सिलोगं, गंधजुत्तिं, महुसित्थं, आभरणविही, तरुणीपडिकम्मं, इत्थी लक्खणं, पुरिस लक्खणं, हय लक्खणं, गय लक्खणं, गोण लक्खणं, कुक्कुड लक्खणं, मिंढय लक्खणं, चक्क लक्खणं, छत्त लक्खणं, दंड लक्खणं, असि लक्खणं, मणि लक्खणं, कागणि लक्खणं, चम्म लक्खणं, चंद लक्खणं, सूरचरियं, राहुचरियं, गहचरियं, सोभागकरं, दोभागकरं, विज्जागयं, मंतगयं, रहस्सगयं, सभासं, चारं, पडिचारं, वूहं, पडिवूहं, खंधावार माणं, णगर माणं, वत्थु माणं, खंधावार णिवेसं, वत्थु णिवेसं, णगर णिवेसं, ईसत्थं, छरुप्पवायं, आस सिक्खं, हत्थि सिक्खं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धणुव्वेयं, हिरण्णपागं सुवण्णपागं मणिपागं धाउपागं, बाहुजुद्धं दंडजुद्धं मुट्ठिजुद्धं अट्ठिजुद्धं जुद्धं णिजुद्धं जुद्धाइजुद्धं, सुत्त खेडं णालिया खेडं वट्ट खेडं धम्म खेडं चम्म खेडं, पत्त छेज्जं कडग छेज्जं, सजीवं णिज्जीवं, सउण रुयं। सम्मुच्छिम खहयरपंचिंदिय तिरिक्ख जोणियाणं उक्कोसेणं बावत्तरिं वाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता।।७२॥

कठिन शब्दार्थ - **बावत्तरिं** - बहत्तर, **सव्वाउयं** - सर्वायुष्य-सम्पूर्ण आयु, **अब्भिंतर पुक्खरद्धे** - आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध में, **सरगयं** - स्वर पहचानने की विद्या, **जूयं** - द्युत, **जणवायं** - जनवाद, **पोक्खरच्चं-पोरवच्चं** - नगर की रक्षा करने की विद्या, **पहेलियं** - प्रहेलिका-गूढार्थ वाली कविता बनाने की विद्या, **गाहं** - गाथा बनाने की कला, **सिलोगं** - श्लोक बनाने की कला, **गंधजुत्तं** - गंध युक्ति-गन्ध बनाने की कला, **मदसित्थं** - मधुसिक्थ-मधु आदि बनाने की कला, **तरुणी पडिकम्मं** - तरुणी प्रतिक्रम - स्त्री को शिक्षण देने की कला, **मिंढयलक्खणं** - मेंढे के लक्षण जानने की कला, **सोभागकरं**- सौभाग्य के लक्षणों को जानना, **सभासं** - सभा में बोलने की कला, **पडिचारं** - प्रतिचार-आगमन की कला, **खंधावार णिवेसं** - स्कन्धावार निवेश अर्थात् सेना को ठहराने की कला, **हिरण्णपागं** - हिरण्यपाक-चांदी का पाक-भस्म बनाने की कला, **चम्मखेडं** - चर्म को प्रेरित करने की कला, **सउणरुयं** - शकुन रुत-पक्षियों के स्वर जानने की कला ।

भावार्थ - सुवर्णकुमारों के बहत्तर लाख भवन कहे गये हैं। बहत्तर हजार नागकुमार देव लवण समुद्र की बाहरी वेला अर्थात् धातकीखण्ड की तरफ की वेला को यानी पानी की धारा को रोकते हैं। श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी बहत्तर वर्ष की सम्पूर्ण आयु भोग कर सिद्ध, बुद्ध यावत् सब दुःखों से मुक्त हुए। आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध में बहत्तर चन्द्रमा प्रकाशित हुए थे, प्रकाशित होते हैं और प्रकाशित होवेंगे। इसी प्रकार बाह्य अर्द्धपुष्करवर द्वीप में बहत्तर सूर्य तपे थे, तपते हैं और तपेंगे। प्रत्येक चक्रवर्ती राजा के बहत्तर हजार नगर होते हैं। बहत्तर कलाएं कही गई हैं यथा - १. लेख-अठारह देश की भाषाएं लिखने का ज्ञान, २. गणित-संख्या का ज्ञान, ३. रूप्य-चित्र बनाने की कला, ४. नाट्य-बत्तीस प्रकार के नाटक करने की कला, ५. गीत-गाने की कला, ६. वादिंत्र-बाजा बजाने की कला, ७. स्वर-स्वर पहचानने की विद्या, ८. पुष्कर विद्या, ९. गायन के साथ ताली बजाने की विद्या, १०. द्युत-जुआ खेलने की विद्या, ११. जन वाद-लोगों से बातचीत करने की विद्या, १२. नगर की रक्षा करने की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विद्या, १३. अष्टापद-एक प्रकार का जुआ खेलने की विद्या, १४. पानी और मिट्टी से अनेक वस्तुएं बनाने की विद्या, १५. अन्न विधि-अनाज उत्पन्न करने की कला, १६. पान विधि-पानी उत्पन्न करने तथा पानी को सुधारने की विद्या, १७. वस्त्र विधि-वस्त्र बनाने आदि की कला, १८. शयन विधि - शयन करने की कला, १९. आर्य-आर्य भाषा आदि की विद्या, २०. प्रहेलिका - गूढ़ार्थ वाली कविता बनाने की कला, २१. मगध देश की रचना बनाने की कला, २२. प्राकृत आदि की गाथा बनाने की कला, २३. संस्कृत भाषा के श्लोक आदि बनाने की कला, २४. गंध युक्ति-नया गन्ध बनाने की कला, २५. मधुसिक्थ-मधु आदि बनाने की कला, २६. आभरण विधि - आभूषण बनाने की विद्या, २७. तरुणी प्रतिक्रम - स्त्री को शिक्षण देने की कला, २८. स्त्री लक्षण - स्त्री के लक्षण जानने की कला, २९. पुरुष लक्षण-पुरुष के लक्षण जानने की कला, ३०. हय लक्षण-घोड़े के लक्षण जानने की कला, ३१. गज लक्षण - हाथी के लक्षण जानने की कला, ३२. गोण लक्षण-गाय, बैल के लक्षण जानने की कला, ३३. कुर्कुट लक्षण-मुर्गे के लक्षण जानने की कला, ३४. मिंढ लक्षण-मेंढे के लक्षण जानने की कला ३५. चक्र लक्षण-चक्र के लक्षण जानने की कला, ३६. छत्र लक्षण - छत्र के लक्षण जानने की कला ३७. दण्ड लक्षण - दण्ड के लक्षण जानने की कला, ३८. असि लक्षण-तलवार के लक्षण जानने की कला, ३९. मणि लक्षण - चन्द्रकान्त आदि मणियों के लक्षण जानने की कला, ४०. काकिनी लक्षण - काकिनी आदि मणियों के लक्षण जानने की कला, ४१. चर्म लक्षण - चर्म के गुण अवगुण जानने की कला, ४२ चन्द्र लक्षण - चन्द्रमा की गति को जानना, ४३. सूर्य चर्या - सूर्य की गति को जानना, ४४. राहु चर्या - राहु की गति को जानना, ४५. ग्रह चर्या - ग्रहों की गति को जानना, ४६. सौभाग्य के लक्षणों को जानना, ४७. दुर्भाग्य के लक्षणों को जानना ४८. विद्यागत- रोहिणी आदि विद्याओं को जानना ४९. मन्त्रगत - मन्त्र जानना, ५०. रहस्यगत - गुप्त वस्तु को जानने की कला, ५१. सभा में बोलने की कला, ५२. चार-गमन की कला, ५३. प्रतिचार-आगमन की कला, ५४. व्यूह रचना की कला ५५. प्रति व्यूह रचना की कला ५६. स्कन्धावार मान - सेना का परिमाण जानने की कला ५७. नगर मान-नगर की जनसंख्या जानने की कला ५८. वस्तु मान - वस्तु का परिमाण जानने की कला, ५९. स्कन्धावार निवेश - सेना को ठहराने की कला, ६०. वस्तु निवेश - वस्तुओं को रखने की कला, ६१. नगर निवेश - नगर बसाने की कला, ६२. बहुत को थोड़ा बताने की कला, ६३. शस्त्र आदि की कला, ६४. अश्व शिक्षा - घोड़े को शिक्षा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देने की कला, ६५. हस्ति शिक्षा - हाथी को शिक्षा देने की कला, ६६. धनुर्वेद-धनुष चलाने की कला, ६७. चांदी, सोने, मणि तथा दूसरी दूसरी धातुओं का पाक-भस्म बनाने की कला, ६८. बाहुयद्ध, दण्डयुद्ध, मुष्टियुद्ध अस्थियुद्ध, सामान्य युद्ध, विशेष युद्ध, मल्ल युद्ध आदि की कला, ६९. सूत्र, नालिका वर्तुल, धर्म और चर्म को प्रेरित करने की कला, ७०. पत्र छेदन कटक छेदन की कला, ७१. मूर्च्छित हुए को मंत्र शक्ति से सजीव बनाने की कला तथा नस आदि दबा कर निर्जीव सरीखा बना देने की कला ७२. शकुन रुत - पक्षियों के स्वर को जानने की कला ।

सम्मूर्च्छिम खेचर तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय की उत्कृष्ट स्थिति बहत्तर हजार वर्ष की कही गई है॥ ७२॥

विवेचन - स्वर्णकुमार भवनपति देवों के दक्षिण निकाय में ३८ लाख विमान हैं और उत्तर निकाय में चौतीस लाख विमान है। इस प्रकार दोनों निकायों के मिला कर बहत्तर लाख विमान होते हैं। लवण समुद्र में सोलह हजार योजन ऊँची और दस हजार योजन चौड़ी उदक माला है। उसके ऊपर दो कोस की वेला चढ़ती है। उस धातकी खण्ड द्वीप की तरफ की बाहरी वेला को बहत्तर हजार नागकुमार देव धारण करते हैं अर्थात् रोक कर रखते हैं।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी तीस वर्ष गृहस्थ अवस्था में रहे। साढ़े बारह वर्ष और एक पक्ष छद्मस्थ अवस्था में रहे। तीस वर्ष भवस्थ केवली रहे। इस प्रकार सर्व आयुष्य बहत्तर वर्ष का होता है। किन्तु बयालीसवें समवाय में बताया है कि भगवान् का श्रमण पर्याय (दीक्षा) बयालीस वर्ष से कुछ अधिक था। इस हिसाब से भगवान् का सर्व आयुष्य बहत्तर वर्ष से कुछ अधिक होता है। किन्तु यहाँ बहत्तर वर्ष ही बतलाया है। इससे यह मालूम होता है कि बहत्तर से उपर का काल अल्प होने से यहाँ गौण (नगण्य) किया गया है। भगवान् महावीर स्वामी के नौवें गणधर अचल भ्राता छियांलीस वर्ष गृहस्थ अवस्था में रहे २६ वर्ष श्रमण पर्याय का पालन किया (बारह वर्ष छद्मस्थ चौदह वर्ष केवली) इस प्रकार सर्व आयुष्य बहत्तर वर्ष का भोग कर सिद्ध हुए। यहाँ पर ७२ कलाएँ बतलाई गयी है किन्हीं किन्हीं प्रतियों में इनका क्रम आगे पीछे पाया जाता है। इसके सिवाय और भी जो कलाएँ हों उन सब का अन्तर्भाव इन ७२ कलाओं में हो जाता है। ७२ कलाओं का अर्थ भावार्थ में दे दिया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तेहत्तरवां समवाय

हरिवासरम्मगवासयाओ णं जीवाओ तेवत्तरिं तेवत्तरिं जोयणसहस्साइं णव य एगुत्तरे जोयणसए सत्तरस य एगूणवीसइभागे जोयणस्स अद्धभागं च आयामेणं पण्णत्ताओ। विजए णं बलदेवे तेवत्तरिं वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे॥ ७३ ॥

कठिन शब्दार्थ - **तेवत्तरिं वाससयसहस्साइं** - ७३ लाख वर्ष का।

भावार्थ - हरिवर्ष और रम्यकवर्ष प्रत्येक क्षेत्र की जीवाएं ७३९०१ १७१/१९२ लम्बी कही गई हैं। विजय नामक दूसरे बलदेव ७३ लाख वर्ष का पूर्ण आयुष्य भोग कर सिद्ध बुद्ध यावत् सब दुःखों से मुक्त हुए ॥ ७३ ॥

विवेचन - हरिवास और रम्यक्वास ये दोनों युगलिक क्षेत्र हैं। इन दोनों की जीवा का परिमाण बतलाने वाली संवाद गाथा यह है -

एगुत्तरा नवसया तेवत्तरिमे जोयणसहस्सा ।
जीवा सत्तरस कला य अद्धकला चेव हरिवासे त्ति ॥

आवश्यक सूत्र में विजय बलदेव की आयु ७५ लाख वर्ष की बतलाई गयी है। यह मतान्तर मालूम होता है।

चहोत्तरवां समवाय

थेरे णं अग्गिभूई गणहरे चोवत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे। णिसहाओ णं वासहरपव्वयाओ तिगिच्छिओ णं दहाओ सीओदा महाणईओ चोवत्तरिं जोयणसयाइं साहियाइं उत्तराहिमुही पवहित्ता वइरामयाए जिब्भियाए चउजोयण आयामाए पण्णास जोयण विक्खंभाए वइरतले कुंडे महया घडमुह-पवत्तिएणं मुत्तावलिहारसंठाणसंठिएणं पवाएणं महया सद्देणं पवडइ। एवं सीया वि दक्खिणाहिमुही भाणियव्वा। चउत्थवज्जासु छसु पुढवीसु चोवत्तरिं णिरयावास-सयसहस्सा पण्णत्ता ॥ ७४ ॥

कठिन शब्दार्थ - **तिगिच्छिओ दहाओ** - तिगिच्छि द्रह में से, **उत्तराहिमुही** -

उत्तराभिमुख, **पवहित्ता** - बह कर, **वइरामयाए जिब्भियाए** - वज्रमय जिह्वा से, **वइरतले कुंडे** - वज्रतल कुंड में।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के दूसरे गणधर श्री अग्निभूतिजी ७४ वर्ष की पूर्ण आयु भोग कर सिद्ध बुद्ध यावत् सब दुःखों से मुक्त हुए। निषध पर्वत ४०० योजन का ऊँचा है और १६८४२ योजन २ कला का चौड़ा है, उसके बीच में तिगिच्छि द्रह है, उस द्रह में से सीतोदा महानदी ७४२१ योजन १ कला के प्रवाह से उत्तराभिमुख बह कर ४ योजन लम्बी और ५० योजन चौड़ी वज्रमय जिह्वा से जैसे बड़े घड़े में से पानी निकलता है उसी तरह से तथा जैसे मोतियों का हार टूट कर मोती गिरते हैं उसी तरह के संस्थान से वज्र तल कुण्ड में महान् शब्द के साथ गिरती है। इसी तरह नीलवान् वर्षधर पर्वत के केसरी द्रह में से दक्षिणाभिमुख बह कर सीता नदी सीता प्रपात कुण्ड में गिरती है। चौथी नरक को छोड़ कर बाकी छह नरकों में ७४ लाख नरकावास हैं, अर्थात् पहली नरक में ३० लाख, दूसरी नरक में २५ लाख, तीसरी में १५ लाख, पांचवीं में ३ लाख, छठी में ५ कम एक लाख और सातवीं में ५ नरकावास हैं, ये कुल मिला कर ७४ लाख होते हैं ॥ ७४ ॥

विवेचन - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के दूसरे गणधर का नाम अग्निभूति है। वे ४६ वर्ष गृहस्थ अवस्था में और २८ वर्ष श्रमण पर्याय का पालन (१२ वर्ष छद्मस्थ और १६ वर्ष भवस्थ केवली) करके सिद्ध बुद्ध यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

सीतोदा महानदी सीतोदा प्रपात कुण्ड में गिरती है और सीता महानदी सीता प्रपात कुण्ड में गिरती है।

पिचहत्तरवां समवाय

सुविहिस्स णं पुप्फदंतस्स अरहओ पण्णत्तरिं जिणसया होत्था। सीयले णं अरहा पण्णत्तरि पुव्वसहस्साइं अगारवासमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता जाव पव्वइए। संती णं अरहा पण्णत्तरिवास सहस्साइं अगारवासमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ॥ ७५ ॥

कठिन शब्दार्थ - पण्णत्तरि जिणसया - ७५०० जिन केवलज्ञानी।

भावार्थ - नववें तीर्थङ्कर श्री सुविधिनाथ स्वामी, जिनका दूसरा नाम पुष्पदंत स्वामी हैं, उनके ७५०० जिन केवलज्ञानी थे। दसवें तीर्थङ्कर श्री शीतलनाथ स्वामी ७५ लाख पूर्व गृहस्थवास में रह कर फिर मुण्डित होकर प्रव्रजित हुए। सोलहवें तीर्थङ्कर श्री शान्तिनाथ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वामी ७५ हजार वर्ष गृहस्थवास में रह कर फिर मुण्डित होकर गृहस्थवास का त्याग कर प्रव्रजित हुए ॥ ७५॥

विवेचन - दसवें तीर्थङ्कर श्री शीतलनाथ स्वामी २५ हजार पूर्व कुमार अवस्था में रहे और ५० हजार पूर्व राज्य किया फिर उन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी। १६ वें तीर्थङ्कर श्री शान्तिनाथ स्वामी २५ हजार वर्ष कुमार अवस्था में, २५ हजार वर्ष माण्डलिक और २५ हजार वर्ष चक्रवर्ती पद भोगकर फिर दीक्षित हुए और २५ हजार वर्ष श्रमण पर्याय का पालन कर सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए। इस प्रकार सम्पूर्ण आयुष्य एक लाख वर्ष का था।

छिहत्तरवां समवाय

छावत्तरिं विज्जुकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता। एवं
दीवदिसा उदहीणं विज्जुकुमारिंद थणियमग्गीणं ।
छण्हं पि जुयलाणं, छावत्तरिं सयसहस्साइं ॥ ७६ ॥

कठिन शब्दार्थ - दीव दिसा उदहीणं, विज्जुकुमारिंद थणियमग्गीणं । छण्हं पि जुयलाणं (जुगलयाणं) - द्वीपकुमार, दिशाकुमार, उदधिकुमार, विद्युतकुमार, स्तनितकुमार और अग्निकुमार देवों के दो दो इन्द्रों के ।

भावार्थ - विद्युत्कुमार देवों के ७६ लाख भवन कहे गये हैं। इसी तरह द्वीपकुमार, दिशाकुमार, उदधिकुमार, विद्युत्कुमार, स्तनितकुमार और अग्निकुमार देवों के दो दो इन्द्रों के छहत्तर लाख, छहत्तर लाख भवन कहे गये हैं ॥ ७६ ॥

विवेचन - दीवदिसाउदहीणं, विज्जुकुमारिंदथणियमग्गीणं ।
छण्हं पि जुगलयाणं, छावत्तरिसयसहस्साइं ॥

अर्थ - जिस प्रकार विद्युतकुमार देवों के आवास ७६ लाख हैं। उसी प्रकार द्वीपकुमार, दिशाकुमार, उदधिकुमार, विद्युतकुमार, स्तनितकुमार और अग्निकुमार इन कुमारों के दक्षिण और उत्तरनिकाय के भेद से एक एक निकाय में ७६-७६ लाख भवन हैं।

सत्तहत्तरवां समवाय

भरहे राया चाउरंतचक्कवट्टी सत्तहत्तरिं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसित्ता महारायाभिसेयं संपत्ते। अंगवंसाओ णं सत्तहत्तरिं रायाणो मुंडे भवित्ता जाव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पव्वइया। गद्दतोय तुसियाणं देवाणं सत्तहत्तरिं देव सहस्स परिवारा पण्णत्ता। एगमेगे णं मुहुत्ते सत्तहत्तरिं लवे लवग्गेणं पण्णत्ते ॥ ७७ ॥

कठिन शब्दार्थ - सत्तहत्तरिं-पुव्वसयसहस्साइं - ७७ लाख पूर्व तक, **महारायाभिसेयं**- महाराज्याभिषेक को, **संपत्ते** - प्राप्त हुए, **अंगवंसाओ** - अंगवंश के, **सत्तहत्तरिं लवे लवग्गेणं** - ७७ लव।

भावार्थ - भरत चक्रवर्ती ७७ लाख पूर्व तक कुमार अवस्था में रह कर फिर महाराज्याभिषेक को प्राप्त हुए। अङ्ग वंश में से ७७ राजा मुण्डित होकर यावत् प्रव्रजित हुए थे। गर्दतोय और तुषित इन दोनों लोकान्तिक देवों के ७७ हजार देवों का परिवार कहा गया है। एक मुहूर्त्त ७७ लव का होता है ॥ ७७ ॥

विवेचन - आदिनाथ ऋषभदेव भगवान् जब ६ लाख पूर्व के हुए तब उनके यहाँ भरत, ब्राह्मी, बाहुबली, सुन्दरी का जन्म हुआ था। जब ऋषभदेव ८३ लाख पूर्व के हुए तब उन्होंने दीक्षा ली। उनके दीक्षा लेने पर भरत माण्डलिक राजा हुए। एक हजार वर्ष बीतने पर चक्रवर्ती बनें। इस प्रकार भरत की कुमार अवस्था ७७ लाख पूर्व होती है। अङ्गवंश के ७७ राजा दीक्षित हुए थे। परन्तु उनका नाम क्या था, यह देखने में नहीं आया।

पांचवें देवलोक का नाम ब्रह्मलोक है। उसके नीचे आठ कृष्णराजियाँ हैं (काले वर्ण वाली जो पौद्गलिक रेखाएँ होती हैं उन्हें कृष्ण राजियाँ कहते हैं) उन आठ कृष्ण राजियों के बीच में आठ लोकान्तिक देव निकाय रहते हैं उनके नाम इस प्रकार हैं -

१. सारस्वत २. आदित्य ३. वह्नि ४. अरुण ५. गर्दतोय ६. तुषित ७. अव्याबाध ८. मरुत्। नववें लोकान्तिक देव का नाम रिष्ट है वह देवनिकाय आठ कृष्ण राजियों के बीच में रिष्टाभ नामक विमान के प्रतर में रहते हैं। इनमें से गर्दतोय और तुषित देवनिकायों के ७७ हजार सम्मिलित अनुचर देव हैं। ७७ लव का एक मुहूर्त्त होता है।

प्रश्न - लव किसे कहते हैं ?

उत्तर - **हट्ठस्स अनवगल्लस्स निरुवकिट्ठस्स जंतुणो ।**
एगे ऊसासनीसासे, एस पाणुत्ति पवुच्चइ ॥ १ ॥
सत्त पाणूणि से थोवे, सत्त थोवाणि से लवे ।
लवाणं सत्तहत्तरिए एस मुहूत्ते वियाहिए ॥ २ ॥

अर्थ - तीसरे चौथे आरे का जन्मा हुआ - हृष्ट पुष्ट नीरोग प्राणी के एक श्वासोच्छ्वास

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को एक प्राण कहते हैं। सात प्राण का एक स्तोक होता है और सात स्तोक का एक लव होता है। ७७ लव का एक मुहूर्त्त होता है।

१. **समय** - काल के अत्यन्त सूक्ष्म भाग को समय कहते हैं।

२. **आवलिका** - असंख्यात समय की एक आवलिका होती है।

३. **उच्छ्वास** - संख्यात आवलिका का एक उच्छ्वास होता है।

४. **निःश्वास** - संख्यात आवलिका का एक निःश्वास होता है।

५. **प्राण** - एक उच्छ्वास और एक निःश्वास दोनों को मिला कर एक प्राण होता है।

६. **स्तोक** - सात प्राण का एक स्तोक होता है।

७. **लव** - सात स्तोक का एक लव होता है।

८. **मुहूर्त्त** - ७७ लव का एक मुहूर्त्त होता है।

प्रश्न - ७७ लव में प्राण कितने होते हैं ?

उत्तर - ७७ लव में ३७७३ प्राण होते हैं।

प्रश्न - मुहूर्त्त कितने मिनिट का होता है ?

उत्तर - ४८ मिनिट का एक मुहूर्त्त होता है।

प्रश्न - एक मुहूर्त्त में कितनी आवलिका होती हैं।

उत्तर - एक मुहूर्त्त में १६७७७२१६ आवलिकाएँ होती है। जैसा कि कहा है -

तीन साता दो आगला आगल पाछल सोल।
इतनी आवलिका मिलाय कर, एक मुहूर्त्त लो बोल॥

अठहत्तरवां समवाय

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वेसमणे महाराया अट्ठहत्तरीए सुवण्ण-कुमारदीवकुमारा वाससयसहस्साणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महारायत्तं आणाईसर सेणावच्चं करेमाणे पालेमाणे विहरइ। थेरे णं अकंपिए अट्ठहत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे। उत्तरायण णियट्टे णं सूरिए पढमाओ मंडलाओ एगूणचत्तालीसइमे मंडले अट्ठहत्तरिं एगसट्ठिभाए दिवस खेत्तस्स णिवुड्ढेत्ता रयणि खेत्तस्स अभिणिवुड्ढेत्ता णं चारं चरइ। एवं दक्खिणायण णियट्टे वि ॥ ७८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **आहेवच्चं** - आधिपत्य-अधिपतिपना, **पोरेवच्चं** - पुरोवर्तित्व-अग्रगामीपना, **सामित्तं** - स्वामित्व-स्वामीपना, **भट्टित्तं** - भर्तृत्व-भर्तृपना, **महारायत्तं** - महाराजपना, **आणा-ईसरसेणावच्चं** - आज्ञाप्रधानसेनानायकत्व-प्रधान सेना नायकपना, **उत्तरायण णियट्टे** - उत्तरायण से निवृत्त होकर।

भावार्थ - देवों के राजा देवों के इन्द्र शक्रेन्द्र का वैश्रमण लोकपाल सुवर्णकुमार और द्वीपकुमार देवों के ७८ लाख भवनों पर अधिपतिपना, अग्रगामीपना, स्वामीपना, भर्तृपना, महाराजपना, प्रधान सेनानायकपना करता हुआ एवं उनका पालन करता हुआ रहता है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के आठवें गणधर श्री अकम्पित स्वामी ७८ वर्ष का पूर्ण आयुष्य भोग कर सिद्ध बुद्ध यावत् सब दुःखों से मुक्त हुए थे। उत्तरायण से निवृत्त होकर जब सूर्य प्रथम मण्डल से उनचालीसवें मण्डल में भ्रमण करता है तब दिन में मुहूर्त्त का $\frac{६१}{७८}$ भाग घट जाता है और रात्रि में मुहूर्त्त का $\frac{६१}{७८}$ भाग बढ़ जाता है। इसी तरह जब सूर्य दक्षिणायन से निवृत्त होकर उत्तरायण में जाता हुआ पहले मण्डल से उनचालीसवें मण्डल में पहुँचता है तब रात्रि मुहूर्त्त का $\frac{६१}{७८}$ भाग घट जाती है और दिन $\frac{६१}{७८}$ भाग बढ़ जाता है ॥ ७८ ॥

विवेचन - सौधर्म नामक पहले देवलोक के इन्द्र शक्र के चार लोकपाल हैं। सोम, यम, वरुण और वैश्रमण। उनमें से उत्तर दिशा के लोकपाल का नाम वैश्रमण है। वह सुवर्णकुमार देवों के दक्षिण दिशा में ३८ लाख भवनावास तथा द्वीपकुमार जाति के देव देवियों के ४० लाख भवनावास सब मिलाकर ७८ लाख भवनावासों पर अर्थात् भवनवासी देव देवियों पर आधिपत्य, पुरोवर्तित्व (अग्रगामीपणा) भर्तृत्व (पालक पोषकपणा), स्वामीपणा और महाराजपणा अर्थात् लोकपालपणा एवं आज्ञा प्रधान सेनानायकपणा करता हुआ तथा अपने सेवक देवों द्वारा करवाता हुआ तथा स्वयं उनका पालन करता हुआ रहता है (द्वीपकुमारों पर अधिपतिपणा आदि करने की बात भगवती सूत्र में दिखाई नहीं देती है। परन्तु यहाँ समवायाङ्ग में तो बतलाया है)।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के आठवें गणधर अकम्पित स्वामी ४८ वर्ष गृहस्थ अवस्था में रहे थे और ३० वर्ष श्रमण पर्याय का (छद्मस्थ अवस्था में ९ वर्ष और भवस्थ केवली अवस्था में २१ वर्ष) पालन किया। इस प्रकार कुल ७८ वर्ष का आयुष्य भोग कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तरायण से निवृत्त होकर सूर्य प्रथम मण्डल से उनचालीसवें मण्डल में जब आता है तब दिन को एक मुहूर्त्त के $\frac{६१}{७८}$ भाग कम करता है और इतना ही भाग रात्रि को बढ़ाता है। यहाँ पर जब सूर्य दक्षिण दिशा में जाता है। उसका पहला मण्डल समझना चाहिए। किन्तु सर्वाभ्यन्तर मण्डल से नहीं। इसी प्रकार दक्षिणायन के प्रथम मण्डल की अपेक्षा ३९ वां मण्डल समझना चाहिए। किन्तु सर्वाभ्यन्तर मण्डल की अपेक्षा नहीं क्योंकि सर्वाभ्यन्तर मण्डल की अपेक्षा तो वह चालीसवाँ मण्डल है। इस कथन से यह समझना चाहिए कि जब सूर्य दक्षिणायन में होता है तब दिनमान को कम करता है और रात्रिमान को बढ़ाता है और जब सूर्य उत्तरायण में होता है तब दिनमान को बढ़ाता है और रात्रि को कम करता है।

उन्यासीवां समवाय

वलयामुहस्स णं पायालस्स हेट्ठिल्लाओ चरमंताओ इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं एगूणासीइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते, एवं केउस्स वि, जूयस्स वि, ईसरस्स वि। छट्ठीए पुढवीए बहुमज्झदेसभायाओ छट्ठस्स घणोदहिस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं एगूणासीइं जोयण सहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। जंबूद्दीवस्स णं दीवस्स बारस्स य बारस्स य एस णं एगूणासीइं जोयणसहस्साइं साइरेगाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ॥ ७९ ॥

कठिन शब्दार्थ - **वलयामुहस्स पायालस्स** - बडवामुख पाताल कलश के, **केउस्स** - केतु नामक पाताल कलश का, **जूयस्स** - यूप का, **ईसरस्स** - ईश्वर नामक पाताल कलश का, **घणोदहिस्स** - घनोदधि के।

भावार्थ - लवण समुद्र के पूर्व दिशा में स्थित बडवामुख पाताल कलश के नीचे के चरमान्त से इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे के चरमान्त तक ७९ हजार योजन का अन्तर कहा गया है। अर्थात् रत्नप्रभा नामक पहली नरक का पिण्ड एक लाख अस्सी हजार योजन का है उसमें से एक लाख योजन का पाताल कलश और एक हजार योजन का समुद्र निकाल देने पर ७९ हजार योजन का अन्तर रह जाता है। इसी तरह पश्चिम में स्थित केतु, दक्षिण में स्थित यूप और उत्तर में स्थित ईश्वर नामक पाताल कलशों का भी अन्तर जानना चाहिए। छठी नरक के मध्य भाग से छठे घनोदधि के नीचे के चरमान्त तक ७९ हजार योजन का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अन्तर कहा गया है अर्थात् छठी नरक का पृथ्वी पिण्ड एक लाख सोलह हजार योजन का है, उसका मध्यभाग ५८ हजार योजन का होता है। पृथ्वी पिण्ड के नीचे २१ हजार योजन मोटी-जाड़ी घनोदधि है, यह सब मिला कर ७९ हजार योजन होता है। इस जम्बूद्वीप की जगती के विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित ये चार द्वार हैं, उनमें से प्रत्येक द्वार के बीच में ७९ हजार योजन से कुछ अधिक अन्तर कहा गया है ॥ ७९ ॥

विवेचन - इस विषय में टीकाकार कहते हैं कि - सातों नरकों में घनोदधि बीस बीस हजार योजन की कही गई है किन्तु इस सूत्र के अभिप्राय से छठी नरक की घनोदधि २१ हजार योजन की होती है। किन्तु यह बात आगमानुसार नहीं है। दूसरी बात यह है कि ईषत्प्रागभारा पृथ्वी को मिला कर ८ पृथ्वियाँ कही गई हैं। इसलिए ईषत्प्रागभारा को पहली पृथ्वी गिनने से पांचवीं धूमप्रभा नरक का नम्बर छठा 卐 आता है। इसलिए यह सूत्र पांचवीं नरक की अपेक्षा समझना चाहिए जिससे संगति ठीक बैठ जाती है क्योंकि पांचवीं नरक का पिण्ड १ लाख १८ हजार योजन का है, उसका मध्य भाग ५९ हजार योजन का होता है। और २० हजार योजन का घनोदधि है, यह सब मिला कर ७९ हजार योजन का हो जाता है। संस्कृत टीकाकार ने यह भी संभावना व्यक्त की है कि - 'बहु' शब्द से १००० अधिक लेना चाहिये। इससे छठी पृथ्वी का बहु मध्य देश भाग ५९००० योजन (५८००० मध्य भाग और १००० बहु-अधिक दोनों को मिलाकर) आ जाता है और २० हजार घनोदधि को मिलाने से ७९००० योजन का अन्तर सिद्ध हो जाता है। तत्त्व केवली गम्य ।

जम्बूद्वीप के चारों दिशाओं में विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नाम के चार द्वार हैं। जम्बूद्वीप की परिधि (तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस) ३१६२२७ योजन ३ कोस १२८ धनुष १३॥ अङ्गुल से कुछ अधिक है। प्रत्येक द्वार की चौड़ाई चार चार योजन है। इस प्रकार चारों द्वारों की चौड़ाई १६ योजन होती है। इन सोलह को उपरोक्त परिधि के परिमाण में से घटा देने पर और शेष में चार का भाग देने पर एक द्वार से दूसरे द्वार का अन्तर कुछ अधिक ७९ हजार योजन सिद्ध हो जाता है।

卐 आगम में पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी आदि अनेक प्रकार के क्रम बताए हैं। जिससे ईषत्प्रागभारा अपेक्षा से पहली एवं आठवीं दोनों हो सकती है। समवायांग में टीकाकार ने ईषत्प्रागभारा को प्रथम पृथ्वी मानकर पांचवीं नरक पृथ्वी को छठी पृथ्वी मान कर संगति बिठाई है। परम्परा एवं धारणा से इसी प्रकार संगति समझी जाती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अस्सीवां समवाय

सिज्जंसे णं अरहा असीइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। तिविट्ठे णं वासुदेवे असीइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। अयले णं बलदेवे असीइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। तिविट्ठे णं वासुदेवे असीइं वाससयसहस्साइं महाराया होत्था। आउ बहुले णं कंडे असीइं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते। ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो असीइ सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ताओ। जंबूद्दीवे णं दीवे असीउत्तरं जोयणसयं ओगाहित्ता सूरिए उत्तर कट्ठोवगए पढमं उदयं करेइ ॥ ८० ॥

कठिन शब्दार्थ - **आउ बहुले कंडे** - अप् बहुल काण्ड, **उत्तरकट्ठोवगए** - उत्तर दिशा में गया हुआ।

भावार्थ - ग्यारहवें तीर्थङ्कर श्री श्रेयांशनाथ भगवान् के शरीर की ऊंचाई अस्सी धनुष की थी। श्री श्रेयांशनाथ भगवान् के समय में होने वाले प्रथम वासुदेव त्रिपृष्ठ और अचल बलदेव के शरीर की ऊंचाई अस्सी धनुष की थी। त्रिपृष्ठ वासुदेव ने अस्सी लाख वर्ष तक राज्य किया था। रत्नप्रभा नरक का तीसरा अप्बहुल काण्ड अस्सी हज़ार योजन का मोटा-जाड़ा कहा गया है। देवों के राजा देवों के इन्द्र ईशानेन्द्र के अस्सी हजार सामानिक देव कहे गये हैं। इस जम्बूद्वीप की जगती से १८० योजन जाकर सूर्य उत्तर दिशा में सर्वाभ्यन्तर मण्डल में उदित होता है ॥ ८० ॥

विवेचन - इस अवसर्पिणी काल के ११ वें तीर्थङ्कर श्री श्रेयांसनाथ थे। उन्हीं के समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का जीव इस अवसर्पिणी काल का पहला वासुदेव त्रिपृष्ठ नामका हुआ था। उनका बड़ा भाई अचल बलदेव था। इन तीनों के शरीर की ऊँचाई अस्सी धनुष की थी। त्रिपृष्ठ वासुदेव चार लाख वर्ष कुमार अवस्था में रहे थे और ८० लाख वर्ष राज्य पद भोगा था। इस प्रकार कुल ८४ लाख वर्ष का आयुष्य भोग कर सातवीं नरक के अप्रतिष्ठान नामक नरकावास में उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की स्थिति में उत्पन्न हुआ ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी का १८०००० योजन मोटा पृथ्वीपिण्ड है। उसके तीन काण्ड हैं। १६ प्रकार के रत्नमय १६००० योजन का मोटा पहला रत्नकाण्ड है, दूसरा पंककाण्ड ८४००० योजन का है और तीसरा अप्प बहुलकाण्ड ८०००० योजन का है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्य का सर्व संचार क्षेत्र ५१० योजन है इनमें से ३३० योजन लवण समुद्र के ऊपर है और १८० योजन जम्बूद्वीप के भीतर है। वहाँ उत्तर दिशा को प्राप्त होकर सूर्य प्रथम बार अर्थात् प्रथम मण्डल में उदित होता है।

इक्यासीवां समवाय

नवनवमिया णं भिक्खुपडिमा एक्कासीइ राइंदिएहिं चउहिं च पंचुत्तरेहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव आराहिया। कुंथुस्स णं अरहओ एक्कासीइं मणपज्जवणाणिसया होत्था। विवाहपण्णत्तीए एक्कासीइं महाजुम्मसया पण्णत्ता ॥ ८१ ॥

कठिन शब्दार्थ - नवनवमिया भिक्खुपडिमा - नवनवमिका भिक्षु पडिमा, **एक्कासीइं मणपज्जवणाणिसया** - ८१०० मनःपर्ययज्ञानी, **विवाहपण्णत्तीए** - व्याख्याप्रज्ञप्ति-श्री भगवती सूत्र में, **महाजुम्मसया** - महायुग्मशत यानी कृतयुग्म आदि अध्ययन।

भावार्थ - प्रथम ९ दिन तक एक दत्ति आहार की और एक दत्ति पानी की लेना, दूसरे ९ दिन तक दो दत्ति आहार की और दो दत्ति पानी की लेना, इस तरह करते हुए नववें नवक अर्थात् ९ दिन तक ९ दत्ति आहार की और ९ दत्ति पानी की लेना, इसे नवनवमिका भिक्षु पडिमा कहते हैं। नवनवमिका भिक्षु पडिमा ८१ रात दिन में ४०५ भिक्षा की दत्ति से सूत्रानुसार आराधित होती है है। भगवान् कुन्थुनाथ स्वामी के ८१०० मनःपर्ययज्ञानी थे। श्रीभगवती सूत्र में ८१ महायुग्मशत यानी कृतयुग्म आदि अध्ययन कहे गये हैं।। ८१ ॥

विवेचन - नवनवमिका भिक्षु प्रतिमा में नव नवक होते है। प्रथम नवक में एक दत्ति और दूसरे नवक में दो दो दत्ति इस तरह एक एक दत्ति बढ़ाते हुए नववें नवक में नव नव दत्ति आहार पानी का लेना कल्पता है। इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये कि - उन उन नवकों में उतनी दत्तियाँ लेनी ही चाहिये, किन्तु ले सकते हैं ऐसा कल्प है। अपनी इच्छानुसार और खपत के अनुसार कम दत्तियाँ भी ली जा सकती है। यथा नववें नवक में एक दत्ति आहार पानी की लेकर संतोष किया जा सकता है।

भगवती सूत्र में महायुग्म शत कहे हैं। यहाँ पर 'शत' शब्द से अध्ययन लिये गये हैं। अतः कृतयुग्मादि राशि विशेष का जिनमें विचार किया गया है। वे अन्तर अध्ययन रूप अन्तर शतक समझना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बयासीवां समवाय

जंबूद्दीवे दीवे बासीयं मंडलसयं जं सूरिए दुक्खुत्तो संकमित्ता णं चारं चरइ तंजहा-णिक्खममाणे य पविसमाणे य। समणे भगवं महावीरे बासीइं राइंदिएहिं वीइक्कंतेहिं गब्भाओ गब्भं साहरिए । महाहिमवंतस्स णं वासहरपव्वयस्स उवरिल्लाओ चरमंताओ सोगंधियस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं बासीइं जोयण सयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते एवं रुप्पिस्स वि ॥ ८२ ॥

कठिन शब्दार्थ - बासीयं मंडलसयं - १८२ मांडलों को, **दुक्खुत्तो** - दो बार, **संकमित्ता** - संक्रमण करके-उल्लंघन करके, **चारं चरइ** - भ्रमण करता है, **गब्भाओ गब्भं** - गर्भ से गर्भ अर्थात् देवानन्दा की कुक्षि से त्रिशला रानी की कुक्षि में, **साहरिए** - संहरण किया गया, **सोगंधियस्स कंडस्स** - सौगंधिक काण्ड का ।

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप में सूर्य १८२ मांडलों को दो बार उल्लंघन करके भ्रमण करता है। जम्बूद्वीप में ६५ आभ्यन्तर मांडले हैं और लवण समुद्र में ११९ बाह्य मांडले हैं, कुल १८४ मांडले हैं जिनमें निषध पर्वत का प्रथम मंडल है और लवण समुद्र का अन्तिम मंडल है। इन दोनों को सूर्य एक बार ही स्पर्श करता है। शेष १८२ मांडलों को निकलते समय और प्रवेश करते समय दो दो बार स्पर्श करता है। ८२ रात दिन व्यतीत हो जाने पर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का देवानन्दा की कुक्षि से त्रिशला रानी की कुक्षि में संहरण किया गया था। महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के ऊपर के चरमान्त से रत्नप्रभा के सौगन्धिक काण्ड का नीचे के चरमान्त तक ८२०० योजन का अन्तर कहा गया है। रत्नप्रभा नरक के तीन काण्ड हैं, उनमें से प्रथम रत्नकाण्ड के १६ विभाग हैं। प्रत्येक विभाग एक एक हजार योजन का है। इसलिए आठवें सौगन्धिक काण्ड तक ८००० योजन हुए और २०० योजन का महाहिमवान् पर्वत है। यह सब मिला कर ८२०० योजन हुए। इसी तरह रुक्मी पर्वत और सौगन्धिक काण्ड में ८२०० योजन का अन्तर समझना चाहिए ॥ ८२ ॥

विवेचन - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के जीव ने मरीचि के भव में कुल का मद (अभिमान) किया था। उसके कारण इस भव में ब्राह्मणकुण्डपुर के निवासी ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी देवानन्दा के गर्भ में आये थे। ८२ रात-दिन पर्यन्त वहाँ रहे। फिर शक्रेन्द्र के दूत हरिनैगमेषी देव द्वारा गर्भ संहरण किया गया था।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तयासीवां समवाय

समणे भगवं महावीरे बासीइ राइंदिएहिं वीइक्कंतेहिं तेयासीइमे राइंदिए वद्धमाणे गब्भाओ गब्भं साहरिए। सीयलस्स णं अरहओ तेसीइ गणा तेसीइ गणहरा होत्था। थेरे णं मंडियपुत्ते तेसीइं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे । उसभे णं अरहा कोसलिए तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं अगारमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता णं जाव पव्वइए । भरहे णं राया चाउरंत चक्कवट्टी तेसीइं पुव्वसय सहस्साइं अगारमज्झे वसित्ता जिणे जाए केवली सव्वण्णू सव्वभावदरिसी ॥ ८३ ॥

कठिन शब्दार्थ - तेयासीइमे - तयासीवीं, **जिणे जाए** - जिन हुए, **सव्वण्णू** - सर्वज्ञ, **सव्वभाव** - दरिसी - सर्वभावदर्शी ।

भावार्थ - ८२ रात दिन बीत जाने पर तयासीवीं रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का देवानन्दा की कुक्षि से त्रिशला महारानी की कुक्षि में संहरण हुआ था। श्री शीतलनाथ भगवान् के ८३ गण और ८३ गणधर थे।

महावीर स्वामी के छठे गणधर श्री मण्डित पुत्र ८३ वर्ष की पूर्ण आयुष्य भोग कर सिद्ध हुए यावत् सब दुःखों से रहित हुए। कौशलिक भगवान् ऋषभदेव स्वामी ८३ लाख पूर्व वर्ष तक गृहस्थवास में रह कर फिर द्रव्य भाव से मुण्डित होकर प्रव्रजित हुए। चारों दिशाओं के विजेता भरत चक्रवर्ती ८३ लाख पूर्व वर्ष तक गृहस्थवास में रह कर राग द्वेष के विजेता जिन हुए। केवली सर्वज्ञ सर्वदर्शी हुए ॥ ८३ ॥

विवेचन - ८२ रात्रि दिन देवानंदा ब्राह्मणी के गर्भ में रहने के बाद शक्रेन्द्र ने विचार किया कि - पूर्व भव के मद के कारण तीर्थङ्कर का जीव अन्य कुल में आ तो जाता है किन्तु जन्म तो क्षत्रिय कुल में ही होता है। इसलिये शक्रेन्द्र ने अपने दूत हरिनैगमेषी को गर्भसंहरण की आज्ञा दी तब ८३ वीं रात्रि में हरिनैगमेषी देव ने देवानन्दा की कुक्षि से गर्भ का संहरण कर के क्षत्रियकुण्डपुर के राजा सिद्धार्थ की महारानी त्रिशला के गर्भ में रखा। इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के जीव का गर्भ संहरण हुआ। तीर्थङ्कर भगवान् के जीव का गर्भ संहरण होना एक आश्चर्यजनक घटना है। इसलिये इस अवसर्पिणीकाल में घटित होने वाले दस आश्चर्यों में से एक आश्चर्य है। ऐसे आश्चर्य अनन्त काल में किसी एक अवसर्पिणी काल में घटित होते हैं। इन दस आश्चर्यों का वर्णन ठाणाङ्ग सूत्र के दसवें ठाणे में है। जिसका हिन्दी अनुवाद श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह के तीसरे भाग में हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के छठे गणधर मण्डित पुत्र ५३ वर्ष गृहस्थ पर्याय में रहे और तीस वर्ष श्रमण पर्याय (१४ वर्ष छद्मस्थ और + १६ वर्ष भवस्थ केवली) में रहे इस प्रकार ८३ वर्ष सर्व आयुष्य को पूरा करके सिद्ध बुद्ध यावत् मुक्त हुए।

यहाँ दसवें तीर्थङ्कर श्री शीतलनाथ स्वामी के ८३ गणधर और ८३ गण बतलाये हैं। किन्तु आवश्यक सूत्र में ८१ गण और ८१ गणधर बतलाये गये हैं। यह मतान्तर मालूम होता है।

कौशलिक अर्थात् कोशलदेश में उत्पन्न हुए भगवान् ऋषभदेव २० लाख पूर्व तक कुमारावस्था में रहे। फिर इन्द्रों ने उनका राज्याभिषेक किया तब ६३ लाख पूर्व तक राज्य अवस्था में रहे। इस प्रकार ८३ लाख पूर्व तक गृहस्थावस्था में रह कर फिर दीक्षित हुए। भगवान् ऋषभदेव के सबसे बड़े पुत्र भरत चक्रवर्ती ७७ लाख पूर्व कुमार अवस्था में रहे। फिर छह लाख पूर्व चक्रवर्ती पद भोगा । एक वक्त स्नानादि कर के सर्वाभूषण आदि अलंकारों से अलंकृत होकर अपने आदर्श भवन (चक्रवर्ती के सब महलों में सर्वश्रेष्ठ जिसमें हीरे जड़े हुए होते हैं) में आकर पूर्व की तरफ मुँह करके रत्नजड़ित सिंहासन पर बैठे । वहाँ चक्रवर्ती के सब ठाट पाट यावत् संसार के सर्व पदार्थों की अनित्यता का विचार कर अनित्य भावना की सर्वोच्च श्रेणि पर चढ़ कर एवं क्षपक श्रेणि पर आरूढ होकर चार घातिकर्मों का क्षय करके सर्वज्ञ सर्वदर्शी केवल ज्ञानी बन गये। केवलज्ञानी बनने के बाद सब आभूषण, वस्त्र, माला, केशालंकार, रूप चारों अलंकारों को उतारा। इन्द्र ने इन को साधु वेष दिया। केवली होकर अन्तः पुर के मध्य होकर बाहर निकले। उनके साथ दस हजार राजाओं ने भी दीक्षा ली।

नोट - भरत चक्रवर्ती के लि। 'कांच का महल' कहना उचित नहीं है। तथा 'एक अङ्गुली की अङ्गुठी गिर गई फिर एक-एक आभूषण उतारते गये अङ्गुली असुन्दर लगने लगी, इत्यादि कहना भी उपरोक्त आगम पाठ से विपरीत जाता है। शरीर का असुंदर लगने का अनित्य भावना के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

चौरासीवां समवाय

चउरासीइं णिरयावास सयसहस्सा पण्णत्ता। उसभे णं अरहा कोसलिए चउरासीइं पुव्वसयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे एवं भरहो बाहुबली, बंभी, सुंदरी। सिज्जंसे णं अरहा चउरासीइं वाससयसहस्साइं सव्वाउयं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्व दुक्खप्पहीणे। तिविट्ठे णं वासुदेवे चउरासीइं वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता अप्पइट्ठाणे णरए णेरइयत्ताए उववण्णे। सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो चउरासीइ सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ताओ। सव्वे वि णं बाहिरया मंदरा चउरासीइं चउरासीइं जोयण सहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। सव्वे वि णं अंजणग पव्वया चउरासीइं चउरासीइं जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। हरिवास रम्मग वासियाणं जीवाणं धणुपिट्ठा चउरासीइं जोयणसहस्साइं सोलस जोयणाइं चत्तारि य भागा जोयणस्स परिक्खेवेणं पण्णत्ता। पंकबहुलस्स णं कंडस्स उवरिल्लाओ चरमंताओ हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं चउरासीइं जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। विवाह पण्णत्तीए णं भगवईए चउरासीइं पयसहस्सा पयग्गेणं पण्णत्ता। चउरासीइं णागकुमारावास सयसहस्सा पण्णत्ता। चउरासीइं पइण्णगसहस्साइं पण्णत्ता। चउरासीइं जोणिप्पमुह सयसहस्सा पण्णत्ता। पुव्वाइयाणं सीसपहेलिया पज्जवसाणाणं सट्ठाणट्ठाणंतराणं चउरासीए गुणकारे पण्णत्ते। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स चउरासीइं गणा चउरासीइं गणहरा होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स उसभसेण पामोक्खाओ चउरासीइ समण साहस्सीओ होत्था। सव्वे वि चउरासीइं विमाणावास सयसहस्सा सत्ताणउइं च सहस्सा तेवीसं च विमाणा भवंतीतिमक्खायं ॥ ८४ ॥

कठिन शब्दार्थ - चउरासीइं णिरयावाससयसहस्सा - ८४ लाख नरकावास, **अंजणग पव्वया** - अंजनक पर्वत, **पंकबहुलस्स कंडस्स** - पंक बहुल काण्ड, **पइण्णग** - प्रकीर्णक, **जोणिप्पमुह** - योनिप्रमुख-जीवोत्पत्ति के स्थान, **पुव्वाइयाणं सीसपहेलिया पज्जवसाणाणं-** पूर्व से लेकर शीर्ष प्रहेलिका तक, **उसभसेण पामोक्खाओ** - ऋषभसेन प्रमुख आदि।

भावार्थ - सातों नरकों के मिला कर सब ८४ लाख नरकावास होते हैं। पहली नरक में ३० लाख, दूसरी में २५ लाख, तीसरी में १५ लाख, चौथी में १० लाख, पांचवीं में ३ लाख, छठी में पांच कम एक लाख और सातवीं में ५, ये सब मिला कर ८४ लाख नरकावास होते हैं। कौशलीक ऋषभदेव भगवान् ८४ लाख पूर्व वर्ष की सम्पूर्ण आयुष्य भोग कर सिद्ध बुद्ध यावत् सर्वदुःखों से मुक्त हुए। इसी तरह भरत चक्रवर्ती, बाहुबली, ब्राह्मी और सुन्दरी ये, सभी ८४-८४ लाख पूर्व वर्ष की पूर्ण आयुष्य भोग कर सिद्ध, बुद्ध यावत् मुक्त हुए। ग्यारहवें तीर्थङ्कर श्री श्रेयांशनाथ भगवान् ८४ लाख वर्ष का पूर्ण आयुष्य भोग कर सिद्ध बुद्ध हुए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए। श्री श्रेयांशनाथ भगवान् के समय में होने वाला प्रथम वासुदेव श्री त्रिपृष्ठ ८४ लाख वर्ष का पूर्ण आयुष्य भोग कर सातवीं नरक के अप्रतिष्ठान नामक नरकावास में नैरयिक रूप से उत्पन्न हुआ। देवों के राजा देवों के इन्द्र शक्रेन्द्र के ८४ हजार सामानिक देव कहे गये हैं। अढाई द्वीप में ५ मेरु पर्वत हैं उनमें से जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत को छोड़ कर बाकी ४ मेरु पर्वत ८४-८४ हजार योजन के ऊंचे कहे गये हैं। आठवें नन्दीश्वर द्वीप में चारों दिशाओं में चार अञ्जनक पर्वत हैं, वे सभी ८४-८४ हजार योजन के ऊंचे कहे गये हैं। हरिवर्ष और रम्यकवर्ष क्षेत्रों की जीवा का धनुपृष्ठ ८४०१६ $\frac{१}{४}$ योजन विस्तृत कहा गया है। रत्नप्रभा नरक के तीन काण्ड हैं उनमें से दूसरे पङ्क बहुल काण्ड के ऊपर के चरमान्त से नीचे के चरमान्त तक ८४ लाख योजन का अन्तर कहा गया है। श्री व्याख्याप्रज्ञप्ति-भगवती सूत्र में ८४ हजार पद कहे गये हैं। नागकुमार देवों के ८४ लाख भवन कहे गये हैं। आचार्यों द्वारा बनाये हुए ८४ हजार प्रकीर्णक कहे गये हैं। जीवोत्पत्ति के स्थान ८४ लाख कहे गये हैं। पूर्व से लेकर शीर्ष प्रहेलिका तक ८४ से गुणा करते जाने पर १९४ अंक होते हैं। कौशलीक भगवान् ऋषभदेव स्वामी के ८४ गण और ८४ गणधर थे।

कौशलीक भगवान् ऋषभदेव स्वामी के ऋषभसेन आदि ८४ हजार साधु थे। वैमानिक देवों के सब मिला कर ८४९७०२३ विमान हैं अर्थात् सौधर्म देवलोक में ३२ लाख, ईशान में २८ लाख, सनत्कुमार में १२ लाख, माहेन्द्र में ८ लाख, ब्रह्म देवलोक में ४ लाख, लान्तक में ५० हजार, महाशुक्र में ४० हजार, सहस्रार में ६ हजार, आणत प्राणत में ४००, आरण अच्युत में ३००, नवग्रैवेयक की पहली त्रिक में १११, दूसरी त्रिक में १०७, तीसरी त्रिक में १०० और ५ अनुत्तर विमान, ये सब मिला कर ८४९७०२३ विमान होते हैं।

विवेचन - भगवान् ऋषभदेव उनके पुत्र भरत और बाहुबली तथा दो पुत्रियाँ ब्राह्मी और सुन्दरी इन पांचों का आयुष्य ८४ लाख पूर्व था। ११ वें तीर्थङ्कर श्री श्रेयांसनाथ २१ लाख वर्ष कुमारावस्था में ४२ लाख वर्ष, राज्य अवस्था में और २१ लाख वर्ष श्रमण पर्याय में इस प्रकार ८४ लाख वर्ष सम्पूर्ण आयुष्य को भोग कर सिद्ध बुद्ध यावत् मुक्त हुए।

जम्बूद्वीप में एक मेरु पर्वत है। वह ९९००० योजन का ऊंचा है और एक हजार योजन धरती में है। इस प्रकार सम्पूर्ण १ लाख योजन का है। धातकी खण्ड में दो मेरु पर्वत हैं और अर्द्ध पुष्करवर द्वीप में भी दो मेरु पर्वत हैं। ये चारों मेरु पर्वत धरती से ऊपर चौरासी हजार चौरासी हजार योजन ऊंचे हैं तथा एक एक हजार योजन धरती में ऊंडे हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

८५०००-८५००० योजन के हैं। जम्बूद्वीप से आठवाँ द्वीप नन्दीश्वर द्वीप है। उसके चक्रवाल विष्कम्भ के बीच में पूर्वादि चारों दिशाओं में चार अंजनक पर्वत हैं। वे सब अंजनक नामक रत्नमय हैं।

पद के परिमाण से भगवती सूत्र में ८४००० पद हैं। जिससे अर्थ की उपलब्धि होती हो उसे यहाँ पद माना गया है। मतान्तर से तो आचाराङ्ग सूत्र के १८००० पद माने गये हैं। शेष अङ्गों के आगे आगे दुगुना दुगुना करते हुए भगवती सूत्र के २८८००० पद परिमाण संख्या प्राप्त होती है।

दक्षिण दिशा के नागकुमारों के आवास ४४ लाख हैं और उत्तर दिशा में ४० लाख आवास हैं। इस प्रकार सब मिलाकर ८४ लाख आवास हैं ।

जीवोत्पत्ति के स्थानों को योनि कहते हैं। यद्यपि जीवोत्पत्ति के स्थान असंख्यात हैं किन्तु वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श जिन जीवों का एक समान हो उन सबकी एक योनि गिनी गई है। इस अपेक्षा से सब जीवों की ८४ लाख योनियाँ कही गई हैं। संग्रहणी गाथा इस प्रकार है -

पुढवी-दग-अगणि-मारुय, एक्केक्के सत्त जोणिलक्खाओ।
वण पत्तेय अणंते दस, चउदस जोणिलक्खाओ ॥ १ ॥
विगलिंदिएसु दो दो चउरो, चउरो य नारयसुरेसु ।
तिरिएसु होंति चउरो, चोद्दसलक्खा उ मणुएसु ॥ २ ॥

अर्थात् - ७ लाख पृथ्वीकाय, ७ लाख अप्काय, ७ लाख तेउकाय, ७ लाख वाउकाय, १० लाख प्रत्येक वनस्पति काय, १४ लाख साधारण वनस्पति काय, २ लाख बेइन्द्रिय, २ लाख तेइन्द्रिय, २ लाख चउरिन्द्रिय, ४ लाख नारकी, ४ लाख देवता, ४ लाख तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय और १४ लाख मनुष्य; ये सब ८४ लाख योनि होती है।

एक लाख के पीछे मूल भेद कितने लेने चाहिये इसका आगमों में खुलासा देखने में नहीं आता। किन्तु पूर्वाचार्यों की धारणा के अनुसार १ लाख के पीछे ५० मूल भेद लेने चाहिये। फिर उनको ५ वर्ण २ गंध ५ रस और ८ स्पर्श तथा ५ संस्थान । इन २५ से क्रमशः गुणा करने पर १ लाख हो जाता है। इस प्रकार सब जीवों की योनि के सम्बन्ध में समझना चाहिये। जैसे कि - बेइन्द्रिय के २ लाख योनि है। उसके मूल भेद १०० लिये गये हैं। १०० × ५ वर्ण = ५००। ५०० × २ (गंध) = १०००। १००० × ५ (रस) = ५०००। ५००० × ८ (स्पर्श) = ४००००। ४०००० × ५ (संस्थान) = २०००००।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार सब जीवों की योनियों के सम्बन्ध में समझ लेना चाहिये।

जैन सिद्धान्त के अनुसार १ से लेकर १०० तक (शत) १००० (सहस्र), १००००० (शत सहस्र) आदि से लेकर शीर्ष प्रहेलिका तक जो संख्या स्थान होते हैं, उनमें जहाँ से प्रथम बार ८४ लाख से गुणाकार प्रारम्भ होता है उसे स्वस्थान कहते हैं और उससे आगे के स्थान को स्थानान्तर कहते हैं। जैसे कि - ८४ लाख वर्षों का एक पूर्वाङ्ग होता है। यह स्वस्थान है और इसको ८४००००० से गुणा करने पर जो "पूर्व" नामका दूसरा स्थान होता है वह स्थानान्तर है। इसी प्रकार आगे पूर्व की संख्या को ८४००००० से गुणा करने पर 'त्रुटितांग' नाम का जो स्थान बनता हैं वह स्वस्थान है और उसे ८४००००० से गुणा करने पर 'त्रुटित' नामक का जो स्थान आता है वह स्थानान्तर है। इस प्रकार पूर्व के स्थान से लेकर शीर्ष प्रहेलिका तक १४ स्वस्थान है और १४ ही स्थानान्तर हैं। जो कि ८४-८४ लाख के गुणाकार वाले जानना चाहिये। शीर्ष प्रहेलिका तक १९४ अङ्कों की संख्या आती है। वह इस प्रकार हैं -

७५८२६३२५३०७३०१०२४११५७९७३५६९९७५६९६४०६२१८९६६८४८०८०१८३२९६ इन ५४ अङ्कों पर १४० बिन्दियां लगाने से शीर्ष प्रहेलिका संख्या का प्रमाण आता है। यहाँ तक गणित का विषय माना गया है। इसके आगे भी संख्या का परिमाण बतलाया गया है। परन्तु वह गणित का विषय नहीं है किन्तु उपमा का विषय है।

पूर्वाङ्ग - चौरासी लाख वर्षों का एक पूर्वाङ्ग होता है।

पूर्व - पूर्वाङ्ग को ८४००००० से गुणा करने से एक पूर्व होता है।

त्रुटितांग - पूर्व को चौरासी लाख से गुणा करने से एक त्रुटितांग होता है।

त्रुटित - त्रुटितांग को चौरासी लाख से गुणा करने से एक त्रुटित होता है।

इस प्रकार पहले की राशि को ८४ लाख से गुणा करने से उत्तरोत्तर राशियाँ बनती हैं वे इस प्रकार हैं -

२३. अटटांग २४. अटट २५. अववांग २६. अवव २७. हुहुकांग २८. हुहुक २९. उत्पलांग ३०. उत्पल ३१. पद्मांग ३२. पद्म ३३. नलिनांग ३४. नलिन २५. अर्थ निपूरांग ३६. अर्थ निपूर ३७. अयुतांग ३८. अयुत ३९. नयुतांग ४०. नयुत ४१. प्रयुतांग ४२. प्रयुत ४३. चूलिकांग ४४. चूलिका ४५. शीर्ष प्रहेलिकांग ४६. शीर्ष प्रहेलिका ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पच्चासीवां समवाय

आयारस्स णं भगवओ सचूलियागस्स पंचासीइ उद्देसणकाला पण्णत्ता। धायइसंडस्स णं मंदरा पंचासीइ जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ता एवं पुक्खरवरदीवड्ढे वि। रुयए णं मंडलियपव्वए पंचासीइ जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ता। णंदणवणस्स णं हेट्ठिल्लाओ चरमंताओ सोगंधियस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं पचासीइ जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ॥ ८५ ॥

कठिन शब्दार्थ - **पंचासीइ** - ८५, **आयारस्स** - आचारांग के, **धायइसंडस्स** - धातकीखंड के, **मंदरा** - मेरु पर्वत, **सव्वग्गेणं** - सब मिला कर, **रुयए मंडलिय पव्वए** - रुचक द्वीप का मांडलिक पर्वत ।

भावार्थ - चूलिका सहित आचारांग सूत्र के ८५ उद्देशन काल कहे गये हैं। आचारांग सूत्र के दो श्रुतस्कन्ध हैं, उनमें से प्रथम श्रुतस्कन्ध के ९ अध्ययनों के ५१ उद्देशे हैं। दूसरे श्रुतस्कन्ध की पहली और दूसरी चूलिका में सात सात अध्ययन हैं। उनमें से पहली चूलिका के सात अध्ययनों के २५ उद्देशे हैं। दूसरी के सात, तीसरी में एक और चौथी में एक, ये सब मिला कर ८५ हुए। धातकीखण्ड के मेरु पर्वत सब मिला कर ८५ हजार योजन के हैं अर्थात् १००० योजन जमीन में ऊंडे हैं और ८४००० योजन ऊपर हैं, ये सब मिला कर ८५००० योजन हुए। इसी प्रकार पुष्करवरद्वीप के भी दोनों मेरु पर्वत जान लेना चाहिये। तेरहवें रुचक द्वीप का माण्डलिक पर्वत एक हजार योजन जमीन में है और चौरासी हजार योजन जमीन के ऊपर है सब मिला कर ८५ हजार योजन का कहा गया है। नन्दन वन के सब से नीचे के चरमान्त से सौगन्धिक नामक आठवें रत्नकाण्ड के नीचे का चरमान्त तक ८५ सौ योजन का अन्तर कहा गया है ॥ ८५ ॥

विवेचन - चूलिका सहित आचाराङ्ग सूत्र के ८५ उद्देशन काल होते हैं। जिनका विवरण भावार्थ में दे दिया गया है।

धातकी खण्ड में दो मेरु पर्वत हैं जो एक एक हजार योजन के धरती में ऊंडे हैं और ८४ हजार योजन धरती से ऊपर हैं। इस प्रकार कुल ८५००० योजन के हैं। इसी प्रकार पुष्करवरद्वीप के भी दोनों मेरुपर्वत जान लेने चाहिये। रुचक नामक तेरहवें द्वीप का अन्तर्वर्ती गोलाकार मांडलिक पर्वत भी ८५००० योजन कहा गया है।

मेरु पर्वत के भूमितल से नन्दनवन ५०० योजन की ऊँचाई पर स्थित है तथा मेरु पर्वत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के भूमि तल से नीचे पहली नरक का सौगन्धिक काण्ड का तलभाग ८००० योजन है। इस प्रकार सौगन्धिक काण्ड का अधस्तन तलभाग (८०००+५००=८५००) पचासी सौ योजन अन्तर वाला सिद्ध हो जाता है।

छियासीवां समवाय

सुविहिस्स णं पुप्फदंतस्स अरहओ छलसीइ गणा, छलसीइ गणहरा होत्था। सुपासस्स णं अरहओ छलसीइ वाइसया होत्था। दोच्चाए णं पुढवीए बहुमज्झदेसभागाओ दोच्चस्स घणोदहिस्स हेट्ठिले चरमंते एस णं छलसीइ जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।। ८६ ॥

कठिन शब्दार्थ - **छलसीइ** - ८६, **वाइ** - वादी।

भावार्थ - नववें तीर्थङ्कर श्री सुविधिनाथ स्वामी अपरनाम श्री पुष्पदन्त स्वामी के ८६ गण और ८६ गणधर थे। सातवें तीर्थङ्कर श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी के ८६०० वादी थे। शर्कराप्रभा नामक दूसरी नरक के मध्यभाग से दूसरे घनोदधि का चरमान्त तक ८६ हजार योजन का अन्तर कहा गया है॥ ८६॥

विवेचन - नववें तीर्थङ्कर श्री सुविधिनाथ (पुष्पदन्त) स्वामी के ८८ गण और ८८ गणधर थे। ऐसा आवश्यक सूत्र में बतलाया गया है। सो यह मतान्तर मालूम होता है।

दूसरी पृथ्वी शर्करा प्रभा है। उसकी मोटाई १ लाख ३२ हजार योजन है। उसका आधा ६६ हजार योजन होता है उसके अन्दर २० हजार योजन का घनोदधि मिलाने से ८६ हजार योजन का अन्तर सिद्ध हो जाता है।

सित्यासीवां समवाय

मंदरस्स णं पव्वयस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोथूभस्स आवास पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्ले चरमंते एस णं सत्तासीइं जोयण सहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। मंदरस्स णं पव्वयस्स दक्खिणिल्लाओ चरमंताओ दगभासस्स आवास पव्वयस्स उत्तरिल्ले चरमंते एस णं सत्तासीइं जोयण सहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं मंदरस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरमंताओ संखस्स आवास पव्वयस्स पुरच्छिमिल्ले चरमंते, एवं चेव मंदरस्स उत्तरिल्लाओ चरमंताओ दगसीमस्स आवास पव्वयस्स दाहिणिल्ले

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चरमंते एस णं सत्तासीइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। छण्हं कम्मपयडीणं आइम उवरिल्ल वज्जाणं सत्तासीइं उत्तरपयडीओ पण्णत्ताओ। महाहिमवंत कूडस्स णं उवरिल्लाओ चरमंताओ सोगंधियस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं सत्तासीइ जोयण सयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते एवं रुप्पी कूडस्स वि ॥ ८७ ॥

कठिन शब्दार्थ - आवास पव्वयस्स - आवास पर्वत के, **उत्तरिल्ले चरमंते** - उत्तरदिशा के चरमान्त तक, **उत्तर पयडीओ** - उत्तर प्रकृतियाँ, **महाहिमवंत कूडस्स** - महाहिमवंत कूट के।

भावार्थ - मेरु पर्वत के पूर्व के चरमान्त से वेलंधर नागराजा के गोस्तूभ आवास पर्वत के पश्चिम के चरमान्त तक ८७ हजार योजन का अन्तर कहा गया है। मेरु पर्वत के दक्षिण दिशा के चरमान्त से दगभास आवास पर्वत के उत्तर दिशा के चरमान्त तक ८७ हजार योजन का अन्तर कहा गया है। इसी प्रकार मेरु पर्वत के पश्चिम के चरमान्त से शंख आवास पर्वत के पूर्व के चरमान्त तक और इसी प्रकार मेरु पर्वत के उत्तर के चरमान्त से दगसीम आवास पर्वत के दक्षिण चरमान्त तक ८७ हजार योजन का अन्तर कहा गया है। ज्ञानावरणीय कर्म की पांच और अन्तराय की पांच, इन दस प्रकृतियों को छोड़ कर बाकी छह कर्मों की सत्यासी उत्तर प्रकृतियाँ कही गई हैं अर्थात् दर्शनावरणीय की ९, वेदनीय की २, मोहनीय की २८, आयुष्य की ४, नाम कर्म की ४२ और गोत्र कर्म की २ ये सब मिला कर ८७ प्रकृतियाँ होती हैं। महाहिमवंत कूट के ऊपर के चरमान्त से रत्नप्रभा नरक के आठवें सौगन्धिक काण्ड का नीचे का चरमान्त तक ८७ सौ योजन का अन्तर कहा गया है। इसी प्रकार रुक्मी कूट से भी सौगन्धिक काण्ड के नीचे चरमान्त तक ८७ सौ योजन का अन्तर कहा गया है।। ८७ ॥

विवेचन - मेरु पर्वत जम्बू द्वीप के ठीक मध्य भाग में अवस्थित है और वह भूमितल पर १०००० योजन के विस्तार वाला है। मेरु पर्वत के इस विस्तार को जम्बूद्वीप के १ लाख योजन में से घटा देने पर ९०,००० योजन शेष रहते हैं। उसके आधे ४५००० योजन पर जम्बूद्वीप का पूर्वी भाग है। इसो प्रकार दक्षिणी भाग, पश्चिमी भाग और उत्तरी भाग भी प्राप्त होता है। इससे आगे लवणसमुद्र में पूर्व मे ४२००० योजन दूर जाने पर वेलंधर नागराज का गोस्थूभ आवास पर्वत है। इसी प्रकार दक्षिण में दगभास आवास पर्वत है और पश्चिम में शंख आवास पर्वत है तथा उत्तर में उतनी ही दूरी पर दकसीम आवास पर्वत हैं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार मेरु पर्वत के पूर्वी भाग, पश्चिमी भाग, दक्षिणी भाग और उत्तरी भाग से उपर्युक्त दोनों दूरियों को जोड़ने पर (४५०००+४२०००=८७०००) सित्यासी हजार योजन का सूत्रोक्त चारों अन्तर सिद्ध हो जाते हैं।

रत्नप्रभा के समतल भाग से सौगन्धिक काण्ड ८००० योजन नीचे है। यह पहले बताया जा चुका है। इस रत्नप्रभा के समतल से २०० योजन ऊँचा महाहिमवन्त वर्षधर पर्वत है उसके पांच सौ योजन ऊँचा महाहिमवन्त कूट है। इन तीनों को जोड़ने पर सूत्रोक्त (८०००+२००+५००=८७००) सित्यासी सौ योजन का अन्तर सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार रुक्मी वर्षधर पर्वत दो सौ योजन का ऊंचा है। उसके ऊपर रुक्मी कूट पांच सौ योजन का ऊंचा है इस प्रकार रुक्मी कूट के ऊपरी भाग से सौगन्धिक काण्ड के नीचे तक का भाग ८७०० योजन का अन्तर वाला सिद्ध हो जाता है।

अठ्यासीवां समवाय

एगमेगस्स णं चंदिमसूरियस्स अट्ठासीइ अट्ठासीइ महग्गहा परिवारो पण्णत्तो। दिट्ठिवायस्स णं अट्ठासीइ सुत्ताइं पण्णत्ता तंजहा - उज्जुसुयं परिणयापरिणयं एवं अट्ठासीइ सुत्ताणि भाणियव्वाणि जहा णंदीए। मंदरस्स णं पव्वयस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोथूभस्स आवास पव्वयस्स पुरच्छिमिल्ले चरमंते एस णं अट्ठासीइ जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते एवं चउसु वि दिसासु णेयव्वं। बाहिराओ उत्तराओ णं कट्ठाओ सूरिए पढमं छम्मासं अयमाणे चोयालीसइमे मंडलगए अट्ठासीइ इगसट्ठिभागे मुहुत्तस्स दिवस खेत्तस्स णिवुड्ढेत्ता रयणि खेत्तस्स अभिणिवुड्ढेत्ता सूरिए चारं चरइ। दक्खिणाओ कट्ठाओ णं सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे चोयालीसइमे मंडलगए अट्ठासीइ इगसट्ठिभागे मुहुत्तस्स रयणि खेत्तस्स णिवुड्ढेत्ता दिवस खेत्तस्स अभिणिवुड्ढेत्ता णं सूरिए चारं चरइ ॥ ८८ ॥

कठिन शब्दार्थ - **अट्ठासीइं** - ८८, **महग्गहा** - महा ग्रह, **दिट्ठिवायस्स** - दृष्टिवाद के, **उज्जुसुयं** - ऋजुसूत्र, **परिणयापरिणयं** - परिणतापरिणत, **अयमाणे** - भ्रमण करता हुआ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - एक एक चन्द्रमा और सूर्य का ८८-८८ महाग्रहों का परिवार कहा गया है। दृष्टिवाद के ऋजुसूत्र परिणतापरिणत आदि ८८ सूत्र कहे गये हैं। जिस प्रकार नन्दीसूत्र में इनका कथन किया गया है उसी तरह यहाँ भी कह देना चाहिए। मेरु पर्वत के पूर्व के चरमान्त से गोस्थूभ आवास पर्वत के पूर्व के चरमान्त तक ८८ हजार योजन का अन्तर कहा गया है। इसी तरह चारों दिशाओं में जानना चाहिए। सर्व आभ्यन्तर मण्डल में पहले छह मास तक भ्रमण करता हुआ सूर्य जब चंवालीसवें मण्डल में जाता है तब मुहूर्त्त का $\frac{६१}{८८}$ भाग दिन को घटाता है और रात्रि को बढ़ा कर सूर्य भ्रमण करता है। दक्षिणायन में सर्वाभ्यन्तर मंडल में सूर्य दूसरे छह मास भ्रमण करता हुआ जब चंवालीसवें मण्डल में जाता है तब मुहूर्त्त का $\frac{६१}{८८}$ भाग रात्रि को कम करके और दिन को बढ़ा कर सूर्य भ्रमण करता है ॥ ८८ ॥

विवेचन - दृष्टिवाद नामक बारहवें अङ्गसूत्र के 'सूत्र' नामक दूसरे भेद के ८८ सूत्र कहे गये हैं। इसका विशेष वर्णन आगे १४७ वें समवाय में किया गया है।

सूर्य छह मास दक्षिणायन और छह मास उत्तरायण रहता है। जब वह उत्तर दिशा के सबसे बाहरी मण्डल से लौटता हुआ दक्षिणायन होता है उस समय वह पृथ्वी मण्डल पर एक मुहूर्त्त के ६१ भागों में से २ भाग प्रमाण ($\frac{२}{६१}$) दिन का प्रमाण घटाता हुआ और इनता ही ($\frac{२}{६१}$) रात का प्रमाण बढ़ाता हुआ परिभ्रमण करता है। इस प्रकार जब वह ४४ वें मण्डल पर परिभ्रमण करता है तब वह ($\frac{२}{६१} \times ४४ = \frac{८८}{६१}$) मुहूर्त्त के $\frac{८८}{६१}$ भाग प्रमाण दिन को घटा देता है और रात को इतना ही बढ़ा देता है। इसी दक्षिणायन से उत्तरायण जाने पर ४४ वें मण्डल में $\frac{८८}{६१}$ भाग रात को घटा कर और उतना ही दिन को बढ़ा कर परिभ्रमण करता है। इस प्रकार वर्तमान मिनिट सेकिंड के अनुसार सूर्य अपने दक्षिणायन काल में प्रति दिन १ मिनिट $५\frac{१२०}{१८४}$ सेकिंड दिन की हानि और रात की वृद्धि करता है। इसी प्रकार उत्तरायण काल में प्रतिदिन १ मिनिट और $५\frac{१२०}{१८४}$ सेकिण्ड दिन की वृद्धि और रात की हानि करता हुआ परिभ्रमण करता है। उक्त व्यवस्था के अनुसार दक्षिणायन अन्तिम मण्डल में परिभ्रमण करने पर दिन १२ मुहूर्त्त का होता है और रात १८ मुहूर्त्त की होती है तथा उत्तरायण के अन्तिम मण्डल में परिभ्रमण करने पर दिन १८ मुहूर्त्त का और रात १२ मुहूर्त्त की होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नवासीवां समवाय

उसभे णं अरहा कोसलिए इमीसे ओसप्पिणीए तइयाए सुसमदूसमाए पच्छिमे भागे एगूण णउइए अद्धमासेहिं सेसेहिं कालगए जाव सव्व दुक्खप्पहीणे। समणे भगवं महावीरे इमीसे ओसप्पिणीए चउत्थाए दूसम सुसमाए समाए पच्छिमे भागे एगूण णउइए अद्धमासेहिं सेसेहिं कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे। हरिसेणे णं राया चाउरंत चक्कवट्टी एगूण णउइं वाससयाइं महाराया होत्था। संतिस्स णं अरहओ एगूण णउइ अज्जासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया होत्था ॥ ८९ ॥

कठिन शब्दार्थ - ओसप्पिणीए - अवसर्पिणी काल के, **तइयाए सुसमदुसभाए समाए** - सुषमा दुषमा नामक तीसरे आरे के, **दूसमसुसमाए** - दुषम सुषमा।

भावार्थ - कौशलिक श्री ऋषभदेव भगवान् इस अवसर्पिणी काल के सुषम दुषमा नामक तीसरे आरे के पिछले भाग में ८९ पक्ष यानी तीन वर्ष साढे आठ महीने बाकी रहे तब सिद्ध बुद्ध यावत् सब दुःखों से मुक्त हुए। इस अवसर्पिणी काल के दुषमसुषमा नामक चौथे आरे के पिछले भाग में जब ८९ पक्ष यानी तीन वर्ष साढे आठ महीने बाकी रहे तब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी सिद्ध, बुद्ध यावत् सब दुःखों से मुक्त हुए। दसवां चक्रवर्ती श्री हरिषेण ८९ सौ वर्ष तक चक्रवर्तीपने रहे। श्री शान्तिनाथ भगवान् के उत्कृष्ट ८९ हजार आर्यिकाएं थी॥ ८९॥

विवेचन - प्रथम जिनेश्वर श्री ऋषभदेव स्वामी का सर्व आयुष्य ८४ लाख पूर्व का था। उसे भोग कर जब चौथे आरे के ८९ पक्ष अर्थात् ३ वर्ष ८॥ महीने बाकी थे तब मोक्ष पधारे। इसके लिये शास्त्रकार ने ये शब्द दिये है - **'अंतगडे सिद्धे बुद्धे मुत्ते'**। अर्थ - वे अन्तकृत (सब कर्मों का अन्त किया) हुए, सिद्ध (जिनके सब कार्य सिद्ध हो चुके अर्थात् कृतकृत्य हो गये हैं) हुए, बुद्ध (जब तक संसार में थे तब तक भवस्थ केवली थे, मोक्ष में चले जाने के बाद सदा सदा के लिये बुद्ध अर्थात् केवलज्ञानी बन गये) हुए, मुक्त हो गये अर्थात् आठों कर्मों का क्षय हो जाने से सब दुःखों से मुक्त हो गये।

इस अवसर्पिणी काल में १२ चक्रवर्ती हुए उसमें दसवें चक्रवर्ती का नाम हरिषेण था। उनकी सम्पूर्ण आयुष्य १०००० वर्ष की थी। कुछ कम ८०० वर्ष तक वे कुमारावस्था में और मांडलिक राजा रूप में रहे। ८९०० वर्ष तक चक्रवर्ती पद रहे। फिर दीक्षा लेकर ३०० वर्ष संयम का पालन कर मोक्ष पधारे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नव्वेवां समवाय

सीयले णं अरहा णउइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। अजियस्स णं अरहओ णउइं गणा, णउइं गणहरा होत्था एवं संतिस्स वि । सयंभूस्स णं वासुदेवस्स णउइं वासाइं विजए होत्था। सव्वेसिं णं वट्टवेयड्ढपव्वयाणं उवरिल्लाओ सिहरतलाओ सोगंधियकंडस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं णउइं जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ॥ ९० ॥

कठिन शब्दार्थ - णउइं धणूइं - ९० धनुष, **वट्टवेयड्ढपव्वयाणं** - वृत्त वैताढ्य पर्वतों के, **उवरिल्लाओ सिहरतलाओ** - ऊपर के शिखर से ।

भावार्थ - दसवें तीर्थङ्कर श्री शीतलनाथ स्वामी का शरीर ९० धनुष ऊंचा था। दूसरे तीर्थङ्कर श्री अजितनाथ स्वामी के ९० गण और ९० गणधर थे।

इसी प्रकार सोहलवें तीर्थङ्कर श्रीशान्तिनाथ स्वामी के भी ९० गण और ९० गणधर थे। तीसरे वासुदेव श्री स्वयंभू को तीन खण्ड पृथ्वी का विजय करने में ९० वर्ष लगे थे। सब वृत्त वैताढ्य पर्वतों के ऊपर के शिखर से सौगन्धिक काण्ड के नीचे के चरमान्त तक ९० सौ योजन का अन्तर कहा गया है ॥ ९० ॥

विवेचन - आवश्यक सूत्र में तो श्री अजितनाथ स्वामी के ९५ गण और ९५ गणधर थे तथा श्री शान्तिनाथ स्वामी के ३६ गणधर और ३६ गण थे, ऐसा बताया है सो मतान्तर मालूम होता है।

रत्नप्रभा पृथ्वी के समतल से सौगन्धिक काण्ड ८००० योजन नीचे और सभी वृत्त-वैताढय पर्वत १००० योजन ऊँचे हैं। इस प्रकार दोनों का अन्तर ९००० योजन सिद्ध हो जाता है।

इकानवां समवाय

एकाणउइ परवेयावच्च कम्मपडिमाओ पण्णत्ताओ। कालोए णं समुद्दे एकाणउइ जोयण सयसहस्साइं साहियाइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते। कुंथुस्स णं अरहओ एकाणउइ आहोहियसया होत्था। आउयगोयवज्जाणं छण्हं कम्मपयडीणं एकाणउइ उत्तरपयडीओ पण्णत्ताओ ॥ ९१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **परवेयावच्चकम्म पडिमाओ** - दूसरे की वैयावत्य करने रूप पडिमा-अभिग्रह विशेष, **एकाणउइ** - ९१ भेद, **कालोए समुद्दे** - कालोदधि समुद्र, **परिक्खेवेणं** - परिक्षेप (परिधि)।

भावार्थ - दूसरे की वैयावृत्य करने के ९१ भेद कहे गये हैं। अर्थात् विनय के १० भेद, अनाशातना विनय के ६० भेद,लोकोपचार विनय के ७ भेद और वैयावृत्य के १४ भेद, ये सब मिला कर ९१ भेद होते हैं। कालोदधि समुद्र का परिक्षेप यानी परिधि ९१७०६०५ योजन १५ धनुष ८७ अङ्गुल से कुछ अधिक कही गई है। सतरहवें तीर्थङ्कर श्री कुंथुनाथस्वामी के ९१०० अवधिज्ञानी मुनि थे। आयु और गोत्र, इन दो कर्मों को छोड़ कर शेष छह कर्मों की ९१ उत्तर प्रकृतियाँ कही गई हैं ॥ ९१ ॥

विवेचन - दूसरे रोगी आदि साधु और आचार्य आदि को आहार-पानी आदि लाकर देना, सेवा शुश्रूषा करना तथा विनय आदि करने के अभिग्रह विशेष को यहाँ 'प्रतिमा' शब्द से कहा गया है।

वैयावृत्य के उन ९१ भेदों का वर्णन इस प्रकार है -

१. ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि में गुणाधिक पुरुषों का सत्कार करना ।

२. उनके आने पर खड़ा होना,

३. वस्त्रादि देकर सन्मान करना ।

४. उन के बैठते हुए आसन लाकर बैठने के लिये प्रार्थना करना ।

५. आसनानुप्रदान करना - उन के आसन को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना ।

६. कृतिकर्म (वन्दना) करना ।

७. अंजली करना (दोनों हाथ जोड़ना) ।

८. गुरुजनों के आने पर आगे जाकर उनका स्वागत करना ।

९. गुरुजनों के गमन करने पर उनके पीछे चलना ।

१०. उन के बैठने पर बैठना ।

यह दश प्रकार का शुश्रूषाविनय है।

तथा - १. तीर्थङ्कर २. केवलिप्रज्ञप्त धर्म ३. आचार्य ४. वाचक (उपाध्याय) ५. स्थविर ६. कुल ७. गण ८. संघ ९. साम्भोगिक १०. क्रियावान् (आचार) विशिष्ट ११. विशिष्ट मतिज्ञानी १२. श्रुतज्ञानी १३. अवधिज्ञानी १४. मनःपर्यवज्ञानी और १५. केवलज्ञानी, इन पन्द्रह विशिष्ट पुरुषों की १ आशातना नहीं करना २. भक्ति करना ३. बहुमान करना और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४. वर्णवाद (गुण-गान) करना, ये चालू कर्त्तव्य उक्त पन्द्रह पद वालों के करने पर (१५×४=६०) साठ भेद हो जाते हैं।

सात प्रकार का औपचारिक विनय कहा गया है -

१. अभ्यासन-वैयावृत्य के योग्य व्यक्ति के पास बैठना ।

२. छन्दोऽनुवर्तन - उसके अभिप्राय के अनुकूल कार्य करना ।

३. कृतप्रतिकृति - 'प्रसन्न हुए आचार्य हमें सूत्रादि देंगे' इस भाव से उनको आहारादि देना।

४. कारितनिमित्तकरण - पढ़े हुए शास्त्र पदों का विशेष रूप से विनय करना और उनके अर्थ का अनुष्ठान करना।

५. दुःख से पीड़ित की गवेषणा करना ।

६. देश-काल को जान कर तदनुकूल वैयावृत्य करना ।

७. रोगी के स्वास्थ्य के अनुकूल अनुमति देना ।

पांच प्रकार के आचारों के आचरण कराने वाले आचार्य पांच प्रकार के होते हैं। उनके सिवाय उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु और मनोज्ञ इनकी वैयावृत्य करने से वैयावृत्य के १४ भेद होते हैं।

इस प्रकार शुश्रूषा विनय के १० भेद, तीर्थङ्करादि के अनाशातनादि ६० भेद, औपचारिक विनय के ७ भेद और आचार्य आदि के वैयावृत्य के १४ भेद मिलाने पर (१०+६०+७+१४=९१) इक्यानवें भेद हो जाते हैं।

बाणवां समवाय

बाणउइ पडिमाओ पण्णत्ताओ। थेरे णं इंदभूइ बाणउइं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे। मंदरस्स णं पव्वयस्स बहुमज्झदेसभागाओ गोथूभस्स आवास पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्ले चरमंते एस णं बाणउइं जोयण सहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते एवं चउण्हं वि आवास-पव्वयाणं ॥ ९२ ॥

कठिन शब्दार्थ - **बाणउइ** - ९२, **चउण्हं वि** - चारों, **आवास पव्वयाणं** - आवास पर्वतों का।

भावार्थ - ९२ प्रतिमाएं कही गई हैं। दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र की निर्युक्ति में इनका कथन किया गया है - १. समाधि प्रतिमा, २. उपधान प्रतिमा, ३. विवेक प्रतिमा, ४. प्रतिसंलीनता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिमा और ५. एकलविहार प्रतिमा । समाधि प्रतिमा के दो भेद - श्रुतसमाधि और चारित्र समाधि। श्रुत समाधि के ६२ भेद हैं - आचाराङ्ग सूत्र प्रथम श्रुतस्कन्ध में ५, द्वितीय श्रुतस्कन्ध में ३७, स्थानाङ्ग में १६ और व्यवहार में ४, ये ६२ हुए। चारित्र समाधि के ५ भेद - सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म सम्पराय, यथाख्यात। उपधान प्रतिमा के २३ भेद - १२ भिक्षु प्रतिमा और ११ श्रमणोपासक प्रतिमा। बाकी विवेक प्रतिमा, प्रतिसंलीनता प्रतिमा इनका एक एक भेद है, ये कुल मिला कर = ६२+५+२३+१+१= ९२ भेद होते हैं। एकलविहार प्रतिमा को अलग नहीं गिना है, वह भिक्षु प्रतिमाओं में गिनली गई है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के प्रथम गणधर श्री इन्द्रभूति ९२ वर्ष की पूर्ण आयु भोग कर **सिद्ध बुद्ध** यावत् सब दुःखों से मुक्त हुए। मेरु पर्वत के मध्य भाग से आवास गोस्तूभ पर्वत के पश्चिम के चरमान्त तक ९२ हजार योजन का अन्तर कहा गया है। इसी तरह चारों आवास पर्वतों का अन्तर जानना चाहिए ॥ ९२ ॥

विवेचन - यद्यपि ये सभी प्रतिमाएँ चारित्र स्वरूपात्मक है तथापि ये प्रतिमायें विशिष्ट श्रुतशाली महामुनियों के ही होती हैं। अतः श्रुत की प्रधानता से इन्हें श्रुत समाधि प्रतिमा के रूप में कहा गया है।

विवेक प्रतिमा क्रोधादि भीतरी विकारों और उपधि भक्त पानादि बाहरी वस्तुओं के त्याग की अपेक्षा अनेक भेद संभव होने पर भी त्याग सामान्य की अपेक्षा विवेक प्रतिमा एक ही कही गई है। विवेक का अर्थ है - छोड़ना, त्यागना।

प्रतिसंलीनता भी इन्द्रिय, नो इन्द्रिय, योग, कषाय आदि के भेद से अनेक भेद वाली है। परन्तु यहाँ भेदों की विवक्षा न करते हुए एक ही ली है। पांचवीं एकाकी विहार प्रतिमा है किन्तु उसका भिक्षु प्रतिमाओं में अन्तर्भाव हो जाने से उसे पृथक् नहीं गिना गया है।

इस प्रकार श्रुत समाधि प्रतिमा के ६२, चारित्र समाधि प्रतिमा के ५, उपधान प्रतिमा के २३ विवेक प्रतिमा १ और प्रतिसंलीनता प्रतिमा १, ये सब मिला कर प्रतिमा के ९२ (६२+५+२३+१+१) भेद हो जाते हैं।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के प्रथम गणधर का नाम इन्द्र भूति है। गौतम तो उनका गोत्र है। वे पचास वर्ष गृहस्थावस्था में रहे इसके बाद दीक्षा ली, तीस वर्ष छद्मस्थ रहे और बारह वर्ष केवली रहे। इस प्रकार ९२ वर्ष की सर्व आयुष्य भोग कर सिद्ध, बुद्ध यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मेरु पर्वत के मध्य भाग से चारों ही दिशाओं में जम्बूद्वीप की सीमा पचास-पचास हजार योजन है। वहाँ से चारों दिशाओं में लवण समुद्र के अन्दर ४२००० योजन जाने पर गोस्थूभ आदि चारों आवास पर्वत अवस्थित हैं अतः मेरुपर्वत के मध्य से प्रत्येक आवास पर्वत का अन्तर बाणवें हजार योजन सिद्ध हो जाता है। चारों आवास पर्वतों के नाम इस प्रकार है - १. गोस्थूभ २. दकभास ३. शंख ४. दकसीम ।

तराणुवां समवाय

चंदप्पहस्स णं अरहओ तेणउइं गणा, तेणउइं गणहरा होत्था। संतिस्स णं अरहओ तेणउइ चउद्दस पुव्वीसया होत्था। तेणउइ मंडलगए णं सूरिए अइवट्टमाणे णिवट्टमाणे वा समं अहोरत्तं विसमं करेइ ॥ ९३ ॥

कठिन शब्दार्थ - **तेणउइ** - ९३, **चउद्दसपुव्वी** - चौदह पूर्वधारी, **अइवट्टमाणे** - बाह्य मंडल से आभ्यन्तर मंडल में जाता है, **णिवट्टमाणे** - आभ्यंतर मंडल से बाह्य मंडल में आता है, **समं** - सम (बराबर) **अहोरत्तं** - दिन रात को, **विसमं** - विषम।

भावार्थ - आठवें तीर्थङ्कर श्री चन्द्रप्रभ स्वामी के ९३ गण और ९३ गणधर थे। सोलहवें तीर्थङ्कर श्री शान्तिनाथ स्वामी के ९३०० चौदह पूर्वधारी थे। सूर्य के कुल १८४ मण्डल हैं उनमें से जब सूर्य तेरानवें मण्डल पर आता है तब बाह्य मण्डल से आभ्यन्तर मण्डल में जाता है तब अथवा आभ्यन्तर मण्डल से बाह्य मण्डल में आता है तब सम बराबर दिन रात को विषम कर देता है। अर्थात् जब सूर्य बराणवें मण्डल पर रहता है तब रात और दिन दोनों समान होते हैं यानी रात्रि ३० घड़ी को होती है और दिन भी ३० घड़ी का होता है। जब तेरानवें मण्डल पर आता है तब दिन रात को विषम कर देता है। आश्विन पूर्णिमा को दिन और रात बराबर होते हैं फिर सूर्य दक्षिणायन में जाने लगता है तब दिन घटने लगता है और रात्रि बढने लगती है। इसी प्रकार चैत्री पूर्णिमा को दिन रात समान होते हैं। फिर सूर्य उत्तरायण में जाने लगता है तब दिन बढ़ने लगता हैऔर रात्रि घटने लगती है ॥ ९३ ॥

विवेचन - सूर्य के परिभ्रमण से दिन और रात होते हैं। १८४ सूर्य के मण्डलों में परिभ्रमण करने से कभी दिन रात बराबर (सम) होते हैं और कभी विषम होते हैं। आसोज पूर्णिमा और चैत्र पूर्णिमा को दिन और रात बराबर (सम) होते हैं। अर्थात् ३० घड़ी का दिन (१५ मुहूर्त्त) और तीस घडी की रात्रि होती है। आषाढ़ पूर्णिमा को दिन १८ मुहूर्त्त का और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रात्रि १२ मुहूर्त्त की होती है। पौष महीने की पूर्णिमा को रात १८ मुहूर्त्त की और दिन १२ मुहूर्त्त का होता है।

चौरानवां समवाय

णिसह णीलवंतियाओ णं जीवाओ चउणउइ जोयणसहस्साइं एक्कं छप्पण्णं जोयणसयं दोण्णि य एगूणवीसइभागे जोयणस्स आयामेणं पण्णत्ताओ। अजियस्स णं अरहओ चउणउइ ओहिणाणिसया होत्था ॥ ९४ ॥

कठिन शब्दार्थ - णिसह णीलवंतियाओ - निषध और नीलवंत पर्वत की, **चउणउइ-ओहिणाणसया** - ९४०० अवधिज्ञानी ।

भावार्थ - निषध और नीलवंत पर्वत की जीवाएं ९४१५६ योजन $\frac{२}{१९}$ कला की लम्बी कही गई हैं। दूसरे तीर्थङ्कर श्री अजितनाथ स्वामी के ९४०० अवधिज्ञानी साधु थे ॥ ९४ ॥

विवेचन - निषध और नील पर्वत की जीवा (धनुष की डोरी के समान) के परिमाण की संवाद गाथा इस प्रकार है-

"चउणउइसहस्साइं छप्पणहियं सयं कला दो य। जीवा निसहस्सेस"

पंचानवां समवाय

सुपासस्स णं अरहओ पंचाणउइ गणा, पंचाणउइ गणहरा होत्था। जंबूद्दीवस्स णं दीवस्स चरमंताओ चउद्दिसिं लवणसमुद्दं पंचाणउइं पंचाणउइं जोयण सहस्साइं ओगाहित्ता चत्तारि महापायाल कलसा पण्णत्ता तंजहा - वलयामुहे, केऊए, जूयए ईसरे। लवण समुद्दस्स उभओ पासं वि पंचाणउयं पंचाणउयं पएसाओ उव्वेहुस्सेह परिहाणीए पण्णत्ताओ। कुंथू णं अरहा पंचाणउइं वाससहस्साइं परमाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे । थेरे णं मोरियपुत्ते पंचाणउइं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ॥ ९५ ॥

कठिन शब्दार्थ - पंचाणउइ - ९५, **महापायाल कलसा** - महापाताल कलश, **उभओ पासं वि** - दोनों तरफ, **उव्वेहुस्सेह परिहाणीए** - उद्वेध (ऊंड़ाई), उत्सेध (ऊंचाई), **परिहाणी** (घटना, कम होना)

भावार्थ - सातवें तीर्थङ्कर श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी के ९५ गण और ९५ गणधर थे। इस जम्बूद्वीप के चरमान्त से पूर्वादि चारों दिशाओं में लवणसमुद्र में पंचानवें हजार-पंचानवें हजार योजन जाने पर चार महापाताल कलश हैं उनके नाम इस प्रकार हैं - बडवामुख, केतु, यूपक और ईश्वर। लवण समुद्र के दोनों तरफ यानी जम्बूद्वीप से ९५ हजार योजन लवणसमुद्र में जाने पर अथवा धातकीखण्ड द्वीप से ९५ हजार योजन लवणसमुद्र में इधर आने पर बीच में दस हजार योजन का डगमाला (उदकमाला) आता है वह एक हजार योजन का ऊंडा है। उस दगमाला से जम्बूद्वीप की तरफ आवे अथवा धातकीखण्ड द्वीप की तरफ जावे तो ९५ अंगुल पर एक अंगुल, ९५ हाथ पर एक हाथ, ९५ योजन पर एक योजन, ९५ हजार योजन पर एक हजार योजन ऊंडाई कम होती जाती है और समुद्र का पानी और जमीन बराबर हो जाती है। इसी प्रकार जम्बूद्वीप के किनारे से लवण समुद्र में जावे अथवा धातकी खण्ड द्वीप के किनारे से लवण समुद्र में आवे तो ९५ योजन पर एक योजन और ९५ हजार योजन पर एक हजार योजन ऊंचाई बढ़ती जाती है। सतरहवें तीर्थङ्कर श्री कुन्थुनाथ स्वामी ९५ हजार वर्ष का पूर्ण आयुष्य भोग कर सिद्ध बुद्ध यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए। भगवान् महावीर स्वामी के सातवें गणधर स्थविर श्री मौर्यपुत्र स्वामी ९५ वर्ष का पूर्ण आयुष्य भोग कर सिद्ध बुद्ध यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए।। ९५ ॥

विवेचन - लवण समुद्र दो लाख योजन का विस्तार वाला है। उसका जल गोतीर्थ के समान है। अर्थात् जैसे - गाय पानी पीने के लिये तालाब में जाती है। तालाब की भूमि ढालू (ढलान वाली) होती है। इसलिये गाय सुख पूर्वक ढालू जगह में नीचे उतर कर पानी पी लेती है। लवण समुद्र का पानी भी इसी तरह ढलता हुआ आगे बढ़ता है। समतल भूमि पर पानी भूमि के बराबर होता है फिर आगे क्रमशः बढ़ता जाता है। जम्बू द्वीप की जगती से ९५ हजार योजन जाने पर तथा उधर से धातकी खण्ड द्वीप से ९५ हजार योजन इधर आने पर गोतीर्थ की तरह पानी ढलाऊ होता गया है। बीच में दस हजार योजन एक सरीखा समान है और उसकी ऊंडाई एक हजार योजन है। गोतीर्थ की तरह घटने का तरीका भावार्थ में बतला दिया गया है। बीच में दस हजार की चौड़ाई जहाँ है वहाँ एक हजार योजन का ऊण्डा है। वहाँ चारों दिशाओं में चार महा पाताल कलशे आये हुए हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं। १. वलयामुख (वडवामुख) २. केतुक ३. यूपक ४. ईश्वर । ये प्रत्येक गोस्तनाकार एक लाख योजन के ऊंडे हैं। उनके नीचे के तीसरे भाग में सिर्फ वायु है। बीच के भाग में वायु और पानी दोनों सम्मिलित रूप से हैं और पहले भाग में अर्थात् ऊपर के भाग में केवल पानी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नीचे रही हुई हवा जब क़म्पित होती है तब लवण समुद्र का पानी क्षुभित हो जाता है। तब दो कोस तक उसकी वेल (जल की धारा) ऊंची बढ़ जाती है।

सतरहवें तीर्थङ्कर श्री कुन्थुनाथ स्वामी २३७५० वर्ष कुमार अवस्था में रहे। २३७५० वर्ष माण्डलिक पद में रहे। २३७५० वर्ष चक्रवर्ती पद भोग कर दीक्षा ली। २३७५० वर्ष दीक्षा पर्याय का पालन कर सिद्ध, बुद्ध यावत् मुक्त हुए। सम्पूर्ण आयुष्य ९५ हजार वर्ष का था। श्रमण भगवान् महावीर के ७ वें गणधर मौर्यपुत्र ६५ वर्ष गृहस्थ अवस्था में रहे। ३० वर्ष श्रमण पर्याय (१४ वर्ष छद्मस्थ और १६ वर्ष भवस्थ केवली) का पालन कर ९५ वर्ष की सम्पूर्ण आयुष्य भोग कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गये। मण्डित पुत्र और मौर्य पुत्र सहोदर भाई नहीं थे, इस बात का खुलासा ६५ वें समवाय में कर दिया है।

छयानवां समवाय

एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंत चक्कवट्टिस्स छण्णउइं छण्णउइं गामकोडीओ होत्था। वाउकुमाराणं छण्णउइं भवणावाससय सहस्सा पण्णत्ता। ववहारिए णं दंडे छण्णउइं अंगुलाइं अंगुलमाणेणं । एवं धणू, णालिया, जुगे, अक्खे, मुसले वि हु, अब्भिंतरओ आइमुहुत्ते छण्णउइं अंगुलच्छाए पण्णत्ते ॥ ९६ ॥

कठिन शब्दार्थ - छण्णउइं गामकोडीओ - ९६ करोड़ ग्राम, **ववहारिए दंडे** - व्यावहारिक दण्ड, **धणू** - धनुष, **णालिया** - नालिका, **जुगे** - युग-गाडी का धोंसरा, **आइमुहुत्ते** - आदि मुहूर्त-प्रथम मूहुर्त्त।

भावार्थ - प्रत्येक चक्रवर्ती राजा के ९६ करोड़ ९६ करोड़ ग्राम होते हैं। वायुकुमार देवों के ९६ लाख भवनावास कहे गये हैं। व्यावहारिक दण्ड जिससे कोस आदि मापे जाते हैं, वह ९६ अंगुल प्रमाण होता है। इसी प्रकार धनुष, नालिका, युग-गाड़ी का धोंसरा और मूसल, ये सभी ९६-९६ अंगुल प्रमाण होते हैं। जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल में भ्रमण करता है उस समय प्रथम मुहुर्त्त ९६ अंगुल छाया का होता है अर्थात् जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल में घूमता है उस समय १८ मुहूर्त्त का दिन होता है, तब बारह अंगुल का एक तृण लेकर धूप में खड़ा करे जब उसकी छाया ९६ अंगुल पड़े तब जानना चाहिए कि अब एक मुहूर्त्त दिन आया है ॥ ९६ ॥

विवेचन - अङ्गुल दो प्रकार का है - व्यावहारिक और अव्यावहारिक। जिससे हस्त, धनुष, गव्यूति आदि के नापने का व्यवहार किया जाता है, वह व्यावहारिक अङ्गुल कहा जाता है। अव्यावहारिक अङ्गुल प्रत्येक मनुष्य के अङ्गुल मान की अपेक्षा छोटा बड़ा भी होता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। उसकी यहाँ विवक्षा नहीं की गयी है। चौबीस अङ्गुल का एक हाथ होता है और चार हाथ का एक दण्ड होता है। इस प्रकार (२४×४=९६) एक दण्ड छयानवें अङ्गुल प्रमाण होता है। इसी प्रकार धनुष आदि भी छयानवें-छयानवें अङ्गुल प्रमाण होते हैं।

सत्तानवां समवाय

मंदरस्स णं पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरमंताओ गोथूभस्स णं आवास पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्ले चरमंते एस णं सत्ताणउइं जोयणसहस्साइ अबाहाए अंतरे पण्णत्ते एवं चउद्दिसिं वि। अट्ठण्हं कम्म पयडीणं सत्ताणउइं उत्तरपयडीओ पण्णत्ताओ। हरिसेणे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी देसूणाइं सत्ताणउइं वाससयाइं अगारमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता णं जाव पव्वइए ॥ ९७ ॥

कठिन शब्दार्थ - अट्ठण्हं कम्मपयडीणं - आठ कर्मों की प्रकृतियाँ, **सत्ताणउइं** - ९७, **उत्तरपयडीओ** - उत्तर प्रकृतियाँ ।

भावार्थ - मेरु पर्वत के पश्चिम के चरमान्त से गोस्थूभ नामक आवास पर्वत के पश्चिम चरमान्त तक ९७ हजार योजन अन्तर कहा गया है। इसी तरह चारों दिशाओं में अर्थात् दक्षिण में दगभास, पश्चिम में शंख और उत्तर में दगसीम पर्वतों का अन्तर जानना चाहिए। आठ कर्मों की ९७ उत्तर प्रकृतियाँ कही गई हैं अर्थात् ज्ञानावरणीय की ५, दर्शनावरणीय की ९, वेदनीय की २, मोहनीय की २८, आयु की ४, नाम कर्म की ४२, गोत्र कर्म की २ और अन्तराय कर्म की ५ ये सब मिल कर ९७ हुई। हरिषेण नामक दसवां चक्रवर्ती राजा ९७०० वर्ष से कुछ कम गृहस्थवास में रह कर मुण्डित होकर यावत् प्रव्रजित हुए ॥ ९७ ॥

विवेचन - इस अवसर्पिणी काल के १० वें चक्रवर्ती का नाम हरिषेण है। वह ९७०० वर्ष में कुछ कम गृहस्थ अवस्था में रहे इसके बाद चक्रवर्ती पद को छोड़ कर दीक्षा अंगीकार की। ३०० वर्ष से कुछ अधिक दीक्षा पर्याय का पालन कर इस प्रकार दस हजार वर्ष का सम्पूर्ण आयुष्य भोग कर सिद्ध, बुद्ध यावत् मुक्त हुए।

अट्ठानवां समवाय

णंदण वणस्स णं उवरिल्लाओ चरमंताओ पंडुय वणस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं अट्ठाणउइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। मंदरस्स णं पव्वयस्स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पच्चत्थिमिल्लाओ चरमंताओ गोथूभस्स आवास पव्वयस्स पुरच्छिमिल्ले चरमंते एस णं अट्ठाणउइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते एवं चउद्दिसिं वि। दाहिण भरहड्ढस्स णं धणुपिट्ठे अट्ठाणउइं जोयणसयाइं किंचूणाइं आयामेणं पण्णत्ते। उत्तराओ णं कट्ठाओ सूरिए पढमं छम्मासं अयमाणे एगूणपण्णासइमे मंडलगए अट्ठाणउइं एकसट्ठिभागे मुहुत्तस्स दिवस खेत्तस्स णिवुड्ढित्ता रयणि खेत्तस्स अभिणिवुड्ढित्ता णं सूरिए चार चरइ। दक्खिणाओ णं कट्ठाओ सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे एगूणपण्णाइसमे मंडलगए अट्ठाणउइं एकसट्ठिभाए मुहुत्तस्स रयणि खेत्तस्स णिवुड्ढित्ता दिवस खेत्तस्स अभिणिवुड्ढित्ता णं सूरिए चारं चरइ। रेवई पढम जेट्ठा पज्जवसाणाणं एगूणवीसाए णक्खत्ताणं अट्ठाणउइं ताराओ तारग्गेणं पण्णत्ताओ ॥ ९८॥

कठिन शब्दार्थ - पंडुय वणस्स - पण्डक वन के, **दाहिणभरहड्ढस्स** - दक्षिण भरतार्द्ध का, **रेवई पढम जेट्ठा पज्जवसाणाणं** - रेवती से लेकर ज्येष्ठा नक्षत्र तक ।

भावार्थ - नन्दन वन के ऊपर के चरमान्त से पण्डक वन के नीचे के चरमान्त तक ९८ हजार योजन का अन्तर कहा गया है अर्थात् मेरु पर्वत एक लाख योजन का है, उसमें से एक हजार योजन जमीन में है और जमीन से ५०० योजन की ऊंचाई पर नन्दन वन है, नन्दन वन में ५०० योजन के कूट हैं, इस प्रकार २ हजार योजन निकाल देने पर ९८ हजार योजन का अन्तर रहता है। मेरु पर्वत के पश्चिम के चरमान्त से गोस्थूभ आवास पर्वत के पूर्व चरमान्त तक ९८ हजार योजन का अन्तर कहा गया है। इसी प्रकार चारों दिशाओं में जानना चाहिए। दक्षिण भरतार्द्ध का धनुपृष्ठ देशोन ९८०० योजन का लम्बा कहा गया है। उत्तर दिशा से सूर्य प्रथम छह मास भ्रमण करता हुआ जब उनपचासवें मण्डल में जाता है तब एक मुहूर्त के इकसठिये अट्ठाणवें भाग ($\frac{६१}{९८}$) दिन को कम करके और रात्रि को बढ़ा कर सूर्य भ्रमण करता है। दक्षिण दिशा से दूसरे छह महीने भ्रमण करता हुआ सूर्य जब उनपचासवें मण्डल में जाता है तब मुहूर्त्त के इगसठिये अट्ठानवें भाग ($\frac{६१}{९८}$) रात्रि को कम करके और दिन को बढ़ा कर सूर्य भ्रमण करता है अर्थात् जब सूर्य पहले छह मास में दक्षिणायन में भ्रमण करता है तब दिन छोटा होता जाता है और रात्रि बढ़ती जाती है। जब दूसरे छह मास में सूर्य उत्तरायण में भ्रमण करता है तब रात्रि छोटी होती जाती है और दिन बढ़ता जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रेवती नक्षत्र है प्रथम जिनमें और ज्येष्ठा नक्षत्र है पर्यवसान अन्त में जिनके अर्थात् रेवती से लेकर ज्येष्ठा नक्षत्र तक १९ नक्षत्रों के ९८ तारा कहे गये हैं ॥ ९८ ॥

विवेचन - ताराओं की संख्या इस प्रकार है - रेवती के ३२, अश्विनी के ३, भरणी के ३, कृतिका के ६, रोहिणी के ५, मृगशिरा के ३, आर्द्रा का १, पुनर्वसु के ५, पुष्य के ३, अश्लेषा के ६, मघा के ७, पूर्वाफाल्गुनी के २, उत्तराफाल्गुनी के २, हस्त के ५, चित्रा का १, स्वाति का १, विशाखा के ५, अनुराधा के ४, ज्येष्ठा के ३, ये उन्नीस नक्षत्रों के सब तारे मिलाने पर कुल ९७ होते हैं। शास्त्रकार ९८ बतलाते हैं। अतः इस मूलपाठ की संगति बिठाने के लिये टीकाकार लिखते हैं कि - सूर्यप्रज्ञप्ति में अनुराधा नक्षत्र के ५ तारे बतलाये गये हैं. किन्तु समवायांग के चौथे समवाय में और ठाणाङ्ग (स्थानाङ्ग) के चौथे ठाणे में अनुराधा के ४ तारे बतलाये गये हैं। इसलिए यहाँ पर सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र के अनुसार अनुराधा नक्षत्र के ५ तारे गिनने चाहिए जिससे इन उन्नीस नक्षत्रों के ९८ ताराओं की संख्या ठीक मिल जाती है और शास्त्र के मूल पाठ की संगति भी ठीक बैठ जाती है।

निन्यानवां समवाय

मंदरे णं पव्वए णवणउइं जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते। णंदण वणस्स णं पुरत्थिमिल्लाओ चरमंताओ पच्चत्थिमिल्ले चरमंते एस णं णवणउइं जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते एवं दक्खिणिल्लाओ चरमंताओ उत्तरिल्ले चरमंते एस णं णवणउइं जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। उत्तरे पढमे सूरिय मंडले णवणउइं जोयण सहस्साइं साइरेगाइं आयाम विक्खंभेणं पण्णत्ते। दोच्चे सूरिय मंडले णवणउइं जोयण सहस्साइं साहियाइं आयाम विक्खंभेणं पण्णत्ते। तइए सूरिय मंडले णवणउइं जोयणसहस्साइं साहियाइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अंजणस्स कंडस्स हेठिल्लाओ चरमंताओ वाणमंतर भोमेज्ज विहाराणं उवरिमंते चरमंते एस णं णवणउइं जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ॥ ९९ ॥

कठिन शब्दार्थ - णवणउइं जोयण सहस्साइं - ९९ हजार योजन, **अंजण कंडस्स**- अञ्जन काण्ड के, **वाणमंतर भोमेज्ज विहाराणं** - भोमेयक - नगर के आकार आवासों में रहने वाले वाणव्यंतर देवों के क्रीडा स्थान ।

भावार्थ - मेरु पर्वत सम धरती तल से ९९ हजार योजन ऊंचा कहा गया है। नन्दन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वन के पूर्व के चरमान्त से पश्चिम के चरमान्त तक ९९०० योजन का अन्तर कहा गया है। इसी प्रकार नन्दन वन के दक्षिण के चरमान्त से उत्तर के चरमान्त तक ९९०० योजन का अन्तर कहा गया है। उत्तर दिशा में सूर्य का प्रथम मण्डल ९९ हजार सातिरेक - कुछ अधिक योजन लम्बा चौड़ा कहा गया है अर्थात् ९९६४० योजन लम्बा चौड़ा कहा गया है। सूर्य का दूसरा मण्डल ९९ हजार साधिक - कुछ अधिक योजन अर्थात् ९९६४५ योजन लम्बा चौड़ा कहा गया है। सूर्य का तीसरा मण्डल ९९ हजार साधिक - कुछ अधिक अर्थात् $९९६५१\frac{९}{६१}$ योजन लम्बा चौड़ा कहा गया है। इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक के अञ्जन काण्ड के नीचे के चरमान्त से वाणव्यन्तर देवों के क्रीड़ा स्थान के ऊपर के चरमान्त तक ९९०० योजन का अन्तर कहा गया है ॥ ९९ ॥

विवेचन - मेरु पर्वत भूतल पर दश हजार योजन विस्तार वाला है और पांच सौ योजन की ऊंचाई पर अवस्थित नन्दनवन के स्थान पर नौ हजार नौ सौ चौपन योजन तथा एक योजन के ग्यारह भागों में से छह भाग प्रमाण ($९९५४\frac{६}{११}$) मेरु का बाह्य विस्तार है और भीतरी विस्तार उन्यासी सौ चौपन योजन और एक योजन के ग्यारह भागों में से छह भाग प्रमाण है ($७९५४\frac{६}{११}$)। पांच सौ योजन नन्दनवन की चौड़ाई है। इस प्रकार मेरु का आभ्यन्तर विस्तार और दोनों और के नन्दनवन का पांच-पांच सौ योजन का विस्तार ये सब मिलाकर ($७९५४\frac{६}{११} + ५०० + ५०० = ८९५४\frac{६}{११}$) प्रायः सूत्रोक्त अन्तर सिद्ध हो जाता है।

सूर्य जिस आकाश-मार्ग से मेरु के चारों ओर परिभ्रमण करता है उसे सूर्य-मण्डल कहते हैं। जब वह उत्तर दिशा के सबसे पहले मण्डल पर परिभ्रमण करता है, तब उस मण्डल की गोलाकार रूप में लम्बाई निन्यानवें हजार छह सौ चालीस योजन (९९६४०) होती है। जब सूर्य दूसरे मण्डल पर परिभ्रमण करता है तब उसकी लम्बाई निन्यानवें हजार छह सौ पैंतालीस योजन और एक योजन के इकसठ भागों में से पैंतीस भाग प्रमाण ($९९६४५\frac{३५}{६१}$) होती है। प्रथम मण्डल से इस दूसरे मण्डल की पांच योजन और पैंतीस भाग इकसठ वृद्धि का कारण यह है कि एक मण्डल से दूसरे मण्डल का अन्तर दो दो योजन का है तथा सूर्य के विमान का विष्कम्भ एक योजन के इकसठ भागों में से अड़तालीस भाग प्रमाण है। इसे ($२\frac{४८}{६१}$)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दुगुना कर देने पर ($२\frac{४८}{६१} \times २ - ५\frac{३५}{६१}$) पांच योजन और एक योजन के इकसठ भागों में से पैंतीस भाग प्रमाण वृद्धि प्रथम मण्डल से दूसरे मण्डल की सिद्ध हो जाती है। इसी प्रकार दूसरे मण्डल के विष्कम्भ में $५\frac{३५}{६१}$ को मिला देने पर ($९९६४५\frac{३५}{६१} + ५\frac{३०}{६१}$) निन्यानवें हजार छह सौ इकावन योजन और एक योजन के इकसठ भागों में से नौ भाग-प्रमाण विष्कम्भ तीसरे मण्डल का निकल आता है। निन्यानवें हजार में ऊपर जो प्रथम मण्डल में ६४० योजन की, दूसरे मण्डल में $६४५\frac{३५}{६१}$ योजन की और तीसरे मण्डल में $६५१\frac{९}{६१}$ योजन की वृद्धि होती है, उसे सूत्र में "सातिरेक" और 'साधिक' पद से सूचित किया गया है, जिसका अर्थ निन्यानवें हजार योजन से कुछ अधिक होता है।

रत्नप्रभा पृथ्वी का प्रथम खरकाण्ड १६ हजार योजन का मोटा है। १६ हजार में १६ काण्ड हैं। प्रत्येक काण्ड १-१ हजार योजन का मोटा है। उसमें अञ्जन काण्ड १० वाँ है। उसका नीचे का भाग यहाँ से १० हजार योजन दूर है। प्रथम रत्नकाण्ड के प्रथम १०० योजनों के बाद व्यन्तर देवों के क्रीड़ा स्थान रूप नगर है। इन सौ को दस हजार में से घटा देने पर (१०,०००-१०० = ९९००) नौ हजार नौ सौ योजन का अन्तर सिद्ध हो जाता है।

सौ वां समवाय

दसदसमिया णं भिक्खुपडिमा एगेणं राइंदियसएणं अद्धछट्ठेहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव आराहिया वि भवइ । सयभिसया णक्खत्ते एक्कसय तारे पण्णत्ते। सुविही पुप्फदंते णं अरहा एगं धणूसयं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। पासे णं अरहा पुरिसादाणीए एक्कं वाससयं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे। एवं थेरे वि अज्जसुहुमे। सव्वे वि णं दीहवेयड्ढ पव्वया एगमेगं गाउयसयं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। सव्वे वि णं चुल्लहिमवंत सिहरी वासहर पव्वया एगमेगं जोयणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता, एगमेगं गाउयसयं उव्वेहेणं पण्णत्ता। सव्वेवि णं कंचणग पव्वया एगमेगं जोयणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता, एगमेगं गाउयसयं उव्वेहेणं पण्णत्ता एगमेगं जोयणसयं मूले विक्खंभेणं पण्णत्ता ॥ १०० ॥

कठिन शब्दार्थ - दसदसमिया भिक्खुपडिमा - दशदशमिका भिक्षु प्रतिमा, **अद्धछट्ठेहिं भिक्खासएहिं** - ५५० भिक्षा की दत्तियों से, **सयभिसया** - शतभिषक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - दशदशमिका भिक्षुप्रतिमा १०० एक सौ दिनों में ५५० भिक्षा की दत्तियों से सूत्रानुसार पूर्ण यावत् आराधित होती है। पहले दस दिन तक एक दत्ति आहार की और एक दत्ति पानी की ली जाती है। दूसरे दस दिन तक दो दत्ति आहार की और दो दत्ति पानी की ली जाती है। इस तरह क्रम से बढ़ाते हुए दसवें दस दिन दस दत्ति आहार की और दस दत्ति पानी की ली जाती है। इस तरह सब मिला कर १०० दिन और ५५० भिक्षा की दत्तियाँ होती हैं। शतभिषक् नक्षत्र एक सौ तारा वाला कहा गया है। नववें तीर्थङ्कर सुविधिनाथ स्वामी अपर नाम श्री पुष्पदंत स्वामी का शरीर एक सौ धनुष ऊंचा था। पुरुषों में आदरणीय तेईसवें तीर्थङ्कर श्री पार्श्वनाथ स्वामी एक सौ वर्ष की सम्पूर्ण आयु भोग कर सिद्ध बुद्ध यावत् सब दुःखों से मुक्त हुए। ये ३० वर्ष गृहस्थवास में रहे और ७० वर्ष साधु पर्याय में रहे। यह सब मिला कर १०० वर्ष की आयु होती है। इसी तरह श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पांचवें गणधर श्री सुधर्मास्वामी भी १०० वर्ष की सम्पूर्ण आयु भोग कर सिद्ध बुद्ध यावत् मुक्त हुए। ये ५० वर्ष गृहस्थवास में रहे, ४२ वर्ष छद्मस्थ अवस्था में और ८ वर्ष केवलिपर्याय में रहे। ये सब मिला कर १०० वर्ष की सम्पूर्ण आयु होती है। जम्बूद्वीप, धातकी खण्ड और अर्द्धपुष्कर द्वीप के सब दीर्घ वैताढ्य पर्वत १००-१०० गाऊ के (२५ योजन के) ऊंचे कहे गये हैं। सब क्षेत्रों के चुल्लहिमवंत और शिखरी पर्वत १००-१०० योजन के ऊंचे और १००-१०० गाऊ (कोस) के ऊंडे कहे गये हैं। सब कञ्चन पर्वत १००-१०० योजन के ऊंचे कहे गये हैं और १००-१०० गाऊ (कोस) के ऊंडे कहे गये हैं तथा मूल में १००-१०० योजन के चौड़े कहे गये हैं ॥ १०० ॥

यहाँ तक क्रमशः एक एक बढाते हुए १ से १०० तक समवाय कहे गये हैं। अब आगे फुटकर समवाय कहे जाते हैं -

विवेचन - तेईसवें तीर्थङ्कर श्री पार्श्वनाथ स्वामी ३० वर्ष गृहस्थ अवस्था में रह कर दीक्षा अंगीकार की। ७० वर्ष दीक्षा पालन की। ८४ दिन छद्मस्थ, इस प्रकार १०० वर्ष की आयु पूर्ण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए। देवकुरु उत्तरकुरु में क्रमशः व्यवस्थित पांच महा ह्रद (द्रह-सरोवर) हैं उन ह्रदों के दोनों तरफ १०-१० काञ्चनक पर्वत हैं। इस प्रकार जम्बूद्वीप में कुल मिलाकर २०० काञ्चनक पर्वत हैं। पांच ह्रदों (द्रहों) के नाम इस प्रकार हैं - १. नीलवंत द्रह २. ऐरावण द्रह ३. उत्तरकुरु द्रह ४. चंद द्रह ५. माल्यवन्त द्रह। इसी प्रकार देवकुरु के भी पांच द्रह हैं। किन्तु 'उत्तरकुरु' द्रह की जगह 'देवकुरु द्रह' कहना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनेकोत्तरिका वृद्धि वाले समवाय अर्थात्
प्रकीर्णक समवाय

चंदप्पभे णं अरहा दिवड्ढं धणुसयं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। आरणे कप्पे दिवड्ढं विमाणावाससयं पण्णत्तं। एवं अच्चुए वि ॥ १५० ॥

कठिन शब्दार्थ - दिवड्ढं धणुसयं - द्विअर्ध धनुशत १५० धनुष।

भावार्थ - आठवें तीर्थङ्कर श्री चन्द्रप्रभस्वामी का शरीर १५० धनुष ऊंचा था। ग्यारहवें आरण देवलोक में १५० विमान कहे गये हैं। इसी तरह बारहवें अच्युत देवलोक में भी १५० विमान कहे गये हैं॥ १५० ॥

सुपासे णं अरहा दो धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। सव्वे वि णं महाहिमवंत रुप्पी वासहर पव्वया दो दो जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। दो दो गाउयसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता। जंबुद्दीवे णं दीवे दो कंचण पव्वयसया पण्णत्ता ॥ २०० ॥

भावार्थ - सातवें तीर्थङ्कर श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी का शरीर २०० धनुष ऊंचा था। सब महाहिमवंत और रुक्मी पर्वत २००-२०० योजन ऊंचे और २००-२०० गाऊ (५० योजन) के ऊंडे कहे गये हैं। इस जम्बूद्वीप में २०० कञ्चन पर्वत कहे गये हैं अर्थात् १०० देवकुरु में और १०० उत्तरकुरु में ये दोनों मिला कर २०० हुए ॥ २०० ॥

पउमप्पभे णं अरहा अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। असुरकुमाराणं देवाणं पासाय वडिंसगा अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ॥ २५० ॥

कठिन शब्दार्थ - पासाय वडिंसगा - प्रासादावतंसक-सब महलों में अलङ्कार रूप सर्वश्रेष्ठ भवन।

भावार्थ - छठे तीर्थङ्कर श्री पद्मप्रभ स्वामी के शरीर की ऊंचाई २५० धनुष की थी। असुरकुमार देवों के प्रासादावतंसक-भवन २५० योजन ऊंचे कहे गये हैं ॥ २५० ॥

विवेचन - अवतंसक का अर्थ है आभूषण। प्रासाद का अर्थ है महल । सब महलों में आभूषण रूप अर्थात् सर्वश्रेष्ठ महल। चार गाऊ-कोस का एक योजन होता है।

सुमई णं अरहा तिण्णि धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। अरिट्ठणेमी णं अरहा तिण्णि वाससयाइं कुमारवास मज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता जाव पव्वइए। वेमाणियाणं देवाणं विमाण पागारा तिण्णि तिण्णि जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। समणस्स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णं भगवओ महावीरस्स तिण्णि सयाइं चोद्दसपुव्वीणं होत्था। पंचधणुसइयस्स णं अंतिमसारीरियस्स सिद्धिगयस्स साइरेगाइं तिण्णि धणुसयाइं जीवप्पएसोगाहणा पण्णत्ता।

कठिन शब्दार्थ - विमाणपागारा - विमान प्राकार (विमानों के कोट), **अंतिमसारीरियस्स**- अन्तिम शरीरी-चरम शरीरी जीवों के, **सिद्धिगयस्स** - मोक्ष जाने पर, **जीवप्पएसोगाहणा** - जीव प्रदेशों की अवगाहना, **साइरेगाइं** - कुछ अधिक।

भावार्थ - पांचवें तीर्थङ्कर श्री सुमतिनाथ भगवान् के शरीर की ऊंचाई ३०० धनुष की थी। बाईसवें तीर्थङ्कर श्री अरिष्टनेमिनाथ स्वामी ३०० वर्ष कुमारावस्था में रह कर मुण्डित यावत् प्रव्रजित हुए - दीक्षा अङ्गीकार की। वैमानिक देवों के विमानप्राकार-विमानों के कोट ३००-३०० योजन के ऊंचे कहे गये हैं। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ३०० चौदह पूर्वधारी थे। जिन चरमशरीरी जीवों के शरीर की ऊंचाई पांच सौ धनुष होती है। मोक्ष में जाने पर उन जीवों के जीव प्रदेशों की अवगाहना ३०० धनुष से अधिक होती है अर्थात् ३३३ धनुष ३२ अंगुल (एक हाथ आठ अङ्गुल) प्रमाण होती है ॥ ३०० ॥

विवेचन - बाईसवें तीर्थङ्कर श्री अरिष्टनेमि भगवान् ३०० सौ वर्ष कुमार अवस्था में रहे। विवाह किये बिना ही दीक्षा अंगीकार की। ५४ दिन छद्मस्थ रहे ७०० सौ वर्ष श्रमण पर्याय का पालन कर एवं एक हजार वर्ष का सम्पूर्ण आयुष्य भोग कर सिद्ध, बुद्ध यावत् मुक्त हुए।

उसी भव में मोक्ष जाने वाले जीव चरम शरीरी कहलाते हैं। चरम शरीरी जीव के शरीर की जिनती ऊँचाई होती है तेरहवें गुणस्थान के अन्त में सूक्ष्म क्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान के बल से शरीर के रन्ध्रों (छिद्रों) को पूर्ण करने से शरीर का तीसरा भाग छोड़ कर अर्थात् कम करके आत्म प्रदेश घन हो जाते हैं अर्थात् शरीर की जितनी ऊँचाई थी उसका एक त्रि भाग कम करके, दो त्रि भाग शरीर के आत्मप्रदेशों की ऊंचाई रह जाती है। इस प्रकार सिद्धों की अवगाहना के ३ भेद होते हैं यथा - जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। उत्कृष्ट ५०० धनुष की अवगाहना वाले और जघन्य दो हाथ की अवगाहना वाले सिद्ध हो सकते हैं।

दो हाथ से कुछ अधिक अवगाहना वाले और ५०० धनुष से कुछ कम अवगाहना वाले सब चरम शरीरी जीव मध्यम अवगाहना वाले कहलाते हैं। किन्तु इतनी विशेषता है कि - तीर्थङ्कर भगवान् सात हाथ की अवगाहना से कम नहीं होते । इस प्रकार जघन्य अवगाहना के दो भेद हैं। सामान्य केवली की अपेक्षा सिद्धों की जघन्य अवगाहना एक हाथ आठ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अङ्गुल होती है और तीर्थङ्कर भगवन्तों की अपेक्षा सिद्धों की जघन्य अवगाहना चार हाथ सोलह अङ्गुल होती है। उववाई सूत्र की गाथाओं में यद्यपि इसको मध्यम अवगाहना कह दिया है किन्तु गाथाओं से ऊपर गद्य पाठ में तीर्थङ्कर भगवन्तों की जघन्य अवगाहना सात हाथ की कही है। इस अपेक्षा से तीर्थङ्करों के सिद्ध अवस्था की जघन्य अवगाहना चार हाथ सोलह अङ्गुल स्पष्ट हो जाती है। इसलिये सिद्ध भगवन्तों की जघन्य अवगाहना (सामान्य केवली की अपेक्षा और तीर्थङ्कर भगवान् की अपेक्षा से) दो प्रकार की कहनी चाहिए। उत्कृष्ट अवगाहना (सामान्य केवली और तीर्थङ्कर दोनों की अपेक्षा) पांच सौ धनुष शरीर की ऊँचाई की अपेक्षा सिद्ध भगवन्तों की उत्कृष्ट अवगाहना ३३३ धनुष तथा एक धनुष का $\frac{२}{३}$ भाग अर्थात् ३२ अङ्गुल (एक हाथ आठ अङ्गुल) की होती है। एक हाथ आठ अङ्गुल से कुछ अधिक से लेकर ३३३ धनुष ३२ अङ्गुल से कुछ कम तक सब मध्यम अवगाहना कहलाती है। निष्कर्ष यह है कि – सामान्य केवलियों की अपेक्षा जघन्य अवगाहना एक हाथ आठ अङ्गुल और तीर्थङ्कर भगवन्तों की अपेक्षा जघन्य अवगाहना चार हाथ सोलह अङ्गुल तथा उत्कृष्ट अवगाहना ३३३ धनुष ३२ अङ्गुल की होती है। इस के बीच की सब मध्यम अवगाहना कहलाती है।

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अद्धुट्ठ सयाइं चोद्दसपुव्वीणं संपया होत्था। अभिणंदणे णं अरहा अद्धुट्ठाइं धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ॥ ३५० ॥

भावार्थ – पुरुषादानीय-पुरुषों में आदरणीय भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के ३५० चौदह पूर्वधारी साधु थे। भगवान् अभिनन्दन स्वामी के शरीर की ऊंचाई ३५० धनुष थी ॥ ३५० ॥

संभवे णं अरहा चत्तारि धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। सव्वे वि णं णिसढ णीलवंता वासहर पव्वया चत्तारि चत्तारि जोयण सयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, चत्तारि चत्तारि गाउयसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता। सव्वे वि णं वक्खार पव्वया णिसढ णीलवंत वासहर पव्वया चत्तारि चत्तारि जोयण सयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, चत्तारि चत्तारि गाउयसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता। आणय पाणएसु दोसु कप्पेसु चत्तारि विमाणसया पण्णत्ता। समणस्स णं भगवओ महावीरस्स चत्तारि सया वाईणं सदेवमणुयासुरम्मि लोगम्मि वाए अपराजियाणं उक्कोसिया वाइसंपया होत्था ॥ ४०० ॥

कठिन शब्दार्थ – **वक्खार पव्वया** – वक्षस्कार पर्वत, **सदेवमणुयासुरम्मि** – देव और मनुष्यों के, **लोगम्मि** – लोक में, **वाए** – वाद में, **अपराजियाणं** – अपराजित।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - चौथे तीर्थङ्कर भगवान् सम्भवनाथ स्वामी के शरीर की ऊंचाई ४०० धनुष थी। सभी निषध और नीलवंत वर्षधर पर्वत ४००-४०० योजन के ऊंचे और ४००-४०० गाऊ (१०० योजन) के ऊंडे कहे गये हैं। सब वक्षस्कार पर्वत निषध और नीलवंत वर्षधर पर्वत के पास ४००-४०० योजन ऊंचे और ४००-४०० गाऊ (१०० योजन) धरती में ऊंडे कहे गये हैं। आणत और प्राणत इन दो देवलोकों में ४०० विमान कहे गये हैं। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के देव और मनुष्यों के लोक में अर्थात् परिषद में, वाद में अपराजित ४०० वादियों की उत्कृष्ट सम्पदा थी॥ ४०० ॥

विवेचन - अढ़ाई द्वीप में पांच निषध पर्वत हैं और पांच ही नीलवंत पर्वत हैं। वे सभी ४००-४०० योजन के ऊँचे हैं और ४००-४०० कोस ऊंडे जमीन के भीतर हैं। अर्थात् १०० योजन के ऊंडे हैं। पांच मेरु पर्वतों को छोड़ कर प्रायः यह नियम है कि जितने भी पर्वत हैं वे सब जितने योजन ऊंचे हैं उसका चौथाई भाग जमीन के अन्दर ऊंडे होते हैं।

निशीथचूर्णी पीठिका की ५२वीं गाथा में इस प्रकार वर्णन मिलता है -

अंजणग दहिमुखाणं, कुंडल रुयगं च मंदराणं च।
ओगो होउ सहस्सं, सेसापादं समोगाढा ॥ ५२॥

इससे अंजनक, दधिमुख दोनों वलयाकार पर्वतों को मेरु के समान हजार (१०००) योजन गहरा ही माना है। यह गाथा भी बहुलता की अपेक्षा से ही समझी जाती है। जो पर्वत गोपुच्छाकार हैं उनके चतुर्थांश गहराई की आवश्यकता नहीं रहती। हजार योजन गहराई मानने पर बाधा नहीं आती है। जो पल्याकार अर्थात् समान बाहाल्य वाले होते हैं, उनकी गहराई तो चतुर्थांश होती ही है। ऊपर दिए गए प्रायः शब्द में इन पर्वतों का भी वर्णन समझ लेना चाहिए। दशवें स्थान में कुंडल एवं रुचक पर्वत को हजार योजन गहरा, दस हजार का चौडा बताया है एवं समवायांग की टीका में चौरासी हजार योजन की ऊंचाई बताई है जो उचित ही प्रतीत होती है।

परमतावलम्बियों के साथ शास्त्रार्थ अर्थात् चर्चा करने को 'वाद' कहते हैं। वाद करने वाले को वादी कहते हैं। वाद भी एक प्रकार की लब्धि है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के चौदह हजार सन्तों में से ४०० सन्त ऐसे वादी थे, जो देव, मनुष्य और असुरों की सभा में किसी से भी पराजित नहीं होते थे।

अजिए णं अरहा अद्धपंचमाइं धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। सगरे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी अद्धपंचमाइं धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ॥ ४५० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - दूसरे तीर्थङ्कर श्री अजितनाथस्वामी के शरीर की ऊँचाई ४५० धनुष की थी। दूसरे चक्रवर्ती सगर राजा के शरीर की ऊंचाई ४५० धनुष की थी ॥ ४५० ॥

विवेचन - भावार्थ में स्पष्ट है।

सव्वे वि णं वक्खार पव्वया सीआ सीओयाओ महाणईओ मंदरपव्वएणं पंच पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, पंच पंच गाउयसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता। सव्वे वि णं वासहर कूडा पंच पंच जोणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, मूले पंच पंच जोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता। उसभे णं अरहा कोसलिए पंच धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। भरहे णं राया चाउरंत चक्कवट्टी पंच धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। सोमणस गंधमादण विज्जुप्पभ मालवंता णं वक्खार पव्वया णं मंदरपव्वए णं पंच पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, पंच पंच गाउयसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता। सव्वे वि णं वक्खार पव्वय कूडा हरि हरिस्सह कूडवज्जा पंच पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, मूले पंच पंच जोयणसयाइं आयामविक्खभेणं पण्णत्ता। सव्वे वि णं णंदणकूडा बलकूडवज्जा पंच पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, मूले पंच पंच जोयणसयाइं आयाम विक्खंभेणं पण्णत्ता। सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु विमाणा पंच पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ॥ ५०० ॥

कठिन शब्दार्थ - **पंच पंच जोयणसयाइं** - ५००-५०० योजन, **सीया सीओयाओ महाणईओ** - सीता, सीतोदा महानदियों के पास, **वासहरकूडा** - वर्षधर कूट।

भावार्थ - सब वक्षस्कार पर्वत शीता शीतोदा महा नदियों के पास और मेरु पर्वत के पास ५००-५०० योजन के ऊंचे तथा ५००-५०० गाऊ कोस धरती में ऊंडे कहे गये हैं। सब वर्षधर कूट ५००-५०० योजन ऊंचे और मूल में ५००-५०० योजन विस्तृत-चौड़े कहे गये हैं। कौशलिक भगवान् ऋषभदेव स्वामी का शरीर ५०० धनुष ऊंचा था। प्रथम चक्रवर्ती भरत महाराजा का शरीर ५०० धनुष ऊंचा था। सोमनस, गन्धमादन, विद्युत्प्रभ और मालवंत नामक चार वक्षस्कार पर्वत मेरु पर्वत के पास ५००-५०० योजन ऊंचे और ५००-५०० गाऊ धरती में ऊंडे कहे गये हैं। हरि और हरिस्सह इन दो कूटों को छोड़ कर बाकी सभी वक्षस्कार पर्वत कूट ५००-५०० योजन ऊंचे और मूल में ५००-५०० योजन लम्बे चौड़े कहे गये हैं। बलकूट को छोड़ कर बाकी सभी नन्दन वन के कूट ५००-५०० योजन ऊंचे और मूल में ५००-५००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

योजन लम्बे चौड़े कहे गये हैं। सौधर्म और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक में विमान ५००-५०० योजन ऊंचे कहे गये हैं ॥ ५०० ॥

विवेचन - अवसर्पिणी काल में जीवों का आयुष्य, बल, बुद्धि, पराक्रम, पुरुषार्थ, अवगाहना (शरीर की ऊंचाई) सब घटते-घटते जाते हैं। तदनुसार तीर्थङ्करों के शरीर की अवगाहना भी घटती जाती है। पहले तीर्थङ्कर के शरीर की ऊंचाई ५०० धनुष की होती है। फिर उनकी ऊंचाई के घटने का क्रम इस प्रकार है -

दूसरे से लेकर नवमें तीर्थङ्कर तक पचास-पचास धनुष घटती है। दसवें से चौदहवें तक दस-दस धनुष घटती है। पन्द्रहवें से लेकर बाईसवें तक पांच-पांच धनुष घटती है। फिर ऊंचाई धनुषों की नहीं किन्तु हाथ परिमाण रह जाती है। यथा -

(१) पहले तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव के शरीर की ऊंचाई ५०० धनुष की थी, (२) ४५० (३) ४०० (४) ३५० (५) ३०० (६) २५० (७) २०० (८) १५० (९) १०० (१०) ९० (११) ८० (१२) ७० (१३) ६० (१४) ५० (१५) ४५ (१६) ४० (१७) ३५ (१८) ३० (१९) २५ (२०) २० (२१) १५ (२२) १० धनुष (२३) ९ हाथ (२४) ७ हाथ। इस प्रकार क्रमशः तीर्थङ्करों की अवगाहना होती है। उत्सर्पिणी काल के तीर्थङ्करों के शरीर की अवगाहना उपरोक्त नियम के अनुसार क्रमशः बढ़ती जाती है।

यथा - पहले तीर्थङ्कर की अवगाहना सात हाथ यावत् चौबीसवें तीर्थङ्कर की अवगाहना ५०० धनुष होती है। यह नियम पांच भरत और पांच ऐरवत इन दस क्षेत्रों में होने वाले तीर्थङ्करों के लिये है।

पांच महाविदेह क्षेत्रों में न तो उत्सर्पिणी काल होता है और न ही अवसर्पिणी काल होता है। किन्तु नो उत्सर्पिणी नो अवसर्पिणी काल होता है। अर्थात् सदा अवट्ठिया (अवस्थित) काल रहता है। वहाँ अवसर्पिणी काल के चौथे आरे सरीखे भाव रहते हैं (चौथा आरा नहीं)। इसलिये वहाँ के तीर्थङ्करों की अवगाहना घटती बढ़ती नहीं है। सब तीर्थङ्करों के शरीर की अवगाहना ५०० धनुष होती है और आयुष्य ८४ लाख पूर्व का होता है।

सणंकुमार माहिंदेसु कप्पेसु विमाणा छ जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। चुल्लहिमवंत कूडस्स उवरिल्लाओ चरमंताओ चुल्लहिमवंतस्स वासहर पव्वयस्स समधरणितले एस णं छ जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। एवं सिहरी कूडस्स वि। पासस्स णं अरहओ छ सया वाईणं सदेवमणुयासुरे लोए वाए अपराजियाणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उक्कोसिया वाईसंपया होत्था। अभिचंदे णं कुलगरे छ धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। वासुपुज्जे णं अरहा छहिं पुरिससएहिं सद्धिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ॥ ६०० ॥

कठिन शब्दार्थ - समधरणितले - समधरणीतल-पृथ्वी तल तक, **छ जोयणसयाइं** - छह सौ योजन।

भावार्थ - सनत्कुमार और माहेन्द्र नामक तीसरे और चौथे देवलोक में विमान ६०० योजन ऊंचे कहे गये हैं। चुल्लहिमवंत कूट के ऊपर के चरमान्त से चुल्लहिमवंत वर्षधर पर्वत के पृथ्वीतल तक ६०० योजन का अन्तर कहा गया है अर्थात् १०० योजन का चुल्लहिमवंत पर्वत ऊंचा है और उस पर ५०० योजन का कूट है। इसी तरह शिखरी कूट का अन्तर जानना चाहिए। तेईसवें तीर्थङ्कर पुरुषादानीय भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के मनुष्य और देवों की सभा में वाद विवाद में - शास्त्रार्थ में पराजित न होने वाले वादियों की उत्कृष्ट संख्या ६०० थी। इस अवसर्पिणी काल के चौथे कुलकर अभिचन्द्र के शरीर की ऊंचाई ६०० धनुष की थी। बारहवें तीर्थङ्कर श्री वासुपूज्य स्वामी ६०० पुरुषों के साथ मुण्डित होकर गृहवास को छोड़ कर प्रव्रजित हुए ॥ ६०० ॥

विवेचन - इस अवसर्पिणी काल में सात कुलकर हुए हैं। उनका नाम इस प्रकार हैं - १. विमलवाहन २. चक्षुष्मान, ३. यशस्वान ४. अभिचन्द्र ५. प्रश्रेणी ६. मरुदेव ७. नाभि। अभिचन्द्र कुलकर के शरीर की ऊंचाई ६५० धनुष थी।

बंभलंतएसु कप्पेसु विमाणा सत्त सत्त जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। समणस्स भगवओ महावीरस्स सत्त जिणसया होत्था। समणस्स भगवओ महावीरस्स सत्त वेउव्वियसया होत्था। अरिट्ठणेमी णं अरहा सत्तवाससयाइं देसूणाइं केवल परियागं पाउणित्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्व दुक्खप्पहीणे । महाहिमवंत कूडस्स णं उवरिल्लाओ चरमंताओ महाहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स समधरणितले एस णं सत्त जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते एवं रुप्पि कूडस्स वि ॥ ७०० ॥

कठिन शब्दार्थ - सत्त वाससयाइं देसूणाइं - देशोन ७०० वर्ष, **केवलि परियागं** - केवली पर्याय।

भावार्थ - ब्रह्मलोक और लान्तक, इन पांचवें और छठे देवलोक में विमान ७००-७०० योजन के ऊंचे कहे गये हैं। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ७०० केवलज्ञानी साधु थे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ७०० वैक्रिय लब्धिधारी साधु थे। बाईसवें तीर्थङ्कर श्री अरिष्ट नेमिनाथ स्वामी देशोन ७०० वर्ष अर्थात् ५४ दिन कम ७०० वर्ष केवली पर्याय का पालन करके सिद्ध बुद्ध यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए। महाहिमवंत कूट के ऊपर के चरमान्त से महाहिमवंत वर्षधर पर्वत के समतल भूमिभाग तक ७०० योजन का अन्तर कहा गया है अर्थात् महाहिमवंत पर्वत २०० योजन का ऊंचा है और उस पर ५०० योजन का कूट है, यह सब मिला कर ७०० योजन होता है। इसी तरह रुक्मीकूट के ऊपरी चरमान्त से रुक्मीपर्वत के समभूमि भाग तक ७०० योजन का अन्तर कहा गया है ॥ ७०० ॥

विवेचन - जम्बूद्वीप में छह वर्षधर पर्वत हैं। मेरु पर्वत से दक्षिण में चूलहिमवान्, महाहिमवान् और निषध ये तीन पर्वत हैं। इसी प्रकार मेरु पर्वत से उत्तर में शिखरी पर्वत, रुक्मी पर्वत और नील पर्वत। दक्षिण के पर्वतों की जितनी ऊँचाई है उतनी ही उत्तर के पर्वतों की भी है। इसलिये महाहिमवान् और रुक्मी दोनों पर्वतों की ऊँचाई सात-सात सौ योजन हैं।

महासुक्क सहस्सारेसु दोसु कप्पेसु विमाणा अट्ठ जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए पढमे कंडे अट्ठसु जोयणसएसु वाणमंतर भोमेज्ज विहारा पण्णत्ता। समणस्स भगवओ महावीरस्स अट्ठसया अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं गइकल्लाणाणं ठिइकल्लाणाणं आगमेसिभद्दाणं उक्कोसिया अणुत्तरोववाइयसंपया होत्था। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ अट्ठहिं जोयणसएहिं सूरिए चारं चरइ । अरहओ णं अरिट्ठणेमिस्स अट्ठसयाइं वाईणं सदेवमणुयासुरम्मि लोगम्मि वाए अपराजियाणं उक्कोसिया वाईसंपया होत्था ॥ ८०० ॥

कठिन शब्दार्थ - वाणमंतर भोमेज्ज विहारा - वाणव्यन्तर-भौमेय विहार-वाणव्यंतर देवों के विहारनगर - क्रीडा स्थान, **अणुत्तरोववाइयसंपया** - अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होने वाले श्रमणों की संपदा, **गइकल्लाणाणं** - जिनकी गति कल्याणकारी एवं उत्तम थी, **ठिइकल्लाणाणं** - जिनकी स्थिति कल्याणकारी एवं उत्तम थी, **आगमेसिभद्दाणं** - आगामी भद्रक-आगामी भव में मोक्ष प्राप्त करने वाले, **वाईणं वाईसंपया** - वादियों की वादी संपदा।

भावार्थ - महाशुक्र और सहस्रार नामक सातवें और आठवें, इन दो देवलोकों में विमान ८०० योजन के ऊंचे कहे गये हैं। इस रत्नप्रभा पृथ्वी का प्रथम रत्नकाण्ड जो कि एक हजार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

योजन का मोटा है उसमें एक सौ योजन ऊपर और एक सौ योजन नीचे छोड़ कर बीच के ८०० योजन में वाणव्यन्तर देवों के विहार नगर - क्रीडास्थान कहे गये हैं। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समय में उत्कृष्ट ८०० साधु अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होने वाले थे, जिनकी गति कल्याणकारी एवं उत्तम थी, जिनकी स्थिति कल्याणकारी एवं उत्तम थी और जो आगामी भद्रक थे अर्थात् वे वहाँ से चव कर आगामी भव में मोक्ष प्राप्त करेंगे। इस रत्नप्रभा पृथ्वी के समतल भूमिभाग से ८०० योजन ऊपर सूर्य भ्रमण करता है। बाईसवें तीर्थङ्कर श्री अरिष्टनेमिनाथ भगवान् के देवता और मनुष्यों की सभा में वाद में पराजित न होने वाले ८०० वादियों की वादिसंपदा थी ॥ ८०० ॥

विवेचन - रत्नप्रभा पृथ्वी के तीन कांड हैं - खरकाण्ड, अप्प बहुल काण्ड, पंक बहुलकाण्ड। पहले खरकाण्ड के सोलह विभाग हैं। इनमें से प्रथम रत्नकाण्ड १००० योजन का मोटा है। उसके १०० योजन ऊपर और सौ योजन नीचे छोड़ कर बीच के ८०० योजन में वाणव्यन्तर देवों के आवास हैं। ये नगर के आकार वाले हैं। ये वाणव्यन्तर देवों के क्रीडास्थान हैं।

समतल भूमिभाग से ७९० योजन ऊपर जाने पर तारामण्डल है। वह मोटाई में ११० योजन मोटा है। चौड़ाई में तो असंख्याता योजन चौड़ा है। आठ सौ योजन पर सूर्य मण्डल है वह $\frac{४८}{६१}$ योजन लम्बा-चौड़ा (एक योजन में $\frac{१३}{६१}$ योजन कम है) तथा $\frac{२४}{६१}$ योजन मोटा है। सूर्य विमान को १६००० देव चारों दिशाओं में हाथी, बैल, घोडा, सिंह का वैक्रिय रूप धारण करके उठाते हैं।

आगमों में सूर्य विमान को भी सूर्य मंडल के नाम से बताया है। विमान को मंडल मानकर सूर्य के गति क्षेत्र को भी उपचार से जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में मंडल बताया है। सूर्य मंडल आदि की लम्बाई-चौडाई-मोटाई का वर्णन जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के सातवें वक्षस्कार में बताया गया है।

सूर्य विमान से ८० योजन ऊपर जाने पर चन्द्र विमान आता है। वह $\frac{५६}{६१}$ योजन लम्बा-चौड़ा और $\frac{२८}{६१}$ योजन मोटा है। चन्द्र विमान को भी १६००० देव उठाते हैं। वे देव गति-रतिक व गति-प्रिय हैं इसलिये वे निरंतर गति करते रहते हैं। ८८४ योजन पर नक्षत्र विमान आता है। ८८८ योजन पर बुध का विमान आता है। ८९१ योजन पर शुक्र और ८९४ पर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बृहस्पति का विमान आता है। ८९७ योजन पर मंगल का विमान और ९०० योजन की ऊंचाई पर शनैश्चर का विमान आता है।

जो तथाकथित वैज्ञानिक लोग यह कहते हैं कि - हम चन्द्र विमान पर तो पहुँच गये हैं पर तारा विमान तो अभी बहुत दूर हैं। यह उन वैज्ञानिकों का कथन जैन सिद्धान्त से मेल नहीं खाता है। क्योंकि सर्व प्रथम तारामण्डल, फिर सूर्यमण्डल आता है फिर चन्द्रमण्डल आता है। अतः वैज्ञानिक किसी चमकीले पहाड पर पहुँचे होंगे, ऐसा अनुमान है। क्योंकि वहीं पर मिट्टी मिल सकती है। चन्द्रमण्डल तो रत्नों का है वहा पर मिट्टी नहीं है।

आणय पाणय आरण अच्चुएसु कप्पेसु विमाणा णव णव जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। णिसढकूडस्स णं उवरिल्लाओ सिहरतलाओ णिसढस्स वासहरपव्वयस्स समधरणितले एस णं णव जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते, एवं णीलवंत कूडस्स वि। विमलवाहणे णं कुलगरे णव धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमि भागाओ णवहिं जोयणसएहिं सव्वुवरिमे ताराऱूवे चारं चरइ। णिसढस्स णं वासहरपव्वयस्स उवरिल्लाओ सिहरतलाओ इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए पढमस्स कंडस्स बहुमज्झदेसभाए एस णं णव जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते, एवं णीलवंतस्स वि ॥ ९०० ॥

कठिन शब्दार्थ - णिसढ कूडस्स - निषध कूट के, **उवरिल्लाओ सिहरतलाओ** - ऊपर के शिखर तल से ।

भावार्थ - आणत, प्राणत, आरण और अच्युत नामक नववें, दसवें, ग्यारहवें और बारहवें इन चार देवलोकों में विमान ९००-९०० योजन के ऊंचे कहे गये हैं। निषध कूट के ऊपर के शिखर से निषध पर्वत के समभूमिभाग तक ९०० योजन का अन्तर कहा गया है अर्थात् निषध पर्वत समतल भूमि से ४०० योजन ऊंचा है और उस पर ५०० योजन का कूट है। इस प्रकार समतल भूमिभाग से कूट के शिखर तक ९०० योजन का अन्तर होता है। इसी प्रकार नीलवंत कूट के शिखर का इस समतल भूमि भाग से ९०० योजन का अन्तर है। इस अवसर्पिणी काल में प्रथम कुलकर श्री विमलवाहन के शरीर की ऊंचाई ९०० धनुष की थी। इस रत्नप्रभा पृथ्वी के समतल भूमि भाग से ९०० योजन ऊपर सर्वोपरिम-ऊपर का तारामण्डल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिभ्रमण करता है। निषध पर्वत के ऊपर के शिखर से इस रत्नप्रभा पृथ्वी के प्रथम काण्ड के मध्य भाग तक ९०० योजन का अन्तर कहा गया है। अर्थात् रत्नप्रभा पृथ्वी का प्रथम काण्ड १००० योजन का मोटा है, इसलिए उसका मध्य भाग ५०० योजन का हुआ और समतल भूमि से ४०० योजन निषध पर्वत ऊंचा है, इस प्रकार ९०० योजन का अन्तर होता है। इसी प्रकार नीलवंत पर्वत के ऊपरी शिखर से रत्नप्रभा के प्रथम काण्ड के मध्य भाग तक ९०० योजन का अन्तर होता है ॥ ९०० ॥

विवेचन - भावार्थ में सभी विषय स्पष्ट कर दिया गया है।

सव्वे वि णं गेविज्ज विमाणा दस दस जोयण सयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। सव्वे वि णं जमग पव्वया दस दस जोयण सयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता, दस दस गाउय सयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता। मूले दस दस जोयण सयाइं आयाम विक्खंभेणं पण्णत्ता, एवं चित्त विचित्त कूडा वि भाणियव्वा। सव्वे वि णं वट्टवेयड्ढ पव्वया दस दस जोयण सयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता, दस दस गाउय सयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता, मूले दस दस जोयण सयाइं आयाम विक्खंभेणं पण्णत्ता, सव्वत्थ समा पल्लग संठाण संठिया पण्णत्ता। सव्वे वि णं हरि हरिस्सह कूडा वक्खार कूडवज्जा दस दस जोयण सयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता, मूले दस दस जोयण सयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता, एवं बल कूडा वि णंदण कूडवज्जा। अरहावि अरिट्ठणेमी दस वास सयाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे। पासस्स णं अरहओ दस सयाइं जिणाणं होत्था, पासस्स णं अरहओ दस अंतेवासी सयाइं काल गयाइं जाव सव्वदुक्ख प्पहीणाइं। पउम दह पुंडरीय द्दहा य दस दस जोयण सयाइं आयामेणं पण्णत्ता ॥ १००० ॥

कठिन शब्दार्थ - **गेविज्ज विमाणा** - ग्रैवेयक विमान, **जमग पव्वया** - यमक पर्वत, **सव्वत्थसमा** - सब जगह समान, **पल्लग संठाण संठिया** - पल्यंक संस्थान संस्थित - पाला के संस्थान वाले ।

भावार्थ - सभी ग्रैवेयक विमान १०००-१००० योजन के ऊंचे कहे गये हैं। सभी यमक पर्वत नीलवंत पर्वत से दक्षिण के उत्तर कुरु क्षेत्र में सीता नदी के दोनों तरफ दो यमक पर्वत हैं, इसी तरह धातकीखण्ड में चार और अर्द्धपुष्करवर द्वीप में चार पर्वत हैं, इस तरह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दस यमक पर्वत हैं, वे सभी १०००-१००० योजन के ऊंचे कहे गये हैं। १०००-१००० गाऊ (कोस) धरती में ऊंडे कहे गये हैं और मूल में १०००-१००० योजन लम्बे चौड़े कहे गये हैं। इसी तरह निषध पर्वत से उत्तर में पांच देवकुरु क्षेत्र की सीतोदा नदी के दोनों तरफ दस चित्र कूट और दस विचित्र कूट भी १०००-१००० योजन ऊंचे १०००-१००० गाऊ ऊंडे और १०००-१००० योजन मूल में लम्बे चौड़े कहे गये हैं। सब वृत्त (गोल) वैताढ्य पर्वत अर्थात् जम्बूद्वीप में हरिवर्ष में १, रम्यक वर्ष में १ हैमवत में १, ऐरणयवत में १, इस प्रकार जम्बूद्वीप में ४ वृत्त वैताढय पर्वत हैं, धातकीखण्ड में ८ और अर्द्धपुष्कर वर द्वीप में ८ हैं, सब मिला कर २० वृत्त वैताढ्य पर्वत हैं, वे सभी १०००-१००० योजन ऊंचे १०००-१००० गाऊ धरती में ऊंडे १०००-१००० योजन मूल में लम्बे चौड़े और जब जगह समान पाला के संस्थान वाले कहे गये हैं। वक्षस्कार कूट को छोड़ कर बाकी सभी हरिकूट और हरिस्सह कूट १०००-१००० योजन ऊंचे और १०००-१००० योजन मूल में चौड़े कहे गये हैं। इसी तरह नन्दन कूट को छोड़ कर शेष बल कूट भी १०००-१००० योजन के ऊंचे और १०००-१००० योजन मूल में चौड़े कहे गये हैं। बाईसवें तीर्थङ्कर भगवान् अरिष्टनेमिनाथ स्वामी १००० वर्ष की सम्पूर्ण आयु भोग कर सिद्ध बुद्ध यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए। तेईसवें तीर्थङ्कर पुरुषादानीय भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के १००० केवलज्ञानी साधु थे। पार्श्वनाथ भगवान् के १००० शिष्य मोक्ष गये यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए। पद्म द्रह और पुण्डरीक द्रह १०००-१००० योजन लम्बे कहे गये हैं।। १००० ॥

विवेचन - नीलवंत वर्षधर पर्वत के दक्षिण में सीता महानदी के दोनों किनारों पर उत्तरकुरु क्षेत्र में यमक नाम के दो पर्वत हैं। इसी प्रकार निषध पर्वत के उत्तर में सीतोदा महानदी के दोनों किनारों पर देवकुरु क्षेत्र में चित्र और विचित्र नाम के दो पर्वत हैं। अढाई द्वीप में पांच सीता महानदी और पांच सीतोदा महानदी इस प्रकार दस महानदियाँ हैं । उनके दस-दस यमक कूटों का निर्देश इस सूत्र में किया गया है। वे सभी १००० योजन के ऊँचे हैं तथा एक एक हजार कोस अर्थात २५० योजन भूमि में ऊंडे (गहरे) हैं और गोलाकार होने से सर्वत्र एक एक हजार योजन का आयामविष्कंभ (लम्बाई × चौड़ाई) है।

बाईसवें तीर्थङ्कर भगवान् अरिष्टनेमिनाथ तीन सौ वर्ष कुमारावस्था (गृहस्थ) में रहे। फिर अविवाहित ही दीक्षित हुए, ५४ दिन छद्मस्थ रहे । ५४ दिन कम ७०० वर्ष भवस्थ केवली रहे। इस प्रकार एक हजार वर्ष का सम्पूर्ण आयुष्य भोग कर सिद्ध, बुद्ध यावत् मुक्त हुए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं विमाणा एक्कारस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। पासस्स णं अरहओ इक्कारससयाइं वेउव्वियाणं होत्था ॥ ११००॥ महापउम महापुंडरीय दहाणं दो दो जोयण सहस्साइं आयामेणं पण्णत्ता।। २०००॥ इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए वइरकंडस्स उवरिल्लाओ चरमंताओ लोहियक्ख कंडस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं तिण्णि जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ॥३०००॥ तिगिच्छि केसरी दहाणं चत्तारि चत्तारि जोयण सहस्साइं आयामेणं पण्णत्ता।। ४०००।। धरणितले मंदरस्स णं पव्वयस्स बहुमज्झदेसभाए रुयग णाभीओ चउद्दिसिं पंच पंच जोयण सहस्साइं अबाहाए अंतरे मंदरपव्वए पण्णत्ते ॥ ५०००॥

कठिन शब्दार्थ - वइरकंडस्स - वज्रकांड के, **लोहियक्ख कंडस्स** - लोहिताक्ष कांड के, **तिगिच्छि केसरीद्दहा** - तिगिच्छि और केसरी द्रह, **रुयग णाभीओ** - रुचक नाभि प्रदेश।

भावार्थ - अनुत्तरौपपातिक देवों के विमान ११०० योजन ऊंचे कहे गये हैं। भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के ११०० वैक्रिय लब्धिधारी साधु थे ॥ ११०० ॥ महापद्म और महापुण्डरीक द्रह दो दो हजार योजन लम्बे कहे गये हैं ॥ २००० ॥ इस रत्नप्रभा पृथ्वी के वज्र काण्ड के ऊपर के चरमान्त से लोहिताक्ष काण्ड के नीचे के चरमान्त तक तीन हजार योजन का अन्तर कहा गया है ॥ ३००० ॥ तिगिच्छि और केसरी द्रह चार चार हजार योजन लम्बे कहे गये हैं ॥ ४००० ॥ इस पृथ्वी पर मेरु पर्वत के ठीक बीच में रुचक नाभिप्रदेश हैं। वहाँ से चारों दिशाओं में मेरुपर्वत तक पांच पांच हजार योजन का अन्तर कहा गया है अर्थात् मेरु पर्वत मूल में दस हजार योजन चौड़ा है। उसके ठीक बीच में रुचक प्रदेश हैं। इसलिए वहाँ से चारों दिशाओं में पांच पांच हजार योजन का अन्तर होता है ॥ ५००० ॥

विवेचन - मेरु पर्वत समतल भूमि भाग पर दस हजार योजन का चौड़ा है। उसके ठीक मध्य भाग में गोस्तनाकार चार रुचक प्रदेश ऊपर की तरफ और चार नीचे की तरफ हैं वहीं से चार दिशा और चार विदिशा तथा ऊपर और नीचे इस प्रकार दश दिशाओं का प्रादुर्भाव होता है। उन आठ रुचक प्रदेशों से चारों तरफ पांच-पांच हजार योजन तक मेरु पर्वत की सीमा है। इसी बात का उल्लेख इस सूत्र में किया गया है।

सहस्सारे णं कप्पे छ विमाणावास सहस्सा पण्णत्ता ॥ ६०००॥ इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए रयणस्स कंडस्स उवरिल्लाओ चरमंताओ पुलगस्स कंडस्स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं सत्त जोयण सहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।। ७००० ॥ हरिवासरम्मग वासा अट्ठ जोयण सहस्साइं साइरेगं वित्थरेणं पण्णत्ता ॥ ८००० ॥ दाहिणड्ढ भरहस्स णं जीवा पाईण पडीणायया दुहओ समुद्दं पुट्ठा णवजोयण सहस्साइं आयामेणं पण्णत्ता। अजियस्स णं अरहओ साइरेगाइं णव ओहिणाण सहस्साइं होत्था ॥ ९००० ॥ मंदरे णं पव्वए धरणी तले दस जोयण सहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ते ॥ १०००० ॥

कठिन शब्दार्थ - **वित्थरेणं** - विस्तृत, **दाहिणड्ढ भरहस्स** - दक्षिणार्द्ध भरत की, **पाईण पडीणायया** - पूर्व पश्चिम लम्बी, **पुट्ठा** - स्पर्श करती है।

भावार्थ - सहस्रार नामक आठवें देवलोक में ६००० विमान कहे गये हैं ॥ ६००० ॥ इस रत्नप्रभा पृथ्वी के पहले रत्न काण्ड के ऊपर के चरमान्त से सातवें पुलक काण्ड के नीचे के चरमान्त तक ७००० योजन का अन्तर कहा गया है ॥ ७००० ॥ हरिवर्ष और रम्यकवर्ष क्षेत्र ८००० योजन और एक कला के विस्तृत कहे गये हैं ॥ ८००० ॥ दक्षिणार्द्ध भरत की जीवा पूर्व पश्चिम लम्बी है और दोनों तरफ लवण समुद्र को स्पर्श करती है। वह ९००० योजन लम्बी कही गई है। अजितनाथ भगवान् के संघ में कुछ अधिक नौ हजार अवधिज्ञानी थे अर्थात् ९४०० अवधिज्ञानी थे।। ९००० ॥ समभूमि पर मेरु पर्वत १०००० योजन चौड़ा कहा गया है ॥ १०,०००॥

विवेचन - यहाँ पर दक्षिणार्द्ध भरत की जीवा ९००० योजन लम्बी बतलाई गई है। किन्तु दूसरी जगह ९७४८ योजन १२ कला बतलाई गई है। सो यह मतान्तर मालूम होता है।

जंबूद्दीवे णं दीवे एगं जोयण सयसहस्सं आयाम विक्खंभेणं पण्णत्ते ॥ १०००००॥ लवणे णं समुद्दे दो जोयण सयसहस्साइं चक्कवाल विक्खंभेणं पण्णत्ते ॥ २०००००॥ पासस्स णं अरहओ तिण्णि सयसाहस्सीओ सत्तावीसं च सहस्साइं उक्कोसिया साविया संपया होत्था ॥ ३००००० ॥ धायईखंडे णं दीवे चत्तारि जोयण सयसहस्साइं चक्कवाल विक्खंभे णं पण्णत्ते।। ४००००० ॥ लवणस्स णं समुद्दस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरमंताओ पच्चत्थिमिल्ले चरमंते एस णं पंच जोयण सयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ॥ ५००००० ॥

कठिन शब्दार्थ - **चक्कवाल विक्खंभेणं** - चक्रवाल विष्कंभ (विस्तार-चारों तरफ घिरा हुआ)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - असंख्यात द्वीप समुद्रों के मध्य में स्थित यह जम्बूद्वीप १००००० योजन का विस्तृत कहा गया है॥ १०००००॥ इस जम्बूद्वीप के चारों तरफ घिरे हुए लवणसमुद्र का चक्रवाल विष्कम्भ - विस्तार दो लाख योजन का कहा गया है ॥ २०००००॥ भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के उत्कृष्ट तीन लाख सत्ताईस हजार श्राविकाएं थी ॥ ३०००००॥ धातकीखण्ड द्वीप का चक्रवाल विष्कम्भ -विस्तार चार लाख योजन का कहा गया है॥ ४०००००॥ लवणसमुद्र के पूर्व के चरमान्त से पश्चिम के चरमान्त तक पांच लाख योजन का अन्तर कहा गया है अर्थात् पूर्व के लवणसमुद्र की चौड़ाई दो लाख योजन है और इसी तरह पश्चिम के लवणसमुद्र की चौड़ाई दो लाख योजन है और बीच में एक लाख योजन का जम्बूद्वीप है, इस प्रकार लवणसमुद्र के पूर्व के चरमान्त से पश्चिम के चरमान्त तक पांच लाख योजन का अन्तर है॥ ५००००० ॥

विवेचन - जैसे रथ के चक्र के मध्यभाग को छोड़ कर उसके आरों की चौड़ाई चारों तरफ एक सी होती है। उसी प्रकार जम्बूद्वीप लवणसमुद्र के मध्यभाग में अवस्थित होने से चक्र के मध्य भाग जैसा है। लवण समुद्र की चौडाई जम्बूद्वीप के चारों तरफ दो दो लाख योजन है अतः उसे चक्रवाल विष्कम्भ कहा गया है।

भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी छ पुव्व सयसहस्साइं रायमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ॥ ६०००००॥ जंबूद्दीवस्स णं दीवस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ धायईखंड चक्कवालस्स पच्चत्थिमिल्ले चरमंते सत्त जोयण सयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ॥ ७०००००॥ माहिंदे णं कप्पे अट्ठ विमाणावास सयसहस्साइं पण्णत्ताइं ॥ ८०००००॥ पुरिससीहे णं वासुदेवे दस वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता पंचमीए पुढवीए णेरइएसु णेरइयत्ताए उववण्णे ॥ १०००००० ॥

कठिन शब्दार्थ - **रायमज्झे वसित्ता** - राज्य में रह कर, **वेइयंताओ** - वेदिका से।

भावार्थ - प्रथम चक्रवर्ती श्री भरत महाराज ने छह लाख पूर्व तक राज्य में रह कर यानी राज्य भोग कर फिर मुण्डित होकर एवं गृहवास का त्याग कर दीक्षा अङ्गीकार की॥ ६०००००॥ इस जम्बूद्वीप की पूर्व दिशा की वेदिका से धातकी खण्ड चक्रवाल के पश्चिम के चरमान्त तक सात लाख योजन का अन्तर कहा गया है अर्थात् एक लाख योजन का जम्बूद्वीप है, दो लाख योजन का लवणसमुद्र है और चार लाख योजन का धातकीखण्ड

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वीप है, इस प्रकार कुल मिला कर सात लाख योजन हुए॥ ७०००००॥ माहेन्द्र नामक चौथे देवलोक में आठ लाख विमान कहे गये हैं॥ ८०००००॥ श्री धर्मनाथ स्वामी के समय में पुरुषसिंह नामक पांचवां वासुदेव दस लाख वर्ष का पूर्ण आयुष्य भोग कर पांचवीं नरक के नैरयिकों में नैरयिक रूप से उत्पन्न हुआ॥ १००००००॥

समणे भगवं महावीरे तित्थयर भवग्गहणाओ छट्ठे पोट्टिल भवग्गहणे एगं वासकोडिं सामण्ण परियागं पाउणित्ता सहस्सारे कप्पे सव्वट्ठविमाणे देवत्ताए उववण्णे ॥ १०००००००॥ उसभसिरिस्स भगवओ चरिमस्स य महावीर वद्धमाणस्स एगा सागरोवम कोडाकोडी अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ॥ १०००००००००००००००॥

कठिन शब्दार्थ - तित्थयर भवग्गहणाओ - तीर्थंकर भव ग्रहण करने से पूर्व।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी तीर्थङ्कर भवग्रहण करने से पूर्व छठे पोट्टिल के भव में एक करोड़ वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन कर सहस्रार नामक आठवें देवलोक के सर्वार्थविमान में देव रूप से उत्पन्न हुए ॥ १०००००००॥

विवेचन - छह भवों की गिनती टीकाकार ने इस प्रकार बतलाई है - (६) भगवान् महावीर स्वामी का जीव छठे भव में पोट्टिल नामक राजा हुआ था। राजपाट छोड़ कर दीक्षा अङ्गीकार की। एक करोड़ वर्ष तक संयम का पालन कर आठवें देवलोक में देव हुए। (५) यह पांचवां देव भव हुआ। (४) वहाँ से चव कर छत्राग्र नगर में नन्द राजा हुआ। राजपाट छोड़ कर दीक्षा अङ्गीकार की। एक लाख वर्ष तक संयम का पालन किया और मास मास खमण की तपस्या की अर्थात् ११८५६४५ मास खमण किये। (३) वहाँ से दसवें देवलोक के पुष्पोत्तर विमान में उत्पन्न हुए। (२) वहाँ से चव कर ब्राह्मण कुण्ड ग्राम में ऋषभदत्त ब्राह्मण की भार्या देवानन्दा की कुक्षि में आये। (१) वहाँ ८२ दिन रहने के बाद इन्द्र की आज्ञा से हरिनैगमेषी देव ने वहाँ से संहरण कर क्षत्रिय कुण्ड ग्राम नगर में सिद्धार्थ राजा की पटरानी श्री त्रिशला देवी की कुक्षि में रखे।

इस प्रकार पोट्टिल का भव छठा गिना गया है।

प्रथम तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव स्वामी से लेकर चौवीसवें तीर्थङ्कर भगवान् महावीर स्वामी तक बयालीस हजार से कुछ अधिक वर्ष कम एक कोडाकोडी सागरोपम का अन्तर कहा गया है ॥ १००००००००००००००॥

एक से लेकर क्रमशः बढ़ते हुए एक कोडाकोडी तक की संख्या कही गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बारह अंग सूत्र

अब बारह अङ्गसूत्रों के विषय का वर्णन किया जाता है -

दुवालसंगे गणिपिडगे पण्णत्ते तंजहा - आयारे सूयगडे ठाणे समवाए विवाहपण्णत्ती णायाधम्मकहाओ उवासगदसाओ अंतगडदसाओ अणुत्तरोववाइयदसाओ पण्हावागरणाइं विवागसुए दिट्ठिवाए ॥

कठिन शब्दार्थ - दुवालसंगे - बारह अंग सूत्र, **गणिपिडगे** - गणिपिटक-आचार्य के रत्न करण्ड के समान।

भावार्थ - बारह अङ्ग सूत्र गणिपिटक - आचार्य के रत्नकरण्ड के समान कहे गये हैं यथा - आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग, स्थानाङ्ग, समवायाङ्ग, व्याख्याप्रज्ञप्ति-भगवती सूत्र, ज्ञाताधर्मकथाङ्ग, उपासकदशाङ्ग, अन्तकृद्दशाङ्ग, अनुत्तरौपपातिकदशाङ्ग, प्रश्नव्याकरण, विपाकश्रुत, दृष्टिवाद।

से किं तं आयारे? आयारे णं समणाणं णिग्गंथाणं आयार गोयर विणय वेणइय ट्ठाण गमण चंकमण पमाण जोग जुंजण, भासा समिइ गुत्ति सेज्जोवहि भत्तपाण उग्गम उप्पायण एसणाविसोहि सुद्धासुद्धग्गहण वय णियम तवोवहाण सुप्पसत्थमाहिज्जइ, से समासओ पंचविहे पण्णत्ते तंजहा - णाणायारे, दंसणायारे, चरित्तायारे, तवायारे, वीरियायारे । आयारस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ णिज्जुत्तीओ। से णं अंगट्ठयाए पढमे अंगे, दो सुयक्खंधा, पणवीसं अज्झयणा, पंचासीइं उद्देसण काला, पंचासीइ समुद्देसण काला, अट्ठारस पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासया, कडा, णिबद्धा, णिकाइया, जिण पण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, णिदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति। से एवं आया, एवं णाया, एवं विण्णाया। एवं चरण-करण परूवणया आघविज्जइ पण्णविज्जइ परूविज्जइ दंसिज्जइ णिदंसिज्जइ उवदंसिज्जइ । से त्तं आयारे ॥

कठिन शब्दार्थ - आयार - आचार, **गोयर** - गोचर-भिक्षा ग्रहण करने की विधि, **वेणइय** - वैनयिक-विनय का फल, **जोगजुंजण** - योग योजन-स्वाध्याय प्रतिलेखना आदि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में अपनी आत्मा को जोड़ना, **सेज्जा** - शय्या, **उवहि** - उपधि-वस्त्र पात्रादि, **तवोवहाण** - तप उपधान, **सुप्पसत्थं** - सुप्रशस्त-उत्तम गुणों का, **समासओ** - संक्षेप से, **अणुओगदारा** - अनुयोगद्वार, **पडिवत्तीओ** - प्रतिपतियाँ, **वेढा** - वेढा-वेष्टक छन्द विशेष, **सिलोगा** - अनुष्टुप आदि श्लोक, **णिज्जुत्तीओ** - निर्युक्तियाँ, **सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा** - तीर्थङ्कर भगवान् द्वारा कहे हुए ये पदार्थ द्रव्य रूप से शाश्वत हैं, पर्याय रूप से कृत हैं, सूत्र रूप से गूंथे हुए हैं, निर्युक्ति हेतु उदाहरण द्वारा भली प्रकार कहे गये हैं, **आघविज्जंति**- सामान्य और विशेष रूप से कहे जाते हैं, **पण्णविज्जंति** - नामादि के द्वारा कथन किये जाते हैं, **परूविज्जंति** - स्वरूप बतलाया जाता है, **दंसिज्जंति** - दिखलाये जाते हैं, **उवदंसिज्जंति**- उपनय निगमन के द्वारा अथवा संपूर्ण नयों के अभिप्राय से बतलाये जाते हैं।

भावार्थ - शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन्! आचार किसको कहते हैं? भगवान् फरमाते हैं कि - श्रमण निर्ग्रन्थों के आचरण को आचार कहते हैं। आचाराङ्ग सूत्र में श्रमण निर्ग्रन्थों का ज्ञान दर्शन आदि आचार, गोचर-भिक्षा ग्रहण करने की विधि, विनय-ज्ञानादि का विनय, वैनयिक-विनय का फल-कर्मक्षयादि, स्थान-कायोत्सर्ग आदि करने का स्थान, गमन-विहार, चंक्रमण - एक उपाश्रय से दूसरे उपाश्रय में जाना अर्थात् शरीर के श्रम को दूर करने के लिए इधर उधर टहलना, प्रमाण-आहारादि का प्रमाण, योगयोजन - स्वाध्याय और प्रतिलेखना आदि में आत्मा को जोड़ना और उसमें उपयोग रखना, भाषा समिति आदि, मनोगुप्ति आदि, शय्या, उपधि - वस्त्र पात्रादि, आहार पानी, उद्गम के १६ दोष, उत्पादना के १६ दोष और एषणा के १० दोष, इन ४२ दोषों को टाल कर शुद्ध आहारादि को ग्रहण करना और अशुद्ध को छोड़ना, व्रत-मूल गुण, नियम-उत्तरगुण, तप उपधान - बारह प्रकार का तप, इत्यादि सुप्रशस्त उत्तम गुणों का कथन किया गया है। वह आचार संक्षेप से पांच प्रकार का कहा गया है यथा - ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तप आचार, वीर्याचार। आचारांग सूत्र की वाचना - सूत्रार्थप्रदान रूप वाचना संख्याता है, उपक्रम आदि अनुयोग द्वार संख्याता हैं, प्रतिपत्तियाँ - पदार्थों को जानने विधियाँ एवं मतान्तर संख्याता हैं, वेढा-वेष्टक छन्द विशेष संख्याता हैं, अनुष्टुप् आदि श्लोक संख्याता हैं, निर्युक्तियाँ अर्थ को युक्ति संगत बिठाने वाली एवं निक्षेप निर्युक्तियाँ संख्याता हैं। अङ्गों की अपेक्षा यह पहला अङ्ग सूत्र है। इसके दो श्रुतस्कन्ध हैं। पच्चीस अध्ययन हैं। उनके नाम इस प्रकार है - १. शस्त्र परिज्ञा २. लोक विजय ३. शीतोष्णीय ४. सम्यक्त्व ५. आवंती ६. धूत ७. विमोक्ष ८. महापरिज्ञा ९. उपधानश्रुत ये ९ अध्ययन प्रथम श्रुतस्कन्ध में हैं। १०. पिण्डैषणा ११. शय्या १२. ईर्या १३. भाषा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१४. वस्त्रैषणा १५. पात्रैषणा १६. अवग्रह प्रतिमा १७-२३. सप्त सप्तिका २४. भावना २५. विमुक्ति। इन पच्चीस अध्ययनों में ८५ उद्देशे हैं। यथा - पहले के ७, दूसरे के ६, तीसरे के ४, चौथे के ४, पाँचवें के ६, छठे के ५, सातवें के ८, आठवें के ७, नववें के ४, दसवें के ११, ग्यारहवें के ३, बारहवें के ३, तेरहवें के २, चौदहवें के २, पन्द्रहवें के २, शेष नौ अध्ययन के एक एक, ये सब मिला कर ८५ हुए । इन ८५ उद्देशों के ८५ समुद्देशन (पढे हुए को स्थिर करना) काल हैं। पदों की अपेक्षा नव ब्रह्मचर्य अध्ययनात्मक प्रथम श्रुतस्कन्ध में अठारह हजार पद हैं। संख्याता अक्षर हैं, अनन्ता गम यानी अर्थ परिच्छेद हैं, अनन्ता पर्याय यानी अक्षर और अर्थों के पर्याय हैं, द्वीन्द्रियादि त्रस परित्त हैं अनन्त नहीं, स्थावर जीव अनन्त हैं, श्री तीर्थङ्कर भगवान् के द्वारा कहे हुए ये पदार्थ द्रव्य रूप से शाश्वत हैं, पर्याय रूप से कृत हैं, सूत्र में गूंथे हुए होने से निबद्ध हैं, निर्युक्ति, हेतु, उदाहरण द्वारा भली प्रकार कहे गये हैं। आचाराङ्ग सूत्र के ये भाव तीर्थङ्कर भगवान् के द्वारा सामान्य और विशेष रूप से कहे गये हैं, नामादि के द्वारा कथन किये गये हैं, स्वरूप बतलाया गया है। उपमा आदि के द्वारा दिखलाये गये हैं। हेतु दृष्टान्त आदि के द्वारा विशेष रूप से दिखलाये गये हैं। उपनय निगमन के द्वारा अथवा सम्पूर्ण नयों के अभिप्राय से बतलाये गये हैं। इस प्रकार इस आचारांग सूत्र को पढ़ने से आत्मा ज्ञाता - स्वसिद्धान्त का ज्ञाता होता है, विज्ञाता- स्वसिद्धान्त और परसिद्धान्त का ज्ञाता होता है। इस प्रकार चरणसत्तरि करणसत्तरि आदि की प्ररूपणा से आचाराङ्ग सूत्र के भाव कहे जाते हैं। इस तरह आचाराङ्ग सूत्र का संक्षिप्त विषय बतलाया गया है।

विवेचन - जो सर्व प्रकार के आरंभ और परिग्रह के त्यागी होते हैं उन्हें निर्ग्रन्थ कहते हैं और जो निरंतर श्रुत अभ्यास तथा तप संयम का पालन करने में श्रम करते रहते हैं, उन्हें श्रमण कहते हैं।

प्रश्न - श्रमण के लिये 'निर्ग्रन्थ' ऐसा विशेषण क्यों दिया गया है?

उत्तर - श्रमण पांच प्रकार के कहे गये हैं - शाक्य (बौद्ध मतानुयायी), तापस (अनेक प्रकार के अज्ञान तप करने वाले), गैरिक (गेरुंआ - भगवां वस्त्र पहनने वाले), आजीविक (गौशालक मतानुयायी) और निर्ग्रन्थ। जो नौ प्रकार का बाह्य और चौदह प्रकार का आभ्यन्तर दोनों प्रकार के ग्रन्थ (परिग्रह) से रहित हैं, उन्हें निर्ग्रन्थ कहते हैं। ऐसे निर्ग्रन्थों का यहाँ ग्रहण किया गया है। इसलिये यहाँ श्रमण के साथ निर्ग्रन्थ विशेषण दिया गया है। उन निर्ग्रंथों के आचार विचार आदि का विस्तृत व स्पष्ट वर्णन इस आचाराङ्ग सूत्र में दिया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आचार के मुख्य रूप से पांच भेद किये गये हैं। यथा - ज्ञानाचार (श्रुतज्ञान विषयक आचार) इसके आठ भेद किये गये हैं। यथा - काल, विनय, बहुमान, उपधान, अनिह्नव, व्यञ्जन, अर्थ और तदुभय। इसी प्रकार दर्शनाचार के भी आठ भेद हैं - १. निःशंकित २. निःकांक्षित, ३. निर्विचिकित्सा, ४. अमूढदृष्टि ५. उपबृंहा ६. स्थिरीकरण ७. वात्सल्य और ८. प्रभावना।

चारित्राचार के भी आठ भेद हैं - ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान भण्डमात्रनिक्षेपणा समिति, उच्चारप्रस्रवण खेल सिंघाण जल्ल परिस्थापनिका समिति, मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति ।

ज्ञान, दर्शन आदि में बाह्य और आभ्यन्तर वीर्य (आत्म शक्ति) को लगाना वीर्याचार है। **प्रतिपत्ति** का अर्थ है - परमत के पदार्थों का बोध करना अथवा भिक्षु पडिमा आदि अभिग्रह विशेष।

'वेढा' का अर्थ है वेष्टक अर्थात् आर्या छन्द, उपगीति छन्द आदि अनेक प्रकार के छंद विशेष। अनुष्टुप् छन्द में प्रत्येक चरण में आठ आठ अक्षर होते हैं। चार चरण में ३२ अक्षर होते हैं।

निर्युक्ति - 'निश्चयेन-अर्थ प्रतिपादिकायुक्त योनिर्युक्तयः' सम्पूर्ण रूप से जिसमें शब्द का अर्थ कहा जाय उसे निर्युक्ति कहते हैं।

समुद्देशन-'शिष्येण हीनादिलक्षणोपेते अधीते गुरोर्निवेदिते स्थिरपरिचितं कुर्विदमिति गुरुवचनविशेषः समुद्देशः। अर्थात् सब दोषों को टाल कर गुरु महाराज के पास पढ़ लेने पर और वापिस गुरुदेव को निवेदन कर देने पर गुरुदेव शिष्य को कहे कि - 'हे सौम्य- इस अर्थ को सम्यक् रूप से स्थिर परिचित कर ले अर्थात् हृदय में अच्छी तरह जमा ले।' इस प्रकार के गुरु के कथन को समुद्देश (समुद्देशन) कहते हैं।

इस प्रकार आचाराङ्ग को स्थापना की अपेक्षा से प्रथम अङ्ग कहा है अन्यथा रचना की अपेक्षा तो यह बारहवाँ अङ्ग है। क्योंकि रचना की अपेक्षा १४ पूर्वों की रचना सर्व प्रथम होती है। इसीलिये उनको पूर्व (पहला) कहा है। इस आचाराङ्ग सूत्र में १८००० पद हैं। (पदों की संख्या जोड़ने से) **'यत्रार्थोपलब्धिस्तत्पदं'** जिससे अर्थ की प्राप्ति हो उसे पद कहते हैं। व्याकरण में तो 'विभत्यन्तं पदं' अर्थात् जिसके अन्त में विभक्ति लगी हुई हो, उसे पद कहते हैं। यह १८००० पदों की जो संख्या बताई गई है। वह नव ब्रह्मचर्याध्ययनात्मक प्रथम श्रुतस्कन्ध की संख्या समझनी चाहिए। क्योंकि कहा है -

''विचित्रार्थबद्धानि च सूत्राणि, गुरुपदेशस्तेषामर्थोऽवसेय इति''

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'अनन्ता गमा' - 'गमा' शब्द का अर्थ है 'अर्थ का बोध होना।' एक ही वस्तु अनन्त धर्मात्मक है। इसलिये एक ही सूत्र के अनन्त अर्थ हो सकते हैं। जैसा कि कहा है - **'एगस्स सुत्तस्स अणंत अत्था।'**

'सासया' - शाश्वत द्रव्य रूप से। **'कडा'** - कृता-पर्याय रूप से। **निःबद्धा** - सूत्र रूप से गुंथन किये हुए हैं। **निकाचित** - निर्युक्ति सङ्ग्रहणी हेतु उदाहरण आदि के द्वारा अच्छी तरह स्थापित किये गये हैं।

आघविज्जंति - आख्यायन्ते-सामान्य विशेष रूप से कहे जाते हैं।

पण्णविज्जंति - प्रज्ञाप्यन्ते-नाम, भेद, प्रभेद आदि के द्वारा कहे जाते हैं।

परूविज्जंति - प्ररूप्यन्ते-नामादि का स्वरूप बतलाया जाता है।

दंसिज्जंति - दर्श्यन्ते-उपमा देकर बतलाया जाता है। जैसे कि - बैल के समान गवय (जंगल का जानवर) होता है।

णिदंसिज्जंति - निदर्श्यन्ते-हेतु दृष्टान्त आदि देकर समझाया जाता है।

उवदंसिज्जंति - उपदर्श्यन्ते-उपनय और निगमन के द्वारा बतलाया जाता है। हेतु को वापिस दोहराना उपनय कहलाता है और साध्य को वापिस दोहराना निगमन कहलाता है। न्यायशास्त्र में और टीका आदि में पञ्च अवयव वाक्य आता है। पक्ष, हेतु, दृष्टान्त, उपनय और निगमन इन पांच अवयवों को 'पञ्चावयव' वाक्य कहते हैं। जैसे कि - इस पर्वत की गुफा में अग्नि है (साध्य युक्तपक्ष) क्योंकि यहाँ धूंआ निकल रहा है (हेतु)। जहाँ जहाँ धूँआ होता है वहाँ वहाँ अग्नि अवश्य होती है (व्याप्ति) जैसे - रसोईघर (दृष्टान्त)। यहाँ पर्वत पर धूँआ है (उपनय) । इसलिये यहाँ अग्नि है (निगमन)।

इस आचाराङ्ग को पढने वाला आत्मा होता है और इसे पढ कर आत्मा ज्ञाता बनता है। वह ज्ञाता ही विज्ञाता बनता है अर्थात् स्वपर सिद्धान्त का विशेष जानकार बनता है। इस प्रकार इस आचाराङ्ग में चरण करण की प्ररूपणा की जाती है। चरण के सित्तर भेद है जिनको चरण सत्तरि कहते हैं। चरण सत्तरि के ७० बोल इस प्रकार हैं -

वय-समणधम्म, संजम-वेयावच्चं च बंभगुत्तीओ ।
नाणाइतीयं तव, कोह-निग्गहाइ चरणमेयं ॥

अर्थ - ५ महाव्रत, १० यतिधर्म, १७ प्रकार का संयम, १० प्रकार की वैयावच्च, ९ ब्रह्मचर्य की नववाड, ३ रत्न (ज्ञान, दर्शन, चारित्र), १२ प्रकार का तप और ४ कषाय का निग्रह ये सब मिला कर चरण सत्तरि के ७० भेद हुए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करणसत्तरि के ७० भेद इस प्रकार हैं –

पिंड विसोही समिई, भावणा पडिमा इंदिय निग्गहो य।
पडिलेहण गुत्तीओ, अभिग्गहं चेव करणं तु ॥

अर्थ – ४ प्रकार की पिण्ड विशुद्धि, ५ समिति, १२ भावना, १२ भिक्षु पडिमा, ५ इन्द्रियों का निरोध, २५ प्रकार की पडिलेहणा, ३ गुप्ति, ४ अभिग्रह ये सब मिलाकर ७० भेद हुए।

नोट – आचाराङ्ग से लेकर विपाक सूत्र तक विस्तृत सूची श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह बीकानेर के चौथे भाग पृष्ठ ६६ से लेकर २१४ तक दी गयी है। विशेष जिज्ञासुओं को वहाँ देखना चाहिए ।

से किं तं सूयगडे? सूयगडे णं ससमया सूइज्जंति, परसमया सूइज्जंति, ससमय परसमया सूइज्जंति, जीवा सूइज्जंति, अजीवा सूइज्जंति, जीवाजीवा सूइज्जंति, लोगो सूइज्जइ, अलोगो सूइज्जइ, लोगालोगो सूइज्जइ। सूयगडे णं जीवाजीव पुण्ण पावासव संवर णिज्जरण बंध मोक्खावसाणा पयत्था सूइज्जंति। समणाणं अचिरकाल पव्वइयाणं कुसमय मोह मोहमइमोहियाणं संदेहजाय सहजबुद्धिपरिणाम संसइयाणं पावकरमलिण मइगुणविसोहणत्थं असीयस्स किरियावाइयसयस्स चउरासीए अकिरियवाईणं, सत्तट्ठीए अण्णाणियवाईणं, बत्तीसाए वेणइयवाईणं, तिण्हं तेवट्ठीणं अण्णदिट्ठिय सयाणं वूहं किच्चा ससमए ठाविज्जइ, णाणादिट्ठंत वयणणिस्सारं सुट्ठु दरिसयंता विविह वित्थाराणुगम परम सब्भावगुण विसिट्ठा मोक्खपहोयारगा उदारा अण्णाण तमंधयार दुग्गेसु दीवभूया सोवाणा चेव सिद्धिसुगइगिहुत्तमस्स णिक्खोभ णिप्पकंपा सुत्तत्था। सूयगडस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ णिज्जुत्तीओ। से णं अंगट्ठयाए दोच्चे अंगे, दो सुयक्खंधा, तेवीसं अज्झयणा, तेत्तीसं उद्देसणकाला, तेत्तीसं समुद्देसणकाला, छत्तीसं पयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ता। संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, णिदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं णाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरण परूवणया आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति दंसिज्जंति णिदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति, से तं सूयगडे ॥ २॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **सूइज्जइ** - वर्णन किया जाता है, **पयत्था** - पदार्थों का, **अचिरकाल पव्वइयाणं समणाणं** - अचिरकाल प्रव्रजित श्रमण-जिनको दीक्षित हुए ज्यादा समय नहीं हुआ हो ऐसे नवदीक्षित साधु, **कुसमयमोह मोहमइ मोहियाणं** - जिनकी बुद्धि कुदर्शनियों के मत को सुन कर भ्रान्त बन गई है, संदेह जाय सहज बुद्धि परिणाम **संसइयाणं** - जिनको सहज-स्वाभाविक सन्देह उत्पन्न हो गया है, **पावकर मलिण मइगुण विसोहणत्थं** - पापकारी मलिन बुद्धि को शुद्ध करने के लिए, **वूहं** - व्यूह-प्रतिक्षेप-खण्डन, **किच्चा** - करके, **ठाविज्जइ** - स्थापना की जाती है, **णाणा दिट्ठंत वयण णिस्सारं** - अनेक हेतु और दृष्टान्तों से परमत की निस्सारता बतलाई जाती है, **सुट्ठुदरिसयंता** - तत्त्वों का भली प्रकार प्रतिपादन किया गया, **विविह वित्थाराणुगम-परम सब्भावगुण विसिट्ठा** - अनेक अनुयोगद्वारों से जीवादि पदार्थों का विस्तार पूर्वक वर्णन करके उनका परम सद्भाव-परम सत्यता सिद्ध की गई है, **मोक्खपहोयारगा** - मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति करने के लिये प्रेरित किया गया है, **अण्णाण तमंधयार दुग्गेसु दीवभूया** - अज्ञान रूपी अंधकार से दुःसाध्य सत्यमार्ग को प्रकाशित करने में दीपक के समान।

भावार्थ - शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन्! सूत्रकृताङ्ग किसको कहते हैं अर्थात् सूत्रकृताङ्ग सूत्र में क्या भाव हैं? भगवान् फरमाते हैं कि सूत्रकृताङ्ग सूत्र में स्वसमय-स्वसिद्धान्त, परसमय-पर सिद्धान्त अन्यतीर्थियों का सिद्धान्त, स्वपरसिद्धान्त - अपना मत और अन्यतीर्थियों का मत, जीव का स्वरूप, अजीव का स्वरूप, जीव और अजीव दोनों का स्वरूप, लोक का स्वरूप, अलोक का स्वरूप, लोकालोक का स्वरूप इत्यादि बातों का वर्णन किया गया है। सूत्रकृताङ्ग सूत्र में जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष इन पदार्थों का, तत्त्वों का वर्णन किया गया है। ऐसे नवदीक्षित साधु जिनकी बुद्धि कुदर्शनियों के मत को सुन कर भ्रान्त बन गई है तथा जिनको सहज-स्वाभाविक सन्देह उत्पन्न हो गया है, उन नवदीक्षित साधुओं की पापकारी मलिन बुद्धि को शुद्ध करने के लिए क्रियावादी के १८०, अक्रियावादी के ८४, अज्ञानवादी के ६७ और विनयवादी के ३२, ये सब मिला कर ३६३ पाखण्ड मत का खण्डन करके स्वसिद्धान्त की स्थापना की गई है। अनेक हेतु और दृष्टान्तों द्वारा परमत की निःसारता बतलाई गई है। प्रतिपक्षियों द्वारा खण्डित न हो सकने वाले तत्त्वों का भली प्रकार प्रतिपादन किया गया है। सत्पदप्ररूपणा आदि अनेक अनुयोग द्वारों से जीवादि पदार्थों का विस्तार पूर्वक वर्णन करके उनका परमसद्भाव-परम सत्यता सिद्ध की गई है। मोक्ष मार्ग का वर्णन कर जीवों को उसमें प्रवृत्ति करने के लिए प्रेरित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किया गया है। इस सूत्रकृताङ्ग सूत्र के सूत्र और अर्थ सम्पूर्ण सूत्रार्थ दोषों से रहित हैं और सूत्रार्थ गुणों से युक्त हैं। अज्ञान रूप अन्धकार से दुःसाध्य सत्य मार्ग को प्रकाशित करने में दीपक के समान हैं। सिद्धिगति रूप उत्तम महल में चढ़ने के लिए सोपान-सीढी रूप हैं। ये सूत्रार्थ प्रतिवादी के द्वारा खण्डित नहीं किये जा सकते हैं अतएव ये निष्प्रकम्प हैं अर्थात् ये सर्वथा दोष रहित हैं। सूत्रकृताङ्ग सूत्र की परित्ता वाचना हैं, अनन्ता नहीं । संख्याता अनुयोगद्वार हैं। संख्याता प्रतिपत्तियाँ हैं। संख्याता वेढक-छन्द विशेष हैं। संख्याता श्लोक हैं। संख्याता निर्युक्तियाँ हैं। अङ्गों की अपेक्षा यह सूत्रकृताङ्ग सूत्र दूसरा अङ्ग है। इसमें दो श्रुतस्कन्ध हैं। २३ अध्ययन हैं। उनमें ३३ उद्देशन काल हैं ३३ समुद्देशन काल हैं, प्रत्येक पद की गिनती की अपेक्षा ३६००० पद हैं। संख्याता अक्षर हैं, अनन्ता गम यानी अर्थ परिच्छेद हैं, अनन्त पर्याय यानी अक्षर और अर्थों के पर्याय हैं, द्वीन्द्रियादि त्रस जीव परित्त हैं, अनन्त नहीं, स्थावर जीव अनन्त हैं, श्री तीर्थङ्कर भगवान् के द्वारा कहे हुए ये पदार्थ द्रव्य रूप से शाश्वत हैं, पर्याय रूप से कृत हैं, सूत्र रूप में गूंथे हुए निबद्ध हैं, निर्युक्ति हेतु उदाहरण द्वारा भली प्रकार कहे गये होने से निकाचित हैं। ये सूत्रकृताङ्ग सूत्र के भाव तीर्थङ्कर भगवान् के द्वारा सामान्य और विशेष रूप से कहे गये हैं, नामादि के द्वारा कथन किये गये हैं, स्वरूप बतलाया गया है, उपमा आदि के द्वारा दिखलाये गये हैं, हेतु दृष्टान्त आदि के द्वारा विशेष रूप से दिखलाये गये हैं, उपनय और निगमन के द्वारा अथवा सम्पूर्ण नयों के अभिप्राय से बतलाये गये हैं। इस प्रकार सूत्रकृताङ्ग सूत्र को पढने से आत्मा ज्ञाता-स्वसिद्धान्त का ज्ञाता होता है, विज्ञाता - स्व सिद्धान्त और परसिद्धान्त का विशेष ज्ञाता होता है। इस प्रकार चरणसत्तरि, करणसत्तरि आदि की प्ररूपणा से सूत्रकृताङ्ग सूत्र के भाव कहे जाते हैं। विशेष रूप से कहे जाते हैं। यह सूत्रकृताङ्ग सूत्र का भाव है ॥ २ ॥

विवेचन - अङ्ग सूत्रों में दूसरे अङ्ग का नाम सूत्रकृताङ्ग है। सूत्र शब्द का अर्थ इस प्रकार किया गया है -

"सूत्रं तु सूचना कारि, ग्रन्थे तन्तु व्यवस्थयोः ।"

अर्थ - सूचना अर्थात् दिशा निर्देश करने वाले को 'सूत्र" कहते हैं। सूत्र शब्द के ये अर्थ भी होते हैं - ग्रन्थ-शास्त्र, पुस्तक । तन्तु-डोरा-जो अनेक वस्तुओं को जोड़कर एक करता है। व्यवस्था - वस्तु को यथास्थान स्थापित करना । सूत्र का लक्षण इस प्रकार भी किया है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अल्पाक्षरमसंदिग्धं, सारवद्विश्वतोमुखम् । (गूढनिर्णयम्)
अस्तोभमनवद्यं च, सूत्रं सूत्रविदो विदुः ॥

अर्थ - जिसमें अक्षर अल्प हों, जो सन्देह रहित हो, जो सार युक्त हो, जिसमें सभी प्रकार के अर्थ ग्रहण कर लिये गये हों अथवा जिसमें गूढ तत्त्वों का निर्णय किया गया हो, जो सूत्र के अठारह दोषों से रहित हों, जो बहुत विस्तृत न हों, उसे सूत्र कहते हैं।

इस सूयगडाङ्ग (सूत्रकृताङ्ग) सूत्र में स्वसिद्धान्त परसिद्धान्त और स्व-पर सिद्धान्त (उभय सिद्धान्त) का वर्णन किया गया है।

क्रियावादी आदि ३६३ पाखण्ड मत का स्वरूप बतला कर उसकी अपसिद्धान्तता को बतलाकर उसका खण्डन किया गया है। क्रियावादी के १८०, अक्रियावादी के ८४, अज्ञानवादी के ६७ और विनयवादी के ३२, ये कुल ३६३ भेद होते हैं।

उनमें **क्रियावादी** का स्वरूप इस प्रकार है -

१. कर्त्ता के बिना क्रिया यह संभव नहीं है। इसीलिये क्रिया के कर्त्ता रूप से आत्मा के अस्तित्व को मानने वाले क्रियावादी हैं।

२. क्रिया ही प्रधान है, ज्ञान की कोई आवश्यकता नहीं है, इस प्रकार क्रिया को प्रधान मानने वाले क्रियावादी हैं।

३. जीव अजीव आदि पदार्थों के अस्तित्व को एकान्त रूप से मानने वाले क्रियावादी हैं। इनके १८० भेद इस प्रकार होते हैं -

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, पुण्य, पाप, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन नव पदार्थों के स्व और पर से १८ भेद हुए । इन में के प्रत्येक के काल, नियति, स्वभाव, ईश्वर और आत्मा की अपेक्षा पांच पांच भेद करने से १८० भेद होते हैं। जैसे जीव, स्व रूप से काल की अपेक्षा नित्य है। जीव स्व रूप से काल की अपेक्षा अनित्य है। जीव पर रूप से काल की अपेक्षा नित्य है। जीव पर रूप से काल की अपेक्षा अनित्य है। इस प्रकार काल की अपेक्षा चार भेद होते हैं। इस प्रकार नियति, स्वभाव, ईश्वर और आत्मा की अपेक्षा जीव के चार चार भेद होते हैं। इस तरह जीव आदि नव तत्त्वों के प्रत्येक के बीस बीस भेद होते हैं और कुल १८० भेद होते हैं।

अक्रियावादी - अक्रियावादी की भी अनेक व्याख्याएँ हैं। यथा -

१. किसी भी अनवस्थित पदार्थ में क्रिया नहीं होती है। यदि पदार्थ में क्रिया होगी तो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वह अनवस्थित न होगा। इस प्रकार पदार्थों को अनवस्थित मान कर उनमें क्रिया का अभाव मानने वाले अक्रियावादी कहलाते हैं।

२. क्रिया की क्या जरूरत है? केवल चित्त की पवित्रता होनी चाहिए। इस प्रकार ज्ञान ही से मोक्ष की मान्यता वाले अक्रियावादी कहलाते हैं।

३. जीवादि के अस्तित्व को न मानने वाले अक्रियावादी कहलाते हैं। अक्रियावादी के ८४ भेद होते हैं। यथा -

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। इन सात तत्त्वों के स्व और पर के भेद से १४ भेद होते हैं। काल, यदृच्छा, नियति, स्वभाव, ईश्वर और आत्मा इन छहों की अपेक्षा १४ भेदों का विचार करने से ८४ भेद होते हैं। जैसे - जीव स्वतः काल से नहीं है, जीव परतः काल से नहीं है। इस प्रकार काल की अपेक्षा जीव के दो भेद होते हैं। काल की तरह यदृच्छा, नियति आदि की अपेक्षा भी जीव के दो दो भेद होते हैं। इस प्रकार १२ भेद हुए। जीव की तरह शेष तत्त्वों के भी बारह बारह भेद हैं। इस तरह कुल ८४ भेद होते हैं।

अज्ञानवादी - जीवादि अतीन्द्रिय पदार्थों को जानने वाला कोई नहीं है। न उन के जानने से कुछ सिद्धि ही होती है। इसके अतिरिक्त समान अपराध में ज्ञानी को अधिक दोष माना है और अज्ञानी को कम । इसलिये अज्ञान ही श्रेयरूप है। ऐसा मानने वाले अज्ञानवादी हैं।

अज्ञानवादी के ६७ भेद हैं। यथा -

जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, पुण्य, पाप, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन नव तत्त्वों के सद्, असद्, सदसद् अवक्तव्य, सदवक्तव्य, असदवक्तव्य, सदसदवक्तव्य इन सात भङ्गों से ६३ भेद होते हैं और उत्पत्ति के सद, असद्सदसद् और अवक्तव्य की अपेक्षा से चार भङ्ग हुए। इस प्रकार ६७ भेद अज्ञानवादी के होते हैं। जैसे जीव सद् है, यह कौन जानता है? और इसके जानने का क्या प्रयोजन है?

विनयवादी - स्वर्ग, अपवर्ग आदि के कल्याण की प्राप्ति विनय से ही होती है। इसलिये विनय ही श्रेष्ठ है। इस प्रकार विनय को प्रधान रूप से मानने वाले विनयवादी कहलाते हैं।

विनयवादी के ३२ भेद हैं -

देव, राजा, यति, ज्ञाति, स्थविर, अधम, माता और पिता इन आठों का मन, वचन, काया और दान इन चार प्रकारों से विनय होता है इस प्रकार आठ को चार से गुणा करने से ३२ भेद होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ये चारों वादी मिथ्यादृष्टि हैं।

क्रियावादी – जीवादि पदार्थों के अस्तित्व को ही मानते हैं। इस प्रकार एकान्त अस्तित्व को मानने से इनके मत में पर रूप की अपेक्षा से नास्तित्व नहीं माना जाता। पर रूप की अपेक्षा से वस्तु में नास्तित्व न मानने से वस्तु में स्वरूप की तरह पर रूप का भी अस्तित्व रहेगा। इस प्रकार प्रत्येक वस्तु में सभी वस्तुओं का अस्तित्व रहने से एक ही वस्तु सर्व रूप हो जायेगी। जो कि प्रत्यक्ष बाधित है। इस प्रकार क्रियावादियों का मत मिथ्यात्व पूर्ण है।

अक्रियावादी – जीवादि पदार्थ नहीं हैं। इस प्रकार असद्भूत अर्थ का प्रतिपादन करते हैं। इसीलिये वे भी मिथ्या दृष्टि हैं। एकान्त रूप से जीव के अस्तित्व का प्रतिषेध करने से उनके मत में निषेध कर्त्ता का भी अभाव हो जाता है। निषेध कर्त्ता के अभाव से सभी का अस्तित्व स्वत: सिद्ध हो जाता है।

अज्ञानवादी – अज्ञान को श्रेय मानते हैं। इसलिये वे भी मिथ्या दृष्टि हैं और उनका कथन स्ववचन बाधित है। क्योंकि "अज्ञान श्रेय है" यह बात भी वे बिना ज्ञान के कैसे जानते हैं और बिना ज्ञान के वे अपने मत का समर्थन भी कैसे कर सकते हैं? इस प्रकार अज्ञान की श्रेयता बताते हुए उन्हें ज्ञान का आश्रय लेना ही पड़ता है।

विनयवादी – केवल विनय से ही स्वर्ग मोक्ष पाने की इच्छा रखने वाले विनयवादी मिथ्यादृष्टि हैं। क्योंकि ज्ञान और क्रिया दोनों से मोक्ष की प्राप्ति होती है। केवल ज्ञान या केवल क्रिया से नहीं। ज्ञान को छोड़ कर एकान्त रूप से केवल क्रिया के एक अङ्ग का आश्रय लेने से वे सत्य मार्ग से परे हैं। अतएव मिथ्या दृष्टि हैं।

से किं तं ठाणे? ठाणेणं ससमया ठाविज्जंति, परसमया ठाविज्जंति, ससमयपरसमया ठाविज्जंति, जीवा ठाविज्जंति, अजीवा ठाविज्जंति, जीवाजीवा ठाविज्जंति, लोए ठाविज्जइ, अलोए ठाविज्जइ, लोगालोगा ठाविज्जंति । ठाणेणं दव्व गुण खेत्त काल पज्जव पयत्थाणं –

"सेला सलिला य समुद्दा, सुरभवण विमाण आगर णईओ ।
णिहिओ पुरिसजाया, सरा य गोत्ता य जोइसंचाला ॥ १ ॥

एक्कविह वत्तव्वयं दुविह वत्तव्वयं जाव दसविह वत्तव्वयं जीवाण, पोग्गलाण य लोगट्ठाइं च णं परूवणया आघविज्जंति । ठाणस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संगहणीओ । से णं अंगट्ठयाए तइए अंगे, एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा, एक्कवीसं उद्देसणकाला, बावत्तरिं पयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ताइं । संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासया, कडा, णिबद्धा, णिकाइया, जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, णिदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति । से एवं आया, एवं णाया, एवं विण्णाया, एवं चरण करण परूवणया आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, णिदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से तं ठाणे ॥ ३ ॥

कठिन शब्दार्थ - सेला - शैल (पर्वत), **सलिला** - सलिल-महानदियाँ, **आगर** - आकर (खान), **जोइसंचाला** - ज्योतिषी देवों का चलना, **एक्कविहं वत्तव्वयं दुविह वत्तव्वयं जाव दसविह वत्तव्वयं** - एक से लेकर दो यावत् दस भेदों तक का वर्णन किया गया है।

भावार्थ - शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन्! स्थानाङ्ग किसे कहते हैं अर्थात् स्थानाङ्ग सूत्र में क्या वर्णन किया गया है? गुरु महाराज उत्तर देते हैं कि स्थानाङ्ग सूत्र में स्वसमय - स्वसिद्धान्त, पर सिद्धान्त, स्वसमयपरसमय की स्थापना की जाती है। जीव, अजीव, जीवाजीव, लोक, अलोक, लोकालोक की स्थापना की जाती है। जीवादि पदार्थों की स्थापना से द्रव्य, गुण, क्षेत्र, काल और पर्यायों की स्थापना की जाती है।

पर्वत, महा नदियाँ, समुद्र, देव, असुरकुमार आदि के भवन विमान, आकर-खान, सामान्य नदियाँ, निधियाँ, पुरुषों के भेद, स्वर, गोत्र, ज्योतिषी देवों का चलना इत्यादि का एक से लेकर दस भेदों तक का वर्णन किया गया है। लोक में स्थित जीव और पुद्गलों की प्ररूपणा की गई है। स्थानाङ्ग सूत्र की परित्ता वाचना हैं, संख्याता अनुयोगद्वार, संख्याता प्रतिपत्तियाँ, संख्याता वेढ नामक छन्द विशेष, संख्याता श्लोक और संख्याता संग्रहणियाँ हैं। अंगों की अपेक्षा यह स्थानाङ्ग सूत्र तीसरा अंग सूत्र है। इसमें एक श्रुतस्कन्ध, दस अध्ययन २१ उद्देशे, ७२ हजार पद कहे गये हैं। संख्याता अक्षर, अनन्ता गम, अनन्ता पर्याय, परित्ता त्रस, अनन्ता स्थावर हैं।

तीर्थङ्कर भगवान् द्वारा कहे हुए ये पदार्थ द्रव्य रूप से शाश्वत हैं, पर्याय रूप से कृत हैं, सूत्र रूप में गूंथे हुए होने से निबद्ध हैं, निर्युक्ति, हेतु, उदाहरण द्वारा भली प्रकार कहे गये हैं। स्थानाङ्ग सूत्र के ये भाव तीर्थङ्कर भगवान् द्वारा सामान्य और विशेष रूप से कहे गये हैं, नामादि के द्वारा कथन किये गये हैं स्वरूप बतलाया गया है, उपमा आदि के द्वारा दिखलाये गये हैं, हेतु और दृष्टान्त आदि के द्वारा विशेष रूप से दिखलाये गये हैं। उपनय और निगमन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के द्वारा एवं सम्पूर्ण नयों के अभिप्राय से बतलाये गये हैं। इस प्रकार स्थानाङ्ग सूत्र को पढ़ने से आत्मा ज्ञाता और विज्ञाता होता है। इस प्रकार चरणसत्तरि करणसत्तरि आदि की प्ररूपणा से स्थानाङ्ग सूत्र के भाव कहे गये हैं, विशेष रूप से कहे गये हैं एवं दिखलाये गये हैं। यह स्थानाङ्ग सूत्र का संक्षिप्त विषय बतलाया गया है ॥ ३ ॥

विवेचन - दूसरे, तीसरे और चौथे अध्ययन में चार चार उद्देशे हैं, पांचवें अध्ययन में तीन उद्देशे हैं, शेष ६ अध्ययनों में ६ उद्देशे हैं, ये कुल मिला कर २१ उद्देशे होते हैं।

तिष्ठन्त्यस्मिन् प्रतिपाद्यतया जीवादय इति स्थानम् ।

अर्थ - प्रतिपाद्य होने के कारण जीवादि पदार्थ जिसमें स्थापित किये जाते हैं, उसे स्थान (ठाण) कहते हैं। जीवास्तिकाय आदि अनन्त द्रव्य हैं। स्वभाव को गुण कहते हैं। जैसे - जीव का स्वभाव (गुण) उपयोग है। क्षेत्र का अर्थ असंख्यात प्रदेशावगाढ है। काल अनादि अनन्त है। काल के द्वारा की गयी अवस्था को पर्याय (पर्यव) कहते हैं। जैसे - बचपन युवावस्था आदि। अथवा नरक नारक आदि अवस्था को पर्याय कहते हैं। यहाँ नदी शब्द से मही, कोसी आदि सामान्य नदियाँ ली गयी है और सलिल शब्द से गंगा आदि महानदियाँ ली गयी है। समुद्र अर्थात् लवण समुद्र यावत् स्वयंभूरमण समुद्र। सोना, चांदी, लोह आदि को उत्पत्ति के स्थान (भूमि) को 'आकर' कहते हैं। ठाणाङ्ग सूत्र में एक श्रुतस्कन्ध है दस अध्ययन हैं। २१ उद्देशक और २१ ही समुद्देशक हैं। ठाणाङ्ग सूत्र में विषयों की व्यवस्था उनके भेदों के अनुसार की गयी है। अर्थात् समान संख्यक भेदों वाले विषयों को एक ही साथ रखा है। एक भेद वाले पदार्थ पहले अध्ययन में हैं। दो भेदों वाले दूसरे में इसी प्रकार यावत् दस भेदों तक के दसवें अध्ययन में दिये गये हैं। यहाँ पदार्थों को ठाण या स्थान शब्दों से कहा गया है।

से किं तं समवाए? समवाएणं ससमया सूइज्जंति, परसमया सूइज्जंति, ससमयपरसमया सूइज्जंति, जाव लोगालोगा सूइज्जंति । समवाएणं एगाइयाणं एगट्ठाणं एगुत्तरिय परिवुड्ढीए दुवालसंगस्स य गणिपिडगस्स पल्लवग्गे समणुगाइज्जइ, ठाणग सयस्स, बारसविह वित्थरस्स सुयणाणस्स, जगजीवहियस्स भगवओ समासेणं समायारे आहिज्जइ। तत्थ य णाणाविहप्पगारा जीवाजीवा य वण्णिया वित्थरेण, अवरे वि य बहुविहा विसेसा णरग तिरिय मणुय सुरगणाणं आहारुस्सासलेस्सा आवास संखासयपप्पमाण उववाय चवण ओगाहणोवहि वेयण विहाण उवओग जोग इंदिय कसाय विविहा य जीवजोणी विक्खंभुस्सेह - परिरयप्पणाणं विहिविसेसा य मंदराईणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महीधराणं कुलगर तित्थयर गणहराणं सम्मत्तभरहाहिवाणं चक्कीणं चेव चक्कहरहलधराणं च वासाणं च णिगमा य समाए, एए अण्णे य एवमाइ एत्थ वित्थरेणं अत्था समाहिज्जंति। समवायस्स णं परित्ता वायणा जाव से णं अंगट्ठयाए चउत्थे अंगे एगे अज्झयणे, एगे सुयक्खंधे, एगे उद्देसण काले, एगे चउयाले पयसहस्से पयग्गेणं पण्णत्ता । संखेज्जाणि अक्खराणि जाव चरणकरण परूवणाया आघविज्जंति । से तं समवाए ॥ ४ ॥

कठिन शब्दार्थ - **पल्लवग्गो** - सार यानी संक्षिप्त विषय, **समणुगाइज्जइ** - वर्णन किया गया है, **जगजीवहियस्स** - जगत के प्राणियों के लिए हितकारी, **समोयारे** - विविध आचार का, **अवरे वि** - और भी, **परिरयप्पमाणं** - परिधि का परिमाण, **सम्मत्त भरहाहिवाणं चक्कीणं** - समस्त भरताधिप चक्री-सम्पूर्ण भरत क्षेत्र के स्वामी चक्रवर्ती, **चक्कहर** - चक्रधर-वासुदेव, **हलधराणं** - हलधर-बलदेव, **अण्णे एवमाइ एत्थ** - इसी प्रकार के अन्य प्रकार के पदार्थों का, **समाहिज्जंति** - वर्णन किया गया है, **चरणकरणपरूवणाया** - चरण करण की प्ररूपणा से।

भावार्थ - शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन्! समवायाङ्ग सूत्र में क्या भाव कहे गये हैं? गुरु महाराज फरमाते हैं कि समवायाङ्ग सूत्र में स्वसमय, परसमय, स्वसमयपरसमय यावत् लोकालोक का वर्णन किया गया है। समवायाङ्ग सूत्र में एक दो तीन यावत् एक एक की वृद्धि करते हुए सौ तक और फिर हजार लाख यावत् कोटि पर्यन्त पदार्थों का कथन किया गया है। गणिपिटक यानी आचार्य के रत्नकरण्ड के समान द्वादशाङ्ग का सार यानी संक्षिप्त विषय वर्णन किया गया है। एक से लेकर सौ संख्या तक आत्मा आदि तत्त्वों का वर्णन किया गया है। आचाराङ्ग आदि बारह अङ्गसूत्रों का संक्षिप्त विषय बतलाया गया है। जगत् के प्राणियों के लिये हितकारी, अतिशय ज्ञानी भगवान् के विविध आचार का संक्षेप से कथन किया गया है। इस समवायाङ्ग सूत्र में जीव और अजीव के अनेक प्रकार से भेद करके विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है और भी बहुत प्रकार के जीवाजीव के धर्मों का वर्णन किया गया है। जैसे कि - नैरयिक जीव, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवों का आहार, उच्छ्वास, लेश्या, आवास संख्या, आयतपरिमाण - लम्बाई चौड़ाई, उपपात-उत्पत्ति, च्यवन - मरण, अवगाहना, अवधि-मर्यादा वेदना, विधान-भेद, उपयोग, योग, इन्द्रिय, कषाय, अनेक प्रकार की जीवयोनि, मेरु पर्वत आदि पर्वतों का विष्कम्भ विस्तार, उत्सेध-ऊंचाई, परिधि का परिमाण और भेद, कुलकर, तीर्थङ्कर, गणधर सम्पूर्ण भरतक्षेत्र के स्वामी चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भरतादि क्षेत्रों का निर्गम इत्यादि पदार्थों का तथा इसी प्रकार अन्य प्रकार के पदार्थों का इस समवायाङ्ग सूत्र में विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।

समवायाङ्ग सूत्र की परित्ता वाचना हैं अनन्ता नहीं यावत् यह समवायाङ्ग सूत्र अङ्गों की अपेक्षा चौथा अङ्ग सूत्र है। इसमें एक अध्ययन है, एक श्रुतस्कन्ध है, एक उद्देशनकाल है और एक लाख चंवालीस हजार पद कहे गये हैं। इसमें संख्याता अक्षर हैं यावत् चरण करण की प्ररूपणा से तत्त्वों का वर्णन किया गया है। उपरोक्त प्रकार से समवायाङ्ग सूत्र में पदार्थों का वर्णन किया गया है ॥ ४॥

विवेचन - शिष्य प्रश्न करता है कि - हे भगवन्! समवाय का क्या स्वरूप है?

उत्तर - जीव अजीव आदि पदार्थों का जहाँ एक दो के विभाग से समावेश किया जाय उसका नाम समवाय है। अथवा आत्मादि अनेक प्रकार के पदार्थ जहाँ अभिधेय रूप से मिले हुए हों उसको समवाय कहते हैं। इसमें एक से लेकर एक सौ तक वाले बोल एक एक भेद की वृद्धि करते हुये बतलाये गये हैं। उनको एकोत्तरिक परिवृद्धि कहते हैं। सौ संख्या से ऊपर जो कोटाकोटि तक पदार्थों का विचार किया गया है। उस विचार में जो वृद्धि हुई है वे अनेकोत्तरिक वृद्धि है। यह क्रमशः नहीं हुई है किन्तु अक्रमिक रूप से वृद्धि होती हुई चली गयी है। इसमें एक अध्ययन, एक श्रुतस्कन्ध, एक उद्देशक तथा एक ही समुद्देशक है। समवायाङ्ग सूत्र में एक लाख चौवालीस हजार पद हैं।

नोट - पदों की यह संख्या नंदी सूत्र के अनुसार है। वहाँ आचाराङ्ग सूत्र से आगे दुगुना-दुगुना करते हुए यह संख्या प्राप्त होती है। क्योंकि आचाराङ्ग सूत्र की पद संख्या १८००० बतलाई गयी है। यह पूरे समवायाङ्ग सूत्र में इतने पद थे, ऐसी सम्भावना है। आजकल जितना उपलब्ध है उसमें पदों की संख्या इतनी नहीं है।

से किं तं वियाहे? वियाहेणं ससमया वियाहिज्जंति, परसमया वियाहिज्जंति, ससमय परसमया वियाहिज्जंति, जीवा वियाहिज्जंति, अजीवा वियाहिज्जंति, जीवाजीवा वियाहिज्जंति लोए वियाहिज्जइ, अलोए वियाहिज्जइ, लोयालोए वियाहिज्जइ। वियाहेणं णाणाविह सुर णरिंद रायरिसि विविह संसइय पुच्छियाणं जिणेणं वित्थरेण भासियाणं दव्व गुण खेत्त पज्जव पएस परिणाम जहत्थिय भाव अणुगम णिक्खेव णय प्पमाण सुणिउणोवक्कम विविहप्पयारपगड पयासियाणं, लोयालोयपयासियाणं संसारसमुद्द-रुंदउत्तरण समत्थाणं सुरवइ संपूजियाणं, भविय जणपय हिययाभिणंदियाणं, तमरय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विद्धंसणाणं सुदिट्ठुदीवभूय ईहामइबुद्धिवद्धणाणं छत्तीस सहस्समणूणयाणं वागरणाणं दंसणाओ सुयत्थबहुविहप्पगारा सीसहियत्था य गुणमहत्था। वियाहस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ णिज्जुत्तीओ। से णं अंगट्ठयाए पंचमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, एगे साइरेगे अज्झयणसए, दस उद्देसगसहस्साइं, दस समुद्देसगसहस्साइं, छत्तीसं वागरणसहस्साइं, चउरासीइं पयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ताइं । संखेज्जाइं अक्खराइं, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासया, कडा, णिबद्धा, णिकाइया, जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, णिदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति । से एवं आया, से एवं णाया, से एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणया आघविज्जंति। से तं वियाहे ॥ ५ ॥

कठिन शब्दार्थ - णाणाविह सुर णरिंद रायरिसि विविह संसइय पुच्छियाणं - अनेक देव, राजा, राजर्षियों द्वारा पूछे गये संशय युक्त प्रश्नों का, **जिणेणं वित्थरेण भासियाणं**- भगवान् ने विस्तारपूर्वक उत्तर दिया, **लोयालोयपयासियाणं** - लोकालोक के स्वरूप को प्रकाशित करने वाले, **संसार समुद्दरुंदउत्तरणसमत्थाणं** - विस्तृत संसार रूपी समुद्र को पार करवाने में समर्थ, **सुरवरसंपूजियाणं** - इन्द्रों द्वारा पूजित, **भविय जणपय हिययाभिणंदियाणं**- भव्यजनों के चित्त को आनन्दित करने वाले, **तम रयविद्धसणाणं** - अज्ञान रूपी अंधकार को नष्ट करने वाले, **सुदिट्ठुदीवभूय ईहामइ बुद्धिवद्धणाणं** - दीपक के समान पदार्थों को प्रकाशित करके बुद्धि को बढ़ाने वाले, **सुयत्थ बहुविहप्पगारा** - अनेक प्रकार से श्रुतार्थ को प्रकाशित करने वाले, **गुणमहत्था** - महान् गुणों से युक्त, **सीसहियत्था** - शिष्यों के लिए हितकारी।

भावार्थ - शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन्! व्याख्याप्रज्ञप्ति-भगवती सूत्र में क्या भाव कहे गये हैं? गुरु महाराज फरमाते हैं कि भगवती सूत्र में स्वसमय-स्वसिद्धान्त, पर समय-परसिद्धान्त, स्वसमय परसमय, जीव, अजीव, जीवाजीव, लोक, अलोक, लोकालोक का वर्णन किया गया है। भगवती सूत्र में अनेक देव, राजा, राजर्षियों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने विस्तार पूर्वक उत्तर दिया है। द्रव्य, गुण, क्षेत्र, पर्याय, प्रदेश, परिणाम, यथास्तिभाव, यथातथ्यभाव, अनुगम, निक्षेप, नय, प्रमाण, सूक्ष्म उपक्रम आदि विविध प्रकार से प्रकाशित तथा लोकालोक के स्वरूप को प्रकाशित करने वाले विस्तृत संसार समुद्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को पार करवाने में समर्थ, इन्द्रों द्वारा पूजित, भव्यजनों के चित्त को आनन्दित करने वाले, अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट करने वाले, दीपक के समान पदार्थों को प्रकाशित करके बुद्धि को बढ़ाने वाले, छत्तीस हजार प्रश्नों का उत्तर दिया गया है, जो कि अनेक प्रकार से श्रुतार्थ को प्रकाशित करने वाले महान् गुणों से युक्त शिष्यों के लिए हितकारी हैं। व्याख्याप्रज्ञप्ति-भगवती सूत्र की परित्ता वाचना हैं, संख्याता अनुयोग द्वार हैं, संख्याता प्रतिपत्तियाँ हैं। संख्याता वेढ-छन्द विशेष हैं। संख्याता श्लोक हैं और संख्याता निर्युक्तियाँ हैं। अङ्गों की अपेक्षा यह पांचवां अङ्ग है। इसका एक श्रुतस्कन्ध है, एक सौ से अधिक अध्ययन हैं। दस हजार उद्देशक हैं। दस हजार समुद्देशक हैं। छत्तीस हजार प्रश्न हैं। चौरासी हजार पद कहे गये हैं। संख्याता अक्षर हैं, अनन्ता गम यानी अर्थपरिच्छेद हैं, अनन्ता पर्याय यानी अक्षर और अर्थों के पर्याय हैं, द्वीन्द्रियादि त्रस जीव परित्त हैं, अनन्त नहीं, स्थावर जीव अनन्त हैं, श्री तीर्थङ्कर भगवान् द्वारा कहे हुए ये पदार्थ द्रव्य रूप से शाश्वत हैं, पर्याय रूप से कृत हैं, निर्युक्ति, हेतु, उदाहरण द्वारा भली प्रकार से कहे गये होने से निबद्ध हैं। व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्र के ये भाव तीर्थङ्कर भगवान् द्वारा सामान्य और विशेष रूप से कहे गये हैं। नामादि के द्वारा कथन किये गये हैं। स्वरूप बताया गया है। उपमा आदि के द्वारा दिखलाये गये हैं। हेतु, दृष्टान्त आदि के द्वारा विशेष रूप से दिखलाये गये हैं। उपनय, निगमन के द्वारा एवं सम्पूर्ण नयों के अभिप्राय से बतलाये गये हैं। इस प्रकार व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र को पढ़ने से आत्मा ज्ञाता और विज्ञाता होता है। इस प्रकार चरणसत्तरि और करणसत्तरि आदि की प्ररूपणा से व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र के भाव कहे गये हैं। व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र का यह संक्षिप्त विषय बतलाया गया है ॥ ५ ॥

विवेचन - पांचवें अङ्ग का नाम मूल में "**वियाहे**" दिया है। टीकाकार ने जिसका अर्थ "**व्याख्या**" किया है। "**व्याख्यायन्ते अर्थाः यस्यां सा व्याख्या**" जिसमें अर्थों की व्याख्या (विवेचन) की गयी हो। जिस प्रकार-सूत्रकृताङ्ग सूत्र में मुख्य रूप से नौ पदार्थों की व्याख्या की गयी है। इसी तरह इस व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्र में भी मुख्य रूप से नौ पदार्थों का कथन किया गया है। यथा - १. स्वसमय (स्वसिद्धान्त) २. परसमय (परसिद्धान्त) ३. स्वपरसिद्धान्त ४. जीव ५. अजीव ६. जीवाजीव ७. लोक ८. अलोक ९. लोकालोक, इन पदों की विस्तृत व्याख्या पहले कर दी गयी है। इसमें सुर (देव) असुर, राजा, महाराजा (चक्रवर्ती), राजर्षि (जो पहले राजा थे बाद में संयम अंगीकार कर लिया उन्हें राजर्षि कहते हैं) तथा संशय युक्त जिज्ञासुओं के द्वारा पूछे गये प्रश्नों का श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने विस्तार पूर्वक उत्तर दिया। ऐसे प्रश्नोत्तरों की संख्या ३६००० बतलाई गयी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिनका समाधान प्राप्त कर नर से नारायण, पुरुष से पुरुषोत्तम, भक्त से भगवान् बन जाता है। ज्ञानादि सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त हो उसे भगवान् कहते हैं। इस सूत्र के अध्ययन करने से आत्मा ज्ञाता, विज्ञाता बनकर भक्त से भगवान् बन जाता है। यह सूत्र भक्त से भगवान् बनाता है इसलिये इसे भगवती सूत्र भी कहते हैं। आचाराङ्ग से लेकर दृष्टिवाद तक बारह अङ्ग सूत्र हैं उनमें दृष्टिवाद सबसे बड़ा अङ्ग सूत्र है। परन्तु वह तो प्रत्येक तीर्थङ्कर के दो पाट तक ही चलता है। फिर विच्छिन्न हो जाता है। इस समय दृष्टिवाद का विच्छेद हो जाने से विपाक सूत्र तक ११ अङ्ग ही उपलब्ध होते हैं। इन ११ अङ्गों में यह व्याख्या प्रज्ञप्ति अङ्ग सबसे बड़ा है। इसलिये भी इसे भगवती सूत्र कहते हैं। व्याख्या प्रज्ञप्ति शब्द स्त्री लिङ्ग है। इसलिये इसका पर्यायवाची शब्द 'भगवती' यह स्त्री लिङ्ग शब्द रखा गया है। अन्यथा जिस प्रकार आचाराङ्ग सूत्र को 'भगवान्' कहा है। इसी प्रकार इस व्याख्या प्रज्ञापक सूत्र को भी "भगवान्" कह सकते हैं। इसमें ३६००० हजार प्रश्नोत्तर होने से बहुत विस्तृत ज्ञान का भण्डार है।

नोट - आचाराङ्ग से लेकर समवायाङ्ग सूत्र तक पदों का परिमाण दुगुना दुगुना बताया गया है। किन्तु इस व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्र के पदों में दुगुना नहीं बतलाया गया है। किन्तु यहाँ ८४००० पदों का उल्लेख स्पष्ट है। जो कि वर्तमान में उपलब्ध है ।

से किं तं णायाधम्मकहाओ ? णायाधम्मकहासु णं णायाणं णगराइं, उज्जाणाइं, चेइयाइं, वणखंडा, रायाणो, अम्मापियरो, समोसरणाइं, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइय परलोइय इड्ढी विसेसा, भोगपरिच्चाया, पव्वज्जाओ, सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइं, परियागा, संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, देवलोगगमणाइं, सुकुलपच्चायायाइं, पुणबोहिलाभा, अंत किरियाओ य आघविज्जंति जाव णायाधम्मकहासु णं पव्वइयाणं विणयकरण जिणसामिसासणवरे संजमपइण्ण पालण धिइमइ ववसायदुब्बलाणं तव णियम तवोवहाण रणदुद्धर भरभग्गय णिस्सहय णिसिट्ठाणं घोरपरिसह पराजियाणं सहपारद्धरुद्ध सिद्धालयमग्ग णिग्गयाणं विसयसुह तुच्छआसावस दोसमुच्छियाणं विराहिय चरित्तणाणदंसणजइगुण विविहप्पयार णिस्सारसुण्णयाणं संसार अपार दुक्ख दुग्गइ भव-विविहपरंपरापवंचा, धीराण य जियपरिसह कसाय सेण्ण धिइ धणिय संजम उच्छाह णिच्छियाणं आराहिय णाणदंसण चरित्त जोग णिस्सल्ल सुद्ध सिद्धालय मग्गमभिमुहाणं सुर भवण विमाण सुक्खाइं अणोवमाइं भुत्तूण चिरं च भोगभोगाणि ताणि दिव्वाणि महरिहाणि तओ य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कालक्कम चुयाणं जह य पुणो लद्धसिद्धिमग्गाणं अंतकिरिया चलियाणं च सदेव माणुस्स धीरकरण कारणाणि बोधण अणुसासणाणि गुण दोस दरिसणाणि दिट्ठंते पच्चए य सोऊण लोगमुणिणो जहट्ठिय सासणम्मि जरमरण णासणकरे आराहिय संजमा य सुरलोग पडिणियत्ता ओवेंति जह सासयं सिवं सव्वदुक्खमोक्खं, एए अण्णे य एवमाइअत्था वित्थरेण य। णायाधम्मकहासु णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, जाव संखेज्जाओ संगहणीओ । से णं अंगट्ठयाए छट्ठे अंगे, दो सुयक्खंधा, एगूणवीसं अज्झयणा, ते समासओ दुविहा पण्णत्ता तंजहा - चरित्ता य कप्पिया य। दस धम्मकहाणं वग्गा, तत्थ णं एगमेगाए धम्मकहाए पंच पंच अक्खाइयासयाइं, एगमेगाए अक्खाइयाए पंच पंच उवक्खाइयासयाइं, एगमेगाए उवक्खाइयाए पंच पंच अक्खाइय उवक्खाइयासयाइं एवमेव सपुव्वावरेणं अद्धुट्ठाओ अक्खाइया कोडीओ भवंतीति मक्खायाओ । एगूणतीसं उद्देसणकाला, एगूणतीसं समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ता । संखेज्जा अक्खरा जाव चरणकरण परूवणया आघविज्जंति से तं णायाधम्मकहाओ ॥ ६ ॥

कठिन शब्दार्थ - **णायाणं** - ज्ञात अर्थात् उदाहरण रूप से, **इहलोइयपरलोइय इड्ढी विसेसा** - इहलौकिक पारलौकिक ऋद्धि विशेष, **भोगपरिच्चाया** - भोगों का त्याग, **सुयपरिग्गहा** - श्रुत परिग्रह-सूत्रों का ज्ञान, **भत्तपच्चक्खाणाइं** - भक्त प्रत्याख्यान, **पाओवगमणाइं** - पादपोपगमन संथारा, **सुकुलपच्चायायाइं** - सुकुल-उत्तम कुल में जन्म लेना, **विणय करण जिणसामि सासणवरे** - तीर्थंकर भगवान् के विनयमूलक धर्म में, **संजम पइण्ण पालण धिइ मइ ववसाय दुब्बलाणं** - संयम की प्रतिज्ञा को पालने में दुर्बल बने हुए, **तव णियम तवोवहाण रणदुद्धर भरभग्गय णिस्सहय णिसिट्ठाणं** - तप नियम तथा उपधान तप रूपी रण में संयम के भार से भग्न चित्त बने हुए, **घोर परिसह पराजियाणं**- घोर परीषहों से पराजित बने हुए, **सहपारद्ध रुद्ध सिद्धालय मग्ग णिग्गयाणं** - ज्ञान दर्शन चारित्र रूप मोक्ष मार्ग से पराङ्मुख बने हुए, **विसयसुहतुच्छ आसावसदोसमुच्छियाणं** - तुच्छ विषय सुखों की आशा के वशीभूत एवं मूर्च्छित बने हुए, **विराहिय-चरित्त-णाण-दंसण-जइगुण-विविहप्पयार-णिस्सारसुण्णयाणं** - साधु के विविध प्रकार के आचार से शून्य और ज्ञान दर्शन चारित्र की विराधना करने वाले व्यक्तियों का, **संसार-अपार दुक्खदुग्गइभवविविह परंपरापवंचा** - अपार संसार में नाना दुर्गतियों में अनेक प्रकार का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दुःख भोगते हुए बहुत काल तक परिभ्रमण करना, **जियपरिसह-कसायसेण्ण-धिइधणिय-संजम- उच्छाह णिच्छियाणं** - परीषह और कषाय की सेना को जीतने वाले धैर्यशाली तथा उत्साह पूर्वक संयम का पालन करने वाले।

भावार्थ - शिष्य प्रश्न करता है कि अहो भगवन्! ज्ञाताधर्मकथा में क्या भाव फरमाये गये हैं? भगवान् फरमाते हैं कि ज्ञाताधर्मकथा में ज्ञात अर्थात् प्रथम श्रुतस्कन्ध में उदाहरण रूप से दिये गये मेघकुमार आदि के नगर, उद्यान, चैत्य-यक्ष का मन्दिर, वनखण्ड, राजा, मातापिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलौकिक पारलौकिक ऋद्धि, भोगों का त्याग, प्रव्रज्या, श्रुत (सूत्र) परिग्रह - सूत्रों का ज्ञान, उपधान आदि तप, पर्याय-दीक्षा काल, संलेखना, भक्तप्रत्याख्यान-आहार आदि का त्याग, पादपोपगमन संथारा, देवलोकगमन-देवलोकों में उत्पन्न होना। देवलोकों से चव कर उत्तम कुल में जन्म लेना, फिर बोधिलाभ सम्यक्त्व की प्राप्ति होना और अन्त क्रिया आदि का वर्णन किया गया है।

तीर्थङ्कर भगवान् के विनय मूलक धर्म में दीक्षित होने वाले, संयम की प्रतिज्ञा को पालने में दुर्बल बने हुए, तप नियम तथा उपधान तप रूपी रण में संयम के भार से भग्न चित्त बने हुए घोर परीषहों से पराजित बने हुए ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप मोक्ष मार्ग से पराङ्मुख बने हुए, तुच्छ विषय सुखों की आशा के वशीभूत एवं मूर्च्छित बने हुए साधु के विविध प्रकार के आचार से शून्य और ज्ञान दर्शन चारित्र की विराधना करने वाले व्यक्तियों का ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में वर्णन किया गया है और यह बतलाया गया है कि वे इस अपार संसार में नाना दुर्गतियों में अनेक प्रकार का दुःख भोगते हुए बहुत काल तक भव भ्रमण करते रहेंगे ।

परीषह और कषाय की सेना को जीतने वाले, धैर्यशाली तथा उत्साह पूर्वक संयम का पालन करने वाले, ज्ञान दर्शन चारित्र की सम्यक् आराधना करने वाले, मिथ्यादर्शन आदि शल्यों से रहित, मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति करने वाले, धैर्यवान् पुरुषों को अनुपम स्वर्ग, सुखों की प्राप्ति होती है। यह ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में बतलाया गया है। वहाँ देवलोकों में उन मनोज्ञ दिव्य भोगों को बहुत काल तक भोग कर इसके पश्चात् आयु क्षय होने पर कालक्रम से वहाँ से चव कर उत्तम मनुष्य कुल में उत्पन्न होते हैं फिर ज्ञान दर्शन चारित्र रूप मोक्ष मार्ग का सम्यक् पालन कर मोक्ष को प्राप्त करते हैं, यह ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में बतलाया गया है। यदि कर्मवश कोई मुनि संयम मार्ग से चलित हो जाय तो उसे संयम में स्थिर करने के लिए बोधप्रद-शिक्षा देने वाले संयम के गुण और असंयम के दोष बतलाने वाले देव और मनुष्यों के दृष्टान्त दिये गये हैं और प्रतिबोध के कारणभूत ऐसे वाक्य कहे गये हैं। जिन्हें सुन कर लोक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में मुनि शब्द से कहे जाने वाले शुक परिव्राजक आदि जन्म जरा मृत्यु का नाश करने वाले इस जिनशासन में स्थित हो गये और संयम का आराधन करके देवलोक में उत्पन्न हुए और देवलोक से चव कर मनुष्य भव में आकर सब दुःखों से रहित होकर शाश्वत मोक्ष को प्राप्त करेंगे। ये भाव और इसी प्रकार के दूसरे बहुत से भाव बहुत विस्तार के साथ और कहीं कहीं कोई भाव संक्षेप से कहे गये हैं।

ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में परित्ता वाचना है, संख्याता अनुयोगद्वार हैं यावत् संख्याता संग्रहणी गाथाएं हैं। अंगों की अपेक्षा यह छठा अङ्ग है। इसके दो श्रुतस्कन्ध हैं, उन्नीस अध्ययन हैं, वे संक्षेप से दो प्रकार के कहे गये हैं - चारित्र रूप और कल्पित। धर्मकथा नामक दूसरे श्रुतस्कन्ध में दस वर्ग हैं। प्रत्येक धर्मकथा में पांच सौ पांच सौ आख्यायिका हैं। प्रत्येक आख्यायिका में पांच सौ पांच सौ उपाख्यायिका हैं। प्रत्येक उपाख्यायिका में पांच सौ पांच सौ आख्यायिका उपाख्यायिका हैं। इस प्रकार इन सब को मिला कर परस्पर गुणन करने से साढे तीन करोड़ आख्यायिका - कथाएं होती हैं ऐसा श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने फरमाया है। ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में २९ उद्देशे हैं, २९ समुद्देशे हैं, संख्याता हजार यानी ५७६००० पद कहे गये हैं। संख्याता अक्षर हैं यावत् चरणसत्तरि करणसत्तरि की प्ररूपणा से कथन किया गया है। यह ज्ञाताधर्मकथासूत्र का संक्षिप्त विषय वर्णन है ॥ ६ ॥

विवेचन - ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र में दो श्रुतस्कन्ध हैं। पहले श्रुतस्कन्ध के उन्नीस अध्ययन हैं। उनको ज्ञात अध्यन कहते हैं। इनमें से दस अध्ययन ज्ञात (उदाहरण) रूप हैं। अतः इनमें आख्याइका (कथा के अन्तर्गत कथा) सम्भव नहीं है। बाकी के नौ अध्ययनों में से प्रत्येक में ५४०-५४० आख्याइकाएँ हैं। इनमें भी एक एक आख्याइका में ५००-५०० उपाख्याइकाएँ हैं। इन उपाख्याइकाओं में भी एक एक उपाख्याइका में ५००-५०० आख्याइका-उपाख्याइका हैं। इस प्रकार इनकी कुल संख्या एक अरब इक्कीस करोड़ और पचास लाख (१२२१५००००००) इतनी हो जाती है। जैसा कि गाथा में कहा है -

एगवीसंकोडिसयं, लक्खापण्णासमेव बोद्धव्वा ।
एवं ठिए समाणे, अहिगयसुत्तस्स पत्थारा ॥
एकविंशं कोटिशतं लक्षाः पञ्चाशदेव बोद्धव्याः ।
एवं स्थिते सति अधिकृत सूत्रस्य प्रस्तारः ॥

इस प्रकार नौ अध्ययनों का विस्तार कहे जाने पर अधिकृत इस सूत्र का विस्तार वर्णित हो जाता है। यद्यपि 'ज्ञात' इस स्वरूप वाले नौ अध्ययनों की आख्याइका आदि की संख्या

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मूल में उपलब्ध नहीं है तो भी वृद्ध परम्परा में यह प्रचलित है। इसलिये यहाँ लिख दी गयी हैं। इससे जिज्ञासुओं के ज्ञान में वृद्धि होने की संभावना है।

दूसरे श्रुतस्कन्ध में जो अहिंसादि रूप धर्म कथाओं के दस वर्ग (समूह) हैं। उनमें एक-एक धर्मकथा में ५००-५०० आख्याइकाएँ हैं। एक एक आख्याइका में ५००-५०० उपाख्याइकाएँ हैं। एक-एक उपाख्याइका में ५००-५०० आख्याइकाउपाख्याइकाएँ हैं। इस प्रकार पूर्वापर की संयोजना करने पर तीन करोड़ पचास लाख (३५००००००) आख्याइकाओं की संख्या हो जाती है।

शंका - धर्म कथाओं में इन आख्याइका, उपाख्याइका, आख्याइकाउपाख्याइका इन तीनों की संख्या एक अरब पच्चीस करोड़ पचास लाख (१२५५००००००) होती है तो फिर यहाँ सूत्रकार ने इनकी संख्या तीन करोड़ पचास लाख ही क्यों कही है ?

समाधान - नौ ज्ञातों (उदाहरण) की जो आख्याइका आदि की संख्या बतलाई गयी है। ऐसी ही आख्याइकाएँ आदि दस धर्म कथाओं में भी हैं। इसलिये दस धर्म कथाओं में कही हुई आख्याइका आदि की संख्या में से नव ज्ञात में कही हुई आख्याइका आदिकों की संख्या को कम करके अपुनरुक्त आख्याइका आदि बचती हैं उनकी संख्या साढ़े तीन करोड़ (३५००००००) ही होती है। इस प्रकार पुनरुक्ति दोष से वर्जित आख्याइका आदि की संख्या का कथन मूल में - "**एवमेव सपुव्वावरेणं अद्धुट्ठाओ अक्खाइयाकोडीओ भवंतीति मक्खाओ**" - साढ़े तीन करोड़ किया गया है।

वर्तमान में जो दूसरा श्रुतस्कन्ध उपलब्ध होता है उसमें धर्मकथाओं के द्वारा धर्म का स्वरूप बतलाया गया है। इसमें दस वर्ग हैं। तेईसवें तीर्थङ्कर पुरुषादानीय भगवान् पार्श्वनाथ के पास दीक्षा ली हुई २०६ आर्यिकाओं (साध्वियों) का वर्णन है। वे सब चारित्र की विराधक बन गयी थीं। अन्तिम समय में उसकी आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही काल धर्म प्राप्त हो गयी थी। भवनपतियों के उत्तर और दक्षिण के बीस इन्द्रों के तथा वाणव्यन्तर देवों के दक्षिण और उत्तर दिशा के बत्तीस इन्द्रों की एवं चन्द्र, सूर्य, प्रथम देवलोक के इन्द्र, सौधर्मेन्द्र (शक्रेन्द्र) तथा दूसरे देवलोक के इन्द्र ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियाँ हुई हैं। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध बुद्ध मुक्त हो जायेंगी ।

से किं तं उवासगदसाओ? उवासगदसासु णं उवासयाणं णयराइं, उज्जाणाइं चेइयाइं, वणखंडा, रायाणो, अम्मापियरो, समोसरणाइं, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइयपरलोइय इड्डिविसेसा, उवासयाणं सीलव्वयवेरमणगुणपच्चक्खाण-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पोसहोववासपडिवज्जणयाओ सुयपरिग्गहा, तवोवहाणा, पडिमाओ, उवसग्गा, संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, देवलोग-गमणाइं, सुकुलपच्चायायाइं, पुणो बोहिलाभा, अंतकिरियाओ आघविज्जंति । उवासगदसासु णं उवासयाणं रिद्धिविसेसा, परिसा, वित्थर-धम्मसवणाणि बोहिलाभ अभिगम सम्मत्तविसुद्धया थिरत्तं मूलगुण उत्तरगुणाइयारा ठिइविसेसा य बहुविसेसा पडिमाभिग्गहणपालणा, उवसग्गाहियासणा, णिरुवसग्गा य तवा य विचित्ता, सीलव्वय गुणवेरमण-पच्चक्खाणपोसहोववासा अपच्छिम मारणंतिया य संलेहणा झोसणाहिं अप्पाणं जह य भावइत्ता बहूणि भत्ताणि अणसणाए य छेयइत्ता उववण्णा कप्पवरविमाणु-त्तमेसु जह अणुहवंति सुरवरविमाणवरपोंडरीएसु सुक्खाइं अणोवमाइं कमेण भुत्तूण उत्तमाइं तओ आउक्खएणं चुया समाणा जह जिणमयम्मि बोहिं लद्धूण य संजमुत्तमं तम रयोघविप्पमुक्का उवेंति जह अक्खयं सव्वदुक्खमोक्खं । एए अण्णे य एवमाइयत्था वित्थरेण य। उवासयदसासु णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा जाव संखेज्जाओ संगहणीओ। से णं अंगट्ठयाए सत्तमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा, दस उद्देसणकाला, दस समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसय सहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ताइं, संखेज्जाइं अक्खराइं जाव एवं चरणकरण परूवणया आघविज्जंति से तं उवासगदसाओ ॥ ७ ॥

कठिन शब्दार्थ - **उवासयाणं** - उपासक-श्रावकों की, **वित्थरधम्मसवणाणि** - विस्तारपूर्वक धर्म श्रवण, **थिरत्तं** - धर्म में स्थिरता, **उवसग्गाहियासणा** - उपसर्गाधिसहनता-उपसर्गों को सहन करना, **सुरवर विमाणवर पोंडरीएसु** - उत्तम देवलोकों में, **अणोवमाइं सुक्खाइं अणुहवंति** - अनुपम दिव्य सुखभोगों का अनुभव करते हैं, **तम रयोघविप्पमुक्का**- कर्म रूपी रज से विमुक्त हो कर, **अक्खयं सव्वदुक्खमोक्खं उवेंति** - सब दुःखों का क्षय कर अक्षय मोक्ष सुख को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ - शिष्य प्रश्न करता है कि अहो भगवन्! उपासकदशा सूत्र में क्या भाव फरमाये गये हैं? गुरु महाराज उत्तर देते हैं कि हे शिष्य! उपासकदशा सूत्र में उपासकों के यानी श्रावकों के नगर, यक्ष आदि के मन्दिर, वनखण्ड - उपवन, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलौकिक पारलौकिक ऋद्धि विशेष का उपासकदशा सूत्र में वर्णन किया गया है। श्रावकों के शीलव्रत, विरमणव्रत, गुणव्रत, प्रत्याख्यान, पौषधोपवास अङ्गीकार करना,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रुतपरिग्रह-सूत्रों का पढना, उपधानादि तप करना । श्रावक की ग्यारह पडिमा, उपसर्ग सहन करना, संलेखना, भक्तप्रत्याख्यान, पादपोपगमन, देवलोकों में उत्पन्न होना, वहाँ से चव कर उत्तम मनुष्य कुल में उत्पन्न होना, फिर बोधि-समकित की प्राप्ति होना । मोक्ष की प्राप्ति होना, इत्यादि बातों का वर्णन किया गया है। उपासकदशा सूत्र में श्रावकों की ऋद्धिविशेष, परिषद्, परिवार, भगवान् महावीर स्वामी के पास विस्तार पूर्वक धर्मश्रवण, बोधिलाभ, सम्यक्त्व की विशुद्धि, धर्म में स्थिरता, मूलगुण उत्तरगुण अर्थात् अणुव्रतों के अतिचार स्थिति विशेष - श्रावकपने की काल मर्यादा और अन्य बातें, ग्यारह पडिमा, अभिग्रह अङ्गीकार करना, उपसर्गों को सहन करना, उपसर्ग रहित होना। विचित्र प्रकार के तप, शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण व्रत, प्रत्याख्यान, पौषधोपवास, अन्तिम समय में मारणान्तिक संलेखना द्वारा आत्मा को भावित करना और अनशन द्वारा बहुत भक्तों का छेदन करके उत्तम देवलोकों में उत्पन्न होना। उन उत्तम देवलोकों में अनुपम दिव्य सुख भोगना, उन उत्तम सुखों को भोग कर क्रम से आयु का क्षय होने पर वहाँ से चव कर उत्तम कुल में उत्पन्न होना, धर्म की प्राप्ति करना, संयम की आराधना करना, कर्म रूपी रज से मुक्त होकर सब दुःखों का क्षय कर अक्षय मोक्षसुख को प्राप्त करना इत्यादि बातों का वर्णन विस्तार पूर्वक उपासकदशाङ्ग सूत्र में किया गया है।

उपासक दशाङ्ग सूत्र में परित्ता वाचना है, संख्याता अनुयोग द्वार हैं। यावत् संख्याता संग्रहणियाँ हैं। उपासकदशाङ्ग सातवाँ अङ्गसूत्र है। इसमें एक श्रुतस्कन्ध है, दस अध्ययन हैं, दस उद्देशे हैं, दस समुद्देशे हैं, संख्याता लाख पद हैं यानी ग्यारह लाख बावन हजार पद हैं, संख्याता अक्षर हैं यावत् चरणसत्तरि करणसत्तरि की प्ररूपणा की गई है। यह उपासकदशाङ्ग सूत्र का संक्षिप्त विषय वर्णन है ॥ ७ ॥

विवेचन - उपासकदशा सातवाँ अङ्ग सूत्र है। श्रमणों की अर्थात् साधुओं की सेवा करने वाले उपासक कहे जाते हैं। "दशा" नाम अध्ययन तथा चर्या का है। इस सूत्र में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के दस श्रावकों के अध्ययन होने से यह उपासकदशा कहा जाता है। इसके प्रत्येक अध्ययन में एक एक श्रावक का वर्णन है। इस प्रकार दस अध्ययनों में दस श्रावकों का वर्णन है। दस श्रावकों के नाम इस प्रकार हैं यथा - १. आनन्द २. कामदेव ३. चुलनीपिता ४. सुरादेव ५. चुल्लशतक ६. कुण्डकोलिक ७. सद्दालपुत्र ८. महाशतक ९. नन्दिनीपिता १०. शालेयिकापिता ।

निर्ग्रन्थ प्रवचनों में उनकी दृढ़ श्रद्धा थी। भगवान् पर उनकी अपूर्व भक्ति थी। प्रभु के वचनों पर उन्हें अपूर्व श्रद्धा थी। गृहस्थावस्था में रहते हुए भी उन्होंने शास्त्रों का अच्छा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अभ्यास किया था। इसीलिये मूल पाठ में उनके लिये "**सुयपरिग्गहा**" (सूत्र के ज्ञाता) शब्द दिया है। गृहस्थावस्था में रहता हुआ व्यक्ति किस प्रकार उत्कृष्ट श्रावक धर्म का पालन करता हुआ एवं आत्मविकास करता हुआ मोक्ष का अधिकारी हो सकता है। यह इन श्रावकों के जीवन से भली भाँति ज्ञात हो सकता है।

(इन श्रावकों के जीवन का विस्तृत वर्णन हिन्दी में श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह बीकानेर के तीसरे भाग के दसवें बोल संग्रह के बोल नं. ६८५ में एवं जैन संस्कृति रक्षक संघ द्वारा प्रकाशित उपासकदशांग सूत्र में दिया गया है। जिज्ञासुओं को वहाँ देखना चाहिए)

प्रश्न - क्या श्रावक श्राविका का सूत्र पढ़ना शास्त्र सम्मत है ?

उत्तर - हाँ ! श्रावक श्राविका का शास्त्र पढ़ना शास्त्र सम्मत है। जैसा कि - इन दस श्रावकों के वर्णन में "**सुयपरिग्गहा, तवोवहाणाइं**" अर्थात् श्रावकों का शास्त्र ग्रहण करना तथा उस विषयक उपधान आदि तप करना इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि - श्रावक शास्त्र पढ़ते थे।

उत्तराध्ययन सूत्र में समुद्रपालीय नामक इक्कीसवें अध्ययन की दूसरी गाथा में पालित श्रावक का वर्णन करते हुये लिखा है - **णिग्गंथे पावयणे, सावए से वि कोविए ।**

अर्थात् वह पालित श्रावक निर्ग्रन्थ प्रवचन में कोविद (पण्डित) था। इसी सूत्र के बाईसवें अध्ययन में राजीमती के लिये शास्त्रकार ने "**बहुस्सुया**" शब्द का प्रयोग किया है। गाथा इस प्रकार है -

सा पव्वईया संती, पव्वावेसी तहिं बहुं ।
सयणं परियणं चेव, सीलवंता बहुस्सुआ ॥ ३२ ॥

अर्थ - गृहस्थ अवस्था में रहते हुये भी राजीमती बहुश्रुत (बहुत शास्त्रों की ज्ञाता-जानकार) थी। उस बहुश्रुता और शीलवती राजीमती ने दीक्षा लेकर वहाँ और भी अपने स्वजन और परिजन को दीक्षा दिलाई ।

ये दोनों पाठ भी यही सिद्ध करते हैं कि श्रावक श्राविका सूत्र पढ़ते थे और यह बात शास्त्रकारों को अभिमत है।

ज्ञातासूत्र के बारहवें उदक ज्ञात नामक अध्ययन में सुबुद्धि प्रधान, जो कि श्रावक था। उसने जितशत्रु राजा को केवली प्ररूपित धर्म का उपदेश दिया। जिससे राजा जितशत्रु ने समकित की प्राप्ति की और सुबुद्धि प्रधान से श्रावक के बारह व्रत अंगीकार किये। फिर जितशत्रु राजा ने और सुबुद्धि प्रधान ने स्थविर भगवन्तों के पास दीक्षा अङ्गीकार की और आठों कर्मों का क्षय कर सिद्ध बुद्ध मुक्त हो गये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञातासूत्र के इस पाठ से सुबुद्धि प्रधान का जैन शास्त्रों का अच्छा जानकार होना सिद्ध होता है। यहाँ शास्त्रकार ने सुबुद्धि प्रधान के लिये ठीक उसी प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है जैसी भाषा का प्रयोग ऐसे प्रकरणों में साधु के लिये किया जाता है।

औपपातिक सूत्र में श्रावक के लिये "**धम्मक्खाई**" (धर्म का प्रतिपादन करने वाला) शब्द का प्रयोग किया गया है। यदि श्रावक को शास्त्र पढने का अधिकार न हो तो वह धर्म का प्रतिपादन कैसे कर सकता है?

श्रावक प्रतिक्रमण में श्रावक "**आगमे तिविहे**" का पाठ बोलता है इससे भी यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि - श्रावक श्राविका सुत्तागमे (सूत्र रूप मूल आगम), **अत्थागमे** (अर्थरूप आगम) और **तदुभयागमे** (सूत्र और अर्थरूप दोनों आगम) तीनों प्रकार के आगम पढ़ सकता है इसीलिये उसमें लगे हुये अतिचार के लिये '**मिच्छामि दुक्कडं**' देता है।

सूत्रों के अभ्यास ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम पर निर्भर है और ऐसा कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता है कि - श्रावकों का ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम साधुओं की अपेक्षा नियम पूर्वक मन्द ही होता है। शास्त्रकारों ने तो अभव्यों के भी पूर्वों का अभ्यास होना माना है फिर श्रावक श्राविका का शास्त्र पढ़ना क्यों कर निषिद्ध हो सकता है। श्रावक श्राविका को सूत्र नहीं पढ़ना चाहिए, ऐसा कहीं भी जैन शास्त्रों में उल्लेख नहीं मिलता है। अतः उपरोक्त शास्त्र प्रमाणों से श्रावक-श्राविका का शास्त्र पढ़ना स्पष्ट सिद्ध होता है और वह आगम सम्मत है।

से किं तं अंतगडदसाओ? अंतगडदसासु णं अंतगडाणं णगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं, वणाइं, रायाणो, अम्मापियरो, समोसरणा, धम्मायरिया, धम्मकहा, इहलोइय परलोइय इड्डिविसेसा, भोगपरिच्चाया, पव्वज्जाओ, सुयपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, पडिमाओ बहुविहाओ, खमा, अज्जवं, मद्दवं च सोयं च सच्चसहियं सत्तरसविहो य संजमो, उत्तमं च बंभं, अकिंचणया, तवो, चियाओ, समिइगुत्तिओ चेव तह अप्पमायजोगा, सज्झायज्झाणेण य उत्तमाणं दोण्हं पि लक्खणाइं पत्ताण य संजमुत्तमं जियपरीसहाणं चउव्विह कम्मक्खयम्मि जह केवलस्स लंभो, परियाओ, जत्तिओ य जह पालिओ मुणिहिं पाओवगओ य जो जहिं जत्तियाणि भत्ताणि छेयइत्ता अंतगडो मुणिवरो तमरयोघविप्पमुक्को मोक्खसुहमणुत्तरं च पत्ता। एए अण्णे य एवमाइयत्था वित्थरेणं परूवेइ। अंतगडदसासु णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा जाव संखेज्जाओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संगहणीओ। से णं अंगट्ठयाए अट्ठमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा अट्ठ वग्गा, दस उद्देसण काला, दस समुद्देसण काला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ता, संखेज्जा अक्खरा जाव एवं चरणकरणपरूवणया आघविज्जंति। से तं अंतगडदसाओ ॥ ८ ॥

कठिन शब्दार्थ - अंतगडाणं - अन्तकृत, **सच्चसहियं सोयं** - सत्य और शौच सहित, **सज्झायज्झाणेण उत्तमाणं दोण्हं पि लक्खणाइं** - स्वाध्याय और ध्यान इन दोनों के उत्तम लक्षण, **चउव्विह कम्मक्खयम्मि जह केवलस्स लंभो** - चार घाती कर्मों का क्षय कर जिस प्रकार केवल ज्ञान प्राप्त करना।

भावार्थ - शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन्! अन्तकृत दशाङ्ग सूत्र में क्या भाव फरमाये गये हैं? भगवान् फरमाते हैं कि अन्तकृत दशाङ्ग सूत्र में अन्तकृत यानी जिन्होंने कर्मों का क्षय कर मोक्ष प्राप्त किया उन मुनियों के नगर, उद्यान, चैत्य, वन, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलौकिक पारलौकिक ऋद्धि, भोगों का त्याग, प्रव्रज्या, श्रुत परिग्रह, उपधानादि तप, अनेक तरह की पडिमाएँ, क्षमा, मुक्ति-निर्लोभता आर्जव-सरलता, मार्दव-मृदुता (नम्रता) सत्य, शौच और सतरह प्रकार का संयम, उत्तम ब्रह्मचर्य, अकिञ्चनता, तप, त्याग, समिति, गुप्ति और अप्रमत्तयोग तथा उत्तम स्वाध्याय और ध्यान के लक्षण इस सूत्र में बतलाये गये हैं। उत्तम संयम को प्राप्त करके परीषहों को जीत कर चार घाती कर्मों का क्षय कर जिस प्रकार केवलज्ञान प्राप्त किया उनका वर्णन है और मुनिवरों ने जितना दीक्षापर्याय जिस तरह से पालन किया, जिस जगह जितने भक्त का छेदन कर मुनियों ने अन्तिम समय में सब कर्मों का क्षय किया और समस्त कर्म रूपी रज से मुक्त होकर उत्तम मोक्ष सुख को प्राप्त हुए इत्यादि सब बातों का वर्णन तथा इसी प्रकार की दूसरी बातों का वर्णन इस अन्तकृत दशाङ्ग सूत्र में किया गया है। अन्तकृत दशाङ्ग सूत्र में परित्ता वाचनाएं हैं, संख्याता अनुयोग द्वार हैं यावत् संख्याता संग्रहणियाँ हैं। अङ्गों की अपेक्षा यह आठवाँ अङ्ग सूत्र है। इसमें एक श्रुतस्कन्ध है। दस अध्ययन हैं। आठ वर्ग हैं। दस उद्देशन काल हैं, दस समुद्देशन काल हैं। प्रत्येक पद की अपेक्षा संख्याता हजार पद हैं अर्थात् २३ लाख ४ हजार पद हैं। संख्याता अक्षर हैं यावत् चरणसत्तरि करणसत्तरि की प्ररूपणा की गई है। इस प्रकार के भाव अन्तकृत दशाङ्ग सूत्र में कहे गये हैं ॥ ८ ॥

विवेचन - प्रश्न - अन्तकृत (अंतगड) दशा किसे कहते हैं?

उत्तर - अन्तकृतदशा शब्द का अर्थ टीकाकार श्री अभयदेव सूरि ने इस प्रकार किया है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"अन्तो-भवान्तःकृतो-विहितो यैस्तेऽन्तकृतास्तद् वक्तव्यता प्रतिबद्धा दशाः । दशाध्ययनरूपा ग्रन्थपद्धतय इति अन्तकृतदशाः ।"

अर्थ - जिन महापुरुषों ने भव का अन्त कर दिया है, वे 'अन्तकृत' कहलाते हैं। उन महापुरुषों का वर्णन जिन दशा अर्थात् अध्ययनों में किया हो, उन अध्ययनों से युक्त शास्त्र को 'अन्तकृत दशा' कहते हैं। इस सूत्र के प्रथम और अन्तिम वर्ग के दस-दस अध्ययन होने से इसको "दशा" कहा है।

कोई कोई "अन्तकृत" शब्द का ऐसा अर्थ करते हैं कि- 'जो महापुरुष अन्तिम श्वासोच्छ्वास में केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में गये हैं उन्हें अन्तकृत कहते हैं।' किन्तु यह अर्थ शास्त्र-सम्मत नहीं है। क्योंकि केवलज्ञान होते ही तेरहवाँ गुणस्थान प्राप्त होता है। १३ वें गुणस्थान का नाम 'सयोगी केवली गुणस्थान' है। इस गुणस्थान में योगों की प्रवृत्ति रहती है। इसकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट देशोन करोड़ पूर्व की है। तेरहवें गुणस्थान के अन्त में सब योगों का निरोध कर देते हैं। इसके बाद साधक १४वें गुणस्थान में जाते हैं। इसलिये इस गुणस्थान का नाम अयोगी केवली गुणस्थान है। इसकी स्थिति अ, इ, उ, ऋ, लृ ये पांच ह्रस्व अक्षर उच्चारण करने जितनी है। इसलिये अन्तिम श्वासोच्छ्वास में केवलज्ञान उत्पन्न होने की बात कहना ठीक नहीं है। केवलज्ञान होने के बाद १३वें गुणस्थान में कुछ ठहर कर उसके बाद 'अयोगी-केवली' नामक १४ वाँ गुणस्थान प्राप्त होता है। अतः टीकाकार ने जो अर्थ किया है, वही ठीक है। इस प्रकार भव (चतुर्गति रूप संसार) का अन्त करने वाली महान् आत्माओं में से कुछ महान् आत्माओं के जीवन का वर्णन इस सूत्र में दिया गया है इसलिये इसे अन्तकृत दशा सूत्र कहते हैं।

अन्तकृत दशा आठवाँ अङ्ग सूत्र है इसमें आठ वर्ग हैं। अध्ययनों के समूह को 'वर्ग' कहते हैं। इसमें ९० महापुरुषों के जीवन चरित्र का वर्णन है।

अन्तकृतदशाङ्ग सूत्र की संक्षिप्त तालिका

१. वर्गात्मक तालिका - वर्ग आठ हैं उनमें क्रमशः अध्ययन इस प्रकार हैं -

पहले में १०, दूसरे में ८, तीसरे में १३, चौथे में १०, पांचवें में १०, छठे में १६, सातवें में १३, आठवें में १०।

२. शासनात्मक तालिका - बाईसवें तीर्थङ्कर भगवान् अरिष्टनेमि के शासन में ५१ साधक हुए। शासनपति २४ वें तीर्थङ्कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के शासन में ३९ साधक हुए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. लिङ्गात्मक तालिका - ५१ साधकों में से ४१ पुरुष और १० स्त्रियाँ थी। ३९ साधकों में १६ पुरुष और २३ स्त्रियाँ थी। ९० महापुरुषों में से कुल ५७ पुरुष और ३३ स्त्रियाँ थी।

४. वंशात्मक तालिका - ५१ साधक यदुवंशी थे । श्रेणिक राजा की २३ महारानियाँ, १४ गाथापति, १ मालाकार (अर्जुनमाली), १ राजपुत्र (अतिमुक्तक कुमार)।

५. जीवनात्मक तालिका - गजसुकुमार और अतिमुक्तक कुमार बालब्रह्मचारी थे। छोटी उम्र में दीक्षा ली थी। ८८ साधक भोगों से निवृत्त होकर दीक्षित बने थे।

६. अध्ययनात्मक तालिका - (क) ९० महापुरुषों में से किसने कितना ज्ञान प्राप्त किया?

उत्तर - गजसुकुमाल और अर्जुन अनगार के ज्ञान पढ़ने का वर्णन नहीं आया है किन्तु आठ प्रवचन माता का ज्ञान तो था ही ऐसा जानना चाहिए ।

(ख) स्त्री साधक ३३ जीव हैं। कृष्ण वासुदेव की महारानियाँ (पद्मावती आदि) १० और श्रेणिक राजा की रानियाँ नन्दा आदि १३ और काली आदि १० इन ३३ स्त्री साधकों ने ११ अङ्ग का ज्ञान पढ़ा था।

(ग) भगवान् अरिष्टनेमि के साधक गौतम कुमार आदि अठारह भाई तथा महावीर स्वामी के साधक मकाई अनगार आदि १५ इन ३३ साधकों ने ११ अङ्ग का ज्ञान पढ़ा था।

(घ) भगवान् अरिष्टनेमि के साधक अनीकसेन आदि १२ अनगारों ने १४ पूर्वों का ज्ञान पढ़ा था।

(ङ) जाली आदि १० अनगारों ने दृष्टिवाद तक १२ अङ्गों का ज्ञान पढ़ा था। कुल - २+३३+३३+१२+१०=९०

३३ महारुपुषों ने भिक्षु पड़िमा अङ्गीकार की थी। १० पूर्वी से कम ज्ञान वाले इस पड़िमा को अङ्गीकार कर सकते हैं। ऊपर वाले नहीं ।

प्रश्न - स्थविर किसे कहते हैं?

उत्तर - तप संयम में लगे हुए साधुओं को परीषह उपसर्ग आने पर यदि वे संयम मार्ग से डिगते हों शिथिल बनते हों, तो उन्हें जो संयम में स्थिर करे, उन मुनि को 'स्थविर' कहते हैं। वे वयः, श्रुत और दीक्षा में बड़े होते हैं इस अपेक्षा से स्थविर के ३ भेद हैं - १. वयः-स्थविर २. श्रुत-स्थविर और ३. दीक्षा स्थविर ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. वयः-स्थविर - जिस मुनि की वयः (उम्र) साठ वर्ष की हो, वे वयः-स्थविर कहलाते हैं। उन्हें अवस्था स्थविर अथवा जाति-जन्म स्थविर भी कहते हैं।

२. श्रुत स्थविर - जो ठाणांग सूत्र और समवायांग सूत्र के ज्ञाता हों, उन्हें श्रुत-स्थविर कहते हैं। उन्हें ज्ञान स्थविर भी कहते हैं।

३. दीक्षा स्थविर - जिनकी दीक्षा पर्याय २० वर्ष की हो - उन्हें दीक्षा स्थविर कहते हैं। उन्हें प्रव्रज्या स्थविर या पर्याय स्थविर भी कहते हैं।

प्रश्न - दशार्ह किसे कहते हैं?

उत्तर - जिनकी संख्या दस हो और जो पूज्य हों, उन्हें दशार्ह कहते हैं। वे दस इस प्रकार हैं - १. समुद्रविजय २. अक्षोभ ३. स्तिमित ४. सागर ५. हिमवान् ६. अचल ७. धरण ८. पूरण ९. अभिचन्द्र और १० वसुदेव । वसुदेवजी के कुन्ती और माद्री ये दो छोटी बहिनें थी। बलदेव और वासुदेव के परिवार को भी 'दशार्ह' कहते हैं।

प्रश्न - आदक्षिण - प्रदक्षिण किसको कहते हैं?

उत्तर - दोनों हाथ जोड़ने को 'अञ्जलिपुट' कहते हैं। अञ्जलिपुट को अपने दाहिने कान से लेकर सिर पर घुमाते हुए बायें कान तक ले जावे और बाद में उसे अपने ललाट पर स्थापन करें उसे ''आदक्षिण-प्रदक्षिण'' कहते हैं।

प्रश्न - भिक्षु प्रतिमा का काल कितना है ?

उत्तर - टीकाकार इसका काल ९ वर्ष बतलाते हैं। किन्तु प्राचीन धारणा के अनुसार भिक्षु पड़िमा का काल एक ऋतुबद्ध काल है। अर्थात् ८ महीने का काल है। यह प्राचीन धारणा ठीक मालूम होती है।

प्रश्न - प्रथम वर्ग में गौतमकुमार आदि दस और द्वितीय वर्ग में अक्षोभकुमार आदि आठ इस प्रकार इन अठारह कुमारों का वर्णन हैं। क्या ये अठारह ही सगे सहोदर भाई थे ?

उत्तर - हाँ! ये अठारह ही सगे सहोदर भाई थे । इनके पिता का नाम अन्धकवृष्णि और माता का नाम धारिणी था। यही बात पूज्य जयमलजी म. सा. ने अपनी बड़ी साधु वन्दना में कही है -

''गौतमादिक कुंवर, सगा अठारह भ्रात।
अन्धकवृष्णि सुत, धारिणी ज्यांरी मात ॥''

श्रावक श्री दलपतराजजी की बनाई हुई नवतत्त्व प्रश्नोत्तरी में बताया है कि गौतमकुमार आदि दस अन्धकवृष्णि के पुत्र थे और अक्षोभकुमार आदि आठ अन्धकवृष्णि के पौत्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(पोता) थे । अर्थात् अन्धकवृष्णि के जिस दस पुत्रों का वर्णन पहले वर्ग में किया गया है। उनमें से दसवें पुत्र विष्णुकुमार के ये अक्षोभकुमार आदि आठ पुत्र थे। इस प्रकार अक्षोभ कुमार आदि आठकुमार अन्धकवृष्णि के पौत्र थे।

शास्त्र के मूलपाठ पर विचार करने से तो यही ज्ञात होता है कि - ये अठारह सगे भाई थे। क्योंकि प्रथम वर्ग में और द्वितीय वर्ग में दोनों जगह 'वण्ही पिया' ऐसा पाठ दिया है। "वृष्णि" शब्द का प्राकृत में वण्हि रूप बनता है, परन्तु विष्णु शब्द का 'वण्हि' रूप नहीं बनता "विष्णु" शब्द का "विण्हु" शब्द बनता है।

प्रश्न - मुद्गरपाणि यक्ष ने जब अर्जुनमाली के शरीर में प्रवेश कर दिया और वह मनुष्यों को मारने लगा। यह उपद्रव कितने समय तक रहा? और कितने मनुष्यों को मारा?

उत्तर - अर्जुनमालाकार का उपद्रव कितने समय तक रहा और उसने कितने मनुष्यों को मारा? इन दोनों बातों का उल्लेख अन्तगड सूत्र के मूल पाठ में नहीं मिलता है। किन्तु वृद्ध परम्परा और पूर्वाचार्यों की धारणा के अनुसार यह कहा जाता है कि - यक्षाविष्ट (जिसके शरीर में यक्ष ने प्रवेश किया हो) अर्जुनमाली का उपद्रव ५ महीने और तेरह दिन तक चला था जिसमें १६३ स्त्रियाँ और ९७८ पुरुष कुल ११४१ मनुष्यों की उसने हत्या की थी। इस धारणा का उल्लेख बहुअर्थी अन्तकृतदशाङ्ग सूत्र के प्राचीन टब्बाओं में होना संम्भव है। यह धारणा आगमानुकूल मालूम होती है। क्योंकि साढ़े पांच महीने में उपार्जन किये हुये भारी कर्मों को क्षमा युक्त बेले-बेले की तपश्चर्या के द्वारा अर्जुन अनगार ने साढ़े पांच महीने में ही क्षय कर दिया। क्योंकि अर्जुन अनगार की दीक्षा पर्याय छह महीने की है। उसमें से १५ दिन तो संथारे के थे । उनको निकाल देने पर साढ़े पांच महीने ही बचते हैं। तपश्चर्या का प्रभाव ही जबरदस्त है। क्योंकि ठाणाङ्ग सूत्र के दसवें ठाणे में बतलाया गया है कि तपश्चर्या से निकाचित कर्म भी क्षय हो जाते हैं। यथा

"भव कोडि संचियं कम्मं तवसा णिज्जरिजइ"

प्रश्न - ११४१ मनुष्यों की हत्या हुई इसका पाप किसको लगा ?

उत्तर - सात मनुष्यों को मारने (एक स्त्री और छह गोट्ठीले पुरुष) की भावना अर्जुन की थी इसलिये अर्जुन ने यक्ष को याद किया था और वह आया। और मुद्गर से उन सातों को मार दिया इन सात का पाप अर्जुन को भारी रूप में लगा और यक्ष को हलके रूप में लगा। शेष मनुष्यों को मारने की भावना अर्जुन की नहीं थी किन्तु उसने यक्ष को बुलाया था इसलिये शेष ११३४ मनुष्यों को मारने का पाप अर्जुन को हलका लगा और यक्ष को भारी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रूप में लगा ऐसा अनुमान होता है क्योंकि यक्ष को वह धुन सवार हो गयी थी। उस आवेश में आकर वह मनुष्यों को मारता गया।

प्रश्न - क्या इसका पाप राजा और प्रजा को भी लगा?

उत्तर - हाँ! इसका पाप राजा और प्रजा दोनों ही को लगा क्योंकि राजा श्रेणिक ने उन छह गोट्ठीले (गोष्टिक) पुरुषों को किसी सुन्दर कार्य करने के उपलक्ष में वरदान दिया तो वह उनको किसी प्रकार की ताजिम या जागिरदारी या पारितोषिक दे सकता था किन्तु "तुम जो करो उसको राज्य की तरफ से अच्छा कहा जायेगा" ऐसा वरदान देना अनुचित था। इसी से उन पुरुषों को सात ही व्यसनों में प्रवृत्त होने की प्रेरणा मिली, वे दुराचारी बन गये और स्वेच्छानुसार प्रवृत्ति करने लगे और इसीलिये यह सब अनर्थ हुआ। अतः अनुचित वरदान देने के कारण इस हत्या का पाप राजा को भी लगा।

राजा ने तो यह अनुचित वरदान दे दिया किन्तु इस अनुचित और अन्याय युक्त वरदान को प्रजा ने सहन क्यों किया? उसको (प्रजा को) उसका विरोध करना चाहिए था। क्योंकि प्रजा की रक्षा और सुव्यवस्था को राज्य कहते हैं। उस सुव्यवस्था से विपरीत राजा के आदेश को भी प्रजा को मान्य नहीं करना चाहिए। प्रजा ने इसका विरोध नहीं किया इसलिये इस हत्या के पाप का अंश रूप प्रजा को भी पाप लगा।

७. तपश्चर्यात्मक तालिका - अर्जुन अनगार ने बेले बेले की तपश्चर्या की, गजसुकुमाल मुनि ने भिक्षु की बारहवीं पड़िमा अंगीकार की, शेष ५५ पुरुष साधकों ने गुणरत्न संवत्सर तप किया था और बारह भिक्षु पडिमा अंगीकार की थी। राजा श्रेणिक की काली आदि १० महारानियों ने रत्नावली, कनकावली, आयम्बिल वर्धमान तप आदि अनेक प्रकार की दुष्कर-दुष्कर तपश्चर्याएं की।

८. दीक्षात्मक तालिका - गजसुकुमाल मुनि की दीक्षा पर्याय बहुत अल्प थी। (लगभग ७-८ घण्टे), अर्जुन अनगार की दीक्षा पर्याय ६ मास, शेष साधकों की ५, ७, १२, १६ यावत् २० वर्ष की और अतिमुक्तककुमार अनगार की बहुत वर्षों की दीक्षा पर्याय थी।

९. मोक्षस्थान तालिका - गजसुकुमाल अनगार श्मशान भूमि में मोक्ष पधारे। शेष २२ वें तीर्थङ्कर के शासन के ४० पुरुष साधक शत्रुञ्जय पर्वत पर सिद्ध हुए। अर्जुन अनगार राजगृही में सिद्ध हुए । शेष भगवान् महावीर स्वामी के शासन के १५ पुरुष साधक विपुल गिरि पर सिद्ध हुए । भगवान् अरिष्टनेमि के शासन की १० स्त्री साधिका और भगवान्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महावीर स्वामी के शासन की २३ स्त्री साधिका एवं कुल ये ३३ स्त्री साधिका स्वस्थान में (जिस उपाश्रय में वे विराजती थी) मोक्ष पधारी।

१०. संथारात्मक तालिका – गजसुकुमाल मुनि ने महाकाल श्मशान में एक रात्रि की भिक्षु प्रतिमा का आराधन करते हुए तथा सोमिल ब्राह्मण द्वारा शिर पर रखे हुए खैर (खदिर)की लकडी के अंगारों की तीव्र उज्ज्वल वेदना को समभाव पूर्वक सहन करते हुये मोक्ष प्राप्त किया। यही उनका संथारा था। अर्जुन अनगार ने १५ दिनों का संथारा किया था। शेष सभी साधकों को एक महीने का संथारा आया था।

से किं तं अणुत्तरोववाइयदसाओ ? अणुत्तरोववाइयदसासु णं अणुत्तरोववाइयाणं णगराइं, उज्जाणाइं, चेइयाइं, वणखंडाइं, रायाणो, अम्मापियरो, समोसरणाइं, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइयपरलोइयइड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चाया, पव्वज्जाओ सुयपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, परियागा, पडिमाओ, संलेहणाओ, भत्तपाण-पच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, अणुत्तरोववाओ, सुकुलपच्चायाइं, पुणो बोहिलाभो, अंतकिरियाओ य आघविज्जंति। अणुत्तरोववाइयदसासु णं तित्थयरसमोसरणाइं, परममंगल्ल जगहियाणि जिणाइसेसा य बहुविसेसा जिणसीसाणं चेव समण गण पवर गंधहत्थीणं, थिरजसाणं, परिसह सेण्णरिउबल पमद्दणाणं, तवदित्त चरित्त णाण सम्मत्तसार विविहप्पगार वित्थरपसत्थ गुणसंजुयाणं, अणगार महरिसीणं, अणगारगुणाणं वण्णओ, उत्तमवर तवविसिट्ठ णाणजोगजुत्ताणं जह य जगहियं भगवओ जारिसा, इड्ढिविसेसा, देवासुरमाणुसाणं परिसाणं पाउब्भावा य जिणसमीवं जह य उवासंति, जिणवरं जह य परिकहंति, धम्मं लोग गुरु अमर णर सुर गणाणं सोऊण य तस्स भासियं अवसेसकम्म विसयविरत्ता णरा जहा अब्भुवेंति धम्ममुरालं संजमं, तवं चावि बहुविहप्पगारं जह बहूणि वासाणि अणुचरित्ता आराहियणाण दंसण चारित्तजोगा जिणवयणमणुगय-महियं भासिया जिणवराणहिययेण मणुण्णेत्ता जे य जहिं जत्तियाणि भत्ताणि छेयइत्ता लद्धूण य समाहिमुत्तम ज्झाण जोगजुत्ता, उववण्णा मुणिवरोत्तमा जह अणुत्तरेसु पावंति जह अणुत्तरं तत्थ विसयसोक्खं, तओ य चुआ कमेण काहिंति संजया जहा य अंतकिरियं एए अण्णे य एवमाइयत्था वित्थरेण। अणुत्तरोववाइयदसासु णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा जाव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संखेज्जाओ संग्गहणीओ। से णं अंगट्ठयाए णवमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा, तिण्णि वग्गा, दस उद्देसणकाला, दस समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ता। संखेज्जाणि अक्खराणि जाव एवं चरणाकरणपरूवणया आघविज्जंति, से तं अणुत्तरोववाइयदसाओ ॥ ९ ॥

कठिन शब्दार्थ - अणुत्तरोववाइयाणं - अनुत्तरौपपातिक जीवों के, **परममंगल्लजगहियाणि तित्थयर समोसरणाइं** - परम मांगलिक जगत् के लिए हितकारी तीर्थङ्करों के समवसरण, **समणगणपवरगंधहत्थीणं** - सब साधुओं में प्रधान गन्ध हस्ती के समान, **थिरजसाणं** - स्थिर यश वाले, **परिसहसेण्णरिउबलपमद्दणाणं** - परीषह रूपी शत्रु सेना को पराजित करने वाले, **तवदित्त चरित्त णाण सम्मत्तसार विविहप्पगार वित्थरपसत्थ गुणसंजुयाणं** - उत्तम ज्ञान दर्शन चारित्र से युक्त तथा विविध प्रकार के क्षमा आदि उत्तम गुणों से संयुक्त, **उत्तमवर तवविसिट्ठ णाणजोगजुत्ताणं** - जाति आदि से उत्तम प्रधान तप के धारक, विशिष्ट ज्ञानादि सम्पन्न, **अवसेसकम्मविसयविरत्ता** - क्षीण प्राय: कर्म वाले और विषय से विरक्त, **धम्ममुरालं (उरालं धम्मं)** - उदार-प्रधान धर्म को, **अब्भुवेंति** - स्वीकार करते हैं, **जिणवयणमणुगयमहियभासिया** - जिन वचन के अनुकूल यथार्थ कहने वाले, **जिणवराण-हिययेणमणुण्णेत्ता** - जिन भगवान् के मार्ग का हृदय से अनुसरण करने वाले, **अंतकिरियं काहिंति** - अंतक्रिया करेंगे।

भावार्थ - शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन्! अनुत्तरौपपातिकदशा सूत्र में क्या भाव कहे गये हैं? गुरु महाराज उत्तर देते हैं कि अनुत्तरौपपातिक दशा सूत्र में अनुत्तरौपपातिक जीवों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथाएं, इहलौकिक पारलौकिक ऋद्धि विशेष, भोगों का त्याग, प्रव्रज्या, श्रुतपरिग्रह-शास्त्राभ्यास, उपधानादि तप, दीक्षा पर्याय, पडिमाएँ, संलेखना, भक्तपान का प्रत्याख्यान, पादपोपगमन, अनुत्तर विमानों में जन्म होना, वहाँ से चव कर उत्तम कुल में जन्म लेना, जिनधर्म की प्राप्ति होना, अन्तक्रिया इत्यादि का वर्णन इस सूत्र में किया गया है। अनुत्तरौपपातिक दशा सूत्र में परम माङ्गलिक, जगत् के लिए हितकारी तीर्थङ्कर भगवन्तों के समवसरण का तथा तीर्थङ्कर भगवान् के ३४ अतिशयों का वर्णन किया गया है। सब साधुओं में प्रधान गन्ध हस्ती के समान, स्थिर यश वाले, परीषह रूपी शत्रुओं की सेना को पराजित करने वाले, उत्तम ज्ञान दर्शन चारित्र से युक्त तथा विविध प्रकार के क्षमा आदि उत्तम गुणों से संयुक्त, जाति आदि से उत्तम, प्रधान तप के धारक, विशिष्ट ज्ञानादि सम्पन्न अनगार महा ऋषीश्वर, तीर्थङ्कर भगवान् के शिष्यों का और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साधुओं के गुणों का वर्णन किया गया है। तीर्थङ्कर भगवान् का शासन जगत् के लिये हितकारी है। ऋद्धि विशेष वैमानिक देव, असुर - भवनपति और मनुष्यों की परिषदाएं, तीर्थङ्कर भगवन्तों के पास देवों का प्रगट होना। इत्यादि बातों का वर्णन किया गया है और जिस तरह से परिषदाएं तीर्थङ्कर भगवान् की उपासना करती हैं और जिस प्रकार लोक के गुरु तीर्थङ्कर भगवान् उन देव, मनुष्य और असुरों की परिषदा को धर्म फरमाते हैं और उन तीर्थङ्कर भगवान् के कहे हुए धर्म को सुन कर क्षीणप्राय: कर्म वाले और विषय से विरक्त मनुष्य उदार-प्रधान धर्म को (संयम को) और विविध प्रकार के तप को स्वीकार करते हैं। फिर बहुत वर्षों तक संयम का पालन करके ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना करने वाले, जिन वचन के अनुकुल यथार्थ कहने वाले, जिन भगवान् के मार्ग का हृदय से अनुसरण करने वाले, जो उत्तम मुनि जहाँ जितने भक्त का छेदन करना चाहिए वहाँ उतने भक्तों का छेदन करके अर्थात् सूत्रानुसार तपस्या करके समाधि को प्राप्त करके और उत्तम ध्यान से संयुक्त होकर अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुए हैं और वहाँ अनुत्तर विमानों में जिस प्रकार प्रधान विषय सुखों को प्राप्त करते हैं और वहाँ से चव कर क्रम से जिस प्रकार संयम स्वीकार करके अन्त क्रिया करेंगे अर्थात् सब कर्मों का क्षय कर मोक्ष प्राप्त करेंगे इत्यादि सारा अधिकार और इसी प्रकार के दूसरे अधिकार विस्तार पूर्वक कहे गये हैं। अनुत्तरौपपातिक दशा सूत्र में परित्ता-संख्याता वाचना हैं, संख्याता अनुयोग द्वार हैं, यावत् संख्याता संग्रहणी गाथाएं हैं। यह अनुत्तरौपपातिक दशा सूत्र अंगों की अपेक्षा नववां अंग सूत्र है। इसमें एक श्रुतस्कन्ध है, तीन वर्ग हैं, दस उद्देशनकाल हैं, दस समुद्देशन काल हैं, पदों की गिनती की अपेक्षा संख्याता लाख पद अर्थात् ४६ लाख ८ हजार पद कहे गये हैं। संख्याता अक्षर हैं यावत् चरण सत्तरि करणसत्तरि की प्ररूपणा से अनुत्तरौपपातिक सूत्र के भाव कहे जाते हैं। यह अनुत्तरौपपातिक सूत्र का भाव है ॥ ९ ॥

विवेचन - "न सन्ति उत्तराणि प्रधानानि विमानानि येभ्यः, ते अनुत्तराः तेषु उपपतनं उपपातः जन्म येषां ते अनुत्तरौपपातिकाः तद् व्यक्तव्यता प्रतिबद्धा दशा-अध्ययनोपलक्षिता अनुत्तरौपपातिकदशाः। अनुत्तराणि विमानानि पञ्च-यथा विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थ सिद्ध। तेषु उपपातः इति अनुत्तरौपपातिकाः।"

अर्थ - जिनसे बढ़कर प्रधान कोई विमान नहीं हैं ऐसे विमान पांच हैं। यथा - विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध। इन विमानों में जिनका जन्म होता है उनको अनुत्तरौपपातिक देव कहते हैं। उनके अध्ययन इस सूत्र में होने से इसे अनुत्तरौपपातिक दशा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहते हैं। यहाँ दशा शब्द का अर्थ अध्ययन विशेष है। इसमें तीन वर्ग हैं। पहले वर्ग में दस अध्ययन हैं। दूसरे वर्ग में तेरह और तीसरे वर्ग में दस अध्ययन हैं।

विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित इन चार देवलोकों में जघन्य स्थिति इकत्तीस सागरोपम और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की है। ये जघन्य दो और उत्कृष्ट पांच भव करके मोक्ष चले जाते हैं। सर्वार्थसिद्ध विमानवासी देवों की अजघन्य अनुत्कृष्ट (जघन्य उत्कृष्ट के बिना) स्थिति तेतीस सागरोपम की ही होती है। वे सब देव एक भवावतारी (एक मनुष्य का भव करके मोक्ष जाने वाले) ही होते हैं। वे वहाँ से चव कर उत्तम कुल में मनुष्य जन्म लेकर और फिर दीक्षा अङ्गीकार करके मोक्ष चले जाते हैं।

नोट – टीकाकार का कथन है कि–अध्ययनों के समूह को 'वर्ग' कहते हैं। इसमें तीन वर्ग हैं। इसीलिये उद्देशनकाल भी तीन ही होने चाहिए । नन्दी सूत्र में भी तीन का ही उल्लेख है किन्तु यहाँ उद्देशन काल दस कहने का क्या अभिप्राय है यह समझ में नहीं आता? शायद लिपि प्रमाद हो सकता है।

से किं तं पण्हावागरणाणि? पण्हावागरणेसु अट्ठुत्तरं पसिणसयं अट्ठुत्तरं अपसिणसयं, अट्ठुत्तरं पसिणापसिणसयं, विज्जाइसया, णागसुवण्णेहिं सद्धिं दिव्वा संवाया आघविज्जंति, पण्हावागरणदसासु णं ससमय परसमय पण्णवय पत्तेयबुद्ध विविहत्थभासाभासियाणं, अइसयगुण उवसमणाणप्पगार आयरियभासियाणं, वित्थरेण वीर महेसीहिं विविहवित्थरभासियाणं च जगहियाणं, अद्दागंगुट्ठबाहुअसिमणि खोमआइच्चमाइयाणं विविहमहापसिण विज्जामणपसिणविज्जादेवयपओग पहाणगुणप्पगासियाणं, सब्भूय दुगुणप्पभाव णरगण मइविम्हयकराणं, अइसयमईयकाल समयदमसमतित्थकरुत्तमस्स ठिइकरणकारणाणं दुरहिगम दुरवगाहस्स सव्वसव्वण्णुसम्मयस्स अबुहजणविबोहणकरस्स पच्चक्खय पच्चयकराणं, पण्हाणं विविहगुण महत्था जिणवरप्पणीया आघविज्जंति । पण्हावागरणेसु णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा जाव संखेज्जाओ संग्गहणीओ, से णं अंगट्ठयाए दसमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, पणयालीसं उद्देसणकाला, पणयालीसं समुद्देसणकाला, संखेज्जाणि पयसयसहस्साणि पयग्गेणं पण्णत्ता, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा जाव चरणकरणपरूवणया आघविज्जंति, से तं पण्हावागरणाइं ॥ १० ॥

कठिन शब्दार्थ – **अट्ठुत्तरसयं** – १०८, **पसिणापसिण** – प्रश्नाप्रश्न, **विज्जाइसया** –

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विद्यातिशय, **विविहगुणमहत्था** - विविध गुण युक्त महान् अर्थ, **अइसयगुणउवसमणाणप्पगार-आयरियभासियाणं** - अतिशयों से युक्त तथा ज्ञानादि एवं उपशमादि गुणों से युक्त आचार्यों द्वारा कही हुई, **वीर महेसीहिं** - वीर महिर्षियों द्वारा, **अद्दागंगुट्ठबाहुअसिमणि खोम आइच्च भासियाणं** - आदर्श (कांच) अंगुष्ठ, बाहु, तलवार, मणिरत्न, वस्त्र, सूर्य आदि प्रश्न विद्याओं का, **सब्भूयदुगुणप्पभाव णर गणमइ विम्हयकराणं** - सद्भूत यानी वास्तविक तत्त्वों का विविध प्रकार से कथन करके मनुष्य समुदाय की बुद्धि को विस्मित करने वाली, **अइसयमईयकालसमयदमसमतित्थकरुत्तमस्स ठिइकरण कारणाणं** - भूतकाल में अतिशय सम्पन्न शम दमादि गुण युक्त तीर्थङ्कर हुए थे अन्यथा इस प्रकार के सत्य तत्त्वों का कथन कौन करता इस तरह की सद् युक्तियों से भूतकाल में हुए तीर्थंकरों का अस्तित्व सिद्ध करने वाली, **दुरहिगम दुरवगाहस्स सव्वसव्वण्णुसम्मयस्स अबुहजणविबोहणकरस्स पच्चक्खय-पच्चयकराणं** - सूक्ष्म अर्थ जो कि सब सर्वज्ञों को सम्मत है और कठिनता से जानने योग्य और कठिनता से पढ़ने योग्य है, ऐसे सूक्ष्म अर्थ को प्रत्यक्ष के समान प्रतीति कराने वाली, **जिणवरप्पणीया** - जिनवर प्रणीत ।

भावार्थ - शिष्य प्रश्न करता है कि - हे भगवन्! प्रश्नव्याकरण किसको कहते हैं अर्थात् प्रश्नव्याकरण सूत्र में क्या भाव फरमाये हैं? भगवान् फरमाते हैं कि प्रश्न का उत्तर देना प्रश्नव्याकरण कहलाता है। प्रश्नव्याकरण सूत्र में १०८ प्रश्न विद्या अर्थात् अंगुष्ठप्रश्न बाहुप्रश्न आदि मंत्र विद्या, १०८ अप्रश्नविद्या अर्थात् ऐसी विद्या जिसके मन्त्र का विधिपूर्वक जप करने से बिना पूछे ही शुभाशुभ फल बतलाती हो, १०८ प्रश्नाप्रश्न विद्या अर्थात् अंगुष्ठादि प्रश्न के भाव को तथा अभाव को जानकर जो विद्या शुभाशुभ बतलाती है ऐसी विद्या, विद्यातिशय अर्थात् स्तम्भनी, वशीकरणी, विद्वेषीकरणी, उच्चाटनी आदि विद्याओं का कथन किया गया है तथा उपरोक्त विद्याओं को सिद्ध करने वाले साधकों के नागकुमार सुवर्णकुमार आदि भवनपति देवों के साथ तथा यक्षादि के साथ जो तात्त्विक संवाद - प्रश्नोत्तर हुए हैं उनका कथन किया गया है। प्रश्नव्याकरण सूत्र में स्वसमय अर्थात् स्वसिद्धान्त और परसमय अर्थात् पर मतावलम्बियों के सिद्धान्त की भलि प्रकार विवेचना करने वाले प्रत्येक बुद्ध महर्षियों द्वारा विविध अर्थ वाली गम्भीर भाषा में कही गई अंगुष्ठादि प्रश्न विद्याओं के विविध गुणयुक्त महान् अर्थ कहे गये हैं। आमर्षौषधि आदि विविध लब्धियाँ (अतिशयों) से युक्त तथा ज्ञानादि एवं उपशमादि गुणों से युक्त आचार्यों द्वारा कही हुई तथा वीर महर्षियों द्वारा बड़े विस्तार के साथ कही हुई, जगत् के लिए हितकारी, आदर्श यानी काच, अंगुष्ठ, बाहु,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तलवार, मणिरत्न, वस्त्र, सूर्य आदि प्रश्न विद्याओं का, जो कि वचन के द्वारा किये गये प्रश्नों का तथा मन के द्वारा किये गये प्रश्नों का उत्तर देती है और जो उन उन विद्याओं की अधिष्ठात्री देवियों की शक्ति से विविध अर्थों को प्रकाशित करती हैं, उन प्रश्न विद्याओं का कथन किया गया है। वे विद्याएं कैसी हैं सो बतलाया जाता है - सद्भूत यानी वास्तविक तत्त्वों का विविध प्रकार से कथन करके मनुष्य समुदाय की बुद्धि को विस्मित करने वाली, अतीतकालीन तीर्थंकरों के अस्तित्व को बतलाने वाली अर्थात् 'भूतकाल में अतिशय सम्पन्न शम दमादि गुण युक्त तीर्थंकर हुए थे अन्यथा इस प्रकार के सत्य तत्त्वों का कथन कौन करता' इस तरह की सद्युक्तियों से भूतकाल में हुए तीर्थंकरों का अस्तित्व सिद्ध करने वाली, सूक्ष्म अर्थ जो कि सब सर्वज्ञों को सम्मत हैं और जो कठिनता से जानने योग्य और कठिनता से पढ़ने योग्य हैं, ऐसे सूक्ष्म अर्थ को प्रत्यक्ष के समान प्रतीति कराने वाली प्रश्न विद्याओं के जिनवर प्रणीत विविध गुण युक्त महान् अर्थ प्रश्नव्याकरण सूत्र में कहे गये हैं। प्रश्नव्याकरण सूत्र में परित्ता - संख्याता वाचना, संख्याता अनुयोगद्वार यावत् संख्याता संग्रहणी गाथाएं हैं। यह प्रश्नव्याकरण सूत्र अंगों की अपेक्षा दसवां अङ्ग सूत्र हैं। इसमें एक श्रुतस्कन्ध है। पैंतालीस उद्देशन काल हैं, पैंतालीस समुद्देशन काल हैं। प्रत्येक पद की अपेक्षा संख्याता लाख पद यानी ९२ लाख १६ हजार पद कहे गये हैं। संख्याता अक्षर हैं, अनन्ता गमा यानी बोध करने के मार्ग कहे गये हैं यावत् चरणसत्तरि करणसत्तरि की प्ररूपणा से प्रश्नव्याकरण सूत्र के भाव कहे गये हैं। यह प्रश्नव्याकरण सूत्र का भाव है।। १०॥

विवेचन - प्रश्नव्याकरण सूत्र में प्रश्नविद्या, अप्रश्नविद्या आदि विद्याओं का जो वर्णन किया है वह इस उपलब्ध प्रश्नव्याकरण में नहीं है। किन्तु श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ग्यारह गणधर हुए थे । उनकी नौ (आठवें गणधर और नववें गणधर की एक सम्मिलित वाचना तथा दसवें और ग्यारहवें गणधर की एक सम्मिलित वाचना हुई ।) वाचनाएँ हुई हैं। अभी उपलब्ध वाचना श्री सुधर्मा स्वामी की है। इसके अतिरिक्त आठ वाचनाओं में से किसी वाचना में उपरोक्त प्रश्न विद्या आदि का पाठ होने की सम्भावना है।

वर्तमान उपलब्ध प्रश्नव्याकरण सूत्र में तो दो श्रुतस्कन्ध हैं पहले श्रुतस्कन्ध का नाम आस्रव द्वार है। जिसके पांच अध्ययन हैं। पाँचों में क्रमशः हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह का वर्णन हैं। हिंसा का महादुःखकारी फल जीव को भोगना पड़ता है। इसलिये सुखार्थी पुरुष को हिंसा का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। असत्यवादी पुरुष को नरक, तिर्यञ्च आदि में जन्म लेकर अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं। अदत्तादान (चोरी) करने वाले

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्राणियों को इस लोक में राज्य की तरफ से मृत्यु दण्ड तक दिया जाता है और परलोक में नरक-तिर्यंच गति में जन्म लेकर अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं। अब्रह्म (मैथुन) का सेवन कायर पुरुष ही करते हैं, शूरवीर नहीं । इसका सेवन कितने ही समय तक किया जाय किन्तु तृप्ति नहीं होती। जो राजा, महाराजा, वासुदेव, चक्रवर्ती, इन्द्र, नरेन्द्र आदि इसमें फँसे हुये हैं वे अतृप्त अवस्था में ही काल धर्म को प्राप्त हो जाते हैं और दुर्गति में जाकर वहाँ अनेक प्रकार के दुःख भोगते हैं। परिग्रह जो पाप का बाप है इसमें अधिक फंसने से सुख प्राप्त नहीं होता। किन्तु सन्तोष से ही सुख की प्राप्ति होती है। इन आस्रवों का पापकारी फल बताकर इन से निवृत्त होने की शास्त्रकार ने प्रेरणा दी है।

दूसरे श्रुतस्कन्ध का नाम संवर द्वार है। इसमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का बहुत सुन्दर शब्दों में वर्णन किया है तथा यह बतलाया गया है कि संवर द्वारों की सम्यक् प्रकार से आराधना करने से जीव को मोक्ष की प्राप्ति होती है।

से किं ते विवागसुयं ? विवागसुए णं सुक्कडदुक्कडाणं कम्माणं फल विवागा आघविज्जंति, से समासओ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा - दुहविवागे चेव सुहविवागे चेव, तत्थ णं दस दुहविवागाणि, दस सुहविवागाणि। से किं तं दुहविवागाणि ? दुहविवागेसु णं दुहविवागाणं णगराइं, उज्जाणाइं, चेइयाइं, वणखंडा, रायाणो, अम्मापियरो, समोसरणाइं, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, णगरगमणाइं, संसारपबंधे दुहपरंपराओ य आघविज्जंति, से तं दुहविवागाणि।

से किं तं सुहविवागाणि? सुहविवागेसु णं सुहविवागाणं णगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं, वणखंडा, रायाणो, अम्मापियरो, समोसरणाइं, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइय, परलोइय, इड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चाया, पव्वज्जाओ, सुयपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, परियागा, पडिमाओ, संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, देवलोगगमणाइं, सुकुलपच्चायाइं, पुण बोहिलाहा, अंतकिरियाओ य आघविज्जंति, से तं सुहविवागाणि।

दुहविवागेसु णं पाणाइवाय अलियवयण चोरिक्ककरण परदारमेहुणससंगयाए महतिव्व कसाय इंदिय प्पमाय पावप्पओय असुहज्झवसाण, संचियाणं कम्माणं पावगाणं पावअणुभागफलविवागा, णिरय गइ-तिरिक्खजोणि-बहुविह-वसण-सय-परंपराबद्धाणं मणुयत्ते वि आगयाणं जहा पावकम्मसेसेण पावगा होंति फलविवागा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वह वसण विणास णासा कण्णुट्ठंगुट्ठकर चरण णहच्छेयण-जिब्भच्छेयण अंजणकडग्गिदाह-गयचलण मलण फालण उल्लंबण सूल लया लउड लट्ठि भंजण तउ सीसग-तत्ततेल्ल-कलकल-अहिसिंचण कुंभीपाग कंपण थिर बंधण वेह-वज्झ-कत्तण पतिभयकर करपल्लीवणादि दारुणाणि दुक्खाणि अणोवमाणि बहुविविह परंपराणुबद्धा ण मुच्चंति पावकम्मवल्लीए, अवेयइत्ता हु णत्थि मोक्खो । तवेण धिइधणियबद्ध कच्छेण सोहेणं तस्स वावि हुज्जा।

एत्तो य सुहविवागेसु णं सील संजम णियम गुण तवोवहाणेसु साहुसु सुविहिएसु अणुकंपासयप्पओग तिकालमइ विसुद्धभत्तपाणाइं पययमणसा हियसुहणीसेस तिव्वपरिणाम णिच्छियमई पयच्छिऊणं पओगसुद्धाइं जह य णिव्वत्तेंति उ बोहिलाभं जह य परित्तीकरेंति णर णरय तिरिय सुरगमण-विपुल-परियट्ट-अरइ-भयविसाय-सोग-मिच्छत्त सेल संकडं, अण्णाण तमंधयार चिक्खिलसुदुत्तारं, जरामरण जोणिसंखुभियचक्कवालं, सोलसकसायसावयपयंडचंडं, अणाइयं, अणवदग्गं संसार सागरमिणं, जह य णिबंधंति आउगं सुरगणेसु, जह य अणुभवंति सुरगण विमाणसोक्खाणि, अणोवमाणि, तओ य कालंतरे चुयाणं इहेव णरलोगमागयाणं आउ वपु वण्ण रूव जाइ कुल जम्म आरोग्गबुद्धि मेहाविसेसा, मित्तजणसयणधणधण्ण विभवसमिद्धसारसमुदय विसेसा, बहुविह कामभोगुब्भवाण सोक्खाण सुहविवागोत्तमेसु, अणुवरयपरंपराणुबद्धा । असुभाणं सुभाणं चेव कम्माणं भासिया बहुविहा विवागा विवागसुयम्मि भगवया जिणवरेण संवेगकारणत्था अण्णेवि य एवमाइया बहुविहा वित्थरेणं अत्थपरूवणया आघविज्जंति। विवागसुयस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, जाव संखेज्जाओ संगहणीओ, से णं अंगट्ठयाए एक्कारसमे अंगे बीसं अज्झयणा, बीसं उद्देसण काला, बीसं समुद्देसण काला, संखेज्जाइं पयसयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ताइं, संखेज्जाणि अक्खराणि, अणंता गमा, अणंता पज्जवा जाव एवं चरण करण परूवणया आघविज्जंति । से तं विवागसुए।

कठिन शब्दार्थ - सुक्कडदुक्कडाणं कम्माणं फल विवागे - सुकृत (शुभ) और दुष्कृत (अशुभ) कर्मों का फल विपाक, **संसारपबंधे** - संसार प्रबन्ध यानी भव परम्परा का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विस्तार, **महतिव्व कसाय इंदिय प्पमाय पावप्पओय असुहज्झवसाण संचियाणं** - महातीव्र कषाय, इन्द्रिय प्रमाद, पापप्रयोग अशुभ अध्यवसाय यानी बुरे परिणामों से संचित किये हुए, **णिरयगइतिरिक्खजोणि बहुविह वसण सयपरंपराबद्धाणं** - नरक गति और तिर्यंच गति में अनेक प्रकार के कष्टों की परंपरा से बन्धे हुए जीवों के, **णासा कण्णुट्ठंगुट्ठ कर चरण णहच्छेयण जिब्भच्छेयण** - नाक, कान, होठ, अंगुठा, हाथ पैर और नखों का तथा जिह्वा का छेदन करना, **कडग्गिदाह** - बांस की अग्नि में जलाना, **गयचलणमलण** - हाथी के पैरों नीचे रोंदना, **उल्लंबण** - वृक्ष की शाखा में उलटे मुंह लटका देना, **सूल लया लउड लट्ठिभंजण** - शूल से, लता से, डंडे से, लकड़ी से शरीर के अंगों को नष्ट करना, **तउ सीसग तत्ततेल्ल कलकल अहिसिंचण** - कलकल शब्द करता हुआ अत्यंत तपा हुआ रांगा, सीसा और तैल शरीर पर डालना, **वज्झकत्तण** - चमडी उधेड़ देना, काट देना, **अणोवमाणि** - अनुपमेय-उपमा रहित, **धिइधणियबद्धकच्छेण** - अत्यंत धैर्य और बल युक्त, **णीसेस तिव्व परिणाम णिच्छियमई** - हितकारी सुखकारी कल्याणकारी उत्कृष्ट परिणाम वाले दाता, **अणुकंपा सयप्पओग तिकालमइ-विसुद्धभत्तपाणाइं पओगसुद्धाइं** - अनुकम्पा के परिणाम से तथा त्रिकालिक बुद्धि की विशुद्धता से युक्त तथा उद्गम उत्पादना आदि दोषों से रहित शुद्ध आहार पानी, **णर णरय तिरिय सुरगमण विपुल परियट्ट अरइ भय विसाय सोग-मिच्छत्त-सेलसंकडं** - मनुष्यगति, नरकगति, तिर्यंच गति और देवगति इन चार गतियों में बारम्बार परिभ्रमण करने रूप महान् आवर्त्त वाले तथा अरति भय विषाद शोक और मिथ्यात्व रूपी पर्वतों से व्याप्त, **अण्णाण तमंधयार चिक्खिल्ल सुदुत्तारं** - अज्ञानरूपी अन्धकार से युक्त और विषय वासना रूपी कीचड़ से परिपूर्ण होने से कठिनता से तैरने योग्य, **जरा मरण जोणि संखुभियचक्कवालं** - जरा और मरण से क्षुब्ध चक्रवाल युक्त, **चुयाणं** - चव कर आये हुए जीवों का।

भावार्थ - शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन्! विपाक सूत्र में क्या भाव फरमाये गये हैं? गुरु महाराज उत्तर देते हैं कि हे शिष्य! विपाक सूत्र में सुकृत यानी शुभ और दुष्कृत यानी अशुभ कर्मों का फलविपाक कहा गया है। इस विपाक सूत्र के संक्षेप से दो भेद कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - दुःखविपाक और सुखविपाक । उनमें से दुःखविपाक सूत्र के दस अध्ययन कहे गये हैं और सुखविपाक सूत्र के भी दस अध्ययन कहे गये हैं।

शिष्य प्रश्न करता है कि अहो भगवन्! दुःखविपाक सूत्र में क्या भाव फरमाये हैं? गुरु महाराज उत्तर देते हैं कि दुःखविपाक सूत्र में अशुभ कर्मों के दुःख रूप फल का भोग करने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाले दुःखी जीवों के नगर, उद्यान, बगीचे, वनखण्ड, राजा, माता, पिता, समवसरण यानी भगवान् के समवसरण की रचना, धर्माचार्य, धर्मकथा, नगरगमन यानी गौतमस्वामी का भिक्षार्थ नगर में प्रवेश, संसारप्रबन्ध यानी भवपरम्परा का विस्तार और दुःख परम्परा के विस्तार का कथन किया गया है। दुःखविपाक में ये भाव कहे गये हैं।

शिष्य प्रश्न करता है कि अहो भगवन्! सुखविपाक सूत्र में क्या भाव फरमाये गये हैं? गुरु महाराज उत्तर देते हैं कि सुखविपाक सूत्र में शुभ कर्मों के सुखरूप फल का भोग करने वाले सुखी जीवों के नगर, उदयान, बगीचे, वनखण्ड, राजा, माता, पिता, समवसरण यानी भगवान् के समवसरण की रचना, धर्माचार्य, धर्मकथा, इसलोक सम्बन्धी और परलोक सम्बन्धी ऋद्धि विशेष, भोगों का परित्याग, प्रव्रज्या यानी दीक्षा, श्रुतपरिग्रह यानी शास्त्रों का अध्ययन, उपधान आदि तप, दीक्षापर्याय, भिक्षुपडिमा, संलेखना, भक्तप्रत्याख्यान यानी आहार पानी का त्याग, पादपोपगमन संथारा कर पण्डितमरण द्वारा मृत्यु होना,फिर देवलोक में जाकर उत्पन्न होना, फिर वहाँ से चव कर उत्तम कुल में जन्म होना, फिर बोधिलाभ यानी शुद्ध सम्यक्त्व की प्राप्ति होना – जिनधर्म की प्राप्ति होना और फिर अन्त में अन्तक्रिया यानी मोक्ष की प्राप्ति होना, इत्यादि बातें कही गई हैं। सुखविपाक सूत्र में ये भाव कहे गये हैं।

दुःखविपाक सूत्र में जिन बातों का वर्णन किया गया है उनका विशेष रूप से कथन करने के लिए गुरु महाराज फरमाते हैं – प्राणातिपात-जीव हिंसा, असत्य भाषण, चोरी, मैथुन और परिग्रह यानी ममत्व भाव से उपार्जित किये हुए पापकर्मों का तथा महातीव्र कषाय, इन्द्रियप्रमाद, पापप्रयोग यानी मन वचन काया की अशुभ प्रवृत्ति और अशुभ अध्यवसाय यानी बुरे परिणामों से सञ्चित किये हुए पाप कर्मों के अशुभ फल विपाक का कथन दुःखविपाक सूत्र में किया गया है और नरक गति और तिर्यञ्चगति में अनेक प्रकार के कष्टों की परम्परा में बन्धे हुए जीवों के और मनुष्यभव में आये हुए जीवों के भी जिस प्रकार पाप कर्मों के उदय से अशुभ फल विपाक होते हैं, इन सब बातों का वर्णन दुःखविपाक सूत्र में किया गया है। नरक गति और तिर्यञ्च गति में किस प्रकार के कष्ट होते हैं सो बताया जाता है – वध यानी लाठी से मारना, वृषणविनाश यानी लिङ्ग का छेदन कर नपुंसक बनाना, नाक, कान, होठ, अंगुठा, हाथ, पैर और नखों का तथा जिह्वा का छेदन करना, अञ्जन यानी आंखों में तपी हुई लोह की शलाका डालना, बांस की अग्नि में जलाना, हाथी के पैरों नीचे रोंदना, कुल्हाड़ी से चीर कर टुकड़े करना, वृक्ष की शाखा में उलटे मुंह लटका देना, शूल से, लता से, डंडे से, लकड़ी से, शरीर के अंगों को नष्ट करना, कलकल शब्द करता हुआ अत्यन्त तपा हुआ रांगा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सीसा और तैल शरीर पर डालना, कुम्भी में डाल कर पचाना, शीतकाल में शरीर पर ठंडा जल छिड़क कर कंपाना, स्थिरबन्धन - गाढा बन्धन बांधना, भाला आदि शस्त्र से भेदना, चमड़ी उधेड़ देना, भय उपजाना, वस्त्र को तैल में डूबा कर शरीर पर लपेटना और फिर उसमें अग्नि जलाना आदि, दारुण - भयंकर, अनुपमेय - उपमा रहित दुःखों को, दुःखपरम्परा से बंधे हुए वे नरक गति और तिर्यञ्च गति के जीव भोगते हैं और वे पापकर्म की परम्परा (बेलड़ी) से छुटकारा नहीं पा सकते हैं क्योंकि किये हुए पाप कर्मों के फल को भोगे बिना छुटकारा हो नहीं सकता। शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन्! तो फिर उन कर्मों से छुटकारा कैसे हो सकता है? गुरु महाराज उत्तर देते हैं कि अनशनादि बारह प्रकार का तप करने से तथा अत्यन्त धीरता से अर्थात् क्षमा-सहनशीलता से उन कर्मों का शोधन हो सकता है अर्थात् उन कर्मों से छुटकारा हो सकता है। इसके सिवाय कर्मों से छुटकारा पाने का दूसरा कोई उपाय नहीं है। इत्यादि बातों का वर्णन दुःखविपाक सूत्र में किया गया है।

इसके बाद सुखविपाक सूत्र में जो विषय बतलाया गया है उसका वर्णन किया जाता है - सुखविपाक सूत्र में शील-ब्रह्मचर्य, संयम, नियम - अभिग्रह आदि, मूलगुण और उत्तरगुण, उपधान आदि तप, इत्यादि गुणों से युक्त श्रेष्ठ साधु महात्माओं को हितकारी सुखकारी कल्याणकारी उत्कृष्ट परिणाम वाले दाता लोग अति आदर और भक्तिपूर्वक अनुकम्पा के परिणाम से तथा त्रैकालिक बुद्धि की विशुद्धता से युक्त तथा उद्गम उत्पादना आदि दोषों से रहित शुद्ध आहार पानी बहरा कर बोधिलाभ करते हैं यानी सम्यक्त्व की प्राप्ति करते हैं और संसार सागर को परित्त करते हैं यानी अनन्त भव भ्रमण को घटा कर संसार परिभ्रमण को परिमित कर डालते हैं। वह संसार सागर कैसा है सो बतलाया जाता है - नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति और देवगति, इन चार गतियों में बारम्बार परिभ्रमण करने रूप महान् आवर्त्त वाले तथा अरति, भय, विषाद, शोक और मिथ्यात्व रूपी पर्वतों से व्याप्त अज्ञान रूपी अन्धकार से युक्त और विषयवासना रूपी कीचड़ से परिपूर्ण होने से कठिनता से तैरने योग्य, जरा-बुढ़ापा और मरण-मृत्यु से क्षुब्ध चक्रवाल युक्त क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों के अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन ये चार-चार भेद करने से कषाय के १६ भेद होते हैं। इन सोलह कषाय रूपी प्रचण्ड हिंसक जलजन्तुओं से युक्त इस अनादि संसार सागर को परित्त करते हैं और फिर वे जिस प्रकार देवलोकों में सागरोपम आदि की आयु बांधते हैं और वहां देवलोकों में अनुपम सुख का अनुभव करते हैं और कालान्तर में उन देवलोकों से चव कर यहाँ मनुष्य लोक में आकर उत्पन्न होते हैं। उन्हें यहां पर शुभ और दीर्घ आयु,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुदृढ़ और सुन्दर शरीर, गौर वर्ण, सुन्दर रूप, उत्तम जाति, उत्तम कुल, उत्तम क्षेत्र में जन्म, आरोग्यता, औत्पत्तिकी आदि बुद्धि, अपूर्व श्रुत को ग्रहण करने वाली मेधा - विशिष्ट बुद्धि, इन उत्तम बोलों की प्राप्ति होती है तथा उत्तम मित्र, स्वजन सम्बन्धी, धन, धान्य तथा समृद्धि यानी खजाना आदि वस्तुओं की तथा विविध प्रकार के कामभोगों से उत्पन्न सुखों की प्राप्ति होती है। ये सब बातें सुखविपाक सूत्र में वर्णित जीवों में पाई जाती हैं।

विपाक सूत्र में राग द्वेष के विजेता श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने शुभ और अशुभ कर्मों के अनेक प्रकार के विपाक, जो कि अविच्छिन्न परम्परा से बंधे हुए हैं और संवेग के कारण भूत हैं, वे कहे हैं और इसी तरह के दूसरे भी बहुत से भाव विस्तार पूर्वक कहे गये हैं।

विपाक सूत्र की परित्ता - संख्याता वाचना हैं, संख्याता अनुयोगद्वार हैं यावत् संख्याता संग्रहणी गाथाएं हैं। यह विपाक सूत्र अङ्गों की अपेक्षा ग्यारहवां अङ्ग सूत्र है। इसके बीस अध्ययन हैं बीस उद्देशनकाल, बीस समुद्देशनकाल हैं। प्रत्येक पद की अपेक्षा संख्याता लाख पद यानी एक करोड़ ८४ लाख ३२ हजार पद कहे गये हैं। इसमें संख्याता अक्षर, अनन्ता गमा यानी ज्ञान करने के मार्ग, अनन्ता पर्याय यावत् इस तरह से चरणसत्तरि करणसत्तरि की प्ररूपणा से भाव कहे गये हैं। विपाक सूत्र के ये भाव कहे गये हैं।। ११॥

विवेचन - ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों के शुभ और अशुभ परिणामों को विपाक कहते हैं। ऐसे कर्म विपाक का वर्णन जिस सूत्र में हो वह विपाक सूत्र कहलाता है। यह ग्यारहवाँ अङ्ग सूत्र है, इसमें दो श्रुतस्कन्ध हैं। पहले श्रुतस्कन्ध का नाम दुःख विपाक है और दूसरे का नाम सुख विपाक है। दुःख का स्वरूप समझ लेने पर सुख का स्वरूप सरलता से समझ में आ सकता है। इसीलिये पहले श्रुत स्कन्ध का नाम दुःख विपाक है। इसमें दस अध्ययन हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं -

१. मृगापुत्र २. उज्झितकुमार ३. अभग्नसेन चोर सेनापति ४. शकट सेनापति ५. बृहस्पतिकुमार ६. नन्दीवर्द्धन ७. उंबरदत्तकुमार ८. शौर्यदत्तकुमार ९. देवदत्ता रानी १०. अंजुकुमारी।

एक एक अध्ययन में एक-एक कथा दी गई है। इन कथाओं में यह बतलाया गया है कि किन व्यक्तियों ने पूर्व भव में किस किस प्रकार और कैसे कैसे पाप-कर्म उपार्जन किये जिससे आगामी भव में उन्हें किस प्रकार दुःखी होना पड़ा। नरक और तिर्यञ्च के अनेक भवों में दुःख मय कर्म विपाकों को भोगने के पश्चात् मोक्ष प्राप्त करेंगे। पाप कार्य करते समय तो अज्ञानतावश जीव प्रसन्न होता है और वे पापकारी कार्य सुखदायी प्रतीत होते हैं किन्तु उनका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिणाम कितना दुःखदायी होता है और जीव को कितने दुःख उठाने पड़ते हैं। इन बातों का साक्षात् चित्र इन कथाओं में खींचा गया है। कहा भी है -

जीव हिंसा करतां थकां लागे मिष्ट अज्ञान ।
ज्ञानी इम जाने सही, विष मिलियो पकवान ॥ ३ ॥
काम भोग प्यारा लगे, फल किम्पाक समान ।
मीठी खाज खुजावतां, पीछे दुःख की खान ॥ ४ ॥
डाभ अणी जल बिंदुवो, सुख विषयन को चाव ।
भव सागर दुःख जल भर्‌यो, यह संसार स्वभाव ॥ ६ ॥

दूसरे श्रुतस्कन्ध का नाम सुखविपाक है। इसमें दस अध्ययन हैं। एक एक अध्ययन में एक एक व्यक्ति की कथा दी गई है। वे इस प्रकार हैं - १. सुबाहुकुमार २. भद्रनन्दीकुमार ३. सुजातकुमार ४. सुवासवकुमार ५. जिनदासकुमार ६. धनपतिकुमार, ७. महाबलकुमार ८. भद्रनन्दीकुमार ९. महच्चन्द्रकुमार १०. वरदत्तकुमार।

इन व्यक्तियों ने पूर्वभव में सुपात्र को दान दिया था। जिसके फल स्वरूप इस भव में उत्कृष्ट ऋद्धि की प्राप्ति हुई और संसार परित्त (हलका) किया। ऐसी ऋद्धि का त्याग करके इन सभी ने संयम अङ्गीकार किया और देवलोक में गये। आगे मनुष्य और देवता के शुभ भव करते हुए महाविदेह क्षेत्र से मोक्ष प्राप्त करेंगे। सुपात्र दान का ही यह माहात्म्य है, यह इन कथाओं से भली प्रकार ज्ञात होता है। इन सब में सुबाहुकुमार की कथा बहुत विस्तार के साथ दी गयी है। शेष नौ कथाओं के केवल नाम दिए गये हैं। वर्णन के लिए सुबाहुकुमार के अध्ययन की भलामण दी गयी है। पुण्य का फल कितना मधुर और सुख रूप होता है इसका परिचय इन कथाओं से मिलता है। प्रत्येक सुखाभिलाषी प्राणी के लिए इन कथाओं के अध्ययनों का स्वाध्याय करना परम आवश्यक है।

उपरोक्त दस में १. सुबाहुकुमार २. भद्रनन्दीकुमार ३. सुजातकुमार और १०. वरदत्तकुमार, ये चार व्यक्ति सुबाहुकुमार की तरह पन्द्रह भव करके मोक्ष में जायेंगे । शेष ६ अध्ययन के जीव उसी भव में मोक्ष चले गये हैं।

मूल पाठ में ये शब्द दिये हैं -

"तिकालमइविसुद्ध भत्तपाणाइं"

टीकाकार ने इसका अर्थ इस प्रकार किया है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"**त्रिषु कालेषु या मतिः-बुद्धिः, यदुत दास्यामि इति परितोषः दीयमाने परितोषः दत्ते च परितोष इति, सा त्रैकालिमतिः तया च यानि विशुद्धानि तानि भक्तपानानि**"

अर्थ - मैं जिस दिन पंच महाव्रत धारी साधु महात्माओं को शुद्ध आहार पानी बहराऊंगा वह दिन मेरा धन्य होगा ऐसी भावना रखना, साधु साध्वी का योग मिलने पर निर्दोष दान देते हुए मन में हर्षित होना और दान देने के बाद भी हर्षित होना कि - आज का दिन मेरे लिये धन्य है जो आज मेरी भावना सफल हुई । इस प्रकार भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों काल में दान के विषय में हर्षित होना - त्रैकालिक बुद्धि की विशुद्धता कहलाती है। यही बात द्रव्य शुद्धि के विषय में भी जाननी चाहिए। मूल पाठ में दिया गया है कि - "**पयोगसुद्धाइं**" जिसका अर्थ टीकाकार ने लिखा है -

"**प्रयोगेषु शुद्धानि दायकदानव्यापारापेक्षया सकलाशंसादिदोष रहितानि ग्राहक ग्रहण व्यापारापेक्षया च उद्‌गमादिदोषवर्जितानि**"

अर्थ - दाता गृहीता और उद्‌गमादि दोषों से रहित ।

इसी बात को सुखविपाक सूत्र के मूल पाठ में इस तरह से कहा है -

"**दव्वसुद्धेणं दायगसुद्धेणं पडिगाहगसुद्धेणं तिविहेणं तिकरण सुद्धेणं**"

अर्थ - द्रव्यशुद्ध अर्थात् उद्‌गम के १६, उत्पादना के १६ और एषणा के दस इन ४२ दोषों से रहित प्रासुक एषणीय आहारादि का लेना, 'द्रव्यशुद्ध' कहलाता है। निःस्वार्थ भाव से देने वाला दाता 'दायगशुद्ध' कहलाता है। उसी प्रकार मोक्ष की साधना करने वाला शरीर के निर्वाह के लिये निःस्वार्थ भाव से लेने वाला प्रतिग्राहक (ग्रहंण करने वाला) 'प्रतिग्रहीता शुद्ध' कहलाता है। इन तीन की शुद्धता सहित मन वचन काया की शुद्ध प्रवृत्ति त्रिविध त्रिकरण शुद्ध कहलाता है। इसी बात को दशवैकालिक सूत्र के पांचवें अध्ययन में भी इस प्रकार कहा है -

दुल्लहाओ मुहादाई, मुहाजीवी वि दुल्लहा ।
मुहादाई मुहाजीवी, दो वि गच्छंति सुग्गइं ।। १०० ।।

अर्थात् - निःस्वार्थ भाव से देने वाले को मुधादाई और निःस्वार्थ भाव से लेकर शुद्ध संयम पालन करने वाले को मुधाजीवी कहते हैं। ये दोनों मिलना दुर्लभ हैं जैसा कि कहा है-

मुधादाई मुधाजीवी, दुर्लभ इण संसार ।
वीर कहे सुन गोयमा, दोनों होवे भव पार ॥

प्रश्न - सुपात्र दान किसे कहते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - भगवती सूत्र के बीसवें शतक के आठवें उद्देशक में गौतम स्वामी ने पूछा है और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने उत्तर दिया है वह इस प्रकार है -

प्रश्न - तित्थं भंते! तित्थं तित्थगरे तित्थं?

अर्थ - हे भगवन्! तीर्थ किसको कहते हैं? तीर्थङ्कर को तीर्थ कहते हैं या तीर्थ को तीर्थ कहते हैं?

उत्तर - गोयमा! अरहा ताव णियमं तित्थगरे, तित्थं पुण चाउवण्णाइण्णे समणसंघे, तंजहा - समणा, समणीओ, सावया, सावियाओ ।

अर्थ - हे गौतम! जो तीर्थ की स्थापना करते हैं वे केवलज्ञानी केवलदर्शी तो तीर्थङ्कर कहलाते हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप इन चार गुणों से युक्त को 'तीर्थ' कहते हैं। इसका दूसरा नाम है 'श्रमण संघ' । यह चार प्रकार का है - साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका । ये स्वयं संसार समुद्र से तिरते हैं और इनका सहारा लेने वाले भव्य जीवों को भी संसार सागर से तिराते हैं। निःस्वार्थ बुद्धि से मोक्ष में सहायभूत हो इस दृष्टि से दान देना सुपात्र दान है। इनमें साधु-साध्वी उत्कृष्ट सुपात्र हैं और श्रावक श्राविका मध्यम सुपात्र है। अनुकम्पा दान के पात्र तो संसार के समस्त प्राणी हैं। सुखविपाक के दस अध्ययनों में सुपात्र दान का महत्त्व बताया गया है। इस में से छह जीव तो मुक्ति प्राप्त कर चुके हैं और चार जीव सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए अब मुक्ति प्राप्त करेंगे ।

तप जप संजम दोहिलो, औषध कड़वी जाण ।
सुख कारण पीछे घणो, निश्चय पद निरवाण ॥

से किं तं दिट्ठिवाए ? दिट्ठिवाए णं सव्वभावपरूवणया आघविज्जंति । से समासओ पंचविहे पण्णत्ते तंजहा - परिकम्मं, सुत्ताइं, पुव्वगयं, अणुओगो, चूलिया।

भावार्थ - शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन्! दृष्टिवाद किसे कहते हैं? गुरु महाराज उत्तर देते हैं कि दृष्टिवाद के द्वारा सब भावों की प्ररूपणा की जाती है अर्थात् जिसमें सब दर्शनों का - मत मतान्तरों का कथन किया गया हो, उसे दृष्टिवाद कहते हैं। उस दृष्टिवाद के संक्षेप से पांच भेद कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - १. परिकर्म, २. सूत्र, ३. पूर्वगत, ४. अनुयोग, ५. चूलिका।

विवेचन - बारह अङ्गों में से दृष्टिवाद बारहवाँ अङ्ग है। यह सम्पूर्ण दृष्टिवाद तीर्थङ्कर के दो पाट तक ही चलता है। इसके बाद पूर्वों का ज्ञान तो रहता है किन्तु पूरा दृष्टिवाद नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रहता है। भगवान् महावीर के शासन में पूरा दृष्टिवाद जम्बूस्वामी तक ही रहा था। पूर्वों का ज्ञान तो एक हजार वर्ष तक रहा था।

प्रश्न - दृष्टिवाद किसे कहते हैं?

उत्तर - "**दिट्ठिवाए**" शब्द की संस्कृत छाया टीकाकार ने "दृष्टिवाद और दृष्टिपात" ऐसे की है। जिसका संक्षिप्त अर्थ है जिसमें सब दृष्टियों (दर्शन) का वर्णन किया गया हो, उसे दृष्टिवाद या दृष्टिपात कहते हैं। सब द्रव्यों में अनन्त गुण और अनन्त पर्याय रहे हुए हैं। उनमें से किसी एक को मुख्य करके और दूसरे को गौण करके कहना 'नय' कहलाता है। जैसे कि जीव के जन्म मरण आदि पर्याय को मुख्य करके जीव को अनित्य कहना और जीव कभी जन्मता मरता नहीं है वह अजर अमर है। इस अविनाशीपन को मुख्य करके जीव को नित्य कहना इस प्रकार कहने को नय कहते हैं। जिसमें सभी नयों का एवं दृष्टियों का कथन हो उसे दृष्टिवाद (दृष्टिपात) कहते हैं। दृष्टिवाद के संक्षिप्त में पांच भेद हैं - १. परिकर्म - योग्यता पैदा करना २. सूत्र - विषय सूचना- अनुक्रमणिका ३. पूर्वगत - प्रतिपादन किये जाने वाला मुख्य विषय ४. अनुयोग - सूत्र के अनुकूल अर्थ करना ५. चूलिका - शेष सब अर्थों का संग्रह करना।

से किं तं परिकम्मे? परिकम्मे सत्तविहे पण्णत्ते तंजहा - सिद्धसेणिया परिकम्मे, मणुस्ससेणिया परिकम्मे, पुट्ठसेणिया परिकम्मे, ओगाहणसेणिया परिकम्मे, उवसंपज्जसेणिया परिकम्मे, विप्पजहसेणिया परिकम्मे, चुआचुअसेणिया परिकम्मे।

भावार्थ - शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन्! परिकर्म किसे कहते हैं? गुरु महाराज उत्तर देते हैं कि परिकर्म सात प्रकार का कहा गया है वे इस प्रकार हैं - १. सिद्ध श्रेणिका परिकर्म, २. मनुष्य श्रेणिका परिकर्म, ३. पृष्ट श्रेणिका परिकर्म, ४. अवगाहना श्रेणिका परिकर्म, ५. उपसंपत् श्रेणिका परिकर्म, ६. विप्पजहत श्रेणिका परिकर्म, ७. च्युताच्युत श्रेणिका परिकर्म।

विवेचन - दृष्टिवाद के आगे के चार भेदों (सूत्र, पूर्वगत, अनुयोग और चूलिका) के सूत्र और अर्थ को ग्रहण करने की योग्यता पैदा करने की कारणभूत भूमिका रूप शास्त्र को परिकर्म कहते हैं। जैसे कि गणित शास्त्र में सबसे पहले अङ्क गिनती, पहाड़े, जोड़, बाकी, गुणा और भाग सीखे बिना शेष गणित शास्त्र सीखा नहीं जा सकता। इन्हें सीखने पर ही शेष गणित शास्त्र को सीखा जा सकता है वैसे ही दृष्टिवाद में पहले परिकर्म शास्त्र को सीखे बिना दृष्टिवाद के शेष भेदों को सीखा नहीं जा सकता है। परिकर्म शास्त्र को सीखने पर ही आगे सीखा जा सकता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से किं तं सिद्धसेणिया परिकम्मे ? सिद्धसेणिया परिकम्मे चोद्दसविहे पण्णत्ते तंजहा - माउयापयाणि, एयट्ठियपयाणि, पादोट्ठपयाणि, आगासपयाणि, केउभूयं, रासिबद्धं, एगगुणं, दुगुणं, तिगुणं, केउभूयं, पडिग्गहो, संसारपडिग्गहो, णंदावत्तं, सिद्धबद्धं, से तं सिद्धसेणिया परिकम्मे ।

भावार्थ - शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन्! सिद्ध श्रेणिका परिकर्म किसको कहते हैं? सिद्ध श्रेणिका परिकर्म चौदह प्रकार का कहा गया है वे इस प्रकार हैं - १. मातृकापद, २. एकार्थिक पद, ३. पादोष्ट पद, ४. आकाश पद, ५. केतुभूत, ६. राशिबद्ध, ७. एक गुण, ८. द्विगुण, ९. त्रिगुण, १०. केतुभूत, ११. प्रतिग्रह, १२. संसार प्रतिग्रह १३. नन्दावर्त्त, १४. सिद्धबद्ध। यह सिद्ध श्रेणिका परिकर्म है।

विवेचन - भावार्थ से स्पष्ट है।

से किं तं मणुस्ससेणिया परिकम्मे ? मणुस्ससेणिया परिकम्मे चोद्दसविहे पण्णत्ते तंजहा - ताइं चेव माउयापयाणि जाव णंदावत्तं मणुस्सबद्धं, से तं मणुस्ससेणिया परिकम्मे ।

भावार्थ - शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन्! मनुष्य श्रेणिका परिकर्म किसे कहते हैं? मनुष्य श्रेणिका परिकर्म चौदह प्रकार का कहा गया है वे इस प्रकार हैं - सिद्ध श्रेणिका परिकर्म के जो चौदह भेद कहे हैं उनमें से मातृकापद से नन्दावर्त्त तक १३ भेद तो मनुष्य श्रेणिका परिकर्म के भी वे ही हैं। १४ वां भेद है मनुष्यबद्ध । ये मनुष्य श्रेणिका परिकर्म के भेद कहे गये हैं।

विवेचन - भावार्थ से स्पष्ट है।

अवसेसा परिकम्माइं पुट्ठाइयाइं एक्कारसविहाइं पण्णत्ताइं। इच्चेयाइं सत्त परिकम्माइं ससमइयाइं, सत्त आजीवियाइं, छ चउक्कणइयाइं, सत्त तेरासियाइं । एवामेव सपुव्वावरेणं सत्त परिकम्माइं तेसीति भवंतीति मक्खायाइं । से तं परिकम्माइं।

भावार्थ - बाकी पृष्ट श्रेणिका आदि परिकर्म ग्यारह प्रकार के कहे गये हैं। ये सात परिकर्म हैं। इन सात में से पहले के छह स्वसमय के प्रतिपादक है और सातवां आजीविक मतानुसारी है। नय की अपेक्षा से पहले के छह परिकर्म संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द इन चार नयों के अन्तर्गत हैं। इन सातों परिकर्मों को त्रैराशिक मतानुसारी तीन नयों के अन्तर्गत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मानते हैं। इस तरह से पूर्वापर गिनने से इन सात परिकर्मों के ८३ भेद हो जाते हैं ऐसा कहा गया है। यह परिकर्म का कथन हुआ।

विवेचन - परिकर्म के सात भेद बतलाये गये हैं। उनमें से सिद्ध श्रेणिका परिकर्म और मनुष्य श्रेणिका परिकर्म के चौदह-चौदह भेद ऊपर बतला दिये हैं। पृष्ट श्रेणिका आदि बाकी पांच परिकर्म के ग्यारह-ग्यारह भेद होते हैं। उनमें से तीन भेद पहले के नहीं होते हैं और ग्यारहवाँ भेद अपने अपने नाम के अनुसार होता है।

टीकाकार लिखते हैं कि - परिकर्म सूत्र और अर्थ दोनों के रूप में विच्छिन्न हो गये हैं। इन सातों परिकर्मों में से पहले के छह परिकर्म स्व सामयिक (स्व सिद्धान्त) के अनुसार होते हैं तथा गोशालक द्वारा प्रवर्तित आजीविक मत के सहित सात भेद कहे जाते हैं। इन सात भेदों के उत्तर भेद ८३ होते हैं।

इन परिकर्मों का किन नयों से अध्ययन किया जाता है। यह बात बतलाई जाती है। इनमें से छह पहले के परिकर्म चार नय वाले हैं तथा सातवाँ परिकर्म त्रैराशिक है।

जैन सिद्धान्त के अनुसार नय के दो भेद हैं - द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नय। द्रव्यार्थिक नय के दो भेद हैं - संग्रह और व्यवहार तथा पर्यायार्थिक नय के भी दो भेद हैं - ऋजु सूत्र और शब्द ।

पहले के छह परिकर्म जैन सिद्धान्त को बतलाते हैं। इसलिये इनका अध्ययन इन चार नयों से किया जाता है।

प्रमाण नय तत्त्वालोक आदि में सात नय बतलाये गये हैं। परन्तु यहाँ सामान्य ग्राही नैगम नय को संग्रह नय में और विशेष ग्राही नैगम नय को व्यवहार नय में सम्मिलित कर दिया गया है। समभिरूढ और एवंभूत नय को शब्द नय में समाविष्ट कर दिया गया है। अतएव यहाँ संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र और शब्द ये चार नय ही कहे गये हैं।

गोशालक का मत त्रैराशिक कहलाता था। क्योंकि वह प्रत्येक पदा की तीन राशियाँ बताता था। जैसे कि जीव राशि, अजीव राशि और मिश्र राशि। उसके मतानुसार नय की भी तीन राशियाँ थी। द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक और मिश्र (द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक)। सातवें परिकर्म का अध्ययन नय की इन तीन राशियों से किया जाता था। क्योंकि सातवाँ परिकर्म गोशालक मत बतलाता था।

दिगम्बर परम्परा के शास्त्रों (ग्रन्थों) के अनुसार परिकर्म में गणित के करण सूत्रों का वर्णन किया गया है। इसके वहाँ पांच भेद बतलाए गये हैं - चन्द्र प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, द्वीपसागर प्रज्ञप्ति और व्याख्या प्रज्ञप्ति। चन्द्र प्रज्ञप्ति में चन्द्रमा सम्बन्धी और सूर्य प्रज्ञप्ति में सूर्य सम्बन्धी विमान, आयु, परिवार, ऋद्धि, गमन, हानि, वृद्धि, पूर्ण ग्रहण, अर्द्धग्रहण, चतुर्थांश ग्रहण आदि का वर्णन किया गया है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में जम्बूद्वीप सम्बन्धी मेरु पर्वत कुलाचल (क्षेत्र का विभाग करने वाले पर्वत) महाह्रद क्षेत्र कुण्ड वेदिका नदी आदि का वर्णन किया गया है। द्वीप सागर प्रज्ञप्ति में असंख्यात द्वीप समुद्रों का स्वरूप, नंदीश्वर द्वीप आदि का विशिष्ट वर्णन किया गया है। व्याख्या प्रज्ञप्ति में भव्य अभव्य जीवों के भेद परिमाण, लक्षण, रूपी, अरूपी, जीव, अजीव आदि द्रव्यों की विस्तृत व्याख्या की गयी है।

से किं तं सुत्ताइं ? सुत्ताइं अट्ठासीइं भवंतीति मक्खायाइं, तंजहा - उज्जुगं, परिणयापरिणयं, बहुभंगियं, विप्पच्चइयं, [विणयचरियं (विजयचरियं)] अणंतरं, परंपरं, समाणं, संजूहं (मासाणं), संभिण्णं, अहाच्चयं (अहव्वायं) सोवत्थि (वत्तं) णंदावत्तं, बहुलं, पुट्ठापुट्ठं, वियावत्तं, एवंभूयं, दुआवत्तं, वत्तमाणपयं, समभिरूढं, सव्वओभद्दं, पणामं, [पस्सासं (पणासं-पण्णासं)] दुपडिग्गहं, इच्चेयाइं बावीसं सुत्ताइं छिण्णछेय णइयाइं ससमयसुत्तपरिवाडीए, इच्चेयाइं बावीसं सुत्ताइं अछिण्णछेय णइयाइं, आजीवियसुत्तपरिवाडीए, इच्चेयाइं बावीसं सुत्ताइं तिकणइयाइं तेरासिय सुत्तपरिवाडीए, इच्चेयाइं बावीसं सुत्ताइं चउक्कणइयाइं ससमयसुत्तपरिवाडीए, एवामेव सपुव्वावरेणं अट्ठासीइं सुत्ताइं भवंतीतिमक्खायाइं, से तं सुत्ताइं।

कठिन शब्दार्थ - **ससमयसुत्त परिवाडीए** - स्व समय की सूत्र परिपाटी के अनुसार, **चउक्क णइयाइं** - नय चतुष्क-चार नयों के अंतर्गत।

भावार्थ - शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन्! सूत्र किसे कहते हैं? गुरु महाराज उत्तर देते हैं कि सर्व द्रव्य, पर्याय और नय के अर्थों को बतलाने वाले को सूत्र कहते हैं। उसके ८८ भेद कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं - १. ऋजुक, २. परिणतापरिणत, ३. बहुभंगिक, ४. विप्रत्ययिक या विनय चरित्र या विजयचरित्र, ५. अनन्तर, ६. परम्पर, ७. समान, ८. संजूह, ९. संभिन्न, १०. यथातथ्य या यथावाद, ११. सुवर्त या स्वस्तिक, १२. नन्दावर्त, १३. बहुल, १४. पृष्टापृष्ट, १५. वियावर्त, १६. एवंभूत, १७. द्वयावर्त, १८. वर्तमान पद, १९. समभिरूढ, २०. सर्वतोभद्र, २१. प्रणाम या प्रशास, २२. द्विप्रतिग्रह (दुष्प्रतिग्रह)। ये बाईस सूत्र स्वसमय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की सूत्र परिपाटी के अनुसार छिन्न छेद नय वाले हैं अर्थात् ये दूसरे पद की अपेक्षा नहीं रखते हैं। ये ही बाईस सूत्र आजीविक मत की सूत्र परिपाटी के अनुसार अछिन्न छेद नय वाले हैं। ये ही बाईस सूत्र त्रैराशिक मत की सूत्र परिपाटी के अनुसार नयत्रिक वाले हैं अर्थात् तीन नयों के अन्तर्गत होते हैं। ये ही बाईस सूत्र स्वसमय की सूत्र परिपाटी के अनुसार नयचतुष्क वाले हैं अर्थात् चार नयों के अन्तर्गत होते हैं। इस प्रकार पूर्वापर गिनने से ८८ सूत्र होते हैं ऐसा कहा गया है। यह सूत्र का कथन हुआ।

विवेचन - जो नय प्रत्येक सूत्र को अन्य सूत्रों से भिन्न स्वीकार करे किन्तु सम्बन्धित स्वीकार नहीं करे, उसे छिन्न छेद नय कहते हैं। जैसे कि- **"धम्मो मंगलमुक्किट्ठं"** इत्यादि श्लोक सूत्र और अर्थ की अपेक्षा अपने अर्थ के प्रतिपादन करने में किसी दूसरे श्लोक की अपेक्षा नहीं रखता है। किन्तु जो श्लोक अपने अर्थ के प्रतिपादन में आगे या पीछे के श्लोक के सूत्र और अर्थ की अपेक्षा रखता है वह अच्छिन्नच्छेदनयिक कहलाता है। जो श्लोक दूसरे श्लोक की अपेक्षा रखता है और दूसरा श्लोक पहले श्लोक की अपेक्षा रखता है। इस प्रकार जो परस्पर सापेक्ष श्लोक हैं वे अच्छिन्नच्छेद नय वाले कहलाते हैं। गोशालक मत आदि द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक और उभयार्थिक इन तीन नयों को मानते हैं। अतः उन्हें त्रिनयिक कहा गया है। किन्तु जो सिद्धान्त संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र और शब्द नय इन चार नयों को मानते हैं। उन्हें चतुष्कनयिक कहते हैं। त्रिक नयिक वाले सभी पदार्थों का निरूपण-सत्, असत् और उभयात्मक रूप से करते हैं। किन्तु चतुष्कनयिक वाले उक्त चार नयों से सर्व पदार्थों का निरूपण करते हैं।

से किं तं पुव्वगयं ? पुव्वगयं चउद्दसविहं पण्णत्तं, तंजहा - उप्पायपुव्वं, अग्गेणीयं, वीरियं, अत्थिणत्थिप्पवायं, णाणप्पवायं, सच्चप्पवायं, आयप्पवायं, कम्मप्पवायं पच्चक्खाणप्पवायं, विज्जाणुप्पवायं, अवंज्झप्पवायं, पाणाउप्पवायं, किरियाविसालं, लोगबिंदुसारं।

भावार्थ - शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन्! पूर्वगत किसे कहते हैं? गुरु महाराज उत्तर देते हैं कि तीर्थ का प्रवर्त्तन करते समय तीर्थंकर भगवान् गणधरों को जिस अर्थ का पहले पहल उपदेश देते हैं अथवा गणधर पहले पहल जिस अर्थ को सूत्र रूप में गूंथते हैं उसे पूर्व कहते हैं। इसके चौदह भेद हैं वे इस प्रकार हैं - १. उत्पाद पूर्व - इसमें सभी द्रव्य और सभी पर्यायों के उत्पाद को लेकर प्ररूपणा की गई है। इसमें एक करोड़ पद हैं। २. अग्रायणीय - इसमें सब द्रव्य सब पर्याय और सब जीवों के परिमाण का वर्णन है। इसमें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

९६ लाख पद हैं। ३. वीर्यप्रवाद पूर्व – इसमें कर्मसहित और कर्मरहित जीव तथा अजीवों के वीर्य-शक्ति का वर्णन है। इसमें ७० लाख पद हैं। ४. अस्तिनास्तिप्रवाद- संसार में धर्मास्तिकाय आदि जो वस्तुएं विद्यमान हैं और आकाश कुसुम वगैरह जो अविद्यमान हैं उन सब का वर्णन अस्तिनास्ति प्रवाद में है। इसमें ६० लाख पद हैं। ५. ज्ञानप्रवाद – इसमें मतिज्ञान आदि पांच ज्ञानों का विस्तृत वर्णन है। इसमें एक कम एक करोड़ पद हैं। ६. सत्यप्रवाद – इसमें सत्य रूप संयम तथा सत्य वचन का विस्तृत वर्णन है। इसमें छह अधिक एक करोड़ पद हैं। ७. आत्मप्रवाद – इसमें अनेक नय और मतों की अपेक्षा से आत्मा का प्रतिपादन किया गया है। इसमें २६ करोड़ पद हैं। ८. कर्मप्रवादपूर्व – इसमें आठ कर्मों का निरूपण प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश आदि भेदों द्वारा विस्तृत रूप से किया गया है। इसमें एक करोड़ अस्सी लाख पद हैं। ९. प्रत्याख्यान प्रवादपूर्व – इसमें प्रत्याख्यानों का भेद प्रभेद पूर्वक वर्णन हैं। इसमें ८४ लाख पद हैं। १०. विद्यानुप्रवाद पूर्व – इसमें विविध प्रकार की विद्या तथा सिद्धियों का वर्णन हैं। इसमें एक करोड़ दस लाख पद हैं। ११. अवन्ध्य प्रवादपूर्व – इसमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, संयम आदि शुभ फल वाले तथा प्रमाद आदि अशुभ फल वाले अवन्ध्य अर्थात् निष्फल न जाने वाले कार्यों का वर्णन हैं। इसमें एक करोड़ छप्पन लाख पद हैं। १२. प्राणायुप्रवाद पूर्व – इसमें दस प्राण और आयु आदि का भेद प्रभेद पूर्वक विस्तृत वर्णन है। इसमें एक करोड़ छप्पन लाख पद हैं। १३. क्रियाविशाल पूर्व – इसमें कायिकी, आधिकरणिकी आदि क्रियाओं का तथा संयम में उपकारक क्रियाओं का वर्णन हैं। इसमें नौ करोड़ पद हैं। १४. लोक बिन्दुसार पूर्व – लोक में श्रुतज्ञान में जो शास्त्र बिन्दु की तरह सब से श्रेष्ठ है, वह लोक बिन्दुसार है। इसमें साढे बारह करोड़ पद हैं।

विवेचन – जैन शासन में तीर्थङ्कर भगवान् को जब केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हो जाते हैं तब वे साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप चतुर्विध तीर्थ की स्थापना करते हैं। जिस तीर्थङ्कर के जितने गणधर होने होते हैं उस पहली देशना में ही हो जाते हैं। उन गणधरों को सब से पहले जो महान् अर्थ कहते हैं और उन महान् अर्थों को जिस सूत्र रूप में गणधर गूंथते हैं उन्हें 'पूर्व' कहा जाता है। उन पूर्वों में रहे हुये ज्ञान को पूर्वगत कहते हैं।

प्रश्न – हे भगवन्! गणधर किसको कहते हैं?

उत्तर – लोकोत्तर ज्ञान दर्शन चारित्र आदि गुणों के गण (समूह) को धारण करने वाले तथा प्रवचन को पहले पहल सूत्र रूप में गूंथने वाले महापुरुष 'गणधर' कहलाते हैं। वे प्रत्येक तीर्थङ्कर के प्रधान शिष्य तथा अपने अपने गण के नायक होते हैं। गणधर शब्द की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दूसरी तरह से इस प्रकार भी व्याख्या की गयी है, जो सम्पूर्ण श्रुतज्ञान के अर्थों की गहराई में उतरने में समर्थ होते हैं। अहिंसा, संयम और तप इन तीन शब्दों से समस्त चरणानुयोग तथा समस्त धर्म कथानुयोग का जिनको क्षयोपशम हो जाता है, तथा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य इन तीन शब्दों से जिनको समस्त द्रव्यानुयोग और गणितानुयोग का क्षयोपशम हो जाता है। ऐसे महान् क्षयोपशमशाली महापुरुषों को 'गणधर' कहते हैं।

पूर्व चौदह हैं। उनके पदों का परिमाण मूल में नहीं बतलाया गया है। किन्तु टीका ग्रन्थों में बतलाया गया है। जिनका वर्णन ऊपर भावार्थ में कर दिया गया है। इन सब को मिलाकर कुल ८३ करोड़ २६ लाख ८० हजार ५ पद थे ऐसा टीका ग्रन्थों में परिमाण पाया जाता है। इन पूर्वों को लिखने के लिये स्याही (मषि) का परिमाण पूर्वाचार्यों की धारणा के अनुसार इस प्रकार है-अम्बाडी सहित हाथी खड़ा हो उसको सूखी स्याही के ढीगले से ढक दिया जाय उतनी स्याही को एक हस्ती परिमाण कहा है। पहले पूर्व के लिये एक हाथी, दूसरे के लिये दो हाथी, तीसरे के लिये चार हाथी, इस प्रकार आगे दुगुना दुगुना करते जाय तो चौदहवें पूर्व के लिये ८१९२ हाथी परिमाण स्याही की आवश्यकता होती है। सभी चौदह पूर्वों के लिये कुल मिलाकर १६३८३ हाथी परिमाण स्याही की आवश्यकता होती है। उस सूखी स्याही को पानी में घोलकर लिखा जाय तो उपरोक्त हाथी परिमाण स्याही की आवश्यकता होती है। यह केवल उपमा मात्र है किन्तु एक पूर्व भी कभी भी नहीं लिखा गया, न ही लिखा जा सकता है और न लिखा जायेगा ।

रचना की अपेक्षा पूर्वगत का नम्बर प्रथम है। किन्तु अध्ययन अध्यापन (पाठ्यक्रम) की अपेक्षा आचाराङ्ग सूत्र का प्रथम नम्बर है। तथा गणना क्रम से भी आचाराङ्ग का प्रथम नम्बर है। यही क्रम सूयगडाङ्ग आदि अङ्ग सूत्रों के लिये भी समझना चाहिए ।

उप्पायपुव्वस्स णं दस वत्थू पण्णत्ता, चत्तारि चूलियावत्थू पण्णत्ता । अग्गेणीयस्स णं पुव्वस्स चोद्दसवत्थू, बारस चूलियावत्थू पण्णत्ता । वीरियप्पवायस्स णं पुव्वस्स अट्ठ वत्थू, अट्ठ चूलियावत्थू पण्णत्ता । अत्थिणत्थिप्पवायस्स णं पुव्वस्स अट्ठारसवत्थू, दस चूलियावत्थू पण्णत्ता । णाणप्पवायस्स णं पुव्वस्स बारस वत्थू पण्णत्ता। सच्चप्पवायस्स णं पुव्वस्स दो वत्थू पण्णत्ता । आयप्पवायस्स णं पुव्वस्स सोलस वत्थू पण्णत्ता। कम्मप्पवायस्स णं पुव्वस्स तीसं वत्थू पण्णत्ता। पच्चक्खाणस्स णं पुव्वस्स बीसं वत्थू पण्णत्ता। विज्जाणुप्पवायस्स णं पुव्वस्स पण्णरस वत्थू पण्णत्ता। अवंज्झस्स णं पुव्वस्स बारस वत्थू पण्णत्ता। पाणाउस्स णं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुव्वस्स तेरस वत्थू पण्णत्ता । किरियाविसालस्स णं पुव्वस्स तीसं वत्थू पण्णत्ता। लोगबिंदुसारस्स णं पुव्वस्स पणवीसं वत्थू पण्णत्ता।

दस चोद्दस अट्ठट्ठारसे व, बारस दुवे य वत्थूणि।
सोलस तीसा बीसा, पण्णरस अणुप्पवायम्मि ।। १ ॥
बारस एक्कारसमे, बारसमे तेरसमे वत्थूणि ।
तीसा पुण तेरसमे, चउद्दसमे पण्णवीसाओ ।। २ ॥
चत्तारि दुवालस, अट्ठ चेव दस चेव चूलवत्थूणि ।
आइल्लाण चउण्हं, सेसाणं चूलिया णत्थि ।। ३ ॥ से तं पुव्वगयं ।

कठिन शब्दार्थ - वत्थू - वस्तु (अध्ययन)।

भावार्थ - १. उत्पाद पूर्व में दस वस्तु - अध्ययन और चार चूलिका वस्तु - अवान्तर अध्ययन कहे गये हैं। २. अग्रायणीय पूर्व में चौदह वस्तु और बारह चूलिका वस्तु कही गई है। ३. वीर्यप्रवाद पूर्व में आठ वस्तु और आठ चूलिका वस्तु कही गई है। ४. अस्तिनास्ति प्रवाद पूर्व में अठारह वस्तु और दस चूलिका वस्तु कही गई है। ५. सत्यप्रवाद पूर्व में दो वस्तु कही गई हैं। ६. ज्ञान प्रवाद पूर्व में बारह वस्तु कही गई है। ७. आत्मप्रवाद पूर्व में सोलह वस्तु कही गई है। कर्म प्रवाद पूर्व में तीस वस्तु कही गई है। ९. प्रत्याख्यान पूर्व में बीस वस्तु कही गई है। १०. विद्यानुप्रवाद पूर्व में पन्द्रह वस्तु कही गई है। ११. अवन्ध्यपूर्व में बारह वस्तु कही गई है। १२. प्राणायु पूर्व में तेरह वस्तु कही गई है। १३. क्रिया विशाल पूर्व में तीस वस्तु कही गई है। १४. लोक बिन्दुसार पूर्व में पच्चीस वस्तु कही गई है।

वस्तु और चूलिका वस्तु की संख्या बताने के लिए मूल में तीन संग्रहणी गाथाएं दी गई हैं। जिनका अर्थ इस प्रकार है - १. पहले पूर्व में दस, २. दूसरे में चौदह ३. तीसरे में आठ ४. चौथे में अठारह ५. पांचवें में बारह ६. छठे में दो ७. सातवें में सोलह ८. आठवें में तीस ९. नवमें में बीस १०. दसवें विद्यानुप्रवाद पूर्व में पन्द्रह ११. ग्यारहवें में बारह १२. बारहवें में तेरह १३. तेरहवें में तीस और १४. चौदहवें में पच्चीस वस्तु कही गई है और १. पहले में चार २. दूसरे में बारह ३. तीसरे में आठ और ४. चौथे में दस चूलिकावस्तु कही गई है। पहले के चार पूर्वों में चूलिकावस्तु हैं, शेष दस पूर्वों में चूलिका वस्तु नहीं है ॥ १-३ ॥ यह पूर्वगत का वर्णन हुआ।

विवेचन - जिस प्रकार उत्तराध्ययन और भगवती आदि सूत्रों में अध्ययन, शतक आदि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं। उसी प्रकार पूर्वों में "वस्तु" शब्द का प्रयोग किया गया है। तथा अध्ययन, शतक आदि के अन्तर्गत उद्देशक कहे गये हैं। इसी प्रकार यहाँ वस्तु के अन्तर्गत चूलिका वस्तु कही गयी है। पहले उत्पाद पूर्व की चार, दूसरे अग्रायणीय पूर्व की १२, तीसरे वीर्य प्रवाद पूर्व की ८ और चौथे अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व की १० चूलिका वस्तुएँ कही गयी हैं। शेष १० पूर्वों की चूलिका वस्तुएँ नहीं हैं। सब चूलिका वस्तुएं ३४ कही गयी हैं।

पूर्वगत सब वस्तुओं की और चूलिका वस्तुओं की संख्या सरलता से स्मरण रखने के लिये तीन संगृहणी गाथाएँ मूल में कही गयी है।

से किं तं अणुओगे ? अणुओगे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा - मूल पढमाणुओगे य गंडियाणुओगे य। से किं तं मूलपढमाणुओगे? एत्थ णं अरहंताणं भगवंताणं पुव्वभवा, देवलोगगमणाइं, आउं, चवणाणि, जम्मणाणि य अभिसेया, रायवरसिरीओ, सीयाओ, पव्वयाओ, तवा य भत्ता, केवलणाणुप्पाया य तित्थपवत्तणाणि य संघयणं, संठाणं, उच्चत्तं, आउं, वण्णविभागो, सीसा, गणा, गणहरा य अज्जा पवत्तणीओ, संघस्स चउव्विहस्स जं वावि परिमाणं जिणमणपज्जव ओहिणाण सम्मत्तसुयणाणिणो य वाई अणुत्तरगई य जत्तिया सिद्धा, पाओवगया य जे जहिं जत्तियाइं भत्ताइं छेयइत्ता अंतगडा मुणिवरुत्तमा तम रयोघ विप्पमुक्का सिद्धिपहमणुत्तरं च पत्ता, एए अण्णे य एवमाइया भावा मूलपढमाणुओगे कहिया आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति से तं मूलपढमाणुओगे ।

कठिन शब्दार्थ - मूल पढमाणुओगे - मूल प्रथमानुयोग, **तित्थपवत्तणाणि** - तीर्थप्रवर्तन।

भावार्थ - शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन्! अनुयोग किसे कहते हैं? गुरु महाराज उत्तर देते हैं कि अनुकूल योग करना अनुयोग है अर्थात् सूत्र का उसके आशय के अनुसार ठीक अर्थ करना अनुयोग है। इसके दो भेद कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं - मूल प्रथमानुयोग और गण्डिकानुयोग। मूल प्रथमानुयोग किसे कहते हैं? मूल प्रथमानुयोग में तीर्थङ्कर भगवान् के पूर्वभव, देवलोक गमन, आयुष्य, च्यवन, जन्म, राज्याभिषेक, राज्यलक्ष्मी का उपभोग, शिविका, प्रव्रज्या, तप, भक्त यानी पारणे के समय आहारादि की प्राप्ति, केवल ज्ञान की उत्पत्ति, तीर्थ प्रवर्तन यानी साधु साध्वी श्रावक श्राविका रूप चार तीर्थ की स्थापना, संहनन, संस्थान, ऊंचाई, आयु, शरीर का वर्ण, शिष्य, गण, गणधर, आर्या-साध्वियाँ, प्रवर्तिनियाँ - साध्वी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समुदाय में मुखिया साध्वियाँ, चतुर्विध संघ का परिमाण अर्थात् साधु साध्वी श्रावक श्राविका की गिनती, केवलज्ञानी, मनःपर्यय ज्ञानी, अवधिज्ञानी, सम्यक्त्वी और श्रुतज्ञानियों की संख्या, वादियों की संख्या, अनुत्तर गति में उत्पन्न होने वाले जीवों की संख्या, सिद्ध होने वाले जीवों की संख्या, पादपोपगमन और जो उत्तम मुनिवर जिस स्थान पर जितने भक्त का छेदन कर अज्ञान रूपी अन्धकार से मुक्त होकर अर्थात् केवल ज्ञान केवल दर्शन उपार्जन कर अष्ट कर्मों का क्षय करके प्रधान सिद्धि गति को प्राप्त हुए हैं उन सब का वर्णन और इसी प्रकार के अन्य भाव मूल प्रथमानुयोग में कहे गये हैं। इस प्रकार मूल प्रथमानुयोग का कथन किया जाता है, प्रज्ञापना की जाती है, प्ररूपणा की जाती है। यह मूल प्रथमानुयोग का कथन हुआ ।

विवेचन - सूत्र के अनुकूल अर्थ करना अथवा सूत्र का कथन करने के बाद जो उसके साथ जोड़ा जाय उसको 'अनुयोग' कहते हैं। उसके दो भेद हैं मूल प्रथमानुयोग और गण्डिकानुयोग (कण्डिकानुयोग)।

प्रश्न - हे भगवन्! मूल प्रथमानुयोग किसे कहते हैं।

उत्तर - धर्म तीर्थ का प्रवर्तन करने वाले धर्म के "मूल" तीर्थङ्कर भगवन्त कहे जाते हैं। उन्होंने जिस भव में सर्व प्रथम समकित की प्राप्ति की उस प्रथम भव से लेकर यावत् मोक्ष प्राप्ति तक का चरित्र जिसमें हो उसे मूल प्रथमानुयोग कहते हैं। उनका संक्षिप्त वर्णन मूल में किया गया है।

उसका साधारण एवं संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है-

१. पूर्वभव - तीर्थङ्कर भगवन्तों ने जिस भव में सर्व प्रथम सम्यक्त्व रत्न प्राप्त किया उस प्रथम भव से लेकर जिस भव में तीर्थङ्कर गोत्र बांधा वहाँ तक के वर्णन को पूर्व भव कहते हैं।

२. देवलोक गमन - तीर्थङ्कर गोत्र जिस भव में बांधा वहाँ से काल करके जिस देवलोक में, जिस विमान में और जिस रूप में उत्पन्न हुए वह कहा जाता है। यदि श्रेणिक जैसे कोई जीव तीर्थङ्कर गोत्र बान्धने से पहले नरकायु बन्ध जाने से नरक में उत्पन्न हुए हों तो वह नरक, वहाँ का नरकावास आदि बताया जाता है।

३. आयु - देवलोक या नरक में जितना आयुष्य बान्धा उसका कथन ।

४. च्यवन - वहाँ देवलोक से जब चवे या नरक से निकले वहाँ से जिस नगर आदि में जिस राजा की महारानी की कुक्षि में आवे उन सब का कथन ।

५. जन्म - जन्म के मास, पक्ष, तिथि, नक्षत्र आदि का कथन ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६. **अभिषेक** - जन्म के पश्चात् ५६ दिशा कुमारी देवियों का आना, अशुचि निवारण, ६४ इन्द्रों के द्वारा मेरु पर्वत पर ले जाकर अभिषेक करना आदि का कथन ।

७. **राज्यलक्ष्मी** - जितने वर्ष राज्य पद भोगा यह बताया जाता है। यदि किसी ने पहले माण्डलिक पद पाकर फिर चक्रवर्ती पद भी पाया हो तथा कोई राज्य पद भोगे बिना कुमार पद में ही दीक्षा ली हो आदि का कथन ।

८. **प्रव्रज्या** - जिस मिति, नक्षत्र आदि में जिस वन और वृक्ष के नीचे जितनों के साथ दीक्षा ली उन सब का कथन ।

९. **तप** - दीक्षा लेकर जैसा कठोर तप किया, जितने काल तक किया जो अभिग्रह, प्रतिमाएँ धारण की, जहाँ आर्य अनार्य देश में विचरण किया जैसी शय्या, आसन आदि काम में लिये हों उन सब का कथन ।

१०. **केवलज्ञान** - जब, जहाँ जिस अवस्था में जितने वर्ष छद्मस्थता के बाद केवल ज्ञान हुआ। देवताओं ने केवलज्ञान कल्याणक मनाया आदि का कथन ।

११. **तीर्थ प्रवर्तन** - साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध तीर्थ की स्थापना ।

१२. **जितने शिष्य हुए** - उनकी संख्या का कथन ।

१३. **जितने गण (गच्छ) हुए** - उनकी संख्या का कथन ।

१४. **गणधरों की संख्या** - और उनके नाम का कथन ।

१५. **साध्वी प्रमुखा** - प्रवर्तिनी आर्याओं के नाम और संख्या।

१६-१९. **चतुर्विधसंघ का परिमाण** - जिस तीर्थङ्कर के शासन में जितने साधु-साध्वियाँ, श्रावक-श्राविका हुए उनकी संख्या तथा उनके प्रमुखों का नाम ।

२०-२२. **ज्ञानी संख्या** - जिस तीर्थङ्कर के शासन में जितने केवलज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी और अवधिज्ञानी हुए हैं उनकी संख्या।

२३. **समस्त श्रुतज्ञानी** - समस्त आगमों के ज्ञाता - उत्कृष्ट श्रुतज्ञानी जितने हुए उनकी संख्या।

२४. **वादी** - देव, दानव और मनुष्यों की परिषद् में वाद में पराजित नहीं होने वाले, शास्त्रार्थ अर्थात् चर्चा करने में निपुण ऐसे वादी मुनियों की संख्या।

२५. **अनुत्तर गति** - विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध, इन पांच अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होने वाले मुनियों की संख्या।

२६. **उत्तर वैक्रिय** - करने में समर्थ मुनिराजों की संख्या।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२७. **सिद्ध** – जितने मुनि सिद्ध हुए उनकी संख्या।

२८-२९. **सिद्धिपथ** – मोक्ष मार्ग और वह जितने काल तक ठहरा या ठहरेगा इसका कथन।

३०-३२. जिन तीर्थङ्करों ने जहाँ पादपोपगमन संथारा किया और जितने भक्त का अनशन कर कर्मों का अन्त किया तथा जिन उत्तम मुनिवरों ने अज्ञान रूपी अन्धेरे का विनाश कर और संसार सागर को पार कर सदा के लिये आठ कर्मों से मुक्त होकर मोक्ष के अनुपम सुख को प्राप्त किया, उसका कथन। इत्यादि ऐसे अन्य भी भाव मूल प्रथामानुयोग में कहे गये हैं। यह मूल प्रथमानुयोग है।

से किं तं गंडियाणुओगे? गंडियाणुओगे अणेगविहे पण्णत्ते, तंजहा - कुलगरगंडियाओ, तित्थयरगंडियाओ, गणहरगंडियाओ, चक्कहरगंडियाओ, दसारगंडियाओ, बलदेवगंडियाओ, वासुदेवगंडियाओ, हरिवंसगंडियाओ, भद्दबाहुगंडियाओ, तवोकम्मगंडियाओ चित्तंतरगंडियाओ उस्सप्पिणीगंडियाओ ओसप्पिणीगंडियाओ अमर णर तिरिय णिरय गइगमणविविह परियट्टणाणुओगे, एवमाइयाओ गंडियाओ आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति, से तं गंडियाणुओगे।

कठिन शब्दार्थ – गंडियाणुओगे – गण्डिकानुयोग ।

भावार्थ – शिष्य प्रश्न करता है कि – हे भगवन्! गण्डिकानुयोग किसे कहते हैं? जहाँ एक ही प्रकार की वक्तव्यता कही गई हो अर्थात् एक ही विषय का भली प्रकार प्रतिपादन किया गया हो उसे गण्डिकानुयोग या कण्डिकानुयोग कहते हैं। वह अनेक प्रकार का कहा गया है, जैसे कि – कुलकर गण्डिका – अर्थात् जिसमें विमलवाहन आदि कुलकरों के पूर्वभव आदि सारी बातों का कथन किया गया है। इसी तरह आगे की गण्डिकाओं का अर्थ समझना चाहिए। तीर्थङ्कर गण्डिका, गणधर गण्डिका, चक्रधर यानी चक्रवर्ती गण्डिका, समुद्रविजय आदि दशार्ह गण्डिका, बलदेव गण्डिका, वासुदेव गण्डिका, हरिवंश गण्डिका, भद्रबाहु गण्डिका, तपकर्म गण्डिका, चित्रान्तर गण्डिका अर्थात् ऋषभदेव भगवान् और अजितनाथ भगवान् के बीच में जो उनके वंशज राजा मोक्ष में और अनुत्तर विमानों में गये उनका कथन करने वाली गण्डिका, उत्सर्पिणी गण्डिका, अवसर्पिणी गण्डिका, देव मनुष्य, तिर्यञ्च और नरक गति में बारम्बार परिभ्रमण करने का कथन, इस प्रकार की गण्डिकाओं का कथन किया जाता है, प्रज्ञापना की जाती है, प्ररूपणा की जाती है। यह गण्डिकानुयोग का कथन पूर्ण हुआ।

विवेचन – प्रश्न – हे भगवन्! गण्डिकानुयोग किसे कहते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - ईख (गन्ना) आदि के ऊपर के भाग और मूल भाग को तोड़कर ऊपरी छिलकों को छीलकर मध्य की गांठों को हटा कर जो छोटे छोटे खण्ड किये जाते हैं, उन्हें "गण्डिका" (गण्डेरी) कहते हैं। उस गण्डिका के समान जिस शास्त्र में अगले पिछले विषम अधिकार से रहित मध्य के एक सरीखे अधिकार वाले विषय हों, उसे गण्डिका अनुयोग कहते हैं। गण्डिकानुयोग में सर्व प्रथम कुलकर गण्डिका है। उत्सर्पिणी काल के दुषमा नामक दूसरे आरे के प्रारम्भ में और अवसर्पिणी काल के सुषम दुष्षमा नामक तीसरे आरे के अन्त में जगत् की मर्यादा का निर्माण और रक्षण करने वाले 'कुलकर' कहलाते हैं। ऐसे सुमति कुलकर आदि के चरित्र जिसमें कहे जाते हैं उसे कुलकर गण्डिका कहते हैं इसी प्रकार तीर्थङ्कर बलदेव आदि सब गण्डिकाओं का अर्थ समझ लेना चाहिए।

से किं तं चूलियाओ ? जण्णं आइल्लाणं चउण्हं पुव्वाणं चूलियाओ, सेसाइं पुव्वाइं अचूलियाइं, से तं चूलियाओ।

कठिन शब्दार्थ - चूलियाओ - चूलिका।

भावार्थ - शिष्य प्रश्न करता है कि - हे भगवन्! चूलिका किसे कहते हैं? गुरु महाराज फरमाते हैं कि अध्ययन का कथन करने के बाद उसका शिखर रूप या उपसंहार रूप जो कथन किया जाता है, उसे चूलिका या चूड़ा कहते हैं। पहले के चार पूर्वों की अर्थात् उत्पाद पूर्व, अग्रायणीय पूर्व, वीर्य प्रवाद पूर्व और अस्तिनास्ति प्रवाद पूर्व, इन चार पूर्वों के चूलिकाएं हैं और बाकी दस पूर्वों के चूलिकाएं नहीं हैं। यह चूलिका का कथन हुआ।

विवेचन - जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में सबसे ऊपर चोटी (चूला) होती है उसी प्रकार सब अध्ययनों के बाद शिखर रूप जो कही जाय उसे चूलिका कहते हैं। उसमें पूर्व अध्ययनों में कहे हुए विषयों का विशेष स्पष्टीकरण होता है तथा जो उन अध्ययनों में कहना शेष रह गया हो उस विषय को कहा जाता है। चौदह पूर्वों में से पहले के चार पूर्वों की चौतीस चूलिकाएँ हैं। शेष दस पूर्वों की चूलिकाएँ नहीं हैं।

दिट्ठिवायस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तिओ संखेज्जाओ णिज्जुत्तीओ, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ संगहणीओ। से णं अंगट्ठयाए बारसमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, चउद्दस पुव्वाइं, संखेज्जा वत्थू, संखेज्जा चूलवत्थू, संखेज्जा पाहुडा, संखेज्जा पाहुडपाहुडा, संखेज्जाओ पाहुडियाओ, संखेज्जाओ पाहुडपाहुडियाओ, संखेज्जाणि पयसयसहस्साणि पयग्गेणं पण्णत्ता। संखेज्जा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिण पण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति णिदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति । एवं णाया एवं विण्णाया एवं चरणकरणपरूवणया आघविज्जंति । से तं दिट्ठिवाए । से तं दुवालसंगे गणिपिडगे ।। १२ ।।

भावार्थ - दृष्टिवाद की परित्ता-परिमित वाचना है। संख्याता अनुयोगद्वार हैं। संख्याता प्रतिपत्तियाँ हैं, संख्याता निर्युक्तियाँ हैं, संख्याता श्लोक हैं, संख्याता संग्रहणी गाथाएं हैं। यह दृष्टिवाद अङ्गों की अपेक्षा बारहवाँ अङ्ग है, इसका एक श्रुतस्कन्ध है, चौदह पूर्व हैं, संख्याता वस्तु हैं, संख्याता चूल वस्तु (चूलिका वस्तु) हैं, संख्याता प्राभृत हैं, संख्याता प्राभृतप्राभृत हैं, संख्याता प्राभृतिका हैं, संख्याता प्राभृतप्राभृतिकाएं हैं। प्रत्येक पद की गिनती की अपेक्षा संख्याता लाख पद हैं। संख्याता अक्षर हैं। अनंता गमा यानी बोधमार्ग हैं, अनन्त पर्याय हैं, परिमित त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं। श्री तीर्थङ्कर भगवान् के द्वारा कहे हुए ये पदार्थ द्रव्य रूप से शाश्वत हैं, पर्याय रूप से कृत यानी अनित्य हैं, निबद्ध यानी सूत्र रूप में गूंथे हुए हैं, निकाचित यानी निर्युक्ति, हेतु, उदाहरण द्वारा भली प्रकार कहे गये हैं। दृष्टिवाद सूत्र के ये भाव तीर्थङ्कर भगवान् के द्वारा सामान्य और विशेष रूप से कहे जाते हैं। नामादि के द्वारा कथन किये जाते हैं, स्वरूप के द्वारा बतलाये जाते हैं, उपमा आदि के द्वारा दिखलाये जाते हैं। हेतु दृष्टान्त आदि के द्वारा विशेष रूप से दिखलाये जाते हैं, उपनय, निगमन के द्वारा अथवा सम्पूर्ण नयों के अभिप्राय द्वारा बतलाये जाते हैं। इस प्रकार दृष्टिवाद सूत्र को पढने से पुरुष ज्ञाता-स्वसिद्धान्त के ज्ञाता होते हैं, विज्ञाता-परसिद्धान्त के ज्ञाता होते हैं। इस प्रकार चरणसत्तरि करणसत्तरि आदि की प्ररूपणा से दृष्टिवाद सूत्र के भाव कहे जाते हैं। यह दृष्टिवाद का कथन सम्पूर्ण हुआ। यह गणिपिटक अर्थात् आचार्य एवं साधु के लिए रत्न करण्ड के समान द्वादशाङ्ग-बारह अङ्ग सूत्रों का कथन सम्पूर्ण हुआ ॥ १२ ॥

विवेचन - अङ्ग सूत्र बारह हैं। बारहवें अङ्ग सूत्र का नाम दृष्टिवाद है। यह सम्पूर्ण दृष्टिवाद तीर्थङ्कर के दो पाट तक ही चलता है। पूर्वो का ज्ञान तो पीछे भी चलता है। पूर्व के विभाग रूप २२५ वस्तुएँ हैं और ३४ चूलिका वस्तुएँ हैं। संख्यात पद हैं अर्थात् ८३ करोड़ २६ लाख ८० हजार और ५ पद हैं (८३२६८०००५)। निर्युक्ति, हेतु आदि शब्दों का अर्थ पहले स्पष्ट कर दिया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं अईय काले अणंता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंत संसारकंतारं अणुपरियट्टिंसु । इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं पडुप्पण्णे काले परित्ता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंत संसारकंतारं अणुपरियट्टंति। इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं अणागए काले अणंता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंत संसार कंतारं अणुपरियट्टिस्संति।

इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं अईयकाले अणंता जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंत संसारकंतारं वीईवइंसु । एवं पडुप्पण्णे वि एवं अणागए वि।

दुवालसंगे गणिपिडगे ण कयावि णासी, ण कयावि णत्थि, ण कयावि ण भविस्सइ। भुविं च भवइ य भविस्सइ य। धुवे, णिइए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए, णिच्चे। से जहा णामए पंच अत्थिकाया ण कयाइ ण आसी, ण कयाइ णत्थि, ण कयाइ ण भविस्संति, भुविं च भवंति य भविस्संति य, धुवा, णिइया, सासया, अक्खया, अव्वया, अवट्ठिया, णिच्चा। एवामेव दुवालसंगे गणिपिडगे ण कयाइ ण आसी, ण कयाइ णत्थि, ण कयाइ ण भविस्सइ, भुविं च भवइ य भविस्सइ य, धुवे जाव अवट्ठिए णिच्चे। एत्थ णं दुवालसंगे गणिपिडगे अणंता भावा, अणंता अभावा, अणंता हेऊ, अणंता अहेऊ, अणंता कारणा, अणंता अकारणा, अणंता जीवा, अणंता अजीवा, अणंता भव सिद्धिया, अणंता अभव सिद्धिया, अणंता सिद्धा, अणंता असिद्धा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति णिदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति । एवं दुवालसंगं गणिपिडगं, इति ॥

कठिन शब्दार्थ - इच्चेइयं - इस प्रकार यह, **दुवालसंगं** - द्वादशांग रूप वाणी, **गणिपिडगं** - गणिपिटक, **आणा** - आज्ञा, **विराहित्ता** - विराधना करके, **अईय काले** - अतीत काल में, **चाउरंत संसार कंतारं** - चतुर्गति रूप संसार अटवी में, **अणुपरियट्टिंसु** - परिभ्रमण किया है, **आराहित्ता** - आराधना करके, **वीईवइंसु** - पार हो गये हैं, **पडुप्पण्णे** - प्रत्युत्पन्न-वर्तमान काल में, **अणागए** - अनागत-आगामी काल में, **भुविं** - भूतकाल में था, **अव्वया** - अव्यय, **अवट्ठिया** - अवस्थित।

भावार्थ - इस द्वादशाङ्ग रूप गणिपिटक की आज्ञा की विराधना करके अतीत काल में अनन्त जीवों ने चतुर्गति रूप संसार अटवी में परिभ्रमण किया है। इस द्वादशाङ्ग रूप गणिपिटक की आज्ञा की विराधना करके परित्ता-संख्याता जीव वर्तमान काल में चतुर्गति रूप संसार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अटवी में परिभ्रमण करते हैं। इस द्वादशाङ्ग रूप गणिपिटक की आज्ञा की विराधना करके अनन्त जीव आगामी काल में चतुर्गति रूप संसार अटवी में परिभ्रमण करेंगे।

इस द्वादशाङ्ग रूप गणिपिटक की आज्ञा की आराधना करके अनन्त जीव चतुर्गति रूप संसार अटवी से पार हो गये हैं। इसी तरह वर्तमान काल में भी संख्याता जीव पार होते हैं और आगामी काल में भी अनन्ता जीव पार हो जायेंगे ।

यह द्वादशाङ्ग रूप गणिपिटक भूतकाल में नहीं था ऐसी बात नहीं, वर्तमान काल में नहीं है ऐसी बात नहीं, आगामी काल में नहीं रहेगा, ऐसी बात नहीं, किन्तु भूतकाल में था, वर्तमान काल में है और आगामी काल में रहेगा। यह द्वादशाङ्ग रूप गणिपिटक ध्रुव है, नियत-निश्चित है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है, नित्य है। जैसे कि - पञ्चास्तिकाया भूतकाल में नहीं थी, ऐसी बात नहीं, वर्तमान काल में नहीं है, ऐसी बात नहीं, आगामी काल में नहीं रहेगी, ऐसी बात नहीं, किन्तु पञ्चास्तिकाया भूतकाल में थी, वर्तमान काल में है और आगामी काल में रहेगी। यह पञ्चास्तिकाया ध्रुव है, नियत-निश्चित है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है, नित्य है, इसी तरह यह द्वादशाङ्ग रूप गणिपिटक भूतकाल में नहीं था, ऐसी बात नहीं, वर्तमान काल में नहीं है, ऐसी बात नहीं, आगामी काल में नहीं रहेगा, ऐसी बात नहीं, किन्तु भूतकाल में था, वर्तमान काल में है और आगामी काल में रहेगा। यह द्वादशाङ्ग रूप गणिपिटक ध्रुव है यावत् अवस्थित और नित्य है। इस द्वादशाङ्ग रूप गणिपिटक में अनन्त भाव, अनन्त अभाव, अनन्त हेतु, अनन्त अहेतु, अनन्त कारण, अनन्त अकारण, अनन्त जीव, अनन्त अजीव, अनन्त भवसिद्धिक, अनन्त अभवसिद्धिक, अनन्त सिद्ध, अनन्त असिद्ध, तीर्थङ्कर भगवान् द्वारा सामान्य और विशेष रूप से कहे जाते हैं, नामादि के द्वारा कथन किये जाते हैं, स्वरूप बतलाया जाता है, उपमा आदि के द्वारा दिखलाये जाते हैं, हेतु, दृष्टान्त आदि के द्वारा विशेष रूप से दिखलाये जाते हैं, उपनय, निगमन के द्वारा अथवा समस्त नयों के अभिप्राय से बतलाये जाते हैं। इस प्रकार द्वादशाङ्ग रूप गणिपिटक का संक्षिप्त विषय बतलाया गया है।। १२ ॥

विवेचन - जिस प्रकार धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय यह पांच अस्तिकाय रूप लोक है। यह पञ्चास्तिकाय भूतकाल में थी, वर्तमान में है और भविष्य में भी रहेगी। इसी प्रकार यह द्वादशाङ्ग रूप गणिपिटक भूतकाल में था, वर्तमान में है और भविष्य में भी रहेगा। यह अचल है अर्थात् इसका अस्तित्व (सद्भाव) त्रिकालवर्ती है। इसलिये यह अचल है, यह मेरु पर्वत आदि की तरह स्थिर है इसलिये ध्रुव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। जीवादि द्रव्यों की तरह निश्चित है। इसलिये नियत है। समय, आवलिका आदि कालवचन की तरह यह शाश्वत है। गङ्गा, सिन्धु नदी के प्रवाह में पद्मद्रह आदि की तरह अक्षय है। अर्थात् जैसे पद्मद्रह कभी खाली नहीं होता इसी प्रकार वाचना आदि देते रहने पर भी यह द्वादशाङ्ग रूप गणिपिटक कभी खाली नहीं होता। इसलिये यह अक्षय है। अढ़ाई द्वीप के बाहर के पुष्करवर समुद्र आदि का जल ज्यों का त्यों पूर्ण भरा रहता है इसी प्रकार वाचना आदि देते रहने पर भी यह गणिपिटक भी कभी व्यय (खर्च) नहीं होता है। इसलिये यह अव्यय है। जिस प्रकार जम्बूद्वीप अपने परिमाण में अवस्थित है, उसी प्रकार यह भी मर्यादा में अवस्थित है। अर्थात् ज्यों का त्यों है। आकाश की तरह नित्य है। जिस प्रकार पञ्चास्तिकाया थी, है और रहेगी, इसी तरह यह द्वादशाङ्ग रूप गणिपिटक भी था, है और रहेगा। इसीलिये यह अचल, ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

आगम के तीन भेद हैं यथा - सुत्तागमे (सूत्र रूप आगम), अत्थागमे (अर्थ रूप आगम) तदुभयागमे (सूत्र-अर्थ उभय रूप आगम) इन तीनों प्रकार के द्वादशाङ्ग रूप आगम (गणिपिटक) की आराधना करके अनन्त जीव तिर गये, वर्तमान में संख्याता जीव तिर रहे हैं और भविष्यत् काल में अनन्त जीव तिर जायेंगे । इस द्वादशाङ्ग की विराधना करके अनन्त जीवों ने संसार सागर में परिभ्रमण किया, वर्तमान में संख्याता जीव कर रहे हैं और भविष्यत् काल में अनन्त जीव करेंगे। सूत्र रूप से जमाली ने विराधना की थी, अर्थ रूप से गोष्ठामाहिल ने विराधना की थी। पांच प्रकार का आचार का परिज्ञान करने में उद्यत किन्तु गुरु आदेश का पालन न करने वाले तथा गुरु के प्रत्यनीक (गुरु के विरोधी) द्रव्य लिङ्गधारी अनेक श्रमणों ने सूत्रार्थ उभयरूप आगम की विराधना की है। ये सब अनन्त संसार परिभ्रमण करेंगे । अतः भवभीरु मुमुक्षु आत्माओं को भगवान् की आज्ञा की आराधना करनी चाहिए और विराधना से बचना चाहिए अर्थात् विराधना कभी भी नहीं करनी चाहिए।

नोट - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के शासन में आज्ञा की विराधना करने वाले जमाली, गोष्ठामाहिल आदि ७ निह्नव हुए हैं। जिनका वर्णन विशेषावश्यक भाष्य में बहुत विस्तार के साथ दिया गया है। उनका संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह बीकानेर के दूसरे भाग में बोल नं० ५६१ में दिया गया है। जिज्ञासुओं को वहाँ देखना चाहिए।

इस द्वादशाङ्ग गणिपिटक में अनन्त भाव- जीव पुद्गल आदि, अनन्त अभाव अर्थात् परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा सब पदार्थों का अभाव, अनन्त हेतु प्रत्येक वस्तु का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सद्भाव सिद्ध करने वाले तथा अनन्त अहेतु प्रत्येक द्रव्य का परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा अभाव बताने वाले, अनन्त कारण, उपादान, निमित्त आदि, जैसे घड़े के लिये मिट्टी, कुम्हार आदि, अनन्त अकारण जैसे घड़े के लिये तन्तु-डोरा, अनन्त जीव एकेन्द्रिय आदि, अनन्त अजीव-द्विअणुक यावत् अनन्त अणु परिमाण स्कंध, अनन्त भवसिद्धिक-जिनमें मोक्ष जाने की योग्यता है उसे भवसिद्धिक कहते हैं। अनन्त अभवसिद्धिक, अनन्त सिद्ध- जिन्होंने आठ कर्मों को खपा कर मोक्ष प्राप्त कर लिया है। अनन्त असिद्ध-संसारी जीव । इन सब बातों का वर्णन द्वादशाङ्ग गणिपिटक में दिया गया है।

राशि का वर्णन

दुवे रासी पण्णत्ता, तंजहा-जीवरासी य अजीवरासी य। अजीवरासी दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-रूवी अजीवरासी, अरूवी अजीवरासी य।

भावार्थ - दो प्रकार की राशि कही गई है, जैसे कि - जीवराशि और अजीव राशि । अजीव राशि दो प्रकार की कही गई है। जैसे कि - रूपी अजीव राशि और अरूपी अजीव राशि।

विवेचन - समूह को राशि कहते हैं। राशि के दो भेद हैं - जीव राशि और अजीव राशि। यहाँ पर जीव राशि का विवरण नहीं दिया है। केवल 'जाव' शब्द का प्रयोग करके यह सूचित कर दिया है कि प्रज्ञापना सूत्र के पहले प्रज्ञापना नामक पद के अनुसार इसका निरूपण समझ लेना चाहिए। दोनों स्थलों में अन्तर मात्र एक शब्द का है। प्रज्ञापना सूत्र में जहाँ 'प्रज्ञापना' शब्द का प्रयोग है, वहाँ इस स्थान पर 'राशि' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। शेष कथन दोनों जगह समान हैं।

रूपी अजीव अर्थात् पुद्गल राशि चार प्रकार की है - स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणु। अनन्त परमाणुओं के सम्पूर्ण पिण्ड को स्कन्ध कहते हैं। स्कन्ध के उसमें मिले हुए भाग को 'देश' कहते हैं और स्कन्ध के साथ जुड़े अविभागी अंश को 'प्रदेश' कहते हैं। पुद्गल के सबसे छोटे अविभागी अंश को जो पृथक् है, उसे 'परमाणु' कहते हैं। पुनः यह पुद्गल वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान के भेद से पांच प्रकार का है। पुनः संस्थान भी पुद्गल-परमाणुओं के संयोग से अनेक प्रकार का होता है। यह पुद्गल शब्द, सूक्ष्म, स्थूल भेद, तम (अन्धकार), छाया, उद्योत (चन्द्र प्रकाश) और आतप (सूर्य प्रकाश) आदि के भेद से भी अनेक प्रकार का है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अरूपी अजीव का वर्णन

से किं तं अरूवी अजीव रासी? अरूवी अजीव रासी दसविहा पण्णत्ता, तंजहा - धम्मत्थिकाए जाव अद्धासमए।

भावार्थ - अरूपी अजीव राशि किसे कहते हैं? अरूपी अजीव राशि दस प्रकार की कही गई है, जैसे कि १. धर्मास्तिकाय का स्कन्ध, २. धर्मास्तिकाय का देश, ३. धर्मास्तिकाय का प्रदेश ४-६ अधर्मास्तिकाय का स्कन्ध, देश, प्रदेश। ७-९. आकाशास्तिकाय का स्कन्ध, देश, प्रदेश, १०. काल।

विवेचन - धर्मास्तिकाय द्रव्य से एक है, क्षेत्र से सम्पूर्ण लोक परिमाण है, काल से आदि अन्त रहित है, भाव से वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं। गुण से चलन गुण। जीव और पुद्गल को गति करने में सहायक। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय का भी कह देना चाहिए। किन्तु गुण की अपेक्षा स्थिति गुण अर्थात् जीव और पुद्गल को ठहरने में सहायक होता है। इसी प्रकार आकाशास्तिकाय का भी कह देना चाहिए। किन्तु क्षेत्र की अपेक्षा लोकालोक प्रमाण, गुण की अपेक्षा अवगाह गुण अर्थात् जीव और पुद्गलों को अवकाश (स्थान) देने का गुण । काल-द्रव्य की अपेक्षा अनन्त जीव द्रव्य और पुद्गल द्रव्य पर प्रवर्ते। क्षेत्र की अपेक्षा अढ़ाई द्वीप प्रमाण। गुण की अपेक्षा वर्तन गुण अर्थात् अवस्थान्तर करना। भाव की अपेक्षा अरूपी अजीव। (विशेष विवरण जीवाभिगम सूत्र में है)।

रूपी अजीव का वर्णन

रूवी अजीवरासी अणेगविहा पण्णत्ता जाव से किं तं अणुत्तरोववाइया? अणुत्तरोववाइया पंचविहा पण्णत्ता, तंजहा-विजय वेजयंत जयंत अपराजित सव्वट्ठसिद्धिया, से तं अणुत्तरोववाइया, से तं पंचिंदियसंसार समावण्ण जीवरासी ।

भावार्थ - रूपी अजीव राशि के अनेक भेद कहे गये हैं। यावत् अनुत्तरौपपातिक किसे कहते हैं, यहाँ तक कह देना चाहिए। यहाँ पर पण्णवणा सूत्र के पहले पद की भलामण दी गई है। अतः जीव राशि के इस प्रकार भेद कहने चाहिए - जीव राशि के दो भेद - १. संसार समापन्न और २. असंसार समापन्न। असंसार समापन्न यानी सिद्ध भगवान् के दो भेद - अनन्तर सिद्ध और परम्पर सिद्ध। अनन्तर सिद्ध के पन्द्रह भेद - १. तीर्थसिद्ध

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. अतीर्थ सिद्ध ३. तीर्थङ्कर सिद्ध ४. अतीर्थङ्कर सिद्ध ५. स्वयंबुद्ध सिद्ध ६. प्रत्येक बुद्ध सिद्ध, ७. बुद्ध बोधित सिद्ध, ८. स्त्रीलिङ्ग सिद्ध ९. पुरुष लिङ्ग सिद्ध १०. नपुंसकलिङ्ग सिद्ध, ११. गृहस्थलिङ्ग सिद्ध १२. स्वलिङ्ग सिद्ध १३. अन्यलिङ्ग सिद्ध १४. एक सिद्ध १५. अनेक सिद्ध। परम्परसिद्ध के अनेक भेद हैं। संसार समापन्न जीव के दो भेद - त्रस और स्थावर। स्थावर के पांच भेद - पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय। त्रस के चार भेद - बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय। पञ्चेन्द्रिय के चार भेद - नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देवता।

विवेचन - जो जीव संसार में परिभ्रमण कर रहे हैं, उन्हें संसार-समापन्नक कहते हैं और जो जीव संसार में परिभ्रमण नहीं कर रहे हैं किन्तु आठों कर्मों का क्षय करके संसार समुद्र को पार कर मुक्ति में विराजमान हो गये हैं। उन्हें असंसार समापन्नक (सिद्ध भगवान्) कहते हैं। सिद्ध भगवन्तों के तीर्थसिद्ध आदि भेद भावार्थ में कह दिये गये हैं।

संसार समापन्नक जीव के दो भेद हैं - त्रस और स्थावर । स्थावर के पांच भेद हैं यथा - पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय। त्रस के चार भेद हैं यथा - बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय। इन सब का विस्तृत वर्णन पन्नवणा सूत्र और जीवाभिगम सूत्र से जान लेना चाहिए ।

नैरयिकों का वर्णन

णेरइया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा - पज्जत्ता य अपज्जत्ता य। एवं दंडओ भाणियव्वो जाव वेमाणियत्ति। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए केवइयं खेत्तं ओगाहित्ता केवइया णिरयावासा पण्णत्ता? गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तर जोयणसयसहस्स बाहल्लाए उवरिं एगं जोयण सहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठा च एगं जोयण सहस्सं वज्जित्ता मज्झे अट्ठसत्तरिं जोयणसयसहस्से एत्थ णं रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं तीसं णिरयावाससयसहस्सा भवंतीतिमक्खाया, ते णं णिरयावासा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा जाव असुभा णिरया, असुभाओ णिरएसु वेयणाओ । एवं सत्तवि भाणियव्वाओ जं जासु जुज्जइ।

असीइ बत्तीसं अट्ठावीसं तहेव वीसं च ।
अट्ठारस सोलसगं, अट्ठुत्तरमेव बाहल्लं ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीसा य पण्णवीसा, पण्णरस दसेव सयसहस्साइं ।
तिण्णेगं पंचूणं, पंचेव अणुत्तरा णरगा ॥ २ ॥
चउसट्ठी असुराणं, चउरासीइं च होइ णागाणं ।
बावत्तरि सुवण्णाणं, वाउकुमाराणं छण्णउइ ॥ ३ ॥
दीव दिसा उदहीणं, विज्जुकुमारिंदथणियमग्गीणं ।
छण्हं वि जुवलयाणं, छावत्तरिमो य सयसहस्सा ॥ ४ ॥
बत्तीसट्ठावीसा, बारस अट्ठ चउरो य सयसहस्सा ।
पण्णा चत्तालीसा, छच्च सहस्सा सहस्सारे ॥ ५ ॥
आणय पाणयकप्पे, चत्तारि सयाऽऽरणच्चुए तिण्णि ।
सत्त विमाणसयाइं, चउसु वि एएसु कप्पेसु ॥ ६ ॥
एक्कारसुत्तरं हेट्ठिमेसु, सत्तुत्तरं च मज्झिमए ।
सयमेगं उवरिमए, पंचेव अणुत्तर विमाणा ॥ ७ ॥

दोच्चाए णं पुढवीए, तच्चाए णं पुढवीए, चउत्थीए णं पुढवीए, पंचमीए णं पुढवीए, छट्ठीए णं पुढवीए, सत्तमीए णं पुढवीए गाहाहिं भाणियव्वा।

कठिन शब्दार्थ - **असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए** - एक लाख अस्सी हजार योजन मोटा, **णिरयावासा** - नरकावास, **जुज्जइ** - युक्त होता है।

भावार्थ - नैरयिक के दो भेद हैं पर्याप्त और अपर्याप्त, उनके रहने का स्थान नरक है, उनके सात भेद हैं यथा - १. रत्नप्रभा, २. शर्कराप्रभा ३. बालुकाप्रभा ४. पंकप्रभा ५. धूमप्रभा ६. तमप्रभा ७. तमस्तमाप्रभा । तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय के पांच भेद - जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प। मनुष्य के तीन भेद - कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज, अन्तरद्वीपज। देवता के चार भेद - भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, वैमानिक। भवनपति के दस भेद - असुरकुमार, नागकुमार, सुवर्णकुमार, विद्युत् कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार, पवनकुमार, स्तनितकुमार। वाणव्यन्तर के आठ भेद - भूत, पिशाच, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गन्धर्व। ज्योतिषी के पांच भेद - चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा। वैमानिक के दो भेद - कल्पोपपन्न, कल्पातीत। कल्पोपपन्न के १२ भेद - सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आणत, प्राणत, आरण, अच्युत। कल्पातीत के २ भेद - ग्रैवेयक और अनुत्तरौपपातिक । ग्रैवेयक के ९ भेद - भद्र, सुभद्र,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुजात, सुमनस, सुदर्शन, प्रियदर्शन, आमोह, सुप्रतिबद्ध, यशोधर । अनुत्तरौपपातिक के पांच भेद कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. विजय, २. वैजयन्त ३. जयन्त ४. अपराजित, ५. सर्वार्थसिद्ध । ये अनुत्तरौपपातिक के पांच भेद कहे गये हैं। यह पञ्चेन्द्रियों का कथन हुआ। यह संसार समापन्न जीवों का कथन हुआ।

नैरयिक जीवों के दो भेद कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - पर्याप्त और अपर्याप्त । इस प्रकार वैमानिक तक २४ ही दण्डक के जीवों के पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो दो भेद कह देने चाहिए।

अहो भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का कितना क्षेत्र अवगाहन कर कितने नरकावास कहे गये हैं? हे गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का एक लाख अस्सी हजार योजन मोटा पृथ्वीपिण्ड है, उसमें से एक हजार योजन ऊपर छोड़ कर और एक हजार योजन नीचे छोड़ कर बीच में एक लाख ७८ हजार मोटा पृथ्वीपिण्ड रहता है। इसमें रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के तीस लाख नरकावास हैं, ऐसा कहा गया है। वे नरकावास अन्दर से वर्तुलाकार-गोल और बाहर चतुरंस-चौकोण हैं। यावत् वे नरकावास अशुभ हैं और उन नरकावासों में अशुभ वेदना होती हैं। इस प्रकार सातों नरकों में उनकी वक्तव्यता कह देनी चाहिए ।

अब सातों नरकों का मोटापन, नरकावासों की संख्या, परिमाण आदि बातें संग्रहणी गाथाओं के द्वारा बतलाई जाती हैं - पहली नरक का मोटापन १८०००० योजन है। दूसरी का १३२००० योजन है। तीसरी नरक का १२८००० योजन है। चौथी नरक का १२०००० योजन है। पांचवीं नरक का ११८००० योजन है। छठी नरक का ११६००० योजन है। सातवीं नरक का १०८००० योजन है।

नरकावासों की संख्या - पहली नरक में ३० लाख नरकावास हैं। दूसरी में २५ लाख नरकावास हैं। तीसरी में १५ लाख नरकावास हैं। चौथी में १० लाख है। पांचवीं में ३ लाख हैं। छठी में पांच कम एक लाख हैं और सातवीं नरक में सिर्फ पांच प्रधान नरकावास हैं।

भवनपति देवों के भवनों की संख्या - असुरकुमार देवों के ६४ लाख भवन हैं। नागकुमार देवों के ८४ लाख भवन हैं। सुवर्णकुमार देवों के ७२ लाख भवन हैं। वायुकुमार (पवनकुमार) देवों के ९६ लाख भवन हैं। द्वीपकुमार, दिशाकुमार, उदधिकुमार, विद्युत्कुमार, अग्निकुमार और स्तनितकुमार इन छहों युगल देवों के प्रत्येक के ७६ लाख, ७६ लाख भवन हैं।

वैमानिक देवों के विमानों की संख्या - सौधर्म देवलोक में ३२ लाख विमान हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ईशान देवलोक में २८ लाख विमान हैं। सनत्कुमार में १२ लाख विमान हैं। माहेन्द्र में ८ लाख विमान हैं। ब्रह्मलोक में ४ लाख विमान हैं। लान्तक में ५० हजार, महाशुक्र में ४० हजार, सहस्रार में छह हजार विमान हैं। आणत और प्राणत इन दोनों में ४०० विमान हैं और आरण और अच्युत इन दोनों में ३०० विमान हैं। इस प्रकार आणत, प्राणत, आरण और अच्युत, इन चारों देवलोकों में ७०० विमान हैं। नव ग्रैवेयक की नीचे की त्रिक में १११ विमान हैं। मध्यम त्रिक में १०७ विमान हैं और ऊपर की त्रिक में १०० विमान हैं। अनुत्तर विमान पांच हैं।

दूसरी, तीसरी, चौथी, पांचवीं, छठी और सातवीं नरक में नरकावासों की संख्या आदि ऊपर बताई हुई गाथाओं के अनुसार कह देनी चाहिए ।

विवेचन - प्रश्न - हे भगवन्! रत्नप्रभा पृथ्वी के कितने काण्ड हैं?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के तीन काण्ड हैं यथा - रत्नकाण्ड, अप्पबहुल (जलबहुल) काण्ड, पङ्क बहुल काण्ड । रत्न काण्ड में नरकावास की जगह को छोड़ कर शेष जगह में अनेक प्रकार के इन्द्रनीलादि रत्न होते हैं। जिनकी प्रभा-कान्ति पड़ती रहती है। इस कारण से पहली पृथ्वी का नाम 'रत्नप्रभा' पड़ा है। इसी प्रकार शेष पृथ्वियों के नामों की भी उपपत्ति समझ लेना चाहिए। सातवीं पृथ्वी में घोर अन्धकार है, इसलिये उसका नाम तमस्तमः या महातमःप्रभा है।

प्रश्न - हे भगवान्! प्रस्तट किसे कहते हैं? और वे कितने हैं? तथा अन्तर किसे कहते हैं? और वे कितने हैं?

उत्तर - नैरयिक जीवों के रहने के स्थान को प्रस्तट (प्रस्तर-पाथड़ा) कहते हैं। नरक के कुल प्रस्तट ४९ हैं यथा - पहली के १३, दूसरी के ११, तीसरी के ९, चौथी के ७, पांचवी के ५, छठी के ३ और सातवीं का १ प्रस्तट है। कुल ४९ प्रस्तट हैं।

एक प्रस्तट से दूसरे प्रस्तट के बीच की जगह को अन्तर कहते हैं। कुल अन्तर ४८ हैं। प्रस्तट में नैरयिक जीव रहते हैं। पहली नरक के तेरह प्रस्तट होने पर बारह अन्तर रह जाते हैं। इन बारह अन्तरों में से ऊपर का पहला और दूसरा अन्तर तो खाली है। तीसरे अन्तर में असुरकुमार देवों के भवन हैं। यावत् बारहवें अन्तर में दसवें भवनपति स्तनितकुमार के भवन हैं। भवनपति देव मेरु पर्वत से दक्षिण में और उत्तर में रहते हैं। दोनों तरफ के आवासों की संख्या बताने के लिये टीकाकार ने दो गाथाएँ दी हैं यथा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चउतीसा चउचत्ता अट्ठतीसं च सयसहस्साओ ।
पण्णा चत्तालीसा दाहिणओ हुंति भवणाइं ॥

अर्थात् दक्षिण दिशा के असुरकुमारों के ३४ लाख, नागकुमारों के ४४ लाख, सुवर्णकुमारों के ३८ लाख और वायुकुमारों के ५० लाख तथा शेष छह द्वीपकुमार आदि प्रत्येक के चालीस चालीस लाख भवन हैं।

तीसा चत्तालीसा चोतीसं चेव सयसहस्साइं ।
छायाला छत्तीसा उत्तरओ होंति भवणाइं ॥

अर्थात् - उत्तर दिशा के असुरकुमारों के ३० लाख, नागकुमारों के ४० लाख, सुवर्ण कुमारों के ३४ लाख, वायुकुमारों के ४६ लाख और शेष द्वीपकुमारादि छह के प्रत्येक के छत्तीस लाख, छत्तीस लाख भवन हैं। रहने के स्थान को 'आवास' कहते हैं। भवनपति देवों के आवासों को 'भवन' कहते हैं और वैमानिक देवों के आवासों को 'विमान' कहते हैं।

इनकी संख्या को बतलाने के लिये नक्शा इस प्रकार है -

	दक्षिण दिशा में	उत्तर दिशा में
१. असुरकुमारों के	३४ लाख	३० लाख
२. नागकुमारों के	४४ लाख	४० लाख
३. सुवर्णकुमारों के	३८ लाख	३४ लाख
४. वायुकुमारों के	५० लाख	४६ लाख
५. द्वीपकुमारों के	४० लाख	३६ लाख
६. दिशाकुमारों के	४० लाख	३६ लाख
७. उदधिकुमारों के	४० लाख	३६ लाख
८. विद्युतकुमारों के	४० लाख	३६ लाख
९. स्तनितकुमारों के	४० लाख	३६ लाख
१०. अग्निकुमारों के	४० लाख	३६ लाख
	४०६०००००	३६६०००००
	(चार करोड़ छह लाख)	(तीन करोड़ छयासट लाख)

कुल ७७२००००० (सात करोड़ बहत्तर लाख) भवन हैं। मूल में जो 'छण्हं जुयलयाणं' शब्द दिया है, इसका आशय यह है कि - 'द्वीपकुमार से लेकर अग्निकुमार' तक छह भवनपति देवों के युगल अर्थात् उत्तर दिशा और दक्षिण दिशा दोनों के छहत्तर-छहत्तर लाख आवास हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सातवीं नरक का वर्णन

सत्तमीए णं पुढवीए पुच्छा? गोयमा! सत्तमीए णं पुढवीए अट्ठुत्तर जोयणसयसहस्साइं बाहल्लाए उवरिं अद्धतेवण्णं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता हेट्ठा वि अद्धतेवण्णं जोयणसहस्साइं वज्जित्ता मज्झे तिसु जोयणसहस्सेसु एत्थ णं सत्तमीए पुढवीए णेरइयाणं पंच अणुत्तरा महइमहालया महाणिरया पण्णत्ता, तंजहा-काले, महाकाले, रोरुए, महारोरुए, अप्पइट्ठाणे णामं पंचमे। ते णं णिरया वट्टे य तंसा य अहे खुरप्पसंठाणसंठिया जाव असुभा णरगा असुभाओ णरएसु वेयणाओ ॥

कठिन शब्दार्थ - **वट्टे** - वर्तुलाकार, **तंसा** - त्र्यस्र (त्रिकोण), **खुरप्पसंठाणसंठिया**- क्षुप्र-उस्तरे के आकार वाले।

भावार्थ - गौतम स्वामी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से सातवीं नरक के विषय में पृच्छा करते हैं? भगवान् फरमाते हैं - हे गौतम! सातवीं नरक की मोटाई एक लाख आठ हज़ार योजन है। उसमें से ५२॥ हजार योजन ऊपर छोड़ कर और ५२॥ हजार योजन नीचे छोड़ कर बीच में तीन हजार योजन में सातवीं नरक के नैरयिकों के पांच प्रधान महान् नरकावास कहे गये हैं - उनके नाम इस प्रकार हैं - काल, महाकाल, रौरव, महारौरव और पांचवां अप्रतिष्ठान नाम का है। वे नरकावास बाहर वर्तुलाकार और अन्दर त्र्यस्र-त्रिकोण है और नीचे क्षुप्र-उस्तरे के आकार वाले वे नरकावास अशुभ हैं और उन नरकावासों में अशुभ वेदनाएं हैं।

विवेचन - सातों नरकों का मोटापन, नरकावासों की संख्या और परिमाण आदि बातें जो संग्रहणी गाथाओं में बताई गयी है, उनका अर्थ भावार्थ में स्पष्ट कर दिया गया है।

सातों नरकों में नरकावास तीन प्रकार के हैं - इन्द्रक, आवलिका प्रविष्ट (श्रेणीबद्ध-पंक्ति बद्ध), आवलिका बाह्य (पुष्पावकीर्णक)। इन्द्रक नरकावास सब नरकावासों के बीच में होता है और श्रेणीबद्ध नरकावास उसकी आठों दिशाओं में अवस्थित हैं। पुष्पावकीर्णक या आवलिकाबाह्य नरकावास श्रेणीबद्ध नरकावासों के मध्य में अवस्थित हैं। इन्द्रक नरकावास गोल होते हैं और शेष नरकावास त्रिकोण चतुष्कोण आदि नाना प्रकार वाले कहे गये हैं तथा नीचे की ओर सभी नरकावास क्षुरप्र (उस्तरा-खुरपा) के आकार वाले हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असुरकुमारों का वर्णन

केवइया णं भंते! असुरकुमारावासा पण्णत्ता? गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए असी उत्तरजोयणसयसहस्स बाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जित्ता मज्झे अट्ठहत्तरि जोयणसयसहस्से एत्थ णं रयणप्पभाए पुढवीए चउसट्ठिं असुरकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता। ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा अहे पोक्खरकण्णिया संठाण संठिया, उक्किण्णंतर विउल गंभीर खायफलिहा अट्टालय चरिय दार गोउर कवाड तोरण पडिदुवारदेसभागा जंत मुसल मुसुंढि (भुसुंढि)सयग्घिपरिवारिया अउज्झा अडयाल कोट्ठगरइया अडयाल कयवणमाला लाउल्लोइयमहिया गोसीस सरस रत्त चंदण दद्दर दिण्ण पंचंगुलितला कालागुरुपवर कुंदुरुक्क तुरुक्क डज्झंत धूव मघमघेंत गंधुद्धुयाभिरामा सुगंधिया गंधवट्टिभूया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया णिम्मला वितिमिरा विसुद्धा सप्पभा समिरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, एवं जं जस्स कमइ तं तस्स जं जं गाहाहिं भणियं तह चेव वण्णओ।

कठिन शब्दार्थ - पोक्खरकण्णिया संठाण संठिया - पुष्कर कर्णिका (कमल का मध्यभाग) के आकार के, **उक्किण्णंतर विउलगंभीरखायफलिहा** - नीचे गहरी खोदी हुई खाई और ऊपर विशाल परिखा-पाली से घिरे हुए, **अट्टालय चरिय दार गोउर कवाड तोरण पडिदुवार-देसभागा** - अट्टालिका, चरक द्वार गलियाँ, किंवाड, तोरण, प्रतिद्वार यथास्थान व्यस्थित जंतमुसल **मुसुंढि सयग्घि परिवारिया** - यंत्र, मूसल, भुसुंढ़ी और शतघ्नी तोप आदि शस्त्रों से युक्त **अउज्झा** - अयोध्य, **लाउल्लोइयमहिया** - जिनका तल लीपा हुआ और दीवारें घिस कर चिकनी की हुई, **गोसीस सरस रत्त चंदणं दद्दर दिण्णपंचंगुलितला** - जिनकी दीवारों पर गोशीर्ष चन्दन और लाल चन्दन के लेप से पांचों अंगुलियों के छापे लगाये हुए, **कालागुरु पवरकुंदुरुक्क तुरुक्क डज्झंत धूवमघमघेंत गंधुद्धुयाभिरामा** - कृष्णा गुरु, कुन्दुरुष्क, चीड़, तुरुष्क आदि सुगंधित द्रव्यों के जलते हुए धूप से जो मघमघायमान गंध से रमणीय, **अच्छा** - स्वच्छ, **सण्हा** - श्लक्षण, **लण्हा** - चिकने, **घट्ठा** - घृष्ट यानी घिसे हुए, **मट्ठा** - मृष्ट-घिस कर चिकने बनाये हुए, **सप्पभा** - प्रभायुक्त, **सम्मिरिया** (सस्सिरिया)- मरिचि यानी किरणों से युक्त एवं श्री सहित, **पासाईया** - प्रासादीया-चित्त को प्रसन्न करने वाले, **दरिसणिज्जा** - दर्शनीय-देखने योग्य, **अभिरूवा** - अभिरूप, **पडिरूवा** - प्रतिरूप।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - श्री गौतम स्वामी प्रश्न करते हैं कि - हे भगवन्! असुरकुमारों के कितने आवास कहे गये हैं? भगवान् फरमाते हैं कि - हे गौतम्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी की मोटाई-जाड़ाई एक लाख अस्सी हजार योजन है। उसमें से ऊपर एक हजार योजन छोड़ कर और नीचे एक हजार योजन छोड़ कर बीच में एक लाख अट्ठहत्तर हजार योजन है। रत्नप्रभा पृथ्वी के इस मध्य भाग में असुरकुमार देवों के ६४ लाख आवास - भवन कहे गये हैं। वे भवन बाहर से गोल, भीतर से चतुरस्र-चौकोण और नीचे पुष्करकर्णिका के आकार हैं। नीचे गहरी खोदी हुई खाई और ऊपर विशाल परिखा-पाली से घिरे हुए हैं। अट्टालिका - गढ के ऊपर आश्रय विशेष, चरक-नगर के घरों और किले के बीच में आठ हाथ का चौड़ा रास्ता गलियाँ, किंवाड़, तोरण, प्रतिद्वार - अन्दर का द्वार, जहाँ पर यथास्थान व्यवस्थित हैं। यन्त्र, मूसल, मुसुंढि (भुसुंढ़ि)-शस्त्र विशेष और शतघ्नी तोप आदि शस्त्रों से युक्त हैं। जो अयोध्य हैं यानी उन पर शत्रु हमला नहीं कर सकते हैं। ऐसे ४८ कोठों से युक्त हैं। ४८ वन मालाओं से सुशोभित हैं। जिनका तल लीपा हुआ है और दीवारें घिस कर चिकनी की हुई है। जिनकी दीवारों पर गोशीर्ष चन्दन और लाल चन्दन के लेप से पांचों अङ्गुलियों के छापे लगाये गये हैं। कृष्णागुरु, कुन्दुरुष्क, चीड़, तुरुष्क-लोबान आदि सुगन्धित द्रव्यों के जलते हुए धूप से जो मघमघायमान गन्ध से रमणीय और सुगन्धित बने हुए हैं। जो गन्ध की वट्टी के समान हैं। आकाश के समान स्वच्छ, सण्हा-श्लक्ष्ण यानी सूक्ष्म पुद्गलों से बने हुए, लण्हा -श्लक्ष्ण यानी चिकने, घृष्ट यानी पाषाण प्रतिमा की तरह घिसे हुए, मृष्ट यानी पाषाण प्रतिमा की तरह घिस् कर चिकने बनाये हुए, रज रहित, निर्मल, अन्धकार रहित विशुद्ध, प्रभा यानी कान्ति युक्त, मरिचि यानी किरणों युक्त अथवा श्री शोभा सहित उद्योत यानी प्रकाश युक्त, प्रासादीय यानी मन्न को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय यानी देखने योग्य, अभिरूप यानी कमनीय और प्रतिरूप यानी प्रत्येक दर्शक के मन को लुभाने वाले हैं। इस तरह गाथाओं द्वारा असुरकुमार, नागकुमार आदि का जो जो परिमाण कहा गया है वह सारा उसी तरह से कह देना चाहिए।

विवेचन - पहले यह बताया जा चुका है कि रत्नप्रभा नामक पहली नरक के तेरह प्रस्तट और बारह अन्तर हैं। प्रस्तटों में नैरयिक जीव रहते हैं और बारह अन्तरों में से पहले और दूसरे अन्तर को छोड़ कर तीसरे अन्तर में असुरकुमार जाति के भवनपति देव रहते हैं। भवनपतियों के भवन रत्नों के बने हुए हैं। उन भवनों की सुन्दरता का वर्णन मूल पाठ के अनुसार भावार्थ में कर दिया गया है। वे भवन बाहर गोल हैं और भीतर चौकोण हैं। नीचे कमल की कर्णिका के आकार से स्थित हैं। उनके चारों और खाई और परिखा खुदी हुई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जो ऊपर और नीचे समान विस्तार वाली हो, वह खाई कहलाती है और ऊपर चौड़ी तथा नीचे संकड़ी हो उसे परिखा करते हैं। जिस तोप को एक वक्त चलाने पर एक सौ आदमी एक साथ मारे जाते हों उसे शतघ्नी कहते हैं। मूल में उन भवनों के लिये 'सण्हा' 'लण्हा' आदि सोलह विशेषण दिये हैं। जो वस्तु शाश्वत होती है, उसके लिये ये सोलह विशेषण दिये जाते हैं और अशाश्वत वस्तु के लिये 'पासाईया' आदि चार बिशेषण दिये जाते हैं। इन सोलह विशेषणों का सामान्य अर्थ भावार्थ में दे दिया गया है। विशेष शब्दार्थ इस प्रकार है –

१. **अच्छ** – स्वच्छ = आकाश एवं स्फटिक के समान, ये बिलकुल सब तरफ से स्वच्छ अर्थात् निर्मल हैं।

२. **सण्हा** – श्लक्ष्ण = सूक्ष्म स्कन्ध से बने हुए होने के कारण चिकने वस्त्र के समान हैं।

३. **लण्हा** – लक्ष्ण = इस्तिरी किये गये वस्त्र जिस प्रकार चिकने रहते हैं अथवा घोटे हुए वस्त्र जैसे चिकने होते हैं।

४. **घट्ठा** – घृष्ट = पाषाण की पुतली जिस प्रकार खुरशाण से घिरसकर एक सी और चिकनी कर दी जाती है, वैसे वे भवन हैं।

५. **मट्ठा** – मृष्ट = कोमल खुरशाण से घिसे हुए चिकने ।

६. **नीरया** – नीरज = रज अर्थात् धूलि रहित ।

७. **णिम्मला** – निर्मल = मल रहित ।

८. **वितिमिरा** – वितिमिर = तिमिर अर्थात् अन्धकार से रहित ।

९. **विसुद्धा** – विशुद्ध = निष्कलंक ।

१०. **सप्पभा** – सप्रभा = प्रकाश सम्पन्न अथवा स्वयं आभा-चमक से सम्पन्न ।

११. **सम्मिरिया (सस्सिरिया)** – समरिचि = मरिचि अर्थात् किरणों से युक्त तथा शोभा युक्त ।

१२. **सउज्जोया** – सउद्योत = उद्योत अर्थात् प्रकाश सहित तथा समीपस्थ वस्तु को प्रकाशित करने वाले ।

१३. **पासांईया** – प्रासादीय = मन को प्रसन्न करने वाले ।

१४. **दरिसणिज्जा** – दर्शनीय = देखने योग्य तथा देखते हुए आँखों को थकान मालूम नहीं होती है ऐसे।

१५. **अभिरूवा** – अभिरूप = जितनी वक्त देखो उतनी वक्त नया नया रूप दिखाई देता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१६. **पडिरूवा** - प्रतिरूप = प्रत्येक व्यक्ति के लिये रमणीय।

प्रश्न - भवनपति देवों के दस भेदों को 'कुमार' शब्द से विशेषित क्यों किया है?

उत्तर - जिस प्रकार कुमार (बालक) क्रीड़ा, खेलकूद आदि को पसन्द करते हैं, उसी प्रकार ये भवनपति देव भी क्रीड़ा में रत रहते हैं तथा सदा जवान की तरह जवान (युवा) बने रहते हैं। इसलिये इनको कुमार कहते हैं।

प्रश्न - भवनों और आवासों में क्या फरक होता है?

उत्तर - भवन बाहर से गोल और अन्दर से चतुष्कोण होते हैं। उनके नीचे का भाग कमल की कर्णिका के आकार वाला होता है तथा शरीर परिमाण बड़े मणि तथा रत्नों के प्रकाश से चारों दिशाओं को प्रकाशित करने वाले आवास (मण्डप) कहलाते हैं। भवनपति (भवनवासी) देव भवनों तथा आवासों दोनों में रहते हैं।

प्रसङ्गोपात यहाँ एक प्रश्न पैदा होता है कि - जीवाभिगम सूत्र की प्रथम प्रतिपत्ति में चौबीस दण्डक का वर्णन है यथा -

णेरइया असुराई, पुढवाई बेइंदियादओ चेव ।
पंचिंदिय-तिय-णरा, वंतर-जोइसिय-वेमाणी ॥

अर्थ - सात नरक का एक दण्डक अर्थात् पहला दण्डक, दूसरे से लेकर ग्यारहवें तक दस, भवनपति के दस दण्डक, बारहवाँ पृथ्वीकाय का, तेरहवाँ अप्काय का, चौदहवाँ तेउकाय का, पंद्रहवाँ वायुकाय का, सोलहवाँ वनस्पति काय का, सतरहवाँ बेइन्द्रिय का, अठारहवाँ तेइन्द्रिय का, उन्नीसवाँ चउरिन्द्रिय का, बीसवाँ तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय का, इक्कीसवाँ मनुष्य का, बाईसवाँ वाणव्यन्तर का, तेइसवाँ ज्योतिषी का, चौबीसवाँ वैमानिक का ।

यहाँ पर यह शङ्का उत्पन्न होती है कि - जिस प्रकार भवनपति देवों के दस दण्डक लिये गये हैं तो सात नरकों के भी सात दण्डक लेने चाहिए, उनका एक ही दण्डक क्यों लिया गया?

शङ्का उचित है। उसका समाधान यह है कि - भवनपति देव तो पहली नरक के तीसरे अन्तर से लेकर बारहवें अन्तर में रहते हैं। इन के बीच में चौथे प्रस्तट में नैरयिक जीव रहते हैं। फिर चौथे अन्तर में नागकुमार भवनपति देव रहते हैं। फिर पांचवें प्रस्तट में पहली नरक के नैरयिक और छठे अन्तर में स्वर्णकुमार भवनपति देव रहते हैं। इस प्रकार इन भवनपति देवों के बीच बीच में प्रथम नरक के नैरयिकों का निवास स्थान आ गया है। इसलिये दस भवनपतियों के दस दण्डक लिये गये हैं। पहली नरक और दूसरी नरक तथा दूसरी और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीसरी, इस प्रकार सातों नरकों के बीच में कोई पञ्चेन्द्रिय जीवों का निवास स्थान नहीं हैं। किन्तु सातों नरक संलग्न हैं। इसलिये सातों नरक का एक ही दण्डक लिया गया है। दूसरा कारण यह भी है कि सातों नरक के नैरयिकों के शरीर का वर्ण एक काला (कृष्ण, कृष्णतर, कृष्णतम) ही है। किन्तु दस भवनपति देवों के शरीर का वर्ण, वस्त्रों का वर्ण, मुकुटों का चिह्न आदि अनेक बातों की भिन्नता है इसलिये भी उनके दण्डक अलग अलग लिये गये हैं।

पृथ्वीकाय से लेकर वाणव्यन्तर देवों तक का वर्णन

केवइया णं भंते! पुढवीकाइयावासा पण्णत्ता? गोयमा! असंखेज्जा पुढवीकाइयावासा पण्णत्ता। एवं जाव मणुस्सत्ति। केवइया णं भंते! वाणमंतरावासा पण्णत्ता? गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्स बाहल्लस्स उवरिं एगं जोयणसयं ओगाहित्ता हेट्ठा चेगं जोयणसयं वज्जित्ता मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु एत्थ णं वाणमंतराणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा भोमेज्जा णगरावाससयसहस्सा पण्णत्ता। ते णं भोमेज्जा णगरा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा एवं जहा भवणवासीणं तहेव णेयव्वा, णवरं पडागमालाउला सुरम्मा पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

कठिन शब्दार्थ - पुढवीकाइयावासा - पृथ्वीकाय के आवास स्थान, **रयणामयस्स कंडस्स** - रत्नकांड, **भोमेज्जा** - भूमि में रहे हुए, **पडागमालाउला** - पताकाओं की माला से व्याप्त, **सुरम्मा** - सुरम्य।

भावार्थ - हे भगवन्! पृथ्वीकाय के कितने आवास-स्थान कहे गये हैं? हे गौतम! पृथ्वीकाय के असंख्याता आवास कहे गये हैं। इसी प्रकार अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और तिर्यंच पञ्चेन्द्रिय के असंख्याता स्थान कहे गये हैं। सम्मूर्च्छिम मनुष्य के असंख्याता स्थान और गर्भज मनुष्य के संख्याता स्थान कहे गये हैं।

हे भगवन्! वाणव्यन्तर देवों के कितने आवास कहे गये हैं? हे गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का रत्नकाण्ड, जो कि रत्नों का बना हुआ है, वह एक हजार योजन का मोटा है? उसमें से ऊपर एक सौ योजन छोड़ कर और नीचे एक सौ योजन छोड़ कर बीच में आठ सौ योजन का मध्य भाग है इस मध्य भाग में वाणव्यन्तर देवों के असंख्याता योजन तिर्छे भूमि में रहे हुए लाखों नगरावास स्थान कहे गये हैं। वे भूमि में रहे हुए नगर बाहर गोल और भीतर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चतुरस्र-चौकोण हैं। जिस तरह भवनपति देवों के भवनों का वर्णन कहा गया है उसी तरह इन वाणव्यन्तर देवों के आवासों का भी वर्णन जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि ये पताकाओं की माला से व्याप्त हैं। ये आवास सुरम्य प्रासादीय यानी मन को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय यानी देखने योग्य, अभिरूप यानी कमनीय और प्रतिरूप यानी प्रत्येक दर्शक के मन को लुभाने वाले हैं।

विवेचन - जीवों के पहले दो भेद कहे गये हैं - त्रस और स्थावर। जिन जीवों के स्थावर नाम कर्म का उदय है उन्हें स्थावर कहते हैं। उनकी काय अर्थात् राशि को स्थावरकाय कहते हैं। उसके पांच भेद हैं - पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय। ठाणाङ्ग सूत्र के पांचवें ठाणे में इनके पांच अधिपति (स्वामी देव) कहे हैं। क्रमशः - उन के नाम इस प्रकार है - इंदे (इन्द्र) स्थावर काय, बंभे (ब्रह्म) स्थावर काय, सिप्पे (शिल्प) स्थावर काय, संमई (सम्मति) स्थावर काय, पायावच्चे (प्राजापत्य) स्थावर काय।

उत्तराध्ययन सूत्र के ३६ वें अध्ययन में तेउकाय और वायुकाय को गति की अपेक्षा गति-त्रस कहा है किन्तु हैं वे स्थावर काय ही । इनका विस्तृत विवेचन जीवाभिगम सूत्र में है।

बेइंद्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम मनुष्य और गर्भज मनुष्य इन सब का वर्णन भी जीवाभिगम सूत्र से जान लेना चाहिए।

'वाणमंतर' शब्द का अर्थ टीकाकार ने इस प्रकार किया है -

"वनानाम् अन्तराणि वनान्तराणि तेषु भवा वानमन्तराः ।"

अर्थ - वनों के बीच-बीच में जिनके भवन हैं उन्हें वाणव्यन्तर कहते हैं। इनका दूसरा नाम 'व्यन्तर' भी है। जिसका अर्थ टीकाकार ने इस प्रकार किया है -

"विगतं अन्तरं मनुष्येभ्यो येषां ते व्यन्तराः, तथाहि मनुष्यान् अपि चक्रवर्तिवासुदेव प्रभृतीन्, भृत्यवत् उपचरन्ति, केचित् व्यन्तरा इति मनुष्येभ्यो विगतान्तराः, यदि वा- विविधं अन्तरं शैलान्तरं, कन्दरान्तरं, वनान्तरं वा आश्रयरूपं येषां ते व्यन्तराः ।"

अर्थ - मनुष्यों से जिनका भेद (पृथक्पना) नहीं है, उन्हें व्यन्तर कहते हैं क्योंकि कितने ही व्यन्तर देव महान् पुण्यशाली चक्रवर्ती वासुदेव आदि मनुष्यों की सेवा नौकरों की तरह किया करते हैं अथवा व्यन्तर देवों के भवन, नगर और आवास रूप निवास स्थान विविध प्रकार के होते हैं तथा पहाड़ों और गुफाओं के अन्तरों में तथा वनों के अन्तरों में ये वसते हैं इसलिये भी इन्हें व्यन्तर देव कहते हैं। व्यन्तर देवों के आवास तीनों लोकों में हैं। सलिलावती

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विजय की अपेक्षा अधोलोक में, जम्बूद्वीप के द्वाराधिपति विजय देव की राजधानी दूसरे जम्बूद्वीप में है, इस अपेक्षा तिर्च्छा लोक में तथा मेरुपर्वत के पण्डक वन आदि में व्यन्तर देवों के आवास होने से ऊर्ध्व लोक में भी व्यन्तर देवों के आवास हैं। इस प्रकार व्यन्तर देवों का आवास तीनों लोक में है तथापि मुख्य आवास तो तिरछा लोक में ही है। जैसा कि भावार्थ में बता दिया गया है।

ज्योतिषी देवों का वर्णन

केवइया णं भंते! जोइसियाणं विमाणावासा पण्णत्ता? गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ सत्तणउयाइं जोयणसयाइं उड्ढं उप्पइत्ता एत्थ णं दसुत्तर जोयणसयबाहल्ले तिरियं जोइसविसए जोइसियाणं देवाणं असंखेज्जा जोइसिय विमाणावासा पण्णत्ता। ते णं जोइसिय विमाणावासा अब्भुग्गयमूसियपहसिया विविहमणि रयणभत्तिचित्ता वाउद्धुय विजय वेजयंती पडाग छत्ताइछत्त कलिया तुंगा गगणतल मणुलिहंतसिहरा जालंतर रयणपंजरुम्मिलियव्व मणि कणगथूभियागा वियसियसयपत्त पुंडरीय तिलयरयणद्धचंदचित्ता अंतो बाहिं च सण्हा तवणिज्जवालुआ पत्थडा सुहफासा सस्सिरीयरूवा पासाईया, दरिसणिज्जा, अभिरूवा, पडिरूवा॥

कठिन शब्दार्थ - **बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ** - बहुत समरमणीय भूमिभाग से, **उप्पइत्ता**- ऊपर जाने पर, **जोइसविसए** - ज्योतिषियों का विषय, **अब्भुग्गयमूसियपहसिया**- चारों दिशाओं में फैली हुई कांति से उज्ज्वल, **विविह मणिरयणभत्तिचित्ता** - अनेक प्रकार की मणियों एवं रत्नों से चित्रित, **वाउद्धुय विजय वेजयंती पडाग छत्ताइछत्त कलिया** - वायु से प्रेरित विजय वैजयंती पताकाओं से तथा छत्रातिछत्रों से सुशोभित, **तुंगा** - तुंग-बहुत ऊंचे, **गगणतलमणुलिहंत सिहरा** - उनके शिखर आकाश तल को स्पर्श करने वाले, **वियसिय सयपत्त पुंडरीय तिलय रयणद्धचंदचित्ता** - विकसित पुण्डरीक कमल के समान रत्नों के तिलक और अर्द्ध चन्द्रादि छापों से चित्रित, **तवणिज्ज वालुआ पत्थडा** - सोने की बालुका के प्रस्तट, **सस्सिरीयरूवा** - सश्रीक रूप-शोभन आकार वाले।

भावार्थ - हे भगवन्! ज्योतिषियों के कितने विमानावास कहे गये हैं? हे गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुत समरमणीय भूमि भाग से अर्थात् मेरु पर्वत के पास समान भूमिभाग से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७९० योजन ऊंचा जाने पर ११० योजन की मोटाई में ज्योतिषियों का विषय है। यहाँ पर ज्योतिषी देवों के असंख्याता ज्योतिषी विमान कहे गये हैं अर्थात् समभूमि से ७९० योजन ऊपर जाने पर तारामण्डल है। तारामण्डल से १० योजन ऊपर सूर्य है। सूर्य से ८० योजन ऊपर चन्द्रमा है। चन्द्रमा के ४ योजन ऊपर नक्षत्र है। उससे ४ योजन ऊपर बुध ग्रह है, उससे ४ योजन ऊपर शुक्र ग्रह है। उससे ३ योजन ऊपर बृहस्पति ग्रह है, उससे ३ योजन ऊपर मंगल ग्रह है, उससे ३ योजन ऊपर शनैश्चर ग्रह है। ज्योतिषी देवों के विमान चारों दिशाओं में फैली हुई कान्ति से उज्ज्वल हैं। अनेक प्रकार की चन्द्रकान्तादि मणियाँ और कर्केतनकादि रत्नों से चित्रित हैं, वायु से प्रेरित विजय वैजयन्ती पताकाओं से तथा छत्रातिछत्रों से सुशोभित हैं, तुङ्ग अर्थात् बहुत ऊंचे हैं, उनके शिखर आकाशतल को स्पर्श करने वाले हैं, विमानों की दीवारों में लगी हुई जालियों में रत्न जड़े हुए हैं, पंजर यानी डिब्बे में से निकाले हुए के समान चमकदार हैं, उनके सोने के शिखरों पर मणियाँ जड़ी हुई है। विकसित पुण्डरीक कमल के समान रत्नों के तिलक और अर्द्ध चन्द्रादि छापों से चित्रित हैं, अन्दर और बाहर चिकने हैं, वहाँ सोने की बालुका बिछी हुई है। सुखदायक स्पर्श वाले हैं, शोभन आकार वाले हैं, मन को हरण करने वाले हैं दर्शनीय-देखने योग्य, अभिरूप यानी कमनीय और प्रतिरूप यानी प्रत्येक दर्शक के मन को लुभाने वाले हैं।

विवेचन - ज्योतिषी देवों के वर्णन में सर्व प्रथम 'बहुसमरमणीय भूमि भाग' शब्द आया है। उसका अर्थ यह है कि - मेरुपर्वत जमीन पर दस हजार योजन का जाड़ा (मोटा) है। उसके ठीक बीचोंबीच में आठ रुचक प्रदेश हैं। उनको बहु समरमणीय भूमि भाग कहा गया है। उस बहु समरमणीय भूमिभाग से ७९० योजन पर तारामण्डल है। वह तारा मण्डल ११० योजन में विस्तृत है। उसमें सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदि ज्योतिषी देवों का वर्णन है। जिनका संक्षिप्त वर्णन मूल पाठानुसार भावार्थ में कर दिया गया है। विशेष विवरण जीवाभिगम सूत्र के 'ज्योतिष्क' उद्देशक से जानना चाहिए।

चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा विमान इन सब का आकार आधा कविठ के आकार है। चन्द्र का विमान $\frac{५६}{६१}$ योजन लम्बा चौड़ा है। सूर्य का विमान $\frac{४८}{६१}$ योजन, ग्रह का विमान आधा योजन, नक्षत्र का विमान एक कोस और तारा का विमान आधा कोस का लम्बा चौड़ा है। सबकी परिधि अपनी लम्बाई चौड़ाई से तिगुनी से कुछ अधिक है। चन्द्र विमान और सूर्य विमान को १६००० देव, ग्रह विमान को ८००० देव, नक्षत्र विमान को ४००० देव

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

और तारा विमान को २००० देव चारों दिशाओं में सिंह, हाथी, घोड़ा और बैल का रूप धारण कर उठाते हैं। यह उनका जीताचार है एवं उनके रुचि का विषय है।

नोट – जो लोग यह कहते हैं कि – वैज्ञानिक लोग चन्द्रमण्डल पर पहुँच गये हैं। किन्तु तारामण्डल तो अभी बहुत दूर है। यह उनका कथन इस आगम पाठ से मेल नहीं खाता है। क्योंकि यहाँ से ऊपर जाने वाले मनुष्यों को सबसे पहले तारामण्डल आयेगा। इसके बाद सूर्य मण्डल आयेगा। उससे ८० योजन ऊंचा जाने पर चन्द्रमण्डल आयेगा। जो तारामण्डल एवं सूर्य मण्डल तक नहीं पहुँचा वह व्यक्ति एकदम सीधा चन्द्र मण्डल पर कैसे पहुँच सकता है? ज्योतिषियों के सब विमान रत्नों के बने हुए हैं। इसलिये वहाँ से मिट्टी लाने की बात भी उचित नहीं लगती है। अनुमान ऐसा लगता है कि ये तथाकथित वैज्ञानिक किसी चमकीली पहाड़ी पर पहुँचे होंगे और वहाँ से मिट्टी भी लाई जा सकती है। दूसरी बात यह है कि – आगम की बात तो त्रिकाल नित्य, ध्रुव और सत्य है। वैज्ञानिकों की मान्यता तो उनकी खोज के अनुसार बदलती रहती है तथा सब वैज्ञानिकों का मत भी एक नहीं है। आगमों का सिद्धान्त तो सदा सर्वदा एक ही है। सर्वज्ञों द्वारा कथित होने से सर्वथा सत्य है।

वैमानिक देवों का वर्णन

केवइया णं भंते! वेमाणियावासा पण्णत्ता? गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिम सूरिय गहगण णक्खत्त तारारूवाणं वीइवइत्ता बहूणि जोयणाणि बहूणि जोयणसयाणि बहूणि जोयणसहस्साणि बहूणि जोयण सयसहस्साणि बहुइओ जोयणकोडीओ बहुइओ जोयणकोडाकोडीओ असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं वीइवइत्ता एत्थ णं वेमाणियाणं देवाणं सोहम्मीसाण सणंकुमार माहिंद बंभ लंतग सुक्क सहस्सार- आणय पाणय आरण अच्चुएसु गेवेज्जगमणुत्तरेसु य चउरासीइं विमाणावाससयसहस्सा सत्ताणउइं च सहस्सा तेवीसं च विमाणा भवंतीतिमक्खाया। ते णं विमाणा अच्चिमालिप्पभा भासरासिवण्णाभा अरया णीरया णिम्मला वितिमिरा विसुद्धा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया, णिम्मला, णिप्पंका णिक्कंकडच्छाया सप्पभा सस्सिरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सोहम्मे णं भंते! कप्पे केवइया विमाणावासा पण्णत्ता? गोयमा! बत्तीसं विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता। एवं ईसाणाइसु अट्ठावीसं, बारस, अट्ठ, चत्तारि एयाइं सयसहस्साइं, पण्णासं चत्तालीसं छ एयाइं सहस्साइं आणयपाणए चत्तारि आरणच्चुए तिण्णि एयाणि सयाणि, एवं गाहाहिं भाणियव्वं ॥

कठिन शब्दार्थ - अच्चिमालिप्पभा - अर्चिमालि-आदित्य अर्थात् सूर्य के समान प्रभा वाले, **भासरासिवण्णाभा** - भासराशिवर्णाभा-प्रकाशपुंज के वर्ण की शोभा वाले।

भावार्थ - हे भगवन्! वैमानिक देवों के कितने आवास कहे गये हैं? हे गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुत समरमणीय भूमि भाग से ऊपर चन्द्र सूर्य ग्रह नक्षत्र तारा विमानों को उल्लंघन कर के बहुत योजन, बहुत सौ योजन, बहुत हजार योजन, बहुत लाख योजन, बहुत करोड़ योजन, बहुत करोड़ा करोड़ (कोटाकोटि) योजन, असंख्यात कोटाकोटि योजन ऊंचा दूर जाने पर वैमानिक देवों के सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आणत, प्राणत, आरण, अच्युत, इन बारह देवलोकों में और नवग्रैवेयक, पांच अनुत्तर विमानों में ८४९७०२३ विमान हैं, ऐसा कहा गया है। वे विमान सूर्य के समान प्रभा वाले, सूर्य के समान वर्ण वाले, स्वाभाविक रज से रहित, बाहर से आई हुई रज से रहित, निर्मल, अन्धकार रहित, विशुद्ध, सब रत्नमय, आकाश के समान स्वच्छ, श्लक्ष्ण यानी सूक्ष्म पुद्‌गलों से बने हुए, घृष्ट यानी पाषाण प्रतिमा की तरह घिसे हुए, मृष्ट यानी पाषाण प्रतिमा की तरह घिस कर चिकने बनाये हुए, पङ्क रहित, आवरण रहित, दीप्तिमान, प्रभा सहित, श्री शोभा सहित अथवा मरिचि यानी किरणों युक्त, सउद्योत-प्रकाश युक्त, प्रासादीय यानी मन को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय-देखने योग्य, अभिरूप - कमनीय और प्रतिरूप-प्रत्येक दर्शक के मन को लुभाने वाले हैं।

हे भगवन्! सौधर्म देवलोक में कितने विमान कहे गये हैं? हे गौतम! बत्तीस लाख विमान कहे गये हैं। इसी तरह ईशान आदि देवलोकों में विमानों की संख्या इस प्रकार गाथाओं द्वारा कह देनी चाहिए । जैसे कि ईशान देवलोक में २८ लाख, सनत्कुमार में १२ लाख, माहेन्द्र में ८ लाख, ब्रह्मलोक में ४ लाख, लान्तक में ५० हजार, महाशुक्र में ४० हजार, सहस्रार में ६ हजार, आणत प्राणत में ४००, आरण अच्युत में ३०० विमान हैं। नवग्रैवेयक की पहली त्रिक में १११, दूसरी त्रिक में १०७, तीसरी त्रिक में १०० और पांच अनुत्तर विमानों में ५ विमान हैं। ये सब मिला कर वैमानिक देवों के ८४९७०२३ विमान हैं।

विवेचन - विमानों में रहने वाले देवों को 'वैमानिक देव' कहते हैं। इनके दो भेद हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कल्पोपपन्न और कल्पातीत। यहाँ कल्प शब्द का अर्थ है मर्यादा अर्थात् जहाँ छोटे, बड़े, स्वामी, सेवक की मर्यादा है उन्हें कल्पोपपन्न कहते हैं। सौधर्म से लेकर अच्युत तक बारह देवलोक कल्पोपपन्न कहलाते हैं।

दस प्रकार के भवनवासी, आठ प्रकार के व्यन्तर, पांच प्रकार के ज्योतिषी और बारह प्रकार के वैमानिक देवों में प्रत्येक के दस दस भेद होते हैं। अर्थात् प्रत्येक देव योनि दस विभागों में विभक्त है।

१. **इन्द्र** - सामानिक आदि सभी प्रकार के देवों का स्वामी इन्द्र कहलाता है।

२. **सामानिक** - आयु आदि में जो इन्द्र के बराबर होते हैं उन्हें सामानिक कहते हैं। इनमें केवल इन्द्रत्व नहीं होता । बाकी सभी बातों में इन्द्र के समान होते हैं। बल्कि इन्द्र के लिये माता-पिता अमात्य एवं गुरु आदि की तरह पूज्य होते हैं।

३. **त्रायस्त्रिंश** - जो देव मन्त्री और पुरोहित का काम करते हैं वे त्रायस्त्रिंश कहलाते हैं। इनको दोगुंदक देव भी कहते हैं।

४. **पारिषद्य** - जो देव इन्द्र के मित्र सरीखे होते हैं वे पारिषद्य कहलाते हैं।

५. **आत्मरक्षक** - जो देव शस्त्र लेकर इन्द्र के पीछे खड़े रहते हैं वे आत्मरक्षक कहलाते हैं। यद्यपि इन्द्र को किसी प्रकार की तकलीफ या अनिष्ट होने की सम्भावना नहीं है तथापि आत्म रक्षक देव अपना कर्त्तव्य पालन करने के लिये हर समय हाथ में शस्त्र लेकर खड़े रहते हैं।

६. **लोकपाल** - सीमा (सरहद) की रक्षा करने वाले देव लोकपाल कहलाते हैं।

७. **अनीक** - जो देव सैनिक अथवा सेना नायक का काम करते हैं वे अनीक कहलाते हैं।

८. **प्रकीर्णक** - जो देव नगर निवासी अथवा साधारण जनता की तरह होते हैं वे प्रकीर्णक कहलाते हैं।

९. **आभियोगिक** - जो देव दास के समान होते हैं वे आभियोगिक (सेवक) कहलाते हैं।

१०. **किल्विषिक** - अन्त्यज (चाण्डाल) के समान जो देव होते हैं वे किल्विषिक कहलाते हैं। (तत्त्वार्थाधिगमभाष्य अध्याय ४ सूत्र ४)

प्रश्न - हे भगवन् ! वैमानिक देवों में कितने प्रस्तट हैं?

उत्तर - हे गौतम! ६२ प्रस्तट हैं। यथा - सौधर्म और ईशान अर्थात् पहला और दूसरा देवलोक समान आकार में आये हुए हैं। इन दोनों के तेरह प्रस्तट हैं। इसी प्रकार समान आकार में आये हुए सनत्कुमार और माहेन्द्र नामक तीसरे और चौथे देवलोक में बारह प्रस्तट

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं। पांचवा, छठा, सातवां, आठवाँ देवलोक एक घड़े के ऊपर दूसरे घड़े के समान आये हुए हैं। पाचंवें ब्रह्मलोक में छह प्रस्तट, छठे लांतक में पांच, सातवें शुक्र में चार, आठवें सहस्रार में चार, नवमें दसवें में चार, ग्यारहवें बारहवें में चार, नव ग्रैवेयेक में ९ और पांच अनुत्तर विमान का एक । इस प्रकार ये ६२ प्रस्तट (पाथड़ा) वैमानिक देवों के हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! ये विमान किसके आधार पर प्रतिष्ठित (टिके हुए) हैं?

उत्तर - हे गौतम! पहला और दूसरा देवलोक घनोदधि पर, तीसरा चौथा पांचवाँ घनवायु पर । छठा सातवाँ आठवां उभय प्रतिष्ठित (घनोदधि और घनवाय) हैं। उससे ऊपर के सब विमान आकाश प्रतिष्ठित हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! इन विमानों के कितने विभाग हैं?

उत्तर - हे गौतम! तीन विभाग हैं यथा - अवस्थित (शाश्वत) वैक्रियकृत और परियान अर्थात् तिरछा लोक में आने के लिये सवारी के लिये बनाये जाने वाले यान विमान । यथा - पालक, पुष्पक आदि ।

प्रश्न - हे भगवन्! इन विमानों का कैसा संस्थान है ?

उत्तर - हे गौतम! जो विमान आवलिका प्रविष्ट हैं उनका संस्थान तीन प्रकार का है।

यथा - १. वृत्त (गोल), त्र्यस्त्र (त्रिकोण), चतुरस्त्र (चौकोण)। आवलिका बाह्य अर्थात् पुष्पावकीर्ण विमानों का संस्थान नाना प्रकार का है।

प्रश्न - हे भगवन्! विमानों की विमान पृथ्वी का क्या परिमाण है?

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म और ईशान कल्प के विमान पृथ्वी की मोटाई बाहल्ल्य २७०० योजन तीसरे चौथे में २६०० योजन, पांचवें छठे में २५०० योजन, सातेवें आठवें में २४०० योजन, नववें, दसवें, ग्यारहवें, बारहवें में २३०० योजन, नव ग्रैवेयक में २२०० योजन, पांच अनुत्तर विमानों में २१०० योजन की विमान पृथ्वी की मोटाई बाहल्ल्य है।

प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्मादि देवलोकों के विमानों की ऊँचाई कितनी है ?

उत्तर - हे गौतम! पहले दूसरे देवलोक में ५०० योजन के विमान ऊँचे हैं। तीसरे चौथे में छह सौ, पांचवें छठे में ७००, सातवें आठवें में ८००, नववें, दसवें, ग्यारहवें, बारहवें में ९००, नव ग्रैवेयक में १००० और पांच अनुत्तर विमानों में ११०० योजन के ऊंचे विमान हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! इन विमानों की लम्बाई चौड़ाई कितनी है?

उत्तर - विमान दो प्रकार के हैं। संख्यात विस्तृत और असंख्यात विस्तृत । संख्यात योजन के विस्तृत विमान छोटे से छोटा जम्बूद्वीप प्रमाण होता है। बड़े तो हजारों योजन लम्बे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चौड़े होते हैं। असंख्यात विस्तृत विमान तो असंख्यात योजन के लम्बे चौड़े होते हैं। यावत् नव ग्रैवेयक तक ऐसा समझ लेना चाहिए । विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित ये चार विमान तो असंख्यात विस्तृत हैं। सर्वार्थ सिद्ध विमान संख्येय विस्तृत हैं अर्थात् एक लाख योजन का लम्बा चौड़ा है।

प्रश्न - हे भगवन्! वैमानिक देवों के विमान कितने वर्ण वाले हैं?

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म और ईशान देवलोकों के विमान कृष्ण, नील, लाल, पीला और सफेद पांचों वर्ण के हैं। सनत्कुमार और माहेन्द्र अर्थात् तीसरे चौथे देवलोक के विमान काले को छोड़ कर शेष चार वर्ण वाले हैं। ब्रह्मलोक और लांतक अर्थात् पांचवें और छठे देवलोक के विमान काले और नीले को छोड़ कर शेष तीन वर्ण वाले हैं। महाशुक्र और सहस्रार अर्थात् सातवें और आठवें देवलोक के विमान पीले और सफेद दो वर्ण वाले हैं। नौवें से लेकर नव ग्रैवेयक तक सफेद वर्ण वाले हैं तथा पांच अनुत्तर के विमान परम शुक्ल वर्ण वाले हैं। ये सब विमान रत्नों के बने हुए हैं। इनका गंध और स्पर्श अत्यन्त शुभ है।

प्रश्न - हे भगवन्! सब इन्द्र कितने हैं?

उत्तर - हे गौतम! सब इन्द्र ६४ हैं। यथा - भवनपति देवों के २० (दक्षिण दिशा के असुरकुमारादि के दस और उत्तर दिशा के दस=२०) वाणव्यन्तर देवों के ३२ (दक्षिण दिशा के १६ और उत्तर दिशा के १६ = ३२) ज्योतिषी देवों के चन्द्र और सूर्य दो (जाति की अपेक्षा) वैमानिक देवों के दस (आठवें देवलोक तक ८, नववें-दसवें का एक प्राणतेन्द्र तथा ग्यारहवें बारहवें का एक अच्युतेन्द्र) ।

नोट - ज्योतिषियों के दो भेद हैं - चर और अचर । अढाई द्वीप में चर हैं और बाहर अचर। अढाई द्वीप में १३२ चन्द्र और १३२ सूर्य चर हैं। अढाई द्वीप के बाहर असंख्यात द्वीप और समुद्रों में असंख्यात चन्द्र और असंख्यात सूर्य हैं ये सब अचर स्थिर हैं। वे सब इन्द्र हैं किन्तु यहाँ जाति की अपेक्षा एक चन्द्र एक सूर्य को इन्द्र रूप से लिया गया है।

पूर्वाचार्यों की धारणा के अनुसार वर्तमान के ६४ इन्द्र सम्यग्दृष्टि, भवसिद्धिक एवं एक भवावतारी हैं। अगले भव में महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष चले जायेंगे । कुछ इन्द्रों का तो खुलासा आगम में आ गया है जैसे कि - जम्बूद्वीप के विंध्यगिरि की तलहटी में पूरण नामका तापस था। बाल तप के कारण वह मर कर चमरेन्द्र बना है। जम्बूद्वीप के पृथ्वीभूषण नगर में प्रजापाल नाम का राजा राज्य करता था। उस नगर में व्यापार करने वाले वणिकों की बहुत बड़ी बस्ती थी। एक हजार आठ दुकानें थी। उन सब का मुखिया कार्तिक सेठ था। वह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रियधर्मी और दृढ़धर्मी था। उसने श्रावक की ५ वीं पडिमा का १०० बार पालन किया था। फिर एक हजार आठ १००८ महाजन वणिकों के साथ बीसवें तीर्थङ्कर मुनिसुव्रत स्वामी के पास दीक्षा लेकर बहुत वर्षों तक संयम का पालन किया। वहाँ से काल धर्म को प्राप्त कर पहले देवलोक का इन्द्र शक्रेन्द्र बना । इस जम्बूद्वीप में ताम्रलिप्ती नामकी नगरी थी। वहाँ तामली तापस बाल तपस्या करता था। ६० हजार वर्ष तक बेले-बेले की तपस्या की थी। पारणे में शुद्ध ओदन (चावल) मात्र ग्रहण करता था। उसको भी २१ बार धोकर उसका आहार करता था। विकट बाल तपस्या करके दूसरे देवलोक का ईशानेन्द्र बना है। तीसरे देवलोक के इन्द्र सनत्कुमार का वर्णन भगवती सूत्र के तीसरे शतक के पहले उद्देशक में आया है। ये सभी भवसिद्धिक एवं एक भवावतारी हैं। ऐसा खुलासा हो चुका है। इस से अनुमान और संभावना यही है कि - ६४ ही इन्द्र भवसिद्धिक और एक भवावतारी हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! शक्रेन्द्र को 'सयक्कउ' (शतक्रतु) क्यों कहते हैं?

उत्तर - 'शतक्रतु' शब्द का अर्थ टीकाकार ने इस प्रकार किया है -

"शतं क्रतूनां-प्रतिमानाम्-अभिग्रह-विशेषाणां श्रमणोपासक पञ्चमप्रतिमारूपाणां वा यस्याऽसौ शतक्रतुः। इदंहि कार्तिक श्रेष्ठि भवापेक्षया, तथाहि पृथिवीभूषणनगरे प्रजापालो नाम राजा कार्तिक नामा श्रेष्ठी। तेन श्राद्धप्रतिमानां शतं कृतं ततः शतक्रतुरिति ख्यातिः ।"

अर्थ - कार्तिक सेठ ने श्रावक की पांचवीं प्रतिमा का १०० बार पालन किया था। फिर दीक्षा लेकर काल धर्म को प्राप्त कर पहले देवलोक का इन्द्र बना है। इसलिये पूर्वभव की अपेक्षा इस इन्द्र के '**शतक्रतु**' विशेषण लगता है। यह शतक्रतु विशेषण इसी शक्रेन्द्र के लिये लगता है। दूसरों के लिये नहीं।

प्रश्न - हे भगवन्! शक्रेन्द्र के लिये 'सहस्सक्ख' (सहस्राक्ष) यह विशेषण क्यों लगता है?

उत्तर - टीकाकार ने इस शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है -

"सहस्रमक्ष्णां यस्यासौ सहस्राक्षः। शक्रे, इन्द्रे, इन्द्रस्य हि किल मन्त्रिणां पञ्च शतानि सन्ति तदीयानां चाक्ष्णांमिन्द्रप्रयोजने व्यावृत्ततया इन्द्रसम्बन्धित्वेन विवक्षणात् सहस्राक्षत्वमिन्द्रस्य।"

अर्थ - शक्रेन्द्र के पांच सौ मंत्री हैं। उनकी एक हजार आंखें हैं। वे सब आंखें इन्द्र का हित देखने और करने रूप प्रयोजन में लगी रहती हैं। इसलिये वे सब आंखें इन्द्र की कहलाती हैं। इसलिये इन्द्र को सहस्राक्ष (एक हजार आंखों वाला) कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! अवग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर - एक समय शक्रेन्द्र श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के दर्शन करने आया तब उसने भगवान् से पूछा-अहो भगवन्! अवग्रह कितने प्रकार का है? तब भगवान् ने उत्तर फरमाया कि - हे शक्रेन्द्र अवग्रह पांच प्रकार का है। उनमें सबसे पहला अवग्रह 'देवेन्द्र अवग्रह' है। तब शकेन्द्र ने कहा कि हे भगवन्! अभी जो साधु साध्वी आदि चतुर्विध संघ विचरण कर रहा है उनके लिये मैं आज्ञा देता हूँ। ऐसा कह कर और भगवान् को वन्दन करके अपने यथा स्थान चला गया। तब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ज्येष्ठ अंतेवासी गौतम स्वामी ने अवग्रह के विषय में पूछा तब भगवान् ने इसका विस्तार पूर्वक उत्तर दिया वह इस प्रकार है -

अवग्रह पांच हैं - १. देवेन्द्रावग्रह २. राजावग्रह ३. गृहपति अवग्रह ४. सागारी (शय्यादाता) अवग्रह ५. साधर्मिकावग्रह।

१. देवेन्द्रावग्रह - लोक के मध्य में रहे हुए मेरु पर्वत के बीचोंबीच रुचक प्रदेशों की एक प्रदेशावली श्रेणी है। इस से लोक के दो भाग हो गये हैं। दक्षिणार्द्ध और उत्तरार्द्ध। दक्षिणार्द्ध का स्वामी शक्रेन्द्र है और उत्तरार्द्ध का स्वामी ईशानेन्द्र है। इसलिये दक्षिणार्द्धवर्ती साधुओं को शक्रेन्द्र की और उत्तरार्द्धवर्ती साधुओं को ईशानेन्द्र की आज्ञा मांगनी चाहिए।

भरत क्षेत्र दक्षिणार्द्ध में है। इसलिये यहाँ के साधु साध्वियों को शक्रेन्द्र की आज्ञा लेनी चाहिए। पूर्वकालवर्ती साधु साध्वियों ने शक्रेन्द्र की आज्ञा ली थी। यही आज्ञा वर्तमान कालीन साधु साध्वियों के भी चल रही है।

२. राजावग्रह - चक्रवर्ती आदि राजा जितने क्षेत्र का स्वामी है। उस क्षेत्र में रहते हुए साधु साध्वियों को राजा की आज्ञा लेना 'राजावग्रह' है।

३. गृहपति अवग्रह - मण्डल का नायक या ग्राम का मुखिया गृहपति कहलाता है। गृहपति से अधिष्ठित क्षेत्र में रहते हुए साधु साध्वियों का गृहपति की अनुमति मांगना एवं उसकी अनुमति से कोई वस्तु लेना गृहपति अवग्रह है।

४. सागारी (शय्यादाता) अवग्रह - घर, पाट, पाटला आदि के लिये गृह स्वामी की आज्ञा प्राप्त करना सागारी अवग्रह है।

५. साधर्मिक अवग्रह - समान धर्म वाले साधु साध्वियों से उपाश्रय आदि की आज्ञा प्राप्त करना साधर्मिकावग्रह है। साधर्मिक का अवग्रह पांच कोस परिमाण जानना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वसति (उपाश्रय) आदि को ग्रहण करते हुए साधु साध्वियों को उक्त पांच स्वामियों की यथायोग्य आज्ञा प्राप्त करनी चाहिए।

उक्त पांच स्वामियों में से पहले पहले के देवेन्द्र अवग्रहादि गौण हैं और पीछे के राजावग्रहादि मुख्य हैं। इसलिये पहले देवेन्द्रादि की आज्ञा प्राप्त होने पर भी पिछले राजा आदि की आज्ञा प्राप्त न हो तो देवेन्द्रादि की आज्ञा बाधित हो जाती है। जैसे देवेन्द्र से अवग्रह प्राप्त होने पर यदि राजा अनुमति नहीं दे तो साधु साध्वी देवेन्द्र से अनुज्ञापित वसति आदि उपभोग नहीं कर सकता । इसी प्रकार किसी वसति आदि के लिये राजा की आज्ञा प्राप्त हो जाय पर गृहपति की आज्ञा न हो तो भी साधु साध्वी उसका उपभोग नहीं कर सकता। इसी प्रकार गृहपति की आज्ञा सागारी से और सागारी की आज्ञा साधर्मिक से बाधित समझी जाती है। (आचाराङ्ग श्रुत स्कन्ध २ अवग्रह प्रतिमा अध्ययन) (भगवती शतक १२ उद्देशा २)

नैरयिक आदि की स्थिति का वर्णन

णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? गोयमा! जहण्णेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता । अपज्जत्तगाणं णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं। पज्जत्तगाणं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं उक्कोसेणं तेतीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं । इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए एवं जाव विजय वेजयंत जयंत अपराजियाणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? गोयमा! जहण्णेणं इकतीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं तेतीसं सागरोवमाइं । सव्वट्ठे अजहण्णमणुक्कोसेणं तेतीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता ॥

नोट - यहाँ कुछ प्रतियों के मूल पाठ में विजय वैजयन्त जयन्त अपराजित इन चार अनुत्तर विमानवासी देवों की जघन्य स्थिति ३२ सागरोपम की बताई है वह लिपि प्रमाद ही संभव है। होना यह चाहिये कि - जघन्य ३१ उत्कृष्ट ३३ सागरोपम। क्योंकि दूसरी जगह ऐसा ही बतलाया गया है। भगवती सूत्र के ग्यारहवें शतक के बारहवें उद्देशक में बतलाया गया है कि देवों में स्थिति की अपेक्षा दस हजार वर्ष से लेकर ३३ सागरोपम तक के सभी स्थिति स्थान पाये जाते हैं। यदि चार अनुत्तर विमानों की जघन्य स्थिति ३२ सागरोपम मानी जाय तो इकतीस से बत्तीस सागरोपम तक के स्थिति स्थान शून्य मानने पड़ेंगे जो कि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आगमानुकूल नहीं है। यहाँ मूल पाठ में '**जाव**' शब्द दिया है। उससे पण्णवणा सूत्र के चौथे पद का ही अतिदेश दिया गया है। '**णवरं**' कह कर विशेषता भी नहीं बताई है। पण्णवणा सूत्र के चौथे पद में चार अनुत्तर विमानवासी देवों की जघन्य स्थिति ३१ सागरोपम की बताई गयी है। वही अतिदेश पाठ यहाँ पर भी होना चाहिए। इसके ३२वें समवाय में '**अत्थेगइयाणं**' शब्द दिया है उससे भी यहाँ का पाठ अशुद्ध ठहरता है। इसी प्रकार भगवती सूत्र का २४ वाँ शतक आदि को देखने से यही स्पष्ट होता है कि - चार अनुत्तर विमानों की जघन्य स्थिति ३१ सागरोपम की ही है। तदनुसार उपर्युक्त पाठ में '**इकतीसं**' शब्द ही रखा है।

कठिन शब्दार्थ - अतोमुहुत्तूणाइं - अंतर्मुहूर्त कम, **अजहण्णमणुक्कोसेणं** - अजघन्य अनुत्कृष्ट।

भावार्थ - हे भगवन्! नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है? हे गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति कही गई है। हे भगवन्! अपर्याप्तक नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है? हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त कही गई है। पर्याप्तक नैरयिकों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की कही गई है। हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी की यावत् विजय वैजयंत जयंत अपराजित देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है? हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी में जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट एक सागरोपम, दूसरी नरक में जघन्य एक सागरोपम, उत्कृष्ट ३ सागरोपम, तीसरी में जघन्य तीन सागरोपम, उत्कृष्ट ७ सागरोपम, चौथी में जघन्य ७ सागरोपम, उत्कृष्ट १० सागरोपम, पांचवीं में जघन्य १० सागरोपम, उत्कृष्ट १७ सागरोपम, छठी में जघन्य १७ सागरोपम उत्कृष्ट २२ सागरोपम, सातवीं में जघन्य २२ सागरोपम, उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की स्थिति कही गई है। भवनपति देवों की जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट १ सागरोपम से कुछ अधिक की, मनुष्य और तिर्यञ्च की जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट पृथ्वीकाय की २२ हजार वर्ष, अप्काय की ७ हजार वर्ष की, तेउकाय की ३ अहोरात्रि की, वायुकाय की ३ हजार वर्ष की, वनस्पतिकाय की १० हजार वर्ष, बेइन्द्रिय की १२ वर्ष, तेइन्द्रिय की ४९ अहोरात्रि की, चौइन्द्रिय की ६ महीने की, तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय की ३ पल्योपम की, मनुष्य की ३ पल्योपम की, वाणव्यन्तर देवों की जघन्य १० हजार वर्ष की, उत्कृष्ट एक पल्योपम की, ज्योतिषी देवों की जघन्य पल्योपम का आठवां भाग उत्कृष्ट १ पल्योपम १ लाख वर्ष अधिक, वैमानिक देवों में सौधर्म देवलोक की जघन्य १ पल्योपम उत्कृष्ट २ सागरोपम, ईशान देवलोक की जघन्य १ पल्योपम झाझेरी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(कुछ अधिक) उत्कृष्ट २ सागरोपम झाझेरी (कुछ अधिक), सनत्कुमार में जघन्य २ सागरोपम, उत्कृष्ट ७ सागरोपम, माहेन्द्र में जघन्य २ सागरोपम झाझेरी, उत्कृष्ट ७ सागरोपम झाझेरी, ब्रह्म देवलोक में जघन्य ७ सागरोपम, उत्कृष्ट १० सागरोपम, लान्तक में जघन्य १० सागरोपम, उत्कृष्ट १४ सागरोपम, महाशुक्र में जघन्य १४ सागरोपम, उत्कृष्ट १७ सागरोपम, सहस्रार में जघन्य १७ सागरोपम, उत्कृष्ट १८ सागरोपम, आणत में जघन्य १८ सागरोपम, उत्कृष्ट १९ सागरोपम, प्राणत में जघन्य १९ सागरोपम उत्कृष्ट २० सागरोपम, आरण में जघन्य २० सागरोपम, उत्कृष्ट २१ सागरोपम अच्युत में जघन्य २१ सागरोपम, उत्कृष्ट २२ सागरोपम, नवग्रैवेयक में जघन्य २२ सागरोपम, उत्कृष्ट ३१ सागरोपम की स्थिति है। विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित इन में जघन्य ३१ सागरोपम, उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की स्थिति है। सर्वार्थ सिद्ध विमान में अजघन्य अनुत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति कही गई है ॥

विवेचन – **प्रश्न** – स्थिति किसे कहते हैं?

उत्तर – उस स्थान में रहने की काल मर्यादा को स्थिति कहते हैं। स्थिति के दो भेद हैं – काय स्थिति और भव स्थिति। एक काया से मर कर फिर उसी काया में उत्पन्न होना, काय स्थिति कहलाता है। जैसे कि पृथ्वीकाय का जीव मर कर फिर पृथ्वीकाय में उत्पन्न होवे इस प्रकार लगातार पृथ्वीकाय से मर कर पृथ्वीकाय में उत्पन्न होते रहना। पृथ्वीकाय की कायस्थिति है। पृथ्वीकाय की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट असंख्यात काल की है। पन्नवणा सूत्र के अठारहवें पद में २४ ही दण्डक के जीवों की कायस्थिति का वर्णन है। भवस्थिति-उस भव की आयुष्य के साथ जो भोगी जाती है, उसे भव स्थिति कहते हैं। जैसे कि – पृथ्वीकाय की भवस्थिति, जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट २२ हजार वर्ष की है। इसका वर्णन भी पन्नवणा सूत्र के अठारहवें पद में कहा गया है।

प्रश्न – अपर्याप्तक और पर्याप्तक किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस जीव को जितनी पर्याप्तियाँ बांधनी हो उतनी जब तक पूरी न बांधे तब तक वह अपर्याप्तक कहलाता है और जब उतनी पर्याप्तियों को पूरी बांध लेता है, तब उसे पर्याप्तक कहते हैं। अपर्याप्तक के दो भेद हैं – लब्धि अपर्याप्तक और करण अपर्याप्तक। लब्धि अपर्याप्तक जीव तो अपर्याप्तक अवस्था में ही काल कर जाता है। करण अपर्याप्तक जीव अपर्याप्तक अवस्था में काल नहीं करता है। जैसा कि कहा है –

"नारय देवा तिरियमणुय, गब्भया जे असंखवासाऊ ।
एए उ अपज्जत्ता, उववाए चेव बोद्धव्वा ।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ - नैरयिक, देव, असंख्यात वर्ष की आयुष्य वाले तिर्यञ्च और मनुष्य (युगलिक) ये अपर्याप्तक अवस्था में काल नहीं करते हैं। शेष जीवों के लिये भजना अर्थात् अपर्याप्त और पर्याप्त दोनों अवस्थाओं में काल करते हैं। यहाँ तीन आलापक कहे हैं - १. समुच्चय २. अपर्याप्तक ३. पर्याप्तक ।

ग्रैवेयक ९ हैं। उनकी स्थिति पहले ग्रैवेयक में उत्कृष्ट स्थिति २३ सागरोपम है। फिर एक एक सागरोपम बढ़ाते हुए नववें ग्रैवेयक में उत्कृष्ट स्थिति ३१ सागरोपम की है। सर्वार्थसिद्ध में स्थिति के जघन्य और उत्कृष्ट ऐसे दो भेद नहीं होते हैं। वहाँ सब देवों की एक ही प्रकार की स्थिति होती है। इसीलिये उस स्थिति को अजघन्य अनुत्कृष्ट कहा है। वहाँ ३३ सागरोपम की स्थिति है।

शरीर का वर्णन

औदारिक शरीर

कइ णं भंते! सरीरा पण्णत्ता? गोयमा! पंच सरीरा पण्णत्ता तंजहा - ओरालिए वेउव्विए आहारए तेयए कम्मए । ओरालिए सरीरे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते? गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते तंजहा - एगिंदिय ओरालियसरीरे जाव गब्भवक्कंतियमणुस्स पंचिंदिय ओरालियसरीरे य। ओरालिय सरीरस्स णं भंते! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता? गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइ भागं, उक्कोसेणं साइरेगं जोयणसहस्सं एवं जहा ओगाहणसंठाणे ओरालियपमाणं तहा णिरवसेसं एवं जाव मणुस्सेत्ति उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं ।

कठिन शब्दार्थ - **गब्भवक्कंतियमणुस्सपंचिंदिय ओरालिय सरीरे** - गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय का औदारिक शरीर, **अंगुलस्स असंखेज्जइ भागं** - अंगुल का असंख्यातवां भाग, **ओगाहणसंठाणे** - अवगाहना संस्थान, **ओरालियपमाणं** - औदारिक शरीर का प्रमाण।

भावार्थ - हे भगवन्! शरीर कितने कहे गये हैं? हे गौतम! शरीर पांच कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण ।

हे भगवन्! औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ? हे गौतम! पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे कि - एकेन्द्रिय का औदारिक शरीर, बेइन्द्रिय का, तेइन्द्रिय का, चउरिन्द्रिय का तिर्यञ्च पञ्चेन्दिय का और गर्भज मनुष्य पञ्चेन्द्रिय का औदारिक शरीर । हे भगवन्!

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

औदारिक शरीर की कितनी बड़ी अवगाहना कही गई है ? हे गौतम! जघन्य अङ्गुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट एक हजार योजन से कुछ अधिक कही गई है। जिस प्रकार श्री पन्नवणा सूत्र के अवगाहना संस्थान नामक इक्कीसवें पद में औदारिक शरीर का प्रमाण कहा गया वह सारा ज्यों का त्यों यहाँ कह देना चाहिए यावत् मनुष्य के औदारिक की उत्कृष्ट अवगाहना तीन गाऊ (कोस) की कही गई है।

विवेचन - प्रश्न - हे भगवन्! औदारिक शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर - उदार अर्थात् प्रधान अथवा स्थूल पुद्गलों से बना हुआ शरीर औदारिक कहलाता है। तीर्थङ्कर, गणधरों का शरीर प्रधान पुद्गलों से बनता है और सर्वसाधारण का शरीर स्थूल असार पुद्गलों से बना हुआ होता है। रूप की अल्पबहुत्व में इस प्रकार कहा है कि- सबसे अल्प रूप अनुत्तर विमान के देवों का, उससे अधिक रूप आहारक शरीर के पुतले का, उससे अधिक रूप गणधरों का और उससे अधिक रूप तीर्थङ्कर भगवन्तों के शरीर का होता है। अथवा अन्य शरीरों की अपेक्षा अवस्थित रूप से विशाल अर्थात् बड़े परिमाण वाला होने से यह औदारिक शरीर कहा जाता है। वनस्पतिकाय की अपेक्षा औदारिक शरीर की एक सहस्त्र योजन की अवस्थित अवगाहना है। अन्य सभी शरीरों की अवस्थित अवगाहना इससे कम है। वैक्रिय शरीर की उत्तर वैक्रिय की अपेक्षा अनवस्थित अवगाहना लाख योजन की है। परन्तु भव धारणीय वैक्रिय शरीर की अवगाहना तो पाँच सौ धनुष से ज्यादा नहीं है। अन्य शरीर की अपेक्षा अल्प प्रदेश वाला तथा परिमाण में बड़ा होने से यह औदारिक शरीर कहलता है। मांस, रुधिर, अस्थि आदि से बना हुआ शरीर औदारिक कहलाता है। औदारिक शरीर मनुष्य और तिर्यञ्च के होता है।

वैक्रिय शरीर

कइविहे णं भंते! वेउव्विय सरीरे पण्णत्ते? गोयमा! दुविहे पण्णत्ते तंजहा- एगिंदिय वेउव्वियसरीरे य पंचिंदियवेउव्विय सरीरे य। एवं जाव सणंकुमारे आढत्तं जाव अणुत्तराणं भवधारणिज्जा जाव तेसिं रयणी रयणी परिहायइ ।

कठिन शब्दार्थ - रयणी - रत्नि-एक हाथ, **परिहायइ** - कम होती जाती है।

भावार्थ - हे भगवन्! वैक्रिय शरीर कितने प्रकार का कहा गया है? हे गौतम! दो प्रकार का कहा गया है जैसे कि एकेन्द्रिय का वैक्रिय शरीर और पञ्चेन्द्रिय वैक्रिय शरीर। इस प्रकार यावत् भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और पहले और दूसरे देवलोक के देवों की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भवधारणीय अवगाहना ७ हाथ, तीसरे और चौथे में ६ हाथ, पांचवें और छठे में ५ हाथ, सातवें और आठवें में ४ हाथ, नववें, दसवें, ग्यारहवें, बारहवें में ३ हाथ, नव ग्रैवेयक में २ हाथ और पांच अनुत्तर विमान में एक हाथ की अवगाहना है। इस तरह सनत्कुमार देवलोक से लेकर अनुत्तर विमानों तक के देवों की भवधारणीय शरीर अवगाहना एक एक हाथ कम होती जाती है।

विवेचन - वैक्रिय शरीर - जिस शरीर से विविध अथवा विशिष्ट प्रकार की क्रियाएं होती हैं वह वैक्रिय शरीर कहलाता है। जैसे एक रूप होकर अनेक रूप धारण करना, अनेक रूप होकर एक रूप धारण करना, छोटे शरीर से बड़ा शरीर बनाना और बड़े से छोटा बनाना, पृथ्वी और आकाश पर चलने योग्य शरीर धारण करना, दृश्य, अदृश्य रूप बनाना आदि । वैक्रिय शरीर दो प्रकार का है - १. औपपातिक वैक्रिय शरीर २. लब्धि प्रत्यय वैक्रिय शरीर । जन्म से ही जो वैक्रिय शरीर मिलता है, वह औपपातिक वैक्रिय शरीर हैं। देवता और नरक के नैरयिक जन्म से ही वैक्रिय शरीरधारी होते हैं। लब्धि प्रत्यय वैक्रिय शरीर तप आदि द्वारा प्राप्त लब्धि विशेष से प्राप्त होने वाला वैक्रिय शरीर लब्धि प्रत्यय वैक्रिय शरीर है। मनुष्य और तिर्यंञ्च में लब्धि प्रत्यय वैक्रिय शरीर होता है।

आहारक शरीर

आहारय सरीरे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते? गोयमा! एगाकारे पण्णत्ते । जइ एगाकारे पण्णत्ते किं मणुस्स आहारय सरीरे, अमणुस्स आहारय सरीरे ? गोयमा! मणुस्स आहारय सरीरे, णो अमणुस्स आहारय सरीरे । एवं जइ मणुस्स आहारय सरीरे, किं गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे, सम्मुच्छिम मणुस्स आहारय सरीरे ? गोयमा! गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारयसरीरे णो सम्मुच्छिम मणुस्स आहारय सरीरे। जइ गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे, किं कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे, अकम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे ? गोयमा! कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे, णो अकम्मभूमिय गब्भवक्तकंतिय मणुस्स आहारय सरीरे। जइ कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे, किं संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे असंखेज्जवासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे ? गोयमा! संखेज्जवासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतियमणुस्स आहारय सरीरे, णो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असंखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारयसरीरे । जइ संखेज्जवासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारयसरीरे, किं पज्जत्तय संखेज्जवासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे, अपज्जत्तय संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे ? गोयमा! पज्जत्तय संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे, णो अपज्जत्तय संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे । जइ पज्जत्तय संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारयसरीरे, किं सम्मदिट्ठि पज्जत्तय संखेज्जवासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे, मिच्छदिट्ठि पज्जत्तय संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे, सम्मामिच्छदिट्ठि पज्जत्तय संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे? गोयमा! सम्मदिट्ठि पज्जत्तय संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे, णो मिच्छदिट्ठि पज्जत्तय संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे, णो सम्मामिच्छदिट्ठि पज्जत्तय संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे । जइ सम्मदिट्ठि पज्जत्तय संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे, किं संजय सम्मदिट्ठि पज्जत्तय संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे, असंजय सम्मदिट्ठि पज्जत्तय संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे, संजयासंजय सम्मदिट्ठि पज्जत्तय संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे ? गोयमा! संजय सम्मदिट्ठि पज्जत्तय संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे, णो असंजय सम्मदिट्ठि पज्जत्तय संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे, णो संजयासंजय सम्मदिट्ठि पज्जत्तय संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे । जइ संजय सम्मदिट्ठि पज्जत्तय संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे, किं पमत्त संजयसम्मदिट्ठि पज्जत्तय संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे, अपमत्त संजय सम्मदिट्ठि पज्जत्तय संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आहारय सरीरे? गोयमा! पमत्त संजय सम्मदिट्ठि पज्जत्तय संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे, णो अपमत्त संजय सम्मदिट्ठि पज्जत्तय संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे । जइ पमत्त संजय सम्मदिट्ठि पज्जत्तय संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे, किं इड्ढिपत्त पमत्त संजय सम्मदिट्ठि पज्जत्तय संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे, अणिड्ढिपत्तपमत्तसंजय सम्मदिट्ठि पज्जत्तय संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे ? गोयमा! इड्ढिपत्त पमत्त संजय सम्मदिट्ठि पज्जत्तय संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे, णो अणिड्ढिपत्त पमत्त संजय सम्मदिट्ठि पज्जत्त संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भवक्कंतिय मणुस्स आहारय सरीरे। वयणा वि भाणियव्वा, आहारयसरीरे समचउरंस संठाणसंठिए। आहारयसरीरस्स के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता? गोयमा! जहण्णेणं देसूणा रयणी, उक्कोसेणं पडिपुण्णा रयणी।

कठिन शब्दार्थ - संखेजवासाउय - संख्येय वर्षायुष्क-संख्यात वर्ष की आयुष्य वाले, **अपजत्तय** - अपर्याप्तक, **सम्मामिच्छदिट्ठी** - सममिथ्यादृष्टि यानी मिश्रदृष्टि, **इड्ढिपत्त पमत्त संजय** - ऋद्धि प्राप्त प्रमत्त संयत, **अणिड्ढिपत्त पमत्त संजय** - अनृद्धिप्राप्त प्रमत्त संयत, **समचउरंस संठाणसंठिए** - समचतुरस्र संस्थान संस्थित, **देसूणा** - देश ऊना-कुछ कम, **पडिपुण्णा** - प्रतिपूर्ण।

भावार्थ - हे भगवन्! आहारक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ? हे गौतम! एक प्रकार का कहा गया है। हे भगवन्! यदि आहारक शरीर एक प्रकार का कहा गया है तो क्या आहारक शरीर मनुष्य के होता है या अमनुष्य के होता है ? हे गौतम! मनुष्य के आहारक शरीर होता है, अमनुष्य के नहीं होता। हे भगवन्! यदि मनुष्य के आहारक शरीर होता है तो क्या गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है या सम्मूर्च्छिम मनुष्य के होता है ? हे गौतम! गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है किन्तु सम्मूर्च्छिम मनुष्य के नहीं होता । हे भगवन्! यदि गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है तो क्या कर्मभूमि के गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है या अकर्मभूमि के गर्भज मनुष्य के होता है? हे गौतम! कर्मभूमि के गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है किन्तु अकर्मभूमि के गर्भज मनुष्य के नहीं होता । हे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवन्! यदि कर्मभूमि के गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है तो क्या संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है या असंख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के होता है? हे गौतम! संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है किन्तु असंख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के नहीं होता । हे भगवन्! यदि संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है तो क्या पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के होता है या अपर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के होता है ? हे गौतम! पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है किन्तु अपर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के नहीं होता। हे भगवन्! यदि पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है तो क्या समदृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है? या मिथ्यादृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के होता है? या सममिथ्यादृष्टि यानी मिश्रदृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के होता है? हे गौतम! समदृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है किन्तु मिथ्यादृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के नहीं होता है और सममिथ्यादृष्टि यानी मिश्रदृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर नहीं होता है। हे भगवन्! यदि समदृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है तो क्या संयत समदृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है? या असंयत समदृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है? अथवा संयतासंयत समदृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है? हे गौतम! संयत समदृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है किन्तु असंयत समदृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर नहीं होता है। संयतासंयत समदृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर नहीं होता है। अहो भगवन्! यदि संयत समदृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमि गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है तो क्या प्रमत्त संयत समदृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है? अथवा अप्रमत्त संयत समदृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है? हे गौतम! प्रमत्त संयत समदृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के आहारक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शरीर होता है किन्तु अप्रमत्त संयत समदृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर नहीं होता है। अहो भगवन्! यदि प्रमत्त संयत समदृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है तो क्या ऋद्धि प्राप्त प्रमत्त संयत समदृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है? अथवा अनृद्धिप्राप्त प्रमत्त संयत समदृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है? हे गौतम! ऋद्धि प्राप्त प्रमत्त संयत समदृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है किन्तु अनृद्धिप्राप्त प्रमत्त संयत समदृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर नहीं होता है। इस तरह इसमें विकल्प करके वचन विभाग करना चाहिए। आहारक शरीर का समचतुरस्र संस्थान है। अहो भगवन्! आहारक शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है? हे गौतम! जघन्य से एक हाथ में कुछ कम और उत्कृष्ट प्रतिपूर्ण रत्नि यानी पूरी एक हाथ की होती है।

विवेचन - प्रश्न - हे भगवन्! आहारक शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर - हे गौतम! इस आहारक शरीर की लब्धि तो सातवें गुणस्थान में प्राप्त होती है और पुतला निर्गमन और प्रवेश आदि प्रक्रिया छठे गुणस्थान में होती है। इसकी प्राप्ति चौदह पूर्वधारी मुनिराज को ही होती है। जब किसी चौदह पूर्वधारी प्रमत्त संयत ऋद्धि प्राप्त मुनि को ध्यान अवस्था में किसी गहन सूक्ष्म तत्त्व के विषय में कोई शङ्का उत्पन्न हो अथवा कोई वादी आकर प्रश्न पूछे और उसके उत्तर में सन्देह शीलता हो और उस समय उस क्षेत्र में केवली भगवान् न हो तो उस संशय का निवारण करने के लिये अपने शरीर में से एक पुतला निकालते हैं और महाविदेह क्षेत्र में विराजमान तीर्थङ्कर भगवान् के पास भेजते हैं। वह पुतला आहारक लब्धि के बल से निकाला जाता है वह अति विशुद्ध और स्फटिक के समान होता है। वह शुभ पुद्गलों से बना हुआ होने के कारण सुन्दर होता है। प्रशस्त उद्देश्य से बनाया जाने के कारण निरवद्य होता है और अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण अव्याघाती अर्थात् किसी को रोकने वाला या किसी से रुकने वाला नहीं होता है। ऐसा शरीर क्षेत्रान्तर में सर्वज्ञ के निकट पहुँच कर अपने सन्देह का निवारण करता है। यह कार्य केवल अंतर्मुहूर्त्त में हो जाता है।

आहारक पुतले के द्वारा अपना कार्य कर लेने के पश्चात् मुनिराज उसमें से आत्म प्रदेशों को संहत करके अपने शरीर में समाविष्ट कर लेते हैं। इसी को थोकड़े वाले 'पुतले का शरीर में प्रवेश होना' कहते हैं। लेकिन वास्तव में आहारक वर्गणा के पुद्गल बाहर ही विशीर्ण हो जाते हैं। आहारक वर्गणा के पुद्गलों का शरीर में प्रवेश नहीं समझना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! आहारक शरीर का पुतला बनाने का क्या प्रयोजन है?

उत्तर - जीवाभिगम सूत्र की टीका में तथा पन्नवणा सूत्र के बीसवें पद की टीका में इस प्रकार का प्रयोजन बताया है।

पाणिदया-रिद्धिदरिसण, छम्मत्थोवग्गहण हेऊ वा ।
संसयवुच्छेयत्थं, गमणं जिणपायमूलम्मि ॥

अर्थ - प्राणियों की दया के लिये तथा तीर्थङ्कर भगवान् की ऋद्धि देखने के लिये एवं संशय निवारण के लिये तथा नया ज्ञान सीखने के लिये इत्यादि प्रयोजन उपस्थित होने पर चौदह पूर्वधारी मुनिराज आहारक लब्धि के बल से अपने शरीर में से पुतला निकालते हैं। यह लब्धि सभी चौदह पूर्वधारियों के नहीं होती है किन्हीं-किन्हीं को होती है। जिसे आहारक लब्धि होती है उसके चौदह पूर्वों का ज्ञान नियमा (अवश्य) होता है। आहारक लब्धिधारी मुनिराज के शरीर का जैसा आकार प्रकार संस्थान होता है वैसा ही आकार प्रकार संस्थान उस पुतले का भी होता है। किन्तु वह ऊंचाई में एक हाथ प्रमाण या एक हाथ से कुछ कम होता है।

प्रश्न - प्राणीदया के प्रयोजन का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर - जब लोक में हिंसा झूठ आदि पापाचार एवं भ्रष्टाचार आदि अधिक बढ़ जाता है, तब चौदह पूर्वधारी मुनिराज अपने शरीर में से एक हाथ प्रमाण पुतला निकाल कर ऊपर आकाश में खड़ा कर देते हैं फिर वह पुतला यह घोषणा करता है कि जीवों की हिंसा बन्द करो। झूठ, चोरी, व्यभिचार, बलात्कार, भ्रष्टाचार बन्द करो । ऐसा पापाचार करने वाले का जीवन दुःखी बन जाता है अतः सुख चाहने वाले प्राणियों को उपरोक्त पापाचार तुरन्त बन्द कर देना चाहिए । ऐसी घोषणा को जनता दैवी घोषणा समझ कर पापाचार को बन्द कर देती हैं। "प्राणीदया" का यह अर्थ पूर्वाचार्यों की धारणा के अनुसार है।

प्रश्न - उपरोक्त अर्थ पर से सहज ही यह प्रश्न उत्पन्न हो जाता है कि - अभी पापाचार, भ्रष्टाचार खूब बढ़ा हुआ है यदि यह कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि - अभी पापाचार और भ्रष्टाचार अपनी सीमा को भी उल्लंघन कर रहा है फिर ऐसा पुतला क्यों नहीं निकाला जाता है?

उत्तर - यह पहले बताया जा चुका है कि - यह आहारक लब्धि चौदह पूर्वधारी मुनिराज को ही होती है। अभी चौदह पूर्वधारी कोई मुनिराज नहीं है। जैसा कि कहा है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शासनेशो महावीरः, सुधर्मा पञ्चमो गणी ।
केवली चरमो जम्बू स्वाम्यथ प्रभवः प्रभुः ।
शय्यम्भवो, यशोभद्रः सम्भूति विजयस्तथा।
भद्रबाहुः स्थूलिभद्रः श्रुत केवलिनो हि षट् ।।

अर्थात् - भगवान् महावीर स्वामी, सुधर्मा स्वामी और जम्बू स्वामी, ये तीन पाट तो केवली हुए हैं। इसके बाद १. प्रभव स्वामी २. शय्यम्भव स्वामी ३. यशोभद्रस्वामी ४. सम्भूतिविजयस्वामी ५. भद्रबाहुस्वामी ६. स्थूलिभद्रस्वामी । ये छह श्रुतकेवली अर्थात् चौदह पूर्वधारी हुए हैं। इसके बाद पूर्वों का ज्ञान कम होता चला गया है। यहाँ तक कि भगवान् महावीर के निर्वाण के ९८० वर्ष बाद देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण को एक पूर्व का ज्ञान था। १००० वर्ष बाद पूर्वों का ज्ञान सर्वथा लुप्त हो गया। अतः अब किसी में आहारक शरीर का पुतला निकालने की क्षमता नहीं है।

प्रश्न - क्या आहारक शरीर लोक में सदा मिलता है?

उत्तर - **"आहारगाइ लोए, छम्मासा जा न होंति वि कयाइ ।**
उक्कोसेणं नियमा, एक्कं समयं जहण्णेणं ।।"

अर्थ - आहारक शरीर का सम्पूर्ण लोक में यदि विरह पड़े तो जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह महीने का विरह पड़ सकता है।

प्रश्न - एक जीव को आहारक लब्धि कितनी बार प्राप्त हो सकती है ?

उत्तर - एक जीव को एक भव में एक बार और अनेक भवों में चार बार आहारक लब्धि प्राप्त हो सकती है। फिर उस जीव का उसी भव में मोक्ष हो जाता है। जिसको आहारक लब्धि प्राप्त हो वह आहारक शरीर का पुतला निकालता ही है ऐसी नियमा नहीं है। किन्तु उपरोक्त चार प्रयोजन उपस्थित होने पर कोई-कोई लब्धिधारी मुनि आहारक लब्धि का प्रयोग कर पुतला निकालते हैं। लब्धि का प्रयोग करना प्रायश्चित्त का कारण है। इसलिये सभी लब्धिधारी लब्धि का प्रयोग नहीं करते हैं। मन्त्र, जन्त्र, तन्त्र आदि का प्रयोग करना मुनि के लिये प्रायश्चित्त का कारण बनता है।

दिगम्बर सम्प्रदाय की मान्यता है कि आहारक लब्धिधारी मुनि के मस्तक से यह पुतला निकलता है और प्रयोजन सिद्ध हो जाने पर पुनः मस्तिष्क से ही शरीर में प्रवेश कर जाता है। जब कि श्वेताम्बर सम्प्रदाय की मान्यता है कि मुनिराज के सर्वाङ्ग से संपूर्ण पुतला निकलता है और सर्वाङ्ग में ही प्रवेश कर जाता है। पन्नवणासूत्र के छत्तीसवें पद में आहारक समुद्घात

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के वर्णन में पूरे शरीर के विष्कंभ बाहल्य जितना संख्यात योजन का दंड निकलना बताया है। उसी दंड के द्वारा आहारक वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके आहारक शरीर का निमार्ण करता है एवं कार्य समाप्ति पर पुनः आत्म प्रदेशों को शरीर में प्रविष्ट कर देता है। अतः शरीर से निकलना एवं प्रवेश करना समझा जाता है। श्वेताम्बर आगमों से तो यही स्पष्ट होता है।

तैजस् और कार्मण शरीर

तेया सरीरे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते? गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते तंजहा - एगिंदिय तेयसरीरे बि ति चउ पंचिंदिय तेयासरीरे एवं जाव गेवेज्जस्स णं भंते! देवस्स णं मारणंतिय समुग्घाएणं समोहयस्स समाणस्स के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता? गोयमा! सरीरप्पमाणमेत्ता विक्खंभबाहल्लेणं आयामेणं जहण्णेणं अहे जाव विज्जाहरसेढीओ उक्कोसेणं जाव अहोलोइयग्गामाओ, उड्ढं जाव सयाइं विमाणाइं तिरियं जाव मणुस्सखेत्तं, एवं जाव अणुत्तरोववाइया। एवं कम्मयसरीरं भाणियव्वं।

कठिन शब्दार्थ - तेया सरीरे - तैजस शरीर, **सरीरप्पमाणमेत्ता** - स्वशरीर प्रमाण, **विज्जाहर सेढीओ** - विद्याधरों की श्रेणी तक, **अहोलोइयग्गामाओ** - अधोलौकिक ग्राम तक।

भावार्थ - हे भगवन्! तैजस् शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ? हे गौतम! पांच प्रकार का कहा गया है जैसे कि एकेन्द्रिय तैजस् शरीर, बेइन्द्रिय तैजस् शरीर, तेइन्द्रिय तैजस् शरीर, चउरिन्द्रिय तैजस् शरीर, पञ्चेन्द्रिय तैजस् शरीर । अहो भगवन्! मारणांतिक समुद्घात करने वाले तैजस् शरीर की यावत् ग्रैवेयक तक कितनी अवगाहना कही गई है ? हे गौतम! चौड़ाई में तैजस् शरीर की अवगाहना स्वशरीर प्रमाण है, लम्बाई में जघन्य अङ्गुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट ऊपर और नीचे लोकान्त तक । यावत् ग्रैवेयक तक सारा अधिकार कह देना चाहिए। ग्रैवेयक और अनुत्तरविमान के देवता जघन्य नीचे विद्याधरों की श्रेणी तक और उत्कृष्ट अधोलौकिक ग्राम तक, ऊपर अपने अपने विमान तक, तिर्च्छा मनुष्य क्षेत्र तक मरणसमय में तैजस् शरीर का विस्तार होता है। कार्मण शरीर की अवगाहना और संस्थान तैजस् शरीर के समान ही होता है।

विवेचन - तैजस् पुद्गलों से निर्मित शरीर जो कि तेजोलब्धि (तैजस् समुद्घात) का हेतु एवं शरीर की आभा, क्रांति का कारण एवं उष्मा (जठराग्नि) का उदासीन कारण होता है, उसे तैजस् शरीर कहते हैं। (आहार को पचाने आदि का कार्य औदारिक शरीर एवं पर्याप्तियों का समझा जाता है, तैजस् शरीर का नहीं)।

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

कार्मण शरीर – कर्मों से बना हुआ शरीर कार्मण कहलाता है। अथवा जीव के प्रदेशों के साथ लगे हुए आठ प्रकार के कर्म पुद्गलों को कार्मण शरीर कहते हैं। यह शरीर ही सब शरीरों का बीज है।

प्रश्न – एक जीव में एक साथ कम से कम कितने और ज्यादा से कितने शरीर पाये जा सकते हैं?

उत्तर – तैजस और कार्मण शरीर सब संसारी जीवों के साथ अनादि काल से लगे हुए हैं। एक भव पूरा कर जीव दूसरे भव में जाता है तब भी विग्रह गति में भी ये दोनों शरीर साथ रहते हैं। किन्हीं आचार्यों की मान्यता है कि विग्रह गति में सिर्फ कार्मण शरीर ही रहता है। परन्तु यह मान्यता आगम से मेल नहीं खाती है। अतः कम से कम दो शरीर एक जीव में एक साथ पाए जाते हैं। तीन शरीर हो तो तैजस, कार्मण और औदारिक (मनुष्य और तिर्यञ्च की अपेक्षा) अथवा तैजस, कार्मण और वैक्रिय (देव और नैरयिक की अपेक्षा) यदि चार शरीर हों तो तैजस, कार्मण, औदारिक और वैक्रिय अथवा तैजस, कार्मण, औदारिक और आहारक । इस प्रकार प्रयोग की अपेक्षा ज्यादा से ज्यादा एक जीव में एक साथ चार शरीर पाए जा सकते हैं। पांच शरीर एक साथ प्रयोग की अपेक्षा किसी के भी नहीं होते । क्योंकि वैक्रिय लब्धि और आहारक लब्धि का प्रयोग एक साथ सम्भव नहीं है। हाँ, सत्ता की अपेक्षा पांचों शरीरों की सत्ता एक जीव में एक साथ पाई जा सकती है। पांचों शरीर के इस क्रम का कारण यह है कि आगे आगे के शरीर पिछले की अपेक्षा प्रदेश बहुल (अधिक प्रदेश वाले) एवं परिमाण में सूक्ष्मतर हैं। तैजस और कार्मण शरीर सभी संसारी जीवों के होते हैं। इन दोनों शरीरों के साथ ही जीव मरण देश को छोड़ कर उत्पत्ति स्थान को जाता है।

अवधिज्ञान का वर्णन

कइविहे णं भंते! ओही पण्णत्ता ? गोयमा! दुविहा पण्णत्ता तंजहा – भवपच्चइए य खओवसमिए य। एवं सव्वं ओहिपदं भाणियव्वं ।

कठिन शब्दार्थ – **ओही** – अवधिज्ञान, **भवपच्चइए** – भवप्रत्ययिक, **खओवसमिए** – क्षायोपशमिक।

भावार्थ – हे भगवन्! अवधिज्ञान के कितने भेद कहे गये हैं? हे गौतम! दो भेद कहे गये हैं जैसे भवप्रत्ययिक और क्षायोपशमिक। इस प्रकार श्री पन्नवणा सूत्र का तेतीसवां अवधिपद सारा कह देना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - अवधिज्ञान के मुख्य दो भेद हैं - भवप्रत्यय और क्षायोपशमिक।

भवप्रत्यय अवधि नैरयिक और देवों को होता है। क्षायोपशमिक के छह भेद हैं - आनुगामिक, अनानुगामिक, वर्धमान, हीयमान, अवस्थित और अनवस्थित। ये छह भेद मनुष्य और तिर्यञ्चों में पाए जाते हैं।

वेदना का वर्णन

सीया य दव्व सारीरसाया, तह वेयणा भवे दुक्खा ।
अब्भुवगमुव्वकमिया, णियाए चेव अणियाए ।। १ ॥

णेरइया णं भंते! किं सीयं वेयणं वेयंति उसिणं वेयणं वेयंति सीओसिणं वेयणं वेयंति? गोयमा! णेरइया सीयं वेयणं वेयंति उसिणं वेयणं वेयंति सीओसिणं वेयणं वेयंति एवं चेव वेयणापदं भाणियव्वं ।

कठिन शब्दार्थ - **वेयणा** - वेदना, **अब्भुवगमुव्वक्कमिया** - आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी।

भावार्थ - अपेक्षा विशेष से वेदना के कई भेद हैं जैसे कि - वेदना के तीन भेद - शीत, उष्ण, शीतोष्ण । वेदना के चार भेद - द्रव्य वेदना, क्षेत्र वेदना, काल वेदना, भाव वेदना। वेदना के तीन भेद- शारीरिक, मानसिक, शारीरिक मानसिक । वेदना के तीन भेद - साता, असाता, साताअसाता । वेदना के तीन भेद - दुःखा, सुखा, सुखदुःखा । वेदना के दो भेद - आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी । वेदना के दो भेद - निदा और अनिदा ।। १ ॥

हे भगवन्! नैरयिक जीव क्या शीत वेदना वेदते हैं? अथवा उष्ण वेदना वेदते हैं अथवा शीतोष्ण वेदना वेदते हैं? हे गौतम! नैरयिक जीव शीत वेदना भी वेदते हैं, उष्ण वेदना भी वेदते हैं और शीतोष्ण वेदना भी वेदते हैं। इस प्रकार श्री पन्नवणा सूत्र का पैंतीसवां वेदना पद सारा कह देना चाहिए।

विवेचन - दुःख और सुखादि को भोगना वेदना कहलाती है। एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव केवल शारीरिक वेदना को ही भोगते हैं। चारों गति के सभी संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव शारीरिक, मानसिक और शारीरिक मानसिक इन तीनों प्रकार की वेदनाओं को भोगते हैं। जो वेदना स्वयं स्वीकार की जाती है उसे आभ्युपगमिकी वेदना कहते हैं। जैसे केश लोचन करना, आतापना लेना, उपवास करना आदि। जो वेदना वेदनीय कर्म के स्वयं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उदय आने पर या उदीरणा करण के द्वारा प्राप्त होने पर भोगी जाती है उसे औपक्रमिकी वेदना कहते हैं। इन दोनों ही वेदनाओं को पञ्चेन्द्रिय सन्नी तिर्यञ्च और मनुष्य भोगते हैं। किन्तु देव, नैरयिक और एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तक के जीव केवल औपक्रमिकी वेदना को ही भोगते हैं।

बुद्धिपूर्वक स्वेच्छा से भोगी जाने वाली वेदना को निदा वेदना कहते हैं और अबुद्धिपूर्वक या अनिच्छा से भोगी जाने वाली वेदना को अनिदा वेदना कहते हैं। संज्ञी जीव इन दोनों ही प्रकार की वेदनाओं को भोगते हैं। किन्तु असंज्ञी जीव केवल अनिदा वेदना को ही भोगते हैं। इस विषय में प्रज्ञापना सूत्र के पैंतीसवें वेदना पद का अध्ययन करना चाहिए।

लेश्या का वर्णन

कइ णं भंते! लेस्साओ पण्णत्ताओ? गोयमा! छ लेस्साओ पण्णत्ताओ तंजहा- किण्हा, णीला, काऊ, तेऊ, पम्हा, सुक्का। एवं लेस्सापदं भाणियव्वं।

भावार्थ - हे भगवन्! कितनी लेश्याएं कही गई हैं? हे गौतम! छह लेश्याएं कही गई हैं जैसे कि - कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ल। इस प्रकार श्री पन्नवणा सूत्र का सतरहवाँ लेश्या पद सारा कह देना चाहिए।

विवेचन - विशेष जिज्ञासुओं को पन्नवणा सूत्र के सतरहवें पद का अवलोकन करना चाहिए।

आहार आदि विषयक वर्णन

अणंतरा य आहारे, आहाराभोगणा इय।
पोग्गला णेव जाणंति, अज्झवसाणे य सम्मत्ते ।। १॥

णेरइया णं भंते! अणंतराहारा तओ णिव्वत्तणया तओ परियाइयणया तओ परिणामणया तओ परियारणया तओ पच्छा विकुव्वणया ? हंता गोयमा! एवं आहारपदं भाणियव्वं ।।

कठिन शब्दार्थ - अणंतरा - अन्तर रहित, **अज्झवसाणे** - अध्यवसाय, **सम्मत्ते** - सम्यक्त्व, **अणंतराहारा** - अनन्तराहारिक, **णिव्वत्तणया** - निर्वर्तना, **परियाइयणया** - पर्यादानता-पुद्गलों को ग्रहण करना, **परियारणया** - परिचारणा, **विकुव्वणया** - विकुर्वणा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - १. अन्तर रहित आहार, २. आभोग आहार, ३. अनाभोग आहार, ४. अध्यवसाय और ५. सम्यक्त्व, ये पांच द्वार हैं। नैरयिक जिन पुद्गलों का आहार लेते हैं, उन पुद्गलों को वे नहीं जानते हैं।। १॥

हे भगवन्! क्या नैरयिक जीव अनन्तराहारक हैं अर्थात् उत्पत्ति क्षेत्र में प्राप्त होते ही पहले आहार लेते हैं? इसके बाद निर्वर्तना यानी शरीर की रचना करते हैं? इसके बाद अङ्ग प्रत्यङ्ग से पुद्गलों को खींचते हैं? इसके बाद परिणमाते हैं? इसके बाद परिचारणा यानी शब्दादि विषयों का उपभोग करते हैं? इसके बाद विकुर्वणा यानी नाना रूप बनाते हैं? हाँ गौतम! नैरयिक जीव इसी तरह करते हैं। इस तरह श्री पन्नवणा सूत्र का चौंतीसवां पद कह देना चाहिए।

विवेचन - यहाँ पर आहार, अनन्तराहारक इत्यादि बोलों की पृच्छा की है। इन सब बोलों को जानने की सूचना सूत्रकार ने गाथा द्वारा की है। अतः विशेष जिज्ञासुओं को पन्नवणा सूत्र का चौतीसवाँ पद अवलोकन करना चाहिए।

आयुष्य बन्ध

कइविहे णं भंते! आउयबंधे पण्णत्ते? गोयमा! छव्विहे आउयबंधे पण्णत्ते तंजहा - जाइणाम णिहत्ताउए गइणाम णिहत्ताउए ठिइणाम णिहत्ताउए पएसणाम णिहत्ताउए अणुभागणाम णिहत्ताउए ओगाहणाणाम णिहत्ताउए । णेरइयाणं भंते! कइविहे आउयबंधे पण्णत्ते? गोयमा! छव्विहे पण्णत्ते तंजहा - जाइणाम णिहत्ताउए गइणाम णिहत्ताउए ठिइणाम णिहत्ताउए पएसणाम णिहत्ताउए अणुभागणाम णिहत्ताउए ओगाहणाणाम णिहत्ताउए, एवं जाव वेमाणियाणं ।।

कठिन शब्दार्थ - आउयबंधे - आयुष्य बन्ध, **णिहत्तायु** - निधत्तायु।

भावार्थ - अहो भगवन्! आयुष्य बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ? हे गौतम! आयुष्य बन्ध छह प्रकार का कहा गया है जैसे कि - जाति नाम निधत्तायु - जाति नामकर्म के साथ बंधा हुआ आयुष्य, गतिनामनिधत्तायु - गति नामकर्म के साथ बंधा हुआ आयुष्य, स्थितिनाम निधत्तायु - स्थिति नाम कर्म के साथ बंधा हुआ आयुष्य, प्रदेश नाम निधत्तायु - प्रदेश नाम कर्म के साथ बंधा हुआ आयुष्य, अनुभाग नाम निधत्तायु - अनुभाग नाम कर्म के साथ बंधा हुआ आयुष्य, अवगाहना नाम निधत्तायु - अवगाहना नाम कर्म के साथ बंधा हुआ आयुष्य।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अहो भगवन्! नैरयिक जीवों के आयुबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है? हे गौतम! छह प्रकार का कहा गया है जैसे कि - जातिनाम निधत्तायु, गतिनाम निधत्तायु, स्थितिनाम निधत्तायु, प्रदेशनाम निधत्तायु, अनुभाग नाम निधत्तायु, अवगाहना नाम निधत्तायु। इसी प्रकार वैमानिकों तक २४ ही दण्डक के जीवों के छह प्रकार का आयुबन्ध होता है।

विवेचन - प्रत्येक प्राणी जिस समय आगामी भव की आयु का बन्ध करता है, उसी समय उस गति के योग्य जातिनाम कर्म का बन्ध करता है, गतिनाम कर्म का भी बन्ध करता है। इसी प्रकार उसके योग्य स्थिति, प्रदेश, अनुभाग और अवगाहना (शरीर नामकर्म) का भी बन्ध करता है। जैसे - कोई जीव इस समय देवायु का बन्ध कर रहा है तो वह इसी समय उसके साथ पञ्चेन्द्रिय जाति नामकर्म का भी बन्ध कर रहा है। देवगति नाम कर्म का भी बन्ध कर रहा है, आयु की नियत कालवाली स्थिति का भी बन्ध कर रहा है। उसके नियत परिमाण वाले कर्म प्रदेशों का भी बन्ध कर रहा है, नियत रस-विपाक या तीव्र मन्द फल देने वाले अनुभाग का भी बन्ध कर रहा है और देवगति में होने वाले वैक्रियिक अवगाहना अर्थात् शरीर का भी बन्ध कर रहा है। इस सब अपेक्षाओं से आयुकर्म का बन्ध छह प्रकार का कहा गया है।

उपपात और उद्वर्तन का वर्णन

णिरयगई णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ते । एवं तिरियगई, मणुस्सगई, देवगई। सिद्धिगई णं भंते! केवइयं कालं विरहिया सिज्झणयाए पण्णत्ता ? गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं छम्मासे । एवं सिद्धिवज्जा उव्वट्टणा ।।

कठिन शब्दार्थ - विरहिया - विरह, **उववाएणं** - उपपात-उत्पन्न होने संबंधी ।

भावार्थ - हे भगवन्! नरक गति में उत्पन्न होने सम्बन्धी विरह कितने काल का कहा गया है? हे गौतम! जघन्य एक समय, उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त का विरह काल कहा गया है। इसी तरह तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति और देवगति का विरह काल समझना चाहिए ।

अहो भगवन्! सिद्ध होने की अपेक्षा से सिद्धिगति का विरह कितने काल का कहा गया है? हे गौतम! जघन्य से एक समय का और उत्कृष्ट छह महीने का कहा गया है। जिस तरह उपपात विरह कहा है, उसी तरह च्यवन विरह भी जान लेना चाहिए अर्थात् चारों गतियों में च्यवन विरह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त का होता है किन्तु सिद्धिगति में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

च्यवन नहीं होता क्योंकि मोक्ष में गये हुए जीव के कर्मों का सर्वथा क्षय हो जाता है इसलिए वह संसार में फिर जन्म नहीं लेता है। वह मोक्ष में शाश्वत सिद्ध हो जाता है।

अहो भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में उत्पन्न होने की अपेक्षा से कितने काल का विरह कहा गया है? हे गौतम! जघन्य एक समय, उत्कृष्ट २४ मुहूर्त्त का कहा गया है। इसी प्रकार श्री पन्नवणा सूत्र का उपपात दण्डक कह देना चाहिए और इसी प्रकार उद्वर्त्तना दण्डक भी कह देना चाहिए।

विवेचन - जितने समय तक विवक्षित गति में किसी भी जीव का जन्म न हो उतने समय को विरह काल या अन्तर काल कहते हैं। जैसे कि यदि नरक में कोई जीव उत्पन्न न हो तो कम से कम एक समय तक उत्पन्न नहीं होगा। यह जघन्य विरह काल है। अधिक से अधिक बारह मुहूर्त्त तक नरक में (सातों नरकों में) कोई जीव उत्पन्न नहीं होगा यह उत्कृष्ट विरह काल है। अर्थात् बारह मुहूर्त्त के बाद कोई न कोई जीव नरक में अवश्य उत्पन्न होता ही है यह विरह काल सामान्य कथन है। विशेष कथन की अपेक्षा आगम में सातों ही नरकों का विरह काल भिन्न भिन्न बताया गया है। जैसा कि टीका में उद्धृत इस गाथा से स्पष्ट है-

चउवीसई मुहुत्ता, सत्त अहोरत्त तह य पण्णरसा ।
मासो य दो य चउरो, छम्मासा विरहकालोत्ति ॥ १ ॥

अर्थात् उत्कृष्ट विरहकाल पहिली पृथ्वी में चौबीस मुहूर्त्त, दूसरी में सात अहोरात्र, तीसरी में पन्द्रह अहोरात्र, चौथी में एक मास, पांचवीं में दो मास, छठी में चार मास और सातवीं पृथ्वी में छह मास का होता है।

नोट - चौबीस ही दण्डकों का उपपात विरह और उद्वर्तना विरह पन्नवणा सूत्र के छठे पद में कहा गया है। विशेष जिज्ञासुओं को वहाँ देखना चाहिए।

आकर्ष का वर्णन

इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए णेरइया केवइयं कालं विरहिया उववाएणं ? एवं उववाय दंडओ भाणियव्वो, उव्वट्टणादंडओ य। णेरइया णं भंते! जाइणाम णिहत्ताउयं कइ आगरिसेहिं पकरंति ? गोयमा! सिय एक्क, सिय बि ति चउ पंच छ सत्त अट्ठेहिं, णो चेव णं णवहिं, एवं सेसाण वि आउयाणि जाव वेमाणियत्ति।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - अहो भगवन्! नैरयिक जीव कितने आकर्षकों से जाति नाम निधत्तायु का बन्ध करते हैं?

हे गौतम! कदाचित् एक आकर्षक से कदाचित् दो, तीन, चार, पांच, छह, सात, आठ आकर्षकों से आयु बन्ध करते हैं किन्तु आठ से अधिक नौ आदि आकर्षक कभी नहीं करते हैं। इसी प्रकार शेष सभी जीव यावत् वैमानिक तक २४ ही दण्डक के जीव आयुबन्ध करते हैं।

विवेचन - सामान्यतया आकर्ष का अर्थ है, कर्म पुद्गलों को अपनी तरफ खींचना किन्तु यहाँ पर जीव के आगामी भव की आयु के बन्धने के अवसरों को आकर्ष काल कहा है। जैसे गाय जब वह निर्भय होकर पानी पीती है, तो एक ही वक्त में (एक ही घूंट में एक ही आस्वादन अथवा एक ही सबड़का) पूरा धाप कर पानी पी लेती है किन्तु कोई कोई गाय एक घूंट पीने के बाद भय से इधर उधर देखती है। फिर दूसरा घूंट पीती है। इसी तरह जीव जब परभव के आयुष्य का बन्ध करता है तब यदि तीव्र अध्यवसाय हो तो एक ही बार में आयु कर्म के दलिकों को ग्रहण कर लेता है। यदि अध्यवसाय मन्द हों तो दो आकर्षों से, मन्दतर हो तो तीन से और मन्दतम अध्यवसाय हो तो चार, पांच, छह, सात या आठ आकर्षों से आयु का बन्ध करता है। इस से अधिक नौ, दस आकर्ष नहीं होते हैं।

संहनन पद

कइविहे णं भंते! संघयणे पण्णत्ते? गोयमा! छव्विहे संघयणे पण्णत्ते तंजहा - वइरोसभ णाराय संघयणे, रिसभ णाराय संघयणे, णाराय संघयणे, अद्धणाराय संघयणे, कीलिया संघयणे, छेवट्ठ संघयणे। णेरइया णं भंते! किं संघयणी पण्णत्ता? गोयमा! छण्हं संघयणाणं असंघयणी, णेव अट्ठि णेव छिरा णेव ण्हारू, जे पोग्गला अणिट्ठा, अकंता, अप्पिया, अणाएज्जा, असुभा, अमणुण्णा, अमणामा, अमणाभिरामा ते तेसिं असंघयणत्ताए परिणमंति। असुरकुमारा णं भंते! किं संघयणा पण्णत्ता ? गोयमा! छण्हं संघयणाणं असंघयणी, णेव अट्ठि, णेव छिरा, णेव ण्हारू, जे पोग्गला इट्ठा, कंता, पिया (आएज्जा), मणुण्णा, सुभा, मणामा, मणाभिरामा ते तेसिं असंघयणत्ताए परिणमंति। एवं जाव थणियकुमाराणं। पुढवीकाइया णं भंते! किं संघयणी पण्णत्ता? गोयमा! छेवट्ठ संघयणी पण्णत्ता। एवं जाव सम्मुच्छिम पंचिंदिय तिरिक्ख जोणियत्ति। गब्भवक्कंतिया छव्विह संघयणी। सम्मुच्छिम मणुस्सा छेवट्ट

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संघयणी, गब्भवक्कंतिय मणुस्सा छव्विहे संघयणी पण्णत्ता। जहा असुरकुमारा तहा वाणमंतर, जोइसिय, वेमाणिया य।

कठिन शब्दार्थ - संघयणे - संहनन, **वइरोसभ णाराय** - वज्र ऋषभ नाराच, **छेवट्ट** - सेवार्त्त, **असंघयणी** - असंहननी-संहनन रहित, **अट्ठि** - हड्डियाँ, **छिरा** - नसें, **ण्हारू** - स्नायु।

भावार्थ - हे भगवन्! संहनन कितने कहे गये हैं? हे गौतम! संहनन छह प्रकार के कहे गये हैं, जैसे कि - वज्रऋषभनाराच संहनन, ऋषभनाराच संहनन, नाराच संहनन, अर्द्धनाराच संहनन, कीलिका संहनन, सेवार्त्त संहनन। हे भगवन्! नैरयिक जीवों के कौनसा संहनन होता है? हे गौतम! छह संहननों में से कोई भी संहनन नहीं होता है क्योंकि नैरयिक जीवों के न हड्डियाँ होती हैं, न नसें होती है और न स्नायु होती है। जो पुद्गल अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अनादेय, अशुभ, अमनोज्ञ, अमनोरम मन को अप्रिय होते हैं वे पुद्गल उन नैरयिक जीवों के हड्डी आदि से रहित शरीर रूप से परिणमते हैं।

हे भगवन्! असुरकुमार देवों के कौन सा संहनन होता है ? हे गौतम! उपरोक्त छह संहननों में से कोई भी संहनन नहीं होता है क्योंकि असुरकुमार देवों के न हड्डियाँ होती हैं, न नसें होती हैं और न स्नायु होती है। जो पुद्गल इष्ट, कान्त, प्रिय, आदेय, शुभ, मनोज्ञ, मनोरम मन को प्रिय होते हैं वे पुद्गल उन असुरकुमार देवों के हड्डी आदि से रहित शरीर रूप से परिणमते हैं। इसी प्रकार स्तनित कुमारों तक कह देना चाहिए।

हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीवों के कौन सा संहनन होता है? हे गौतम! सेवार्त्त संहनन होता है। इस तरह सम्मूर्च्छिम पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च तक कह देना चाहिए। गर्भज तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय के छहों प्रकार के संहनन होते हैं। सम्मूर्च्छिम मनुष्य के सेवार्त्त संहनन होता है। गर्भज मनुष्यों के छहों प्रकार के संहनन होते हैं। जिस प्रकार असुरकुमार देवों का कहा गया है, उसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों का भी कह देना चाहिए।

विवेचन - शरीर के भीतर हड्डियाँ आदि के बन्धन विशेष को संहनन कहते हैं। उसके छह भेद प्रस्तुत सूत्र में बताये गये हैं।

१. वज्र ऋषभ नाराच संहनन - वज्र का अर्थ कीलिका है, ऋषभ का अर्थ पट्ट है और मर्कट स्थानीय दोनों पार्श्वों की हड्डी को नाराच कहते हैं। जिस शरीर की दोनों पार्श्ववर्ती हड्डियाँ पट्ट से बन्धी हों और बीच में कीली लगी हुई हो, उसे वज्रऋषभनाराच संहनन कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. ऋषभनाराच संहनन - जिस संहनन में दोनों ओर से मर्कट बन्ध द्वारा जुड़ी हुई दो हड्डियों पर तीसरी पट्ट की आकृति वाली हड्डी का चारों ओर से वेष्टन हो पर तीनों हड्डियों को भेदने वाली वज्र नामक हड्डी की कील न हो, उसे ऋषभ नाराच संहनन कहते हैं।

३. नाराच संहनन - जिस संहनन में दोनों ओर से मर्कट बन्ध द्वारा जुड़ी हुई हड्डियाँ हों पर इनके चारों तरफ वेष्टन पट्ट और वज्र नामक कील न हो, उसे नाराच संहनन कहे हैं।

४. अर्धनाराच संहनन - जिस संहनन में एक ओर तो मर्कट बन्ध हो और दूसरी ओर न हो, उसे अर्धनाराच संहनन कहते हैं।

५. कीलिका संहनन - जिस संहनन में हड्डियाँ केवल कील से जुड़ी हुई हों, उसे कीलिका संहनन कहते हैं।

६. सेवार्त्तक संहनन - जिस संहनन में हड्डियाँ पर्यन्त भाग में एक दूसरे को स्पर्श करती हुई रहती हैं तथा सदा चिकने पदार्थों के प्रयोग एवं तैलादि की मालिश की अपेक्षा रखती हैं उसे सेवार्त्तक संहनन कहते हैं।

देवों के और नैरयिक जीवों के शरीरों में हड्डियाँ नहीं होती है अतः उनके संहनन का अभाव बताया गया है। मनुष्य और तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय जीव छहों संहनन वाले होते हैं।

संस्थान पद

कइविहे णं भंते! संठाणे पण्णत्ते? गोयमा! छव्विहे संठाणे पण्णत्ते तंजहा - समचउरंसे, णिग्गोहपरिमंडले, साइए, वामणे, खुज्जे, हुण्डे । णेरइया णं भंते! किं संठाणी पण्णत्ता? गोयमा! हुंड संठाणी पण्णत्ता। असुरकुमारा णं भंते! किं संठाणी पण्णत्ता? गोयमा! समचउरंस संठाण संठिया पण्णत्ता। एवं जाव थणिय कुमारा। पुढवी मसूर संठाणा पण्णत्ता । आऊ थिबुय संठाणा पण्णत्ता। तेऊ सूईकलाव संठाणा पण्णत्ता। वाऊ पडागा संठाणा पण्णत्ता। वणस्सई णाणासंठाण संठिया पण्णत्ता। बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिय सम्मुच्छिम पंचेंदियतिरिक्खा हुंड संठाणा पण्णत्ता। गब्भवक्कंतिया छव्विह संठाणा पण्णत्ता। सम्मुच्छिम मणुस्सा हुंडसंठाण संठिया पण्णत्ता। गब्भवक्कंतिया णं मणुस्सा णं छव्विहा संठाणा पण्णत्ता। जहा असुरकुमारा तहा वाणमंतर, जोइसिय, वेमाणिया वि।

कठिन शब्दार्थ - **संठाणे** - संस्थान, **समचउरंसे** - समचतुरस्र, **णिग्गोह परिमंडले**-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न्यग्रोध परिमंडल, **साइए** - सादि, **वामणे** - वामन, **खुज्जे** - कुब्ज, **हुंडे** - हुण्डक, **पुढवी मसूर संठाणा** - पृथ्वीकाय का संस्थान मसूर की दाल जैसा, **आऊ थिबूय संठाणा** - अप्काय का संस्थान स्तिबुक यानी पानी के परपोटे के समान, **तेऊ सूईकलाव संठाणा** - तेऊकाय का संस्थान सूइयों के समूह के समान, **वाऊ पडागा संठाणा** - वायुकाय का संस्थान पताका के समान।

भावार्थ - अहो भगवन्! संस्थान कितने प्रकार के कहे गये हैं? हे गौतम! संस्थान छह प्रकार के कहे गये हैं जैसे कि समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमंडल, सादि, वामन, कुब्ज, हुण्डक । अहो भगवन्! नैरयिकों के कौनसा संस्थान होता है? हे गौतम! हुण्डक संस्थान होता है। अहो भगवन्! असुरकुमारों के कौनसा संस्थान होता है? हे गौतम! समचतुरस्र संस्थान होता है। इसी तरह स्तनितकुमारों तक जानना चाहिए। पृथ्वीकाय का संस्थान मसूर की दाल जैसा है। अप्काय का संस्थान स्तिबुक यानी पानी के परपोटे समान है। तेऊकाय का संस्थान सूइयों के समूह के समान है। वायुकाय का संस्थान पताका के समान है। वनस्पति का संस्थान अनेक प्रकार का है। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय के हुण्डक संस्थान होता है। गर्भज तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय के छहों संस्थान होते हैं। सम्मूर्च्छिम मनुष्य के हुण्डक संस्थान होता है। गर्भज मनुष्य के छहों संस्थान होते हैं। जिस प्रकार असुरकुमार देवों के लिये कहा गया है कि उनके समचतुरस्र संस्थान होता है उसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों के भी समचतुरस्र संस्थान होता है।

विवेचन - जीव के छह संस्थान होते हैं - शरीर के आकार को संस्थान कहते हैं।

१. समचतुरस्र संस्थान - सम का अर्थ है समान, चतुः का अर्थ है चार और अस्र का अर्थ है कोण। पालथी मार कर बैठने पर जिस शरीर के चारों कोण समान हों अर्थात् आसन और कपाल का अन्तर, दोनों जानुओं का अन्तर, वाम स्कन्ध और दक्षिण जानु का अन्तर तथा दक्षिण स्कन्ध और वाम जानु का अन्तर समान हो उसे समचतुरस्र संस्थान कहते हैं। यह तो केवल शब्दार्थ है। अथवा सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार जिस शरीर के अङ्ग और उपाङ्ग न्यूनता और अधिकता से रहित मान, उन्मान, प्रमाण युक्त हों उसे समचतुरस्र संस्थान कहे हैं।

२. न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान - वट वृक्ष को न्यग्रोध कहते हैं। जैसे वट वृक्ष ऊपर के भाग में फैला हुआ होता है और नीचे के भाग में संकुचित, उसी प्रकार जिस संस्थान में नाभि के ऊपर का भाग विस्तार वाला अर्थात् शरीर-शास्त्र में बताए हुए प्रमाण वाला हो और नीचे का भाग हीन अवयव वाला हो उसे न्यग्रोध परिमंडल संस्थान कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. सादि संस्थान - यहाँ सादि शब्द का अर्थ नाभि से नीचे का भाग है। जिस संस्थान में नाभि के नीचे का भाग पूर्ण और ऊपर का भाग हीन हो उसे सादि संस्थान कहते हैं।

कहीं कहीं सादि संस्थान के बदले साची संस्थान भी मिलता है। साची सेमल (शाल्मली) वृक्ष को कहते हैं। शाल्मली वृक्ष का धड़ जैसा पुष्ट होता है वैसा ऊपर का भाग नहीं होता। इसी प्रकार जिस शरीर में नाभि के नीचे का भाग परिपूर्ण होता है पर ऊपर का भाग हीन होता है वह साची संस्थान है।

४. कुब्ज संस्थान - जिस शरीर में हाथ, पैर, सिर, गर्दन आदि अवयव ठीक हों पर छाती, पेट, पीठ आदि टेढे हों अथवा पीठ या छाती की ओर कुबड़ निकली हो उसे कुब्ज संस्थान कहते हैं।

५. वामन संस्थान - जिस शरीर में छाती, पीठ, पेट आदि अवयव पूर्ण हों पर हाथ, पैर आदि अवयव छोटे हों उसे वामन संस्थान कहते हैं।

नोट - ठाणाङ्ग सूत्र, प्रवचनसारोद्धार और द्रव्यलोक प्रकाश में कुब्ज तथा वामन संस्थान के उपरोक्त लक्षण ही व्यत्यय (उलट) करके दिये हैं।

६. हुंडक संस्थान - जिस शरीर के समस्त अवयव बेढब हों अर्थात् एक भी अवयव शास्त्रोक्त प्रमाण के अनुसार न हो वह हुंडक संस्थान है।

नोट - पृथ्वीकाय आदि पांच स्थावर के हुण्डक संस्थान ही होता है किन्तु आकृति विशेष की अपेक्षा से यहाँ मसूर की दाल आदि भिन्न-भिन्न स्थान बता दिये गये हैं।

वेद पद

कइविहे णं भंते! वेए पण्णत्ते? गोयमा! तिविहे वेए पण्णत्ते तंजहा - इत्थीवेए पुरिसवेए, णपुंसगवेए। णेरइया णं भंते! किं इत्थीवेया पुरिसवेया णपुंसगवेया पण्णत्ता? गोयमा! णो इत्थीवेया, णो पुरिसवेया, णपुंसगवेया पण्णत्ता। असुरकुमारा णं भंते! किं इत्थीवेया पुरिसवेया णपुंसगवेया? गोयमा! इत्थीवेया, पुरिसवेया, णो णपुंसगवेया, जाव थणियकुमारा। पुढवी आऊ तेऊ वाऊ वणस्सई बि ति चउरिंदिय सम्मुच्छिम पंचिंदिय तिरिक्ख, सम्मुच्छिम मणुस्सा णपुंसगवेया। गब्भवक्कंतिय मणुस्सा पंचिंदियतिरिक्खा य तिवेया। जहा असुरकुमारा तहा वाणमंतर जोइस, वेमाणिया वि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - तिवेया - तीनों वेद, **बि** - बेइन्द्रिय, **ति** - तेइन्द्रिय।

भावार्थ - हे भगवन्! वेद कितने प्रकार के कहे गये हैं? हे गौतम! वेद तीन प्रकार के कहे गये हैं जैसे कि - स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद ।

हे भगवन्! क्या नैरयिक स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी या नपुसंकवेदी कहे गये हैं? हे गौतम! नैरयिक जीव स्त्रीवेदी नहीं हैं, पुरुषवेदी नहीं हैं किन्तु नपुंसकवेदी कहे गये हैं। हे भगवन्! क्या असुरकुमार देवता स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी या नपुंसकवेदी कहे गये हैं? हे गौतम! असुरकुमार देवता स्त्रीवेदी हैं, पुरुषवेदी हैं किन्तु नपुंसकवेदी नहीं हैं। इसी तरह स्तनितकुमारों तक कह देना चाहिए।

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय और सम्मूर्च्छिम मनुष्य, ये सब नपुसंकवेदी है। गर्भज मनुष्य और गर्भज तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, तीनों वेदी होते हैं। जिस प्रकार असुरकुमार देव कहे गये हैं उसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव भी कह देने चाहिए अर्थात् ये भी स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी होते हैं किन्तु नपुंसकवेदी नहीं होते हैं।

विवेचन - वेद की व्याख्या और उसके भेद - मैथुन सेवन करने की अभिलाषा को वेद (भाव वेद) कहते हैं। यह नोकषाय मोहनीय कर्म के उदय से होता है।

स्त्री पुरुष आदि के बाह्य चिह्न द्रव्यवेद हैं। ये नाम कर्म के उदय से प्रकट होते हैं।

वेद के तीन भेद - १. स्त्री वेद २. पुरुष वेद ३. नपुंसक वेद।

स्त्री वेद - जैसे पित्त के वश से मधुर पदार्थ की रुचि होती है। उसी प्रकार जिस कर्म के उदय से स्त्री को पुरुष के साथ रमण करने की इच्छा होती है। उसे स्त्री वेद कहते हैं।

पुरुष वेद - जैसे कफ के वश से खट्टे पदार्थ की रुचि होती है वैसे ही जिस कर्म के उदय से पुरुष को स्त्री के साथ रमण करने की इच्छा होती है उसे पुरुष वेद कहते हैं।

नपुंसक वेद - जैसे पित्त और कफ के वश से मज्जिका के प्रति रुचि होती है उसी तरह जिस कर्म के उदय से नपुंसक को स्त्री और पुरुष दोनों के साथ रमण करने की अभिलाषा होती है। उसे नपुंसक वेद कहते हैं।

यहाँ पर आये हुए 'मज्जिका' शब्द का अर्थ 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में (मज्जिका-रसाला) ऐसा किया है तथा पाइअ सद्द महण्णवो कोष में-केशर कस्तूरी आदि सुगन्धिव द्रव्यों से युक्त मिश्री मिला हुआ दूध ऐसा किया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इन तीनों, स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद का स्वरूप समझाने के लिए टीकाकार ने एक गाथा दी है वह इस प्रकार है -

पुरिसित्थि तदुभयं पइ, अहिलासो जव्वसा हवइ सो उ ।
त्थीनरनपुंवेउदओ, फुंफुमतणनगरदाहसमो ॥

अर्थ - पुरुष को स्त्री की अभिलाषा और स्त्री को पुरुष की अभिलाषा तथा स्त्री-पुरुष दोनों की अभिलाषा होना क्रमशः स्त्री वेद, पुरुष वेद और नपुंसक वेद कहलाता है। इन तीनों का स्वरूप इस प्रकार है - जिस प्रकार घास फूस की अग्नि जल्दी जलती है और जल्दी बुझ भी जाती है, इसी प्रकार पुरुष वेद का समझना चाहिए । जिस प्रकार करीष (छाणा-सूखा गोबर) अन्दर ही अन्दर जलता रहता है, शीघ्र बुझता नहीं है, स्त्री वेद का भी ऐसा ही स्वरूप है। इसको फुंफुम की अग्नि कहते हैं। नपुंसक वेद को नगर दाह की उपमा दी है। नगर दाह जल्दी शान्त नहीं होता है। इसी तरह नपुंसक वेद भी जल्दी शान्त नहीं होता है।

समवसरण पद

तेणं कालेणं तेणं समएणं कप्पस्स समोसरणं णेयव्वं जाव गणहरा सावच्चा णिरवच्चा वोच्छिण्णा।

कठिन शब्दार्थ - **सावच्चा** - सापत्य-शिष्य सहित, **णिरवच्चा** - निरपत्य-शिष्य रहित, **वोच्छिण्णा** - व्युच्छिन्न-सिद्ध हो गये ।

भावार्थ - उस काल उस समय में-कल्प से लेकर समवसरण तक यावत् सापत्य और निरपत्य गणधर देव व्युच्छिन्न हो गये अर्थात् सिद्ध हो गये ।

विवेचन - इस अवसर्पिणी काल के दुःषम-सुषमा नामक चौथे आरे अन्त में जबकि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी इस भारत भूमि पर विचरण कर रहे थे । उस समय में 'तेणं कालेणं तेणं समएणं' से लेकर समवसरण तक का सारा अधिकार यहाँ कह देना चाहिए । इस विषय में टीकाकार इस प्रकार कहते हैं -

'कप्पस्स समोसरणं नेयव्वं' ति इहावसरे कल्पभाष्यक्रमेण समवसरणवक्तव्यता अध्येया, सा चाउश्यकोक्ताया न व्यतिरिच्यते, वाचनान्तरे तु पर्युषणाकल्पोक्तक्रमेणेत्यभिहितं, कियद्दूरमित्याह- 'जाव गणे' त्यादि, तत्र गणधरः पञ्चमः सुधर्माख्यः सापत्यः शेषा निरपत्याः- अविद्यमानशिष्यसन्ततय इत्यर्थः 'वोच्छिण्णा' त्ति सिद्धा इति ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसका आशय यह है कि - तीर्थङ्करों की उपस्थिति में जितनी भी दीक्षाएँ होती हैं वे सब तीर्थङ्कर भगवान् की नेश्राय में होती है। गणधर स्वतन्त्र रूप से अपने-अपने शिष्य नहीं बनाते हैं इस अपेक्षा से नव गणधर तो भगवान् महावीर स्वामी की उपस्थिति में ही मोक्ष चले गये थे तथा भगवान् के मोक्ष जाते ही गौतमस्वामी को केवलज्ञान हो गया था। इसलिये इन दस गणधरों के लिए 'णिरवच्चा' (निरपत्य) शब्द का प्रयोग किया है अर्थात् इन दस गणधरों के शिष्य परम्परा रूप सन्तति नहीं थी। सुधर्मा स्वामी अभी तक छद्मस्थ थे इसलिए चतुर्विध संघ ने मिल कर सुधर्मास्वामी को भगवान् महावीर स्वामी के पाट पर स्थापित किया। तीर्थङ्कर के पाट पर उनके केवली शिष्य गणधर स्थापित नहीं किये जाते हैं। क्योंकि वे तो सर्वज्ञ सर्वदर्शी होने के कारण इस प्रकार से फरमाते हैं कि - मैं जैसा जानता और देखता हूँ, वैसा कहता हूँ। ऐसा कहने से तीर्थङ्कर की पाट परम्परा नहीं चलती है इसलिए तीर्थङ्कर के पाट पर उनके छद्मस्थ शिष्य गणधर को स्थापित किया जाता है। वे छद्मस्थ होने के कारण ऐसा फरमाते हैं कि - **'सुयं मे आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं'** अर्थात् उन सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थङ्कर भगवन्तों ने ऐसा फरमाया है, मैंने उनके मुखारविन्द से सुना है। इस प्रकार का कथन वर्तमान में उपलब्ध ३२ आगमों में जगह-जगह सुधर्मास्वामी ने अपने ज्येष्ठ शिष्य जम्बूस्वामी से कहा है कि - हे आयुष्मन् जम्बू ! जैसा मैंने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से सुना है, वैसा ही मैं तुम्हें कहता हूँ।

नोट - टीका में आये हुए कल्पभाष्य और पर्युषणाकल्प आदि शब्दों से कल्प सूत्र की रचना का कथन करना उचित नहीं लगता है। इसकी विस्तृत चर्चा 'त्रीणि छेद सूत्राणि' में देखनी चाहिए। श्री मधुकर जी म. सा. के प्रधान सम्पादकत्व में बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि से इस पर विचारणा की है। दशाश्रुतस्कन्ध की आठवीं दशा पर किया गया उनका विवेचन बहुत ही खोज पूर्ण और पाण्डित्यपूर्ण है। पर्युषणाकल्प और कल्पसूत्र स्वतन्त्र रचना है किन्तु दशा श्रुतस्कन्ध की आठवीं दशा नहीं है।

लेखक का कथन है कि - वर्तमान में उपलब्ध कल्प सूत्र में कल्प (साधु मर्यादा) के विरुद्ध तथा आगम के भी विरुद्ध कई बाते हैं। वे सब कल्पित हैं। अत: आगमवेत्ताओं की मान्यता है कि इसे कल्प सूत्र न कहकर कल्पित सूत्र कहना ज्यादा उपयुक्त है।

शोधार्थी विद्यार्थियों के लिए एवं विशेष जिज्ञासुओं के लिए वह विवेचन पठनीय, मननीय और संग्रहणीय है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुलकर पद

अतीत उत्सर्पिणी के कुलकर

जंबूद्दीवे णं दीवे भारहे वासे तीयाए उस्सप्पिणीए सत्त कुलगरा होत्था तंजहा-

मित्तदामे सुदामे य, सुपासे य सयंपभे ।
विमलघोसे सुघोसे य, महाघोसे य सत्तमे ।। १।।

कठिन शब्दार्थ - तीयाए उस्सप्पिणीए - अतीत उत्सर्पिणी काल में, **कुलगरा** - कुलकर।

भावार्थ - इस जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में अतीत उत्सर्पिणी काल में सात कुलकर हुए थे उनके नाम इस प्रकार हैं -

१. मित्रदाम, २. सुदाम, ३. सुपार्श्व, ४. स्वयंप्रभ, ५. विमलघोष, ६. सुघोष, और ७. महाघोष।

अतीत अवसर्पिणी के कुलकर

जंबूद्दीवे णं दीवे भारहे वासे तीयाए ओसप्पिणीए दस कुलगरा होत्था, तंजहा-

सयंजले सयाऊ य, अजियसेणे अणंतसेणे य।
कज्जसेणे भीमसेणे, महाभीमसेणे य सत्तमे ।। २।।
दढरहे दसरहे सयरहे ।

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में अतीत अवसर्पिणी काल में दस कुलकर हुए थे। उनके नाम इस प्रकार हैं - १. स्वयञ्जल (शतंजल) २. शतायु, ३. अजितसेन, ४. अनन्तसेन, ५. कार्यसेन, ६. भीमसेन, ७. महाभीमसेन, ८. दृढरथ, ९. दशरथ और १०. शतरथ।

इस अवसर्पिणी के कुलकर

जंबूद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए समाए सत्त कुलगरा होत्था, तंजहा -

पढमेत्थ विमल वाहणे, चक्खुमं जसमं चउत्थमभिचंदे ।
तत्तो य पसेणईए, मरुदेवे चेव णाभी य।। ३।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में सात कुलकर हुए थे उनके नाम इस प्रकार हैं - १. विमलवाहन, २. चक्षुष्मान् , ३. यशस्वान्, ४. अभिचन्द्र, ५. प्रसेनजित, ६. मरुदेव और ७. नाभि।

कुलकरों की भार्याएँ

एएसि णं सत्तण्हं कुलगराणं सत्त भारिया होत्था, तंजहा -

चंदजसा चंदकंता, सुरूव पडिरूव चक्खुकंता य।
सिरिकंता मरुदेवी, कुलगर पत्तीण णामाइं ।। ४।।

कठिन शब्दार्थ - **इमीसे ओसप्पिणी** - इस अवसपिणी काल के।

भावार्थ - इन सात कुलकरों की सात भार्याएं थी। उनके नाम इस प्रकार हैं - १. चन्द्रयशा, २. चन्द्रकान्ता, ३. सुरूपा, ४. प्रतिरूपा, ५. चक्षुष्कान्ता, ६. श्रीकान्ता और ७. मरुदेवी, ये कुलकरों की भार्याओं के नाम हैं।

विवेचन - अपने अपने समय के मनुष्यों के लिए जो व्यक्ति मर्यादा बाँधते हैं, उन्हें कुलकर कहते हैं। ये ही सात कुलकर सात मनु भी कहलाते हैं। वर्तमान अवसर्पिणी के तीसरे आरे के अन्त में सात कुलकर हुए हैं। कहा जाता है, उस समय १० प्रकार के युगलिक वृक्षों में से काल दोष के कारण कुछ वृक्ष कम हो गए । यह देखकर युगलिए अपने अपने वृक्षों पर ममत्व करने लगे। यदि कोइ युगलिया दूसरे के वृक्ष से फल ले लेता तो झगड़ा खड़ा हो जाता। इस तरह कई जगह झगड़े खड़े होने पर युगलियों ने सोचा कोई पुरुष ऐसा होना चाहिए जो सब के वृक्षों की मर्यादा बांध दे । वे किसी ऐसे व्यक्ति को खोज ही रहे थे कि - उनमें से एक युगल स्त्री पुरुष को वन के सफेद हाथी ने अपने आप सूंड से उठा कर अपने ऊपर बैठा लिया। दूसरे युगलियों ने समझा यही व्यक्ति हम लोगों में श्रेष्ठ है और न्याय करने लायक है। सब ने उसको अपना राजा माना तथा उसके द्वारा बांधी हुई मर्यादा का पालन करने लगे । ऐसी कथा प्रचलित है।

पहले कुलकर का नाम विमलवाहन है। बाकी के छह इसी कुलकर के वंश में क्रम से हुए हैं।

सातवें कुलकर नाभि के पुत्र भगवान् ऋषभदेव हुए । विमलवाहन कुलकर के समय सात ही प्रकार के वृक्ष थे। उस समय त्रुटितांग, दीप और ज्योति नाम के वृक्ष नहीं थे।

कुलकरों की भार्याओं में से मरुदेवी ऋषभदेव की माता थी और उसी भव में सिद्ध हुई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नोट - जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में इस अवसर्पिणी काल में पन्द्रह कुलकर हुए। यथा १. सुमति २. प्रतिश्रुति ३. सीमंकर ४. सीमंधर ५. खेमंकर ६. खेमंधर (क्षेमंकर, क्षेमंधर) ७. विमलवाहन ८.चक्षुष्मान ९. यशस्वी १०. अभिचन्द्र ११. चन्द्राभ १२. प्रसेनजित १३. मरुदेव १४. नाभि १५. ऋषभ।

दस कुलकर बताये गये हैं - उपरोक्त पन्द्रह में से पांच को छोड़ कर आगे के दस यथा - १. खेमंधर २. विमलवाहन ३. चक्षुष्मान ४. यशस्वी ५. अभिचन्द्र ६. चन्द्राभ ७. प्रसेनजित ८. मरुदेव ९. नाभि १०. ऋषभ ।

ठाणाङ्ग समवायाङ्ग और भगवती सूत्र में सात ही कुलकर बताये गये हैं यथा - १. विमलवाहन २. चक्षुष्मान ३. यशस्वान ४. अभिचन्द्र ५. प्रश्रेणि ६. मरुदेव ७. नाभि।

प्रश्न - कुलकरों की ऐसी भिन्न भिन्न संख्यायें क्यों बतायी गई है?

उत्तर - प्रश्न ठीक है, उसका समाधान इस प्रकार है - अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे के अन्त में जब दस प्रकार के युगलिक वृक्षों में से चार कम हो गये और वृक्षों के फल देने की शक्ति भी कम होने लग गई तब व्यवस्था की दृष्टि से कुलकरों की नियुक्ति की गई। कुलकरों के समय तीन प्रकार की दण्डनीति थी यथा 'हकार' 'मकार' और 'धिक्कार'। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में समकालीन तथा स्वल्प 'हकार' दण्डनीति वालों को भी कुलकर मान लेने से १५ कुलकर बतलाये गये हैं। पहले के पांच कुलकरों को स्वल्प दण्डनीति होने से कुलकर न माना जाय तो दस कुलकर रह जाते हैं। उन दस में से भी खेमंधर और विमलवाहन तथा चन्द्राभ और प्रसेनजित समकालीन होने से दोनों में से मुख्य विमलवाहन और प्रसेनजित इन एक एक को ही कुलकर मानने से तथा नाभि और ऋषभ के समकालीन होने से तथा ऋषभ के राजा हो जाने से नाभि को कुलकर में नहीं गिनने से ठाणाङ्ग सूत्र, समवायाङ्ग सूत्र, भगवती सूत्र में सात कुलकर ही बताये हैं।

हीरवृत्ति (आगमोदय समिति से प्रकाशित जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र पत्र १३३ के टिप्पण) में विशेषणवत्ती का प्रमाण देकर इसका समाधान इस प्रकार दिया है -

'कुलकरा हि द्विविधा भवन्ति, कुलकरकृत्येषु नियुक्ताः स्वतन्त्र प्रवृत्ताश्च, तत्र ये विमलवाहना दयो नियुक्तास्ते स्थानांगादौ भणिताः इह (जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्यां) कुलकर कृत्यं कुर्वंतः, कुलकरा भवन्त्येव इति अभिप्रायेण उभये अपि उपात्ताः।'

अर्थ - कुलकर दो प्रकार के होते हैं - कुलकरों द्वारा नियुक्त किये हुए तथा स्वतंत्र रूप से अपनी इच्छा पूर्वक कुलकरों का कार्य करने वाले। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में दोनों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार के कुलकरों को गिनकर पन्द्रह की संख्या बतलाई है। टीका में दस का उल्लेख किया है वे नियुक्त किये हुए कुलकरों की संख्या समझनी चाहिए। उनमें से भी तीन कुलकरों का समावेश दूसरे कुलकरों में कर देने से स्थानाङ्ग आदि में विमलवाहन आदि सात की संख्या बतलाई गई है। इस प्रकार अपेक्षा विशेष से संख्या में भेद है किन्तु विसंगति अथवा सिद्धान्त विरोध नहीं है। सिद्धान्त तो एक ही है।

आगामी उत्सर्पिणी काल में दस कुलकर होंगे उनके नाम इस प्रकार हैं -

१. सीमंकर २. सीमंधर ३. क्षेमंकर ४. क्षेमंधर ५. विमलवाहन ६. संमुचि ७. प्रतिश्रुत ८. दृढधनुः ९. दशधनुः और १०. शतधनुः।

तीर्थंकर पद

तीर्थङ्कर के माता-पिता आदि सम्बन्धी वर्णन

जंबूद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउवीसं तित्थयराणं पियरो होत्था, तंजहा -

णाभी य जियसत्तू य, जियारी संवरे इय।
मेहे धरे पइट्ठे य, महसेणे य खत्तिए ॥ ५॥
सुग्गीवे दढरहे विण्हू, वसुपुज्जे य खत्तिए ।
कयवम्मा सीहसेणे, भाणू विस्ससेणे य॥ ६॥
सूरे सुदंसणे कुंभे, सुमित्त विजए समुद्दविजए य।
राया य आससेणे य, सिद्धत्थेच्चिय खत्तिए ॥ ७॥
उदितोदिय कुलवंसा, विसुद्धवंसा गुणेहिं उववेया।
तित्थप्पवत्तयाणं एए, पियरो जिणवराणं ॥ ८॥

जंबूद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउवीसं तित्थयराणं मायरो होत्था, तंजहा -

मरुदेवी विजया सेणा, सिद्धत्था मंगला सुसीमा य।
पुहवी लक्खणा रामा णंदा, विण्हू जया सामा ॥ ९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुजसा सुव्वया अइरा, सिरीया देवी पभावई पउमा ।
वप्पा सिवा य वामा, तिसला देवी य जिणमाया।। १०॥

जंबूद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउवीसं तित्थयरा होत्था, तंजहा- उसभ, अजिय, संभव, अभिणंदण, सुमइ, पउमप्पह, सुपास, चंदप्पभ, सुविहि पुप्फदंत, सीयल, सिज्जंस, वासुपुज्ज, विमल, अणंत, धम्म, संति, कुंथु, अर, मल्लि, मुणिसुव्वय णमि णेमि पास वद्धमाणो य।

कठिन शब्दार्थ - पियरो - पिता, **मायरो** - माता, **उदितोदिय** - उदितोदित-उन्नत और उन्नत, **कुलवंसा विसुद्धवंसा** - विशुद्ध कुल में उत्पन्न, **गुणेहिं उववेया** - गुणों से उपपेत (युक्त), **तित्थप्पवत्तयाणं** - तीर्थ को प्रवर्ताने वाले, **जिणवराणं** - जिनवरों के- तीर्थङ्करों के।

भावार्थ - इस ज़म्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थंकरों के पिता हुए थे उनके नाम इस प्रकार हैं - १. नाभि, २. जितशत्रु, ३. जितारि, ४. संवर, ५. मेघ, ६. धर, ७. प्रतिष्ठ, ८. महासेन, ९. सुग्रीव, १०. दृढरथ, ११. विष्णु, १२. वसुपूज्य, १३. कृतवर्मा, १४. सिंहसेन, १५. भानु, १६. विश्वसेन, १७. शूर, १८. सुदर्शन, १९. कुम्भ, २०. सुमित्र, २१. विजय, २२. समुद्रविजय, २३. अश्वसेन, २४. सिद्धार्थ । उन्नत और विशुद्ध कुल में उत्पन्न राजा के गुणों से युक्त ये उपरोक्त चौबीस तीर्थ को प्रवर्ताने वाले तीर्थङ्करों के पिता थे।

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थङ्करों की माताएं हुई थीं उनके नाम इस प्रकार हैं - १. मरुदेवी, २. विजया, ३. सेना, ४. सिद्धार्था, ५. मङ्गला, ६. सुसीमा, ७. पृथ्वी, ८. लक्षणा (लक्ष्मणा), ९. रामा, १०. नन्दा, ११. विष्णु, १२. जया, १३. श्यामा, १४. सुयशा, १५. सुव्रता, १६. अचिरा, १७. श्री, १८. देवी, १९. प्रभावती, २०. पद्मावती, २१. वप्रा, २२. शिवा, २३. वामा, २४ त्रिशला देवी । ये तीर्थङ्कर भगवान् की माताएं हुई हैं।

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थङ्कर हुए थे । उनके नाम इस प्रकार हैं - १. ऋषभ, २. अजितनाथ, ३. संभवनाथ, ४. अभिनन्दन, ५. सुमतिनाथ, ६. पद्मप्रभ, ७. सुपार्श्वनाथ, ८. चन्द्रप्रभ, ९. सुविधिनाथ दूसरा नाम पुष्पदंत, १०. शीतलनाथ, ११. श्रेयांसनाथ, १२. वासुपूज्य, १३. विमलनाथ, १४. अनन्तनाथ, १५. धर्मनाथ, १६. शान्तिनाथ,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१७. कुन्थुनाथ, १८. अरनाथ, १९. मल्लिनाथ, २०. मुनिसुव्रत, २१. नमिनाथ, २२. नेमिनाथ, २३. पार्श्वनाथ और २४. वर्द्धमान (महावीरस्वामी) । ये चौबीस तीर्थङ्कर हुए हैं।

विवेचन - प्रश्न - अहो भगवन्! तीर्थङ्कर किसको कहते हैं?

उत्तर - 'तीर्थं करोति इति तीर्थङ्करः।'

- जो तीर्थ की स्थापना करे उसे तीर्थङ्कर कहते हैं।

प्रश्न - अहो भगवन्! संघ तीर्थ है या तीर्थङ्कर तीर्थ है ?

उत्तर - भगवती सूत्र के २० वें शतक के आठवें उद्देशे सू० ६८१ में यही प्रश्न गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर स्वामी से पूछा है। वह इस प्रकार है -

तित्थं भंते! तित्थं, तित्थगरे तित्थं ?

गोयमा! अरहा ताव नियमं तित्थगरे, तित्थं पुण चाउवण्णाइण्णो समण संघो तंजहा - समणा, समणीओ, सावया सावियाओ य।

प्रश्न - हे भगवन्! तीर्थ (संघ) तीर्थ है या तीर्थङ्कर तीर्थ है?

उत्तर - हे गौतम! अरहन्त-तीर्थङ्कर नियम पूर्वक तीर्थ के प्रवर्त्तक हैं (किन्तु तीर्थ नहीं हैं)। चार वर्ण वाला श्रमण प्रधान संघ ही तीर्थ है, जैसे कि साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका। साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप उक्त संघ ज्ञान, दर्शन, चारित्र का आधार है, आत्मा के अज्ञान और मिथ्यात्व को मिटा देता है एवं संसार सागर के पार पहुँचाता है इसलिये इसे तीर्थ कहा है। यह भावतीर्थ है। द्रव्य तीर्थ का आश्रय लेने से तृषा की शान्ति होती है, दाह का उपशम होता है एवं मल का नाश होता है। भावतीर्थ की शरण लेने वाले को भी तृष्णा का नाश, क्रोधाग्नि की शान्ति एवं कर्म मल का नाश- इन तीन गुणों की प्राप्ति होती है।

उपरोक्त प्रश्नोत्तरों से यह स्पष्ट है कि - किसी भी पर्वत यथा अष्टापद पर्वत, शत्रुंजय, सम्मेद शिखर, पालीतणा आदि तथा शत्रुंजा नदी, गंगा नदी, यमुना नदी आदि किसी को भी सिद्धान्त में तीर्थ नहीं कहा है। इनकी पूजा अर्चना करना, वन्दना करना, यात्रा करना आदि कोई भी कार्य आत्मा का कल्याण करने वाला नहीं है। बल्कि गमनागमनादि करना, मूर्ति को स्नान कराना, स्वयं स्नान करना आदि कर्म बन्ध का कारण है। अतः आत्मा का कल्याण चाहने वाले मुमुक्षु आत्माओं का कर्त्तव्य है कि उपरोक्त साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप भावतीर्थ की सेवा भक्ति आदि करें और त्याग प्रत्याख्यान को जीवन में उतारे, इससे आत्मा का कल्याण सधता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चौबीस तीर्थङ्करों के पूर्वभवों के नाम

एएसिं चउवीसाए तित्थयराणं चउवीसं पुव्वभवया णामधेया होत्था, तंजहा -

पढमेत्थ वइरणाभे, विमले तह विमलवाहणे चेव ।
तत्तो य धम्मसीहे, सुमित्त तह धम्ममित्ते य।। ११ ।।
सुंदरबाहु तह दीहबाहु, जुगबाहु लट्ठबाहु य।
दिण्णे य इंददत्ते, सुंदर माहिंदरे चेव ।। १२ ।।
सीहरहे मेहरहे रुप्पी य, सुंदसणे य बोद्धव्वे ।
तत्तो य णंदणे खलु, सीहगिरी चेव वीसइमे ।। १३ ।।
अदीणसत्तू संखे, सुदंसणे णंदणे य बोद्धव्वे ।
ओसप्पिणीए एए, तित्थयराणं तु पुव्वभवा ।। १४ ।।

कठिन शब्दार्थ - पुव्वभवया - पूर्वभव के।

भावार्थ - इन चौबीस तीर्थङ्करों के पूर्वभव के चौबीस नाम थे, वे इस प्रकार थे - १. पहला नाम वज्रनाभ, २. विमल, ३. विमलवाहन, ४. धर्मसिंह, ५. सुमित्र, ६. धर्ममित्र, ७. सुन्दरबाहु, ८. दीर्घबाहु, ९. युगबाहु, १०. लष्टबाहु, ११. दिण्ण-दत्त, १२. इन्द्रदत्त, १३. सुन्दर, १४. महेन्द्र, १५. सिंहरथ, १६. मेघरथ, १७. रुक्मी, १८. सुदर्शन, १९. नन्दन, २०. सिंहगिरि, २१. अदीनशत्रु, २२. शंख, २३. सुदर्शन, २४. नन्दन । इस अवसर्पिणी काल के तीर्थङ्करों के ये पूर्वभव के नाम थे ।। १४ ।।

चौबीस तीर्थङ्करों की शिविकाओं (पालकियों) के नाम

एएसिं चउवीसाए तित्थयराणं चउव्वीसं सीयाओ होत्था, तंजहा -

सीया सुदंसणा सुप्पभा य सिद्धत्थ सुप्पसिद्धा य।
विजया य वेजयंती, जयंती अपराजिया चेव ।। १५ ।।
अरुणप्पभ चंदप्पभ, सूरप्पभ, अग्गि सप्पभा चेव ।
विमला य पंचवण्णा, सागरदत्ता य णागदत्ता य।। १६ ।।
अभयकरा णिव्वुइकरा, मणोरमा तह मणोहरा चेव ।
देवकुरूत्तरकुरा विसाल चंदप्पभा सीया।। १७ ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एयाओ सीयाओ, सव्वेसिं चेव जिणवरिंदाणं ।
सव्वजगवच्छलाणं, सव्वोउगसुभाए छायाए ।। १८ ।।
पुव्विं ओक्खित्ता, माणुस्सेहिं साहट्टु रोमकूवेहिं ।
पच्छा वहंति सीयं, असुरिंदसुरिंदणागिंदा ।। १९ ।।
चलचवलकुंडलधरा, सच्छंद विउव्वियाभरणधारी ।
सुरअसुरवंदियाणं, वहंति सीयं जिणंदाणं ।। २० ।।
पुरओ वहंति देवा, णागा पुण दाहिणम्मि पासम्मि ।
पच्चत्थिमेण असुरा, गरुला पुण उत्तरे पासे ।। २१ ।।
उसभो य विणीयाए, बारवईए अरिट्ठवरणेमी ।
अवसेसा तित्थयरा, णिक्खंता जम्मभूमिसु ।। २२ ।।
सव्वे वि एगदूसेण, णिग्गया जिणवरा चउव्वीसं ।
ण य णाम अण्णलिंगे, ण य गिहिलिंगे कुलिंगे य ।। २३ ।।
इक्को भगवं वीरो, पासो मल्ली य तिहिं तिहिं सएहिं ।
भगवं वि वासुपुज्जो, छहिं पुरिससएहिं णिक्खंतो ।। २४ ।।
उग्गाणं भोगाणं राइण्णाणं च खत्तियाणं च ।
चउहिं सहस्सेहिं उसभो, सेसा उ सहस्स परिवारा ।। २५ ।।
सुमइत्थ णिच्चभत्तेण, णिग्गओ वासुपुज्ज चउत्थेणं ।
पासो मल्ली य अट्ठमेण, सेसा उ छट्ठेणं ।। २६ ।।

कठिन शब्दार्थ - **सीयाओ** - शिविका-पालकी, **सव्वजगवच्छलयाणं** - सर्व जगत्, **वत्सल** - संपूर्ण जगत के हितकारी, **सव्वोउगसुभाए** - सर्वऋतुक शुभया-सब ऋतुओं में सुख देने वाली, **साहट्टुरोमकूवेहिं** - जिनके रोम रोम हर्षित हो रहे हैं, **ओक्खिता** - उठाते हैं, **चलचवल-कुंडलधरा** - चञ्चल और चपल कुण्डलों को धारण करने वाले, **सच्छंदविउव्वियाभरणधारी** - स्वेच्छापूर्वक वैक्रिय किये हुए आभूषणों को धारण करने वाले, **एगदूसेण** - एक दूष्य-देव दूष्य वस्त्र के साथ, **णिच्चभत्तेण** - नित्य भक्त से।

भावार्थ - इन चौबीस तीर्थङ्करों के चौबीस पालकियाँ थीं, उनके नाम इस प्रकार थे - १. सुदर्शना, २. सुप्रभा, ३. सिद्धार्था, ४. सुप्रसिद्धा, ५. विजया, ६. वैजयंती, ७. जयन्ती, ८. अपराजिता, ९. अरुणप्रभा, १०. चन्द्रप्रभा, ११. सूर्यप्रभा, १२. अग्निप्रभा, १३. विमला,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१४. पंचवर्णा, १५. सागरदत्ता, १६. नागदत्ता, १७. अभयंकरा, १८. निर्वृत्तिकरा, १९. मनोरमा, २०. मनोहरा, २१. देवकुरा, २२. उत्तरकुरा, २३. विशाला, २४. चन्द्रप्रभा। सम्पूर्ण जगत् के हितकारी सब तीर्थङ्करों की ये सब ऋतुओं में सुख देने वाली छाया युक्त यानी आतापना रहित पालकियाँ थीं ।। १८ ॥

इन पालकियों को पहले जिनके रोम रोम हर्षित हो रहे हैं ऐसे मनुष्य उठाते हैं और पीछे असुरेन्द्र, सुरेन्द्र और नागेन्द्र उठाते हैं।। १९ ॥

चञ्चल और चपल कुण्डलों को धारण करने वाले और स्वेच्छापूर्वक वैक्रिय किये हुए आभूषणों को धारण करने वाले सुरेन्द्र और असुरेन्द्र सुर और असुरों द्वारा वन्दित जिनेश्वरों की पालकियों को उठाते हैं।। २० ॥

इन शिविकाओं को पूर्व की ओर वैमानिक देव उठाकर चलते हैं। फिर नागकुमार देवता दाहिनी तरफ चलते हैं। असुरकुमार जाति के देव पीछे की तरफ चलते हैं और गरुड़ ध्वजा सुवर्णकुमारादि देव उत्तर की तरफ यानी बांई तरफ चलते हैं।। २१ ॥

ऋषभदेव भगवान् ने विनीता (अयोध्या) नगरी में दीक्षा ली थी और अरिष्टनेमि भगवान् ने द्वारिका नगरी में दीक्षा ली थी। बाकी २२ तीर्थङ्करों ने अपनी अपनी जन्मभूमि में दीक्षा ली थी।। २२ ॥

ऋषभदेव भगवान् का जन्म इक्ष्वाकु भूमि (युगलिक भूमि) और अरिष्टनेमि भगवान् का जन्म शौर्यपुर में हुआ था।

सभी चौबीस ही तीर्थङ्कर इन्द्र द्वारा दिये गये एक देवदूष्य वस्त्र के साथ निकले थे यानी दीक्षित हुए थे। तीर्थङ्कर भगवान् अन्यलिङ्ग यानी स्थविर कल्पी आदि लिङ्ग में, गृहस्थ लिङ्ग में और कुलिंग में नहीं होते हैं किन्तु तीर्थङ्कर लिङ्ग में ही होते हैं।। २३ ॥

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अकेले दीक्षा ली थी। भगवान् पार्श्वनाथ ने और भगवान् मल्लिनाथ ने तीन तीन सौ व्यक्तियों के साथ दीक्षा ली थी। भगवान् वासुपूज्य स्वामी ने छह सौ पुरुषों के साथ दीक्षा ली थी। उग्रकुल और भोगकुल में उत्पन्न हुए चार हजार राजाओं और क्षत्रियों के साथ ऋषभदेव भगवान् ने दीक्षा ली थी और शेष १९ तीर्थङ्करों ने एक एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षा ली थी।। २४-२५ ॥

सुमतिनाथ भगवान् ने नित्य भक्त से दीक्षा ली अर्थात् दीक्षा लेते समय उन्होंने कुछ भी तपस्या नहीं की थी, नित्य भोजन करते थे और वासुपूज्य भगवान् ने चतुर्थभक्त यानी उपवास करके दीक्षा ली थी। पार्श्वनाथ भगवान् और मल्लिनाथ भगवान् ने अष्टम भक्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यानी तेला करके दीक्षा ली थी और बाकी बीस तीर्थङ्करों ने षष्ठभक्त यानी बेला करके दीक्षा ली थी।। २६॥

विवेचन - ज्ञाता सूत्र के आठवें अध्ययन में बतलाया गया है कि मल्लिनाथ भगवान् आभ्यन्तर परिषद् रूप तीन सौ स्त्रियों के साथ और बाहरी परिषद् रूप तीन सौ पुरुषों के साथ दीक्षित हुए थे । यहाँ पर तीन सौ के साथ दीक्षित होने का कथन किया है सो यहाँ पर स्त्री परिषद् को गौण करके केवल पुरुष परिषद् को ही लिया गया है। यह विवक्षा विशेष है अतः परस्पर किसी प्रकार का कोई विरोध नहीं है।

तीर्थङ्कर दीक्षा लेते समय सब वस्त्र छोड़ देते हैं तब शक्रेन्द्र उनके कन्धे पर एक देव दूष्य वस्त्र डाल देता है वह वस्त्र तेरह महीने से कुछ अधिक समय तक उनके कन्धे पर पड़ा रहता है। तीर्थङ्कर भगवान् उस वस्त्र को शीत निवारण आदि किसी काम में नहीं लेते हैं और न किसी को दान रूप में देते हैं। किसी ग्रन्थ में भगवान् महावीर स्वामी के लिए ऐसा लिख दिया है कि - भगवान् महावीर स्वामी ने उस देवदूष्य को फाड़ कर आधा देवदूष्य ब्राह्मण को दान में दे दिया था किन्तु ऐसा लिखना आगम से विपरीत है। सब तीर्थङ्करों की तरह भगवान् महावीर स्वामी के कन्धे पर भी वह वस्त्र तेरह महीने से कुछ अधिक समय तक पड़ा रहा था। फिर स्वतः नीचे गिर पड़ा। उसे भगवान् ने वापिस उठाया नहीं। ऐसा आचाराङ्ग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के नववें अध्ययन के प्रथम उद्देशक की चौथी गाथा में इस प्रकार बतलाया है।

संवच्छरं साहियं मासं, जं ण रिक्कासि वत्थगं भगवं।
अचेलए तओ चाई, तं वोसिरिज्ज वत्थमणगारे॥

अर्थ - एक महीने सहित एक वर्ष से कुछ अधिक अर्थात् तेरह महीने से कुछ अधिक वह वस्त्र भगवान् के कन्धे पर पड़ा रहा फिर नीचे गिर पड़ा तब भगवान् ने उसे वापिस उठाया नहीं और उसे वोसिरा दिया, तब से भगवान् सर्वथा अचेलक बन गये।

प्रश्न - तीर्थङ्कर भगवान् सर्वथा वस्त्र रहित होते हैं तो क्या वे अशोभनिक नहीं लगते हैं?

उत्तर - तीर्थङ्कर भगवान् सर्वथा वस्त्र रहित होते हुए भी अशोभनिक नहीं लगते हैं। यह उनका अतिशय है।

प्रश्न - इस समवायाङ्ग सूत्र में तीर्थङ्कर भगवान् के चौतीस अतिशय ही बतलाए गये हैं। फिर यह अतिशय अलग से कैसे माना जाय?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - समवायाङ्ग सूत्र में जो चौतीस अतिशय बतलाए गये हैं, वे मोटे रूप से गिनती करके बतला दिये गये हैं किन्तु निशीथ चूर्णि ग्रन्थ के सतरहवें उद्देशक में बतलाया गया है कि - जिस प्रकार तीर्थङ्कर भगवन्तों के शरीर के बाह्य चिह्न (लक्षण) १००८ बतलाए गये हैं। उसी प्रकार उनके आन्तरिक लक्षण रूप अतिशय अनन्त बतलाए गये हैं। इसी कारण कितनेक आचार्यों की यह भी मान्यता है कि - तीर्थङ्कर भगवान् छद्मस्थों को वस्त्र सहित ही दिखाई देते हैं। यह अतिशय -

"पच्छन्ने आहार-नीहारे अदिस्से मंसचक्खुणा ।"

इस चौथे अतिशय के अन्तर्गत जाता है। अतः तीर्थङ्करों के लिये कि - वे छद्मस्थों के लिए वस्त्र सहित ही दिखाई देते हैं। यह मान्यता आगमानुकूल ही प्रतीत होती है।

चौबीस तीर्थङ्करों के प्रथम भिक्षादाताओं के नाम

एएसिं चउव्वीसाए तित्थयराणं चउव्वीसं पढम भिक्खादायारो होत्था, तंजहा -

सिज्जंस बंभदत्ते, सुरिंददत्ते य इंददत्ते य।
पउमे य सोमदेवे, माहिंदे तह सोमदत्ते य।। २७॥
पुस्से पूणव्वसू पुण्णणंद, सुणंदे जये य विजए य।
तत्तो य धम्मसीहे, सुमित्त तह वग्गसीहे य।। २८॥
अपराजिय विस्ससेणे, वीसइमे होइ उसभसेणे य।
दिण्णे वरदत्ते धणे, बहुले य आणुपुव्वीए ।। २९॥
एए विसुद्ध लेस्सा, जिणवरभत्तीइ पंजलिउडा उ ।
तं कालं तं समयं, पडिलाभेइ जिणवरिंदे ।। ३०॥
संवच्छरेण भिक्खा, लद्धा उसभेण लोगणाहेण ।
सेसेहिं बीयदिवसे, लद्धाओ पढम भिक्खाओ ।। ३१॥
उसभस्स पढम भिक्खा, खोयरसो आसी लोगणाहस्स ।
सेसाणं परमण्णं, अमियरस रसोवमं आसी ।। ३२॥
सव्वेसिं पि जिणाणं, जहियं लद्धाउ पढम भिक्खाउ ।
तहियं वसुधाराओ, सरीरमेत्तीओ वुट्ठाओ ।। ३३॥

कठिन शब्दार्थ - पढम भिक्खादायारो - प्रथम भिक्षा देने वाले, **जिणवर भत्तीइ**

पंजलिउडा - तीर्थङ्कर भगवान् की भक्ति से दोनों हाथ जोड़ कर खड़े हुए, **पडिलाभेइ** - प्रतिलाभित किया, **संवच्छरेण** - एक वर्ष के बाद, **भिक्खा** - भिक्षा, **लद्धा** - मिली, **खोयरसो** - इक्षुरस, **अमियरसरसोवमं** - अमृतरस के समान, **परमण्णं** - परमान्न यानी खीर, **सरीरमेत्तीओ** - शरीर परिमाण, **वसुधाराओ** - वसुधारा-सोना मोहर, **वुट्ठाओ** - वृष्टि हुई, **सरीरमेत्तीओ** - तीर्थङ्कर के शरीर परिमाण।

भावार्थ - इन चौबीस तीर्थङ्करों को प्रथम भिक्षा देने वाले चौबीस व्यक्ति थे, उनके नाम इस प्रकार हैं - १. श्रेयांस, २. ब्रह्मदत्त, ३. सुरेन्द्रदत्त, ४. इन्द्रदत्त, ५. पद्म, ६. सोमदेव, ७. माहेन्द्र, ८. सोमदत्त, ९. पुष्य, १०. पुनर्वसु, ११. पूर्णनन्द, १२. सुनन्द, १३. जय, १४. विजय, १५. धर्मसिंह, १६. सुमित्र, १७. वर्गसिंह, १८. अपराजित, १९. विश्वसेन, २०. ऋषभसेन, २१. दिन्न-दत्त, २२. वरदत्त, २३. धनदत्त और २४. बहुल।

विशुद्ध लेश्या वाले और तीर्थङ्कर भगवान् की भक्ति से दोनों हाथ जोड़ कर खड़े हुए उपरोक्त चौबीस व्यक्तियों ने उस काल उस समय में तीर्थङ्करों को प्रतिलाभित किया अर्थात् सर्व प्रथम आहार बहराया था इसलिए आगम में इनको प्रथम भिक्षा दाता कहा है।। २७-३०॥

लोकनाथ भगवान् ऋषभदेव स्वामी को दीक्षा लेने के एक वर्ष बाद प्रथम भिक्षा मिली थी। शेष २३ तीर्थङ्करों को दीक्षा लेने के दूसरे दिन प्रथम भिक्षा मिली थी।। ३१॥

लोक के नाथ भगवान् ऋषभदेव स्वामी को प्रथम भिक्षा में इक्षुरस मिला था, शेष २३ तीर्थङ्करों को अमृतरस के समान परमान्न यानी खीर मिली थी।। ३२॥

जब सब तीर्थङ्करों को प्रथम भिक्षाएं मिली थी तब वहाँ पर तीर्थङ्करों के शरीर परिमाण सोना मोहरों की वृष्टि हुई थी।। ३३॥

विवेचन - जम्बूद्वीप पण्णत्ती सूत्र के दूसरे वक्षस्कार में भगवान् ऋषभदेव की दीक्षा के सम्बन्ध का पाठ इस प्रकार है -

पुत्तसयं रज्जसए अभिसिंचइ अभिसिंचित्ता तेसीइं पुव्वसय सहस्साइं महारायवासमज्झे वसइ वसित्ता जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले तस्स णं चित्तबहुलस्स णवमीपक्खेणं दिवसस्स पच्छिमे भागे।

अर्थ - सौ पुत्रों को सौ जगह का राज्य देकर और ८३ लाख पूर्व गृहस्थ अवस्था में रह कर ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास अर्थात् चैत्र मास की बहुल (वदी पक्ष) पक्ष की नवमीं तिथि को ऋषभदेव स्वामी ने दीक्षा अङ्गीकार की थी। दीक्षा के समय बेले की तपश्चर्या थी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसका पारणा एक वर्ष से श्रेयांस कुमार के हाथ से इक्षुरस के दान से हुआ । इस पर से यह स्पष्ट होता है कि - भगवान् ऋषभदेव का पारणा चैत्र वदी पक्ष में (ऋतु सवंत्सर की दृष्टि से) ही हो गया था। इसलिये वैसाख सुदी ३ (अक्षय तृतीया-आखातीज) को भगवान् का पारणा हुआ, ऐसा कहना आगम सम्मत नहीं है। क्योंकि वैशाख सुदी ३ का उल्लेख किसी आगम में नहीं है। दूसरी बात यह है कि वैसाख सुदी ३ तक तेरह महीने से भी कुछ अधिक दिन हो जाते हैं। व्यवहार सूत्र उद्देशक १ के भाष्य में बतलाया गया है -

संवच्छरं तु पढमं, मज्झिमगाणमट्ठमासियं होइ ।
छम्मासं पच्छिमस्स उ, माणं भाणियं तवुक्कोसं ॥

अर्थ - अवसर्पिणी काल में पहले तीर्थङ्कर के समय में एक वर्ष बीच के बाईस तीर्थङ्करों के समय में आठ मास और अन्तिम तीर्थङ्कर के समय में छह मास का उत्कृष्ट तप होता है। इससे अधिक नहीं होता है। फिर भगवान् ऋषभदेव के ४०० दिन का तप कहना आगमानुकूल नहीं है।

भगवान् ऋषभदेव के एक वर्ष का तप था इसलिए उसको वर्षीतप कहना उचित है। आजकल जो श्रावक श्राविका तप करते हैं वह एक वर्ष का एकान्तर तप है। इसलिये उसे वर्षीतप कहना उचित नहीं है। एकान्तर तप तो कई श्रावक श्राविका बीस तीस कई वर्षों तक भी निरन्तर करते हैं परन्तु इस सब एकान्तर तप को मिलाकर भी भगवान् ऋषभदेव के वर्षीतप के बराबर नहीं कहा जा सकता है।

पञ्चाङ्ग को देखने से पता चलता है कि - वैसाख सुदी ३ का भी कभी कभी क्षय हो जाता है। आगे भी ऐसा हुआ है और अभी भी ऐसा होता है। इसलिए वैसाख सुदी ३ को अक्षय तृतीया कहना भी उचित नहीं है।

तीर्थङ्कर भगवान् के दीक्षा लेकर पहले पारणे में सोना मोहर की वर्षा होती है। कितने प्रमाण में होती है इसके लिये मूलपाठ में शब्द दिया है - "सरीरमेत्तीओ वसुहाराओ वुट्ठाओ" 'सरीर मेत्तीओ' का टीकाकार ने अर्थ किया है - "पुरुषमात्रा" - इसका यह अर्थ है कि - शरीर प्रमाण। पूर्वाचार्यों की धारणा के अनुसार इसका आशय यह है कि - जिस गृहस्थ के यहाँ पारणा होता है उसके आंगन में सोना मोहरों की बरसात होती है। उन सब मोहरों को इकट्ठा कर ढेर किया जाय तो वह इतना ऊंचा होता है जितना तीर्थङ्कर भगवान् का शरीर होता है। जिस तीर्थङ्कर का शरीर जितना ऊंचा होता है, सोना मोहरों का ढेर उतना ही ऊंचा होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चौबीस तीर्थङ्करों के चैत्य वृक्षों के नाम

एएसिं चउव्वीसं तित्थयराणं चउव्वीसं चेइय रुक्खा होत्था, तंजहा -

णग्गोह सत्तिवण्णे, साले पियए पियंगु छत्ताहे ।
सिरिसे य णागरुक्खे, साली य पिलंक्खु रुक्खे य।। ३४।।
तिंदुग पाडल जंबू, आसत्थे खलु तहेव दहिवण्णे ।
णंदी रुक्खे तिलए, अंबय रुक्खे असोगे य।। ३५।।
चंपय वउले य, तहा वेडस रुक्खे य धायई रुक्खे ।
साले य वड्डमाणस्स, चेइय रुक्खा जिणवराणं ।। ३६।।
बत्तीसं धणुयाइं, चेइय रुक्खे य वद्धमाणस्स ।
णिच्चोउगो असोगो, ओच्छण्णो सालरुक्खेणं ।। ३७।।
तिण्णेव गाउयाइं, चेइय रुक्खो जिणस्स उसभस्स ।
सेसाणं पुण रुक्खा, सरीरओ बारस गुणा उ ।। ३८।।
सच्छत्ता सपडागा, सवेइया तोरणेहिं उववेया।
सुर असुर गरुल महिया, चेइय रुक्खा जिणवराणं ।। ३९।।

कठिन शब्दार्थ - चेइय रुक्खा - चैत्यवृक्ष, **असोगो** - अशोक वृक्ष, **णिच्चोउगो** - नित्य ऋतुक - सब ऋतुओं के पुष्पों से युक्त, **सालरुक्खेण** - शालिवृक्ष से, **ओच्छण्णो** - अवच्छन्न-व्याप्त था, **सच्छत्ता** - छत्र सहित, **सपडागा** - पताका सहित, **सवेइया** - वेदिका सहित, **उववेया** - उपपेत-युक्त।

भावार्थ - इन चौबीस तीर्थङ्करों के चौबीस चैत्य वृक्ष थे, जिनके नीचे तीर्थङ्करों को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था, उनके नाम इस प्रकार हैं - १. न्यग्रोध, २. सप्तपर्ण, ३. शालवृक्ष, ४. प्रियक, ५. प्रियङ्गु, ६. छत्र वृक्ष, ७. शिरीष, ८. नाग वृक्ष, ९. साली, १०. पिलंक्खु, ११. तिन्दुक-टिम्बरु, १२. पाटल, १३. जम्बू, १४. आसत्थ-पीपल, १५. दधिपर्ण, १६. नन्दी वृक्ष, १७. तिलक, १८. आम्र, १९. अशोक, २०. चम्पक, २१. बकुल, २२. वेतस वृक्ष, २३. धातकी वृक्ष और वर्द्धमान स्वामी के २४. शालवृक्ष था। इस प्रकार तीर्थङ्करों के ये चैत्य वृक्ष थे ।। ३४-३६ ।।

वर्द्धमान स्वामी का चैत्य वृक्ष बत्तीस धनुष ऊंचा था। समवसरण में जो अशोक वृक्ष था वह सब ऋतुओं के पुष्पों से युक्त था और शालिवृक्ष से आच्छन्न (ढंका हुआ) था।। ३७।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् ऋषभदेव स्वामी का चैत्य वृक्ष तीन गाऊ ऊंचा था। शेष २२ तीर्थङ्करों के चैत्य वृक्ष उनके शरीर से बारह गुणा ऊंचे थे ॥ ३८॥

तीर्थङ्करों के चैत्य वृक्ष छत्र, पताका और वेदिका सहित और तोरणों से युक्त होते हैं। देव, असुर और सुपर्णकुमारों द्वारा पूजित होते हैं॥ ३९॥

विवेचन - जिस वृक्ष के नीचे तीर्थङ्करों को केवलज्ञान प्राप्त हुआ उसे चैत्य वृक्ष कहते हैं। कुछ के मतानुसार तीर्थङ्कर जिस वृक्ष के नीचे 'जिन दीक्षा' ग्रहण करते हैं उसे चैत्य वृक्ष कहा जाता है। कुबेर नामक देव समवसरण में तीर्थङ्कर के बैठे के स्थान पर उसी वृक्ष की स्थापना करता है और उसे ध्वजा-पताका, वेदिका और तोरण द्वारों से सुसज्जित करता है। समवसरण-स्थित इन वट, शाल आदि सभी वृक्षों को अशोकवृक्ष कहा जाता है, क्योंकि इनकी छाया में पहुँचते ही शोक-सन्तप्त प्राणी का भी शोक दूर हो जाता है और वह अशोक (शोक रहित) हो जाता है।

युवाचार्य श्री मधुकरजी म. सा. द्वारा सम्पादित उववाई सूत्र में पूज्य श्री जयमल जी म. सा. ने 'चेइय' शब्द के ११२ अर्थ किये हैं। इसलिये 'चेइय' शब्द का अर्थ 'मन्दिर मूर्ति' ऐसा एकान्त अर्थ करना उचित नहीं है। यहाँ पर 'चेइय' शब्द का अर्थ टीकाकार ने किया है कि - जिस वृक्ष के नीचे तीर्थङ्करों को केवलज्ञान प्राप्त हुआ । इसी प्रकार 'तिक्खुत्तो' के पाठ में 'चेइय' शब्द ज्ञानवन्त अर्थ में आया है। भिन्न-भिन्न स्थानों पर 'चेइय' शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ होते हैं। इसलिये चैत्य शब्द का अर्थ यथास्थान यथायोग्य करना चाहिए।

चौबीस तीर्थङ्करों के प्रथम शिष्यों के नाम

एएसिं चउव्वीसाए तित्थयराणं चउव्वीसं पढम सीसा होत्था, तंजहा -

पढमेत्थ उसभसेणे, बीइए पुण होइ सीहसेणे य।
चारु य वज्जणाभे, चमरे तह सुव्वय विदब्भे य॥ ४०॥
दिण्णे य वराहे पुण, आणंदे गोथुभे सुहम्मे य।
मंदर जसे अरिट्ठे, चक्काह सयंभू कुंभे य॥ ४१॥
इंदे कुंभे य सुभे, वरदत्ते दिण्ण इंदभूई य।
उदिओदिय कुलवंसा, विसुद्धवंसा गुणेहिं उववेया॥ ४२॥
तित्थप्पवत्तयाणं, पढमा सिस्सा जिणवराणं ॥

कठिन शब्दार्थ - पढम सिस्सा - प्रथम शिष्य, **तित्थप्पवत्तयाणं** - तीर्थ को प्रवर्ताने वाले।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इन चौबीस तीर्थङ्करों के चौबीस प्रथम शिष्य हुए थे, उनके नाम इस प्रकार थे - १. प्रथम ऋषभसेन , २. द्वितीय सिंहसेन, ३. चारु रूप, ४. वज्रनाभ, ५. चमर, ६. सुव्रत, ७. विदर्भ, ८. दिन्न-दत्त, ९. वराह, १०. आनन्द, ११. गोस्तुभ, १२. सुधर्मा, १३. मंदर, १४. यशस्वान्, १५. अरिष्ट, १६. चक्रायुध, १७. स्वयंभू, १८. कुम्भ, १९. इन्द्र, २०. कुम्भ, २१. शुभ, २२. वरदत्त, २३. दिन्न-दत्त और २४. इन्द्रभूति । तीर्थ को प्रवर्ताने वाले तीर्थङ्करों के ये प्रथम शिष्य उच्च और विशुद्ध कुल में उत्पन्न हुए थे और ये सब गुणों से युक्त थे ।। ४०-४२ ॥

विवेचन - गणधरों का विशेष वर्णन विशेषावश्यक भाष्य से जानना चाहिए। हिन्दी में 'गणधरों का लेखा' भी प्रकाशित हुआ है।

तीर्थङ्करों के जो प्रथम शिष्य होते हैं वे ही प्रथम गणधर होते हैं।

चौबीस तीर्थङ्करों की प्रथम शिष्याओं के नाम

एएसिं चउव्वीसाए तित्थयराणं चउव्वीसं पढम सिस्सिणी होत्था, तंजहा -

बंभी य फग्गु सामा, अजिया कासविरई सोमा ।
सुमणा वारुणी सुलसा, धारणी धरणी य धरणीधरा ।।४३॥
पउमा सिवा सुई, तह अंजुया भावियप्पा य रक्खी य।
बंधुवई पुप्फवई अज्जा अमिला य आहिया।। ४४॥
जक्खिणी पुप्फचूला य, चंदणऽज्जा य आहिया।
उदियोदिय कुलवंसा विसुद्धवंसा गुणेहिं उववेया।। ४५॥
तित्थप्पवत्तयाणं पढमा सिस्सणी जिणवराणं ।।

भावार्थ - इन चौबीस तीर्थङ्करों के चौबीस प्रथम शिष्याएं हुई थीं उनके नाम इस प्रकार हैं - १. ब्राह्मी, २. फाल्गुनी, ३. श्यामा, ४. अजिता, ५. काश्यपी, ६. रति, ७. सोमा, ८. सुमना, ९. वारुणी, १०. सुलसा, ११. धारणी, १२. धरणी, १३. धरणीधरा, १४. पद्मा, १५. शिवा, १६. श्रुति, १७. अंजुका, १८. भावितात्मा, १९. बन्धुमती, २०. पुष्पवती, २१. अमिला, २२. यक्षिणी, २३. पुष्पचूला, २४. चन्दनबाला । तीर्थ को प्रवर्ताने वाले तीर्थङ्करों की ये प्रथम शिष्याएं उच्च और विशुद्ध कुल में उत्पन्न हुई थीं और ये सब गुणों से युक्त थीं ।। ४३-४५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चक्रवर्ती-पद

अवसर्पिणी काल के चक्रवर्तियों के पिताओं के नाम

जंबूद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए बारस चक्कवट्टि पियरो होत्था, तंजहा -

उसभे सुमित्ते विजए, समुद्दविजए य आससेणे य।
विस्ससेणे य सूरे, सुदंसणे कत्तवीरिए चेव ।। ४६ ।।
पउमुत्तरे महाहरी, विजए राया तहेव य।
बंभे बारसमे उत्ते, पिउणामा चक्कवट्टीणं ।। ४७ ।।

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में बारह चक्रवर्तियों के पिता हुए थे, उनके नाम इस प्रकार हैं - १. ऋषभदेव, २. सुमित्र विजय, ३. समुद्रविजय, ४. अश्वसेन, ५. विश्वसेन, ६. शूर, ७. सुदर्शन, ८. कृतवीर्य, ९. पद्मोत्तर, १०. महाहरि, ११. विजय, १२. ब्रह्म। ये चक्रवर्तियों के पिताओं के नाम हैं।। ४६-४७ ।।

विवेचन - पांच भरत पांच ऐरवत और पांच महविदेह ये पन्द्रह कर्म भूमि के क्षेत्र हैं। इनमें तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव आदि महापुरुषों का जन्म होता है। भरत और ऐरवत क्षेत्र में एक-एक विजय हैं। महाविदेह क्षेत्र में बत्तीस-बत्तीस विजय हैं। इस प्रकार पाँच भरत, पाँच ऐरवत और पाँच महाविदेह क्षेत्र में कुल ३४×५=१७० विजय हैं। इनको चक्रवर्ती जीतता है, इसलिये इनको विजय कहते हैं। एक-एक विजय में छह-छह खण्ड होते हैं। चक्रवर्ती छहों खण्ड का स्वामी होता है।

चक्रवर्ती के ७ एकेन्द्रिय रत्न और ७ पञ्चेन्द्रिय रत्न होते हैं। इस प्रकार चौदह रत्न होते हैं। नौ निधियाँ होती हैं। छहों खण्डों को जीतने के लिए सुदर्शन चक्र सर्व प्रथम शस्त्र होता है। उसके बल से छहों खण्डों को जीतता है इसलिये उसे चक्रवर्ती कहते हैं। चक्रवर्ती की महान् ऋद्धि होती है उसकी ऋद्धि का विस्तृत वर्णन भरत चक्रवर्ती के अधिकार में जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र के तीसरे वक्षस्कार में दिया गया है। जिज्ञासुओं को वहाँ देखना चाहिए।

जब चक्रवर्ती उत्पन्न होता है तब उसके चौदह रत्न भी उत्पन्न होते हैं और जब चक्रवर्ती दीक्षा ले लेता है या काल कर जाता है तब वे चौदह रत्न भी विलुप्त हो जाते हैं अर्थात् रत्न रूप में देवाधिष्ठित नहीं रहते हैं। नौ निधियाँ सदा गंगा नदी के मुख पर रहती हैं। जब जो चक्रवर्ती होता है उसके अधीन हो जाती हैं और जब चक्रवर्ती दीक्षा ले लेता है या

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कालधर्म को प्राप्त हो जाता है तब वे नौ निधियाँ वापिस गंगा (जाह्नवी) नदी के मुख पर चली जाती हैं। इस प्रकार चक्रवर्ती के १४ रत्न तो अशाश्वत हैं और नौ निधियाँ शाश्वत हैं।

चक्रवर्तियों के माताओं के नाम

जंबूद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए बारस चक्कवट्टि मायरो होत्था, तंजहा -

सुमंगला जसवई भद्दा, सहदेवी अइरा सिरीदेवी ।
तारा जाला मेरा, वप्पा चुल्लणी अपच्छिमा ।। ४८ ।।

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में बारह चक्रवर्तियों की माताएं हुई थीं, उनके नाम इस प्रकार हैं - १. सुमंगला, २. यशस्वती, ३. भद्रा, ४. सहदेवी, ५. अचिरा, ६. श्री, ७. देवी, ८. तारा, ९. ज्वाला, १०. मेरा, ११. वप्रा, १२. चुलनी ।। ४८ ।।

बारह चक्रवर्तियों के नाम

जंबूद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए बारस चक्कवट्टी होत्था, तंजहा-

भरहो सगरो मघवं, सणंकुमारो य रायसद्दूलो ।
संती कुंथु य अरो हवइ, सुभूमो य कोरव्वो ।। ४९ ।।
णवमो य महापउमो, हरिसेणो चेव रायसद्दूलो ।
जयणामो य णरवई, बारसमो बंभदत्तो य ।। ५० ।।

कठिन शब्दार्थ - **रायसद्दूलो** - राजाओं में शार्दूल (सिंह के समान), **कोरव्वो** - कुरु वंश में उत्पन्न हुआ।

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में बारह चक्रवर्ती हुए थे उनके नाम इस प्रकार हैं - १. भरत, २. सगर, ३. मघवा, ४. सनत्कुमार, ५. शान्तिनाथ ६. कुन्थुनाथ, ७. अरनाथ, ८. सुभूम, ९. महापद्म, १०. हरिसेन, ११. जयसेन, १२. ब्रह्मदत्त ।। ४९-५० ।।

बारह चक्रवर्तियों के स्त्री रत्नों के नाम

एएसिं बारसण्हं चक्कवट्टीणं बारस इत्थी रयणा होत्था, तंजहा -

पढमा होइ सुभद्दा, भद्द सुणंदा जया य विजया य ।
किण्हसिरी सूरसिरी, पउमसिरी वसुंधरा देवी ।। ५१ ।।
लच्छीमई कुरुमई, इत्थी रयणाण णामाइं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इन बारह चक्रवर्तियों के बारह स्त्री रत्न थे, उनके नाम इस प्रकार हैं - १. सुभद्रा, २. भद्रा, ३. सुनन्दा, ४. जया, ५. विजया, ६. कृष्णश्री, ७. सूर्यश्री, ८. पद्मश्री, ९. वसुन्धरा, १०. देवी, ११. लक्ष्मीवती, १२. कुरुमती । ये चक्रवर्तियों के स्त्री रत्नों के नाम हैं।। ५१॥

बलदेव-वासुदेव पद

बलदेव वासुदेव के पिताओं के नाम

जंबूद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए णव बलदेव णव वासुदेव पियरो होत्था, तंजहा -

पयावई य बंभो सोमो, रुद्दो सिवो महसिवो य।
अग्गिसीहो य दसरहो, णवमो भणिओ य वसुदेवो ।। ५३॥

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में नौ बलदेव और नौ वासुदेवों के नौ पिता हुए थे, उनके नाम इस प्रकार हैं - १. प्रजापति, २. ब्रह्म, ३. सोम, ४. रुद्र, ५. शिव, ६. महाशिव, ७. अग्निसिंह, ८. दशरथ, ९. वसुदेव ।। ५३॥

नौ वासुदेवों की माताओं के नाम

जंबूद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए णव वासुदेव मायरो होत्था, तंजहा -

मियावई उमा चेव, पुहवी सीया य अम्मया।
लच्छिमई सेसमई, केकई देवई तहा ।। ५४ ।।

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में नौ वासुदेवों की नौ माताएं हुई थीं, उनके नाम इस प्रकार हैं - १. मृगावती, २. उमा, ३. पृथ्वी, ४. सीता, ५. अमृता (अम्बिका), ६. लक्ष्मीवती, ७. शेषमती, ८. कैकयी - अपर नाम सुमित्रा, ९. देवकी ।। ५४॥

नौ बलदेवों की माताओं के नाम

जंबूद्दीवे णं दीवे भरहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए णव बलदेव मायरो होत्था, तंजहा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भद्दा तह सुभद्दा य, सुप्पभा य सुदंसणा ।
विजया वेजयंती य, जयंती अपराजिया।। ५५॥
णवमीया रोहिणी य, बलदेवाण मायरो ।।

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में नौ बलदेवों की नौ माताएं हुई थी, उनके नाम इस प्रकार हैं - १. भद्रा, २. सुभद्रा, ३. सुप्रभा, ४. सुदर्शना, ५. विजया, ६. वैजयन्ती, ७. जयन्ती, ८. अपराजिता और ९. रोहिणी। ये बलदेवों की माताओं के नाम हैं।। ५५॥

विवेचन - नौ बलदेव और नौ वासुदेव ये दोनों सगे भाई होते हैं अर्थात् एक ही पिता की सन्तान होते हैं किन्तु माताएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। अर्थात् नौ बलदेवों की मातायें नौ अलग होती हैं और नौ वासुदेवों की मातायें नौ अलग होती हैं। जैसा कि ऊपर मूल पाठ में और उसके भावार्थ में बतला दिया गया है।

जंबूद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए णव दसारमंडला होत्था, तंजहा - उत्तमपुरिसा, मज्झिमपुरिसा, पहाणपुरिसा, ओयंसी, तेयंसी, वच्चंसी, जसंसी, छायंसी, कंता, सोमा, सुभगा, पियदंसणा, सुरूवा, सुहसीला, सुहाभिगमा, सव्वजण णयणकंता, ओहबला, अइबला, महाबला, अणिहया, अपराइया, सत्तुमद्दणा, रिउसहस्स माण महणा, साणुक्कोसा, अमच्छरा, अचवला, अचंडा, मियमंजुलपलाव हसिया, गंभीरमहुर पडिपुण्ण सच्चवयणा, अब्भुवगय वच्छला, सरण्णा, लक्खण वंजण गुणोववेया, माणुम्माणपमाण पडिपुण्ण सुजाय सव्वंगसुंदरंगा, ससिसोमागार कंत पियदंसणा, अमरिसणा, पयंडदंडप्पभारा, गंभीरदरिसणिज्जा, तालद्धओ-व्विद्धगरुल केउमहाधणुविकड्ढया, महासत्तसायरा, दुद्धरा, धणुद्धरा, धीरपुरिसा, जुद्धकित्ति पुरिसा, विउलकुल समुब्भवा, महारयण विहाडगा, अद्धभरहसामी, सोमा, रायकुलवंसतिलया, अजिया, अजियरहा, हलमुसल कणकपाणी, संखचक्कगय-सत्तिणंदगधरा, पवरुज्जलसुक्कंत विमल गोथूभतिरीडधारी, कुंडलउज्जोइयाणणा, पुंडरीयणयणा एगावलीकंठलइयवच्छा, सिरीवच्छसुलंछणा, वरजसा, सव्वोउय-सुरभिकुसुमरइयपलंबसोभंत कंतविकसंतविचित्त वरमाल रइयवच्छा, अट्ठसय विभत्तलक्खण-पसत्थसुंदर विरइयंगमंगा, मत्तगयवरिंदललिय विक्कम विलसियगई, सारय णवथणिय-महुरगंभीर कुंच णिग्घोस दुंदुभिसरा, कडिसुत्तगणीलपीय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कोसेज्जवाससा, पवरदित्ततेया, णरसीहा, णरवई, णरिंदा, णरवसहा, मरुयवसभकप्पा, अब्भहियरायतेयलच्छीए दिप्पमाणा, णीलगपीयगवसणा दुवे दुवे रामकेसवा भायरो होत्था, तंजहा -

तिविट्टे दुविट्टे य, संयभू पुरिसुत्तमे पुरिससीहे ।
तह पुरिस पुंडरीए, दत्ते णारायणे कण्हे ।। ५६ ।।
अयले विजए भद्दे, सुप्पभे य सुदंसणे ।
आणंदे णंदणे पउमे, रामे यावि अपच्छिमे ।। ५७ ।।

कठिन शब्दार्थ - दसार मंडला - दशार्ह मण्डल, **ओयंसी** - ओजस्वी, **तेयंसी** - तेजस्वी, **वच्चंसी** - वर्चस्वी, **जसंसी** - यशस्वी, **छायंसी** - शोभित शरीर वाले, **सव्वजण णयण कंता** - सभी मनुष्यों के नेत्रों को प्रिय लगने वाले, **ओहबला** - ओघबली, **सत्तुमद्दणा**- शत्रु का मर्दन करने वाले, **मियमंजुलपलावहसिया** - परिमित मधुर भाषण करने वाले और ईषत् हास्य करने वाले, **अब्भुवगयवच्छला** - अभ्युगत-शरण में आये हुए शरणागत के प्रति वात्सल्यभाव के धारक, **लक्खणवंजणगुणोववेया** - शुभ लक्षणों, व्यंजनों एवं गुणों से युक्त, **माणुम्माणपमाण-पडिपुण्णसुजायसव्वंग सुंदरंगा** - उनके सभी अंगोपांग सुन्दर, मान उन्मान तथा प्रमाण युक्त होते हैं, **ससिसोमागारकंतपियदंसणा** - उनकी आकृति चन्द्रमा के समान सौम्य मनोहर होती है। जो देखने में बड़ी ही प्रिय लगती है, **अमरिसणा** - अमर्षण, अमृसण, क्षमाशील, **महाधणु विकड्डया** - महान् धनुष को खींचने वाले, **महासत्तसायरा** - महान् पराक्रम के सागर, **दुद्धरा** - दुर्द्धर, **धणुद्धरा** - धनुर्धारी, **धीरपुरिसा**- धैर्य युक्त-धीर, **रायकुलवंसतिलया** - राजकुलवंश में तिलक के समान, **अजिया** - अजेय, **हलमुसलकणकपाणी** - बलदेव हल, मूसल और बाणों को धारण करते हैं, **संखचक्कगय-सत्तिणंदगधरा** - वासुदेव पाञ्चजन्य शंख, सुदर्शन चक्र, कौमुदी गदा, शक्ति नामक त्रिशूल और नंदक नामक खड्ग धारण करते हैं, **पवरुज्जलसुक्कंतविमल गोथुभतिरीडधारी** - निर्मल कौस्तुभ मणि वासुदेव के वक्ष स्थल को विभूषित करता है, उनके मस्तक पर तिरीट यानी मुकुट होता है, **अट्ठसयविभत्तलक्खणपसत्थसुंदर विरइयंगमंगा** - स्वस्तिक आदि १०८ प्रशस्त सुन्दर शुभ लक्षणों से उनके अंग उपांग सुशोभित होते हैं। **मत्तगयवरिंदललित विक्कम विलसिय गई** - वे ऐरावत हाथी की तरह ललित विक्रम एवं विलास युक्त गति वाले होते हैं।

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में नौ दशार्ह मण्डल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुआ था अर्थात् बलदेव वासुदेवों की युगलजोड़ी हुई थी। उनके गुणों का वर्णन इस प्रकार हैं - त्रेसठ श्लाघ्य पुरुषों में गिनती होने से ये उत्तम पुरुष हैं, त्रेसठ श्लाघ्य पुरुषों में इनकी गिनती मध्य में - बीच में आती है इसलिए मध्यमपुरुष हैं अथवा बल की अपेक्षा ये तीर्थङ्कर और चक्रवर्तियों से हीन - नीचे होते हैं और प्रतिवासुदेवों से बल में अधिक होते हैं, इस प्रकार वल की अपेक्षा दोनों के बीच में होने से ये मध्यमपुरुष हैं। अपने समय में ये बल में सब से अधिक होते हैं, इसलिए ये प्रधानपुरुष हैं, ये मानसिक बल से युक्त होने से ओजस्वी हैं, दीप्त शरीर होने से तेजस्वी हैं, शारीरिक बल से युक्त होने से वर्चस्वी हैं, यशस्वी, शोभित शरीर वाले, कान्त, सौम्य, सुभग - लोकवल्लभ, देखने में प्रिय लगने वाले, सुरूप, सुन्दर चारित्र वाले, सब मनुष्यों के लिए सेवा करने योग्य, सब मनुष्यों के नेत्रों को प्रिय लगने वाले होते हैं, वे ओघबल वाले होते हैं अर्थात् उनका बल लगातार प्रवाह रूप से चलता है, वे अति बलवान् होते हैं, वे महान् बलशाली होते हैं, वे अनिहत होते हैं अर्थात् वे किसी से भी भूमि पर नहीं गिराये जा सकते हैं, निरुपक्रम आयुष्य के धारक होने से अनिहत अर्थात् दूसरे के द्वारा होने वाले घात या मरण से रहित थे, युद्ध में वे किसी से भी पराजित नहीं होते हैं, वे शत्रु का विनाश करने वाले होते हैं, वे हजारों शत्रुओं के मान को एवं उनकी इच्छाओं को मर्दन करने वाले होते हैं, उनकी आज्ञा को मान लेने वाले शत्रुओं पर वे बड़े दयालु होते हैं, वे अमत्सर यानी ईर्षाभाव से रहित होते हैं, वे अचपल यानी चपलता से रहित होते हैं, अचण्ड यानी बिना कारण वे किसी पर क्रोध नहीं करते, वे परिमित और मधुर भाषण करने वाले और ईषत् हास्य करने वाले होते हैं, गम्भीर, मधुर पूर्ण सत्य वचन बोलने वाले होते हैं, अधीनता स्वीकार करने वालों पर वे वात्सल्य भाव के धारक होते हैं, शरणागतों के रक्षक होते हैं, लक्षण शास्त्र में पुरुषों के जितने सहज स्वाभाविक स्वस्तिक आदि शुभ लक्षण बताये गये हैं उन सभी शुभलक्षणों से युक्त होते हैं तथा जन्म के पश्चात् शरीर में उत्पन्न होने वाले तिल मस्स आदि व्यञ्जनों से युक्त होते हैं, उनके समस्त अङ्गोपाङ्ग सुन्दर और मान, उन्मान तथा प्रमाण युक्त होते है, उनकी आकृति चन्द्रमा के समान सौम्य शीतल और मनोहर होती है, जो देखने में बड़ी ही प्रिय लगती हैं, वे अमर्षण होते हैं अर्थात् शत्रु के अपराध को कभी सहन नहीं करते हैं अथवा वे अमृसण होते हैं अर्थात् कार्य को पूरा करने में वे कभी आलस्य नहीं करते हैं, वे अपनी आज्ञा द्वारा अथवा अपने सैन्य बल द्वारा असाध्य कार्य को भी सिद्ध कर लेते हैं, वे बड़े गंभीर दिखाई देते हैं, बलदेव के ताल वृक्ष की ध्वजा होती है और वासुदेव के गरुड़ की ध्वजा होती है, महान् धनुष को खींचने वाले होते हैं, महान् पराक्रम के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सागर होते हैं, रणभूमि में दुर्द्धर, धनुर्धारी, धैर्ययुक्त, युद्ध से कीर्ति उपार्जन करने वाले होते हैं, विपुल कुल में उत्पन्न होने वाले होते हैं, अपने अंगुठे और अंगुली से वज्र का भी चूर्ण कर देने वाले होते हैं, वे अर्द्ध भरत क्षेत्र के स्वामी होते हैं, सौम्य अर्थात् नीरोग होते हैं, वे राजकुलवंश में तिलक के समान होते हैं, वे अजेय होते हैं अर्थात् उन्हें कोई नहीं जीत सकता है, उनके रथ भी अजेय होते हैं, बलदेव हल मूसल और बाणों को धारण करते हैं, वासुदेव शार्ङ्ग धनुष, पाञ्चजन्य शंख, सुदर्शन चक्र, कौमुदी गदा, शक्ति नामक त्रिशूल और नन्दक नामक खड्ग (तलवार) धारण करते हैं, निर्मल कौस्तुभ मणि वासुदेव के वक्षस्थल को विभूषित करता है और उनके मस्तक पर तिरीट यानी मुकुट होता है, कुण्डलों से उनका मुख उद्योतित होता है, उनके नेत्र विकसित पुण्डरीक यानी कमल के समान होते हैं, उनके गले में एकावली हार होता है, छाती पर श्रीवत्स का शुभ लक्षण होता है, उनका यश निर्मल होता है, सभी ऋतुओं के सुगन्धित फूलों से बनी हुई, सुखदायिनी लम्बी विचित्र वनमाला उनके वक्षस्थल पर विराजमान होती है, स्वस्तिक आदि जो १०८ शुभ लक्षण पुरुषों के होते हैं, उन सभी प्रशस्त सुन्दर शुभ लक्षणों से उनके अङ्ग उपांग सुशोभित होते हैं, वे ऐरावत हाथी की तरह ललित विक्रम एवं विलास के साथ गति करते हैं, शरत्कालीन नूतन मेघ की गर्जना के समान उनकी दुन्दुभि का शब्द गम्भीर और मधुर होता है, बलदेव नीले रंग के रेशमी बस्त्र पहनते हैं और वासुदेव पीले रंग के सुन्दर रेशमी वस्त्र पहनते हैं तथा उनकी कमर पर करधनी (कन्दोरा) शोभा पाती है, वे उत्कृष्ट तेज वाले होते हैं, वे मनुष्यों में सिंह के समान होते हैं, वे मनुष्यों के स्वामी होते हैं, वे मनुष्यों में इन्द्र के समान होते हैं तथा सर्वश्रेष्ठ होने से वे नरवृषभ कहलाते हैं। जैसे मारवाड़ का धोरी बैल (नागौरी बैल) उठाये हुए भार को यथा स्थान पहुँचा देता है अर्थात् उठाये हुए कार्य को पूर्ण करने वाले होते हैं, वे इन्द्र के समान होते हैं, वे राज्यलक्ष्मी के तेज से अत्यधिक दीप्त होते हैं, बलदेव नीले रेशमी वस्त्र पहनते हैं और वासुदेव पीले रेशमी वस्त्र पहनते हैं, ऐसे वे दो दो बलदेव और वासुदेव भाई भाई हुए थे अर्थात् नौ बलदेव और नौ वासुदेव हुए थे, उनके नाम इस प्रकार थे - १. त्रिपृष्ठ, २. द्विपृष्ठ, ३. स्वयंभू, ४. पुरुषोत्तम, ५. पुरुषसिंह, ६. पुरुष पुण्डरीक, ७. दत्त, ८. नारायण लक्ष्मण और ९. कृष्ण । ये नौ वासुदेवों के नाम थे । नौ बलदेवों के नाम इस प्रकार थे - १. अचल, २. विजय, ३. भद्र, ४. सुप्रभ, ५. सुदर्शन, ६. आनन्द, ७. नन्दन, ८. पद्म (दशरथ-पुत्र रामचन्द्र-लक्ष्मण के बड़े भाई) और ९. राम (कृष्ण के बड़े भाई बलभद्र-बलराम)। ये नौ बलदेवों के नाम थे ।। ५६-५७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - जल से भरी द्रोणी (नाव) में बैठने पर उससे बाहर निकला जल यदि द्रोण (माप-विशेष) प्रमाण हो तो वह पुरुष 'मान प्राप्त' कहलाता है। तुला (तराजू) पर बैठे पुरुष का वजन यदि अर्द्धभार प्रमाण हो तो वह उन्मान-प्राप्त कहलाता है। शरीर की ऊंचाई उसके अङ्गुल से यदि एक सौ आठ अङ्गुल हो तो वह प्रमाण प्राप्त कहलाता है।

चौबीस तीर्थङ्कर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव, नौ वासुदेव, नौ प्रतिवासुदेव इन तरेसठ को त्रिषष्टि श्लाघ्य पुरुष कहते हैं। इनका जीवन प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय होता है। कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य ने इन महापुरुषों का जीवन वर्णन करने के लिए "त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र" नामक ग्रन्थ की रचना की है। उसमें इनके जीवन का विस्तृत वर्णन किया है। विशेष जिज्ञासुओं को वहाँ देखना चाहिए।

किसी हिन्दी कवि ने एक कवित्त इस प्रकार कहा है -

इगसठ माता ने बावन पिता ।
नव नव नव ते बारह चोबीसा ॥
उनसठ जीवा ने साठ शरीरा ।
त्रेसट पुरुषा न पुरुष जगीसा ॥

अर्थ - चौबीस तीर्थङ्कर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव, नौ वासुदेव और नौ प्रतिवासुदेव ये तरेसठ महापुरुष हैं। इनके पिता बावन थे । वासुदेव और बलदेव एक ही पिता के सन्तान होते हैं इसलिये तरेसठ में से नौ कम कर दिये तो चौपन्न रहते हैं। सोलहवें, सतरहवें और अठारहवें ये तीन तीर्थङ्कर चक्रवर्ती भी थे इसलिए इनके तीन पिता और कम हुए तो इक्कावन रहे। किन्तु महावीर स्वामी के इस भव में दो पिता थे ऋषभदत्त ब्राह्मण और सिद्धार्थ राजा, इस तरह एक की संख्या और बढ़ गयी इस तरह बावन हो गये। इन तरेसठ महापुरुष के जीव उनसठ थे क्योंकि तीन तीर्थङ्करों के जीव ही चक्रवर्ती थे तथा भगवान् महावीर का जीव इस अवसर्पिणीकाल का त्रिपृष्ठ वासुदेव था इस तरह तरेसठ में से चार कम करने से उनसाठ जीव रहे। भगवान् महावीर स्वामी के जीव के त्रिपृष्ठ वासुदेव का शरीर और महावीर स्वामी का शरीर ऐसे दो शरीर होने से साठ शरीर हुए अर्थात् जीव उनसठ थे और शरीर साठ थे।

चौबीस तीर्थङ्कर तो निश्चित रूप से उसी भव में मोक्ष जाते हैं। चक्रवर्ती दो प्रकार के होते हैं। निदान (नियाणा) किये हुए और निदान नहीं किये हुए। निदान किये हुए चक्रवर्ती निदान के कारण राजऋद्धि और भोग सामग्री को नहीं छोड़ सकते हैं। इसलिये वे मर कर नरक गति (सातों में से किसी एक) में ही जाते हैं। निदान नहीं किए हुए चक्रवर्ती राजऋद्धि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और भोग सामग्री को छोड़ कर दीक्षा अङ्गीकार करते हैं। संयम का पालन करके सर्व कर्मों का क्षय कर मुक्ति में जाते हैं। यदि कुछ कर्म शेष रह जाय तो देवलोक में भी जाते हैं। इस अवसर्पिणी काल के बारह चक्रवर्तियों में से आठवां सुभूम नामक चक्रवर्ती और बारहवां ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती इन दोनों ने पूर्व भव में नियाणा (निदान) किया था इसलिये इस भव में वे दीक्षा नहीं ले सके । अतः वे दोनों मर कर सातवीं नरक के अप्रतिष्ठान नामक नरकेन्द्र में तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिक हुए हैं। शेष दस चक्रवर्ती सर्व कर्म क्षय करके मोक्ष प्राप्त हो गये हैं। बलदेव निश्चित रूप से दीक्षा लेते ही हैं। वे दीक्षा लेकर मोक्ष में अथवा देवलोक में जाते हैं। वासुदेव पूर्व भव में नियाणा (निदान) किये हुए ही होते हैं। इसलिये वे राजऋद्धि का त्याग नहीं कर सकते हैं। वे भोगासक्त बने रहते हैं इसलिए वे मर कर नरक में ही जाते हैं।

बलदेव और वासुदेवों के पूर्वभव के नाम

एएसिं णं णवण्हं बलदेव वासुदेवाणं पुव्वभविया णव णव णामधेज्जा होत्था, तंजहा-

विस्सभूई पव्वयए, धणदत्त समुद्ददत्त इसिवाले ।
पियमित्त ललियमित्ते, पुणव्वसू गंगदत्ते य।। ५८॥
एयाइं णामाइं, पुव्वभवे आसी वासुदेवाणं ।
एत्तो बलदेवाणं, जहक्कमं कित्तइस्सामि ।। ५९॥
विसणंदी य सुबंधू, सागरदत्ते असोगललिए य।
वाराह धम्म सेणे, अपराइय रायललिए य।। ६०॥

भावार्थ - इन नौ बलदेव वासुदेवों के पूर्वभव के नौ नौ नाम थे, वे इस प्रकार थे - १. विश्वभूति, २. पर्वतक, ३. धनदत्त, ४. समुद्रदत्त, ५. ऋषिपाल, ६. प्रियमित्र, ७. ललितमित्र, ८. पुनर्वसु, ९. गंगदत्त । वासुदेवों के ये नाम पूर्वभव में थे । इसके आगे बलदेवों के पूर्वभव के नाम यथाक्रम से कहे जायेंगे । जैसे कि - १. विश्वनन्दी, २. सुबन्धु, ३. सागरदत्त, ४. अशोक, ५. ललित, ६. वराह, ७. धर्मसेन, ८. अपराजित, ९. राजललित । ये बलदेवों के पूर्वभव के नाम थे ।। ५८-६०॥

विवेचन - कृष्ण वासुदेव के पूर्वभव के जीव का नाम गंगदत्त लिखा है। भगवती सूत्र शतक १६ उद्देशक ५ में जिस गंगदत्त मुनि का वर्णन है उन्होंने बीसवें तीर्थङ्कर श्री

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनिसुव्रतनाथजी के पास दीक्षा ली थी। बहुत वर्षों तक संयम का पालन करके एक महीने का संथारा करके महाशुक्र नामक सातवें देवलोक में उत्पन्न हुए । वहाँ १७ सागरोपम की स्थिति पूर्ण करके महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य भव प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त करेंगे । इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि - कृष्ण वासुदेव के पूर्व भव का जीव गंगदत्त दूसरा है और भगवती वर्णित गंगदत्त दूसरा है। तीर्थङ्कर चरित्र दूसरा भाग के पृष्ठ ३०७ में भगवती वर्णित गंगदत्त को ही कृष्ण का पूर्व भव का जीव बताया है किन्तु वह आगमानुसार मेल नहीं खाता है। क्योंकि वह गंगदत्त तो साधारण केवली होकर महाविदेह क्षेत्र में मोक्ष पधारेंगे।

बलदेव और वासुदेवों के पूर्वभव के धर्माचार्यों के नाम

एएसिं णवण्हं बलदेव वासुदेवाणं पुव्वभविया णव धम्मायरिया होत्था, तंजहा-

संभूय सुभद्द सुदंसणे य सेयंस कण्हे गंगदत्ते य।
सागर समुद्दणामे, दुमसेणे य णवमए ।। ६१॥
एए धम्मायरिया कित्तिपुरिसाण वासुदेवाणं ।
पुव्वभवे एयासिं, जत्थ णियाणाइं कासी य।। ६२॥

कठिन शब्दार्थ - कित्तिपुरिसाण - कीर्तिवन्त पुरुषों के, **धम्मायरिया** - धर्माचार्य, **णियाणाइं** - निदान, **कासी** - किया था।

भावार्थ - इन नौ बलदेव वासुदेवों के पूर्वभव के नौ धर्माचार्य थे, उनके नाम इस प्रकार थे - १. संभूत, २. सुभद्र, ३. सुदर्शन, ४. श्रेयांस, ५. कृष्ण, ६. गंगदत्त, ७. सागर, ८. समुद्र, ९. द्रुमसेन। कीर्तिवन्त बलदेव वासुदेवों के पूर्वभव में ये धर्माचार्य हुए थे। अब आगे उन नगरियों के नाम बतलाये जाते हैं जहां पर वासुदेवों ने नियाणा किया था।। ६१-६२॥

निदानभूमियों के नाम

एएसिं णवण्हं वासुदेवाणं पुव्वभवे णव णियाण भूमिओ होत्था, तंजहा -

महुरा य कणयवत्थू, सावत्थी पोयणं च रायगिहं ।
कायंदी कोसंबी, मिहिलपुरी, हत्थिणाउरं च ।। ६३॥

कठिन शब्दार्थ - णियाणभूमिओ - निदानभूमिका-निदान करने के स्थान।

भावार्थ - इन नौ वासुदेवों के पूर्वभव में नौ नियाणा करने के स्थान थे, उनके नाम इस प्रकार थे - १. मथुरा, २. कनकवस्तु, ३. श्रावस्ती, ४. पोतनपुर, ५. राजगृह, ६. काकन्दी, ७. कौशाम्बी, ८. मिथिलापुरी और ९. हस्तिनापुर ।। ६३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निदानों के कारण

एएसिं णवण्हं वासुदेवाणं णव णियाण कारणा होत्था, तंजहा -

गावी जुए संगामे, तह इत्थी पराइओ रंगे।
भज्जाणुराग गोट्ठी, परइड्ढि माउया इय।। ६४॥

भावार्थ - इन नौ वासुदेवों के नियाणा करने के नौ कारण थे, उनके नाम इस प्रकार थे - १. गाय, २. यूपस्तम्भ, ३. संग्राम, ४. स्त्रीपराजय, ५. रङ्ग, ६. भार्यानुराग, ७. गोष्ठी, ८. पर ऋद्धि, ९. मातृपराभव ।। ६४॥

प्रतिवासुदेवों के नाम

एएसिं णवण्हं वासुदेवाणं णव पडिसत्तू होत्था, तंजहा -

अस्सग्गीवे तारए मेरए, महुकेढवे णिसुंभे य।
बलि पहराए तह रावणे य णवमे जरासंधे ।। ६५॥
एए खलु पडिसत्तू, कित्तीपुरिसाण वासुदेवाणं ।
सव्वे वि चक्कजोही, सव्वे वि हया सचक्केहिं ।। ६६॥
एक्को य सत्तमीए, पंच य छट्ठीए पंचमी एक्को ।
एक्को य चउत्थीए, कण्हो पुण तच्च पुढवीए ।। ६७॥
अणियाणकडा रामा, सव्वे वि य केसवा णियाणकडा।
उड्ढं गामी रामा, केसवा सव्वे अहोगामी ।। ६८॥
अट्ठंतकडा रामा एगो पुण बंभलोय कप्पम्मि ।
एक्कस्स गब्भवसही, सिज्झिस्सइ आगमिस्सेणं ।।६९॥

कठिन शब्दार्थ - **पडिसत्तू** - प्रतिशत्रु अर्थात् प्रतिवासुदेव, **चक्कजोही** - चक्र से युद्ध करने वाले, **सचक्केहिं** - अपने ही चक्र से, **हया** - मारे गये थे, **अणियाणकडा** - अनिदान कृत, **रामा** - राम अर्थात् बलदेव, **केसवा** - केशव अर्थात् वासुदेव, **उड्ढगामी** - ऊर्ध्वगामी, **अहोगामी** - अधोगामी ।

भावार्थ - इन नौ वासुदेवों के नौ प्रतिशत्रु अर्थात् प्रतिवासुदेव हुए थे, उनके नाम इस प्रकार थे - १. अश्वग्रीव, २. तारक, ३. मेरक, ४. मधुकैटभ, ५. निःशुम्भ, ६. बली, ७. प्रह्लाद, ८. रावण और ९. जरासन्ध । कीर्तिवन्त वासुदेवों के ये उपरोक्त नौ प्रतिशत्रु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिवासुदेव हुए थे । ये सब चक्र से युद्ध करने वाले थे और ये सब अपने ही चक्र से मारे गये थे ।। ६५-६६ ॥

एक वासुदेव सातवीं नरक में गया। पांच वासुदेव छठी नरक में, एक वासुदेव पांचवीं नरक में, एक वासुदेव चौथी नरक में और कृष्ण वासुदेव तीसरी नरक में गये ।। ६७ ॥

सब बलदेव नियाणा किये बिना होते हैं और सब वासुदेव नियाणा करके ही होते हैं। सब बलदेव ऊर्ध्वगामी होते हैं अर्थात् मर कर स्वर्ग में जाते हैं अथवा मोक्ष में जाते हैं और सब वासुदेव अधोगामी होते हैं अर्थात् मर कर नरक में ही जाते हैं।। ६८ ॥

ऊपर कहे हुए बलदेवों में से आठ बलदेव कर्मों का सर्वथा क्षय कर मोक्ष में गये और एक बलभद्र नामक बलदेव (श्रीकृष्ण के बड़े भाई) पांचवें ब्रह्म देवलोक में गया। वहां से चव कर वह एक गर्भवास अर्थात् मनुष्य भव धारण करके फिर वह सिद्धिगति को प्राप्त करेगा ।। ६९ ॥

वर्तमान ऐरवत तीर्थंकरों के नाम

जंबूद्दीवे णं दीवे एरवए वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउव्वीसं तित्थयरा होत्था, तंजहा -

चंदाणणं सुचंदं, अग्गिसेणं च णंदिसेणं च ।
इसिदिण्णं ववहारिं, वंदिमो सोमचंदं च ।। ७० ॥
वंदामि जुत्तिसेणं, अजियसेणं तहेव सिवसेणं ।
बुद्धं च देवसम्मं, सययं णिक्खित्तसत्थं च ।। ७१ ॥
असंजलं जिणवसहं, वंदे य अणंतयं अमियणाणिं ।
उवसंतं च धुयरयं, वंदे खलु गुत्तिसेणं च ।। ७२ ॥
अइपासं च सुपासं, देवेसरवंदियं च मरुदेवं ।
णिव्वाण गयं च धरं, खीणदुहं सामकोट्ठं च ।। ७३ ॥
जियरागमग्गिसेणं वंदे, खीणरायमग्गिउत्तं च ।
वोक्कसिय पिज्जदोसं, वारिसेणं गयं सिद्धिं ।। ७४ ॥

कठिन शब्दार्थ - एरवए वासे - ऐरवत क्षेत्र में, **अमियणाणी** - अमितज्ञानी सर्वज्ञ, **धूयरयं** - कर्मरज से रहित, **णिव्वाणगयं** - निर्वाण को प्राप्त, **खीणदुहं** - दुःखों का विनाश करने वाले, **जियरागं** - राग द्वेष के विजेता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थङ्कर हुए थे, उनके नाम इस प्रकार हैं - १. चन्द्रानन, २. सुचन्द्र, ३. अग्निसेन, ४. नन्दीसेन, ५. ऋषिदिन्न (ऋषिदत्त), ६. व्रतधारी और ७. सोमचन्द्र को हम वन्दना करते हैं।। ७०॥

८. युक्तिसेन अपरनाम दीर्घबाहु या दीर्घसेन, ९. अजितसेन अपरनाम शतायु, १०. शिवसेन अपरनाम सत्यसेन, ११. देवशर्मा अपरनाम देवसेन, १२. निक्षिप्त शस्त्र अपरनाम श्रेयांस, इनको सदा हम वन्दना करते हैं।। ७१॥

१३. असंज्वलन, १४. जिनवृषभ अपरनाम स्वयंजल, १५. अमितज्ञानी यानी सर्वज्ञ अनन्तक, अपरनाम सिंहसेन, १६. उपशान्त और कर्मरज से रहित गुप्तिसेन को हम वन्दना करते हैं।। ७२॥

१७. अतिपार्श्व, १८. सुपार्श्व १९. देवेश्वरों द्वारा वन्दित मरुदेव, २०. निर्वाण को प्राप्त धर और २१. दुःखों का विनाश करने वाले श्यामकोष्ठ, २२. रागद्वेष के विजेता अग्निसेन अपरनाम महासेन, २३. रागद्वेष का सर्वथा क्षय करने वाले अग्निपुत्र और २४. रागद्वेष को विनाश करके सिद्धिगति को प्राप्त हुए वारिसेन, इन चौबीस तीर्थङ्करों को वन्दना करता हूँ।। ७३-७४॥

विवेचन - कहीं कहीं इन नामों में भिन्नता भी देखी जाती है।

भरत क्षेत्र के आगामी कुलकरों के नाम

जंबूद्दीवे णं दीवे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए भारहे वासे सत्त कुलगरा भविस्संति, तंजहा -

मियवाहणे सुभूमे य, सुप्पभे य सयंपभे ।
दत्ते सुहुमे सुबंधू य, आगमिस्साण होक्खइ ।। ७५॥

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी काल में सात कुलकर होंगे, उनके नाम इस प्रकार होंगे - १. मितवाहन, २. सुभूम, ३. सुप्रभ, ४. स्वयंप्रभ, ५. दत्त, ६. सूक्ष्म, ७. सुबन्धु, ये सात कुलकर आगामी उत्सर्पिणी काल में होंगे ।। ७५॥

ऐरवत क्षेत्र के आगामी दस कुलकरों के नाम

जंबूद्दीवे णं दीवे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए एरवए वासे दस कुलगरा भविस्संति तंजहा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विमलवाहणे सीमंकरे, सीमंधरे खेमंकरे खेमंधरे ।
दढधणू दसधणू सयधणू पडिसूई सुमइत्ति ।।

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी काल में दस कुलकर होंगे, उनके नाम इस प्रकार होंगे - १. विमलवाहन, २. सीमंकर, ३. सीमंधर, ४. क्षेमंकर, ५. क्षेमंधर, ६. दृढधनु, ७. दसधनु, ८. शतधनु, ९. प्रतिश्रुति और १०. सुमति। ये दस कुलकर होंगे।

भावी तीर्थंकर पद

आगामी उत्सर्पिणी काल के चौबीस तीर्थङ्करों के नाम

जंबूद्दीवे णं दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए चउव्वीसं तित्थयरा भविस्संति, तंजहा -

महापउमे सूरदेवे, सुपासे य सयंपभे ।
सव्वाणुभूई अरहा, देवस्सुए य होक्खइ ।। ७६ ।।
उदए पेढालपुत्ते य, पोट्टिले सत्तकित्ति य।
मुणिसुव्वए य अरहा, सव्वभाव विऊ जिणे ।। ७७ ।।
अममे णिक्कसाए य, णिप्पुलाए य णिम्ममे ।
चित्तउत्ते समाही य, आगमिस्साण होक्खइ ।। ७८ ।।
संवरे जसोधरे अणियट्टी य, विजए विमलेति य।
देवोववाए अरहा, अणंतविजए इय।। ७९ ।।
एए वुत्ता चउव्वीसं, भरहे वासम्मि केवली ।
आगमिस्साणं होक्खंति, धम्मतित्थस्स देसगा ।। ८० ।।

कठिन शब्दार्थ - सव्वभावविऊ - सब भावों के जानने वाले, **धम्मतित्थस्स देसगा**- धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले, धर्मोपदेशक ।

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी काल में चौबीस तीर्थङ्कर होंगे, उनके नाम इस प्रकार होंगे - १. महापद्म, २. सूर्यदेव, ३. सुपार्श्व, ४. स्वयंप्रभ, ५. सर्वानुभूति, ६. देवश्रुत, ७. उदय, ८. पेढालपुत्र. ९. पोट्टिल, १०. शतकीर्ति, ११. मुनिसुव्रत, १२. सब भावों के जाननेवाले, रागद्वेष के विजेता तीर्थङ्कर अमम, १३. निष्कषाय,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१४. निष्पुलाक, १५. निर्मम, १६. चित्रगुप्त, १७. समाधि, १८. संवर, १९. यशोधर, २०. अनिर्वर्तिक, २१. विजय, २२. विमल, २३. देवोपपात २४. अनन्तविजय। ये धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले, धर्मोपदेशक चौबीस तीर्थङ्कर इस भरतक्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी काल में होवेंगे।। ७६-८०॥

आगामी चौबीस तीर्थङ्करों के पूर्व भवों के नाम

एएसिं णं चउव्वीसाए तित्थयराणं पुव्वभविया चउव्वीसं णामधेज्जा होत्था, तंजहा –

सेणिय सुपास उदए पोट्टिल्ल अणगार तह दढाऊ य।
कत्तिय संखे य तहा णंद सुणंदे य सत्तए य।। ८१॥
बोद्धव्वा देवई य सच्चई तह वासुदेव बलदेवे ।
रोहिणी सुलसा चेव, तत्तो खलु रेवई चेव ।। ८२॥
तत्तो हवइ सयाली, बोद्धव्वे खलु तहा मयाली य।
दीवायणे य कण्हे, तत्तो खलु णारए चेव ।। ८३॥
अंबड दारुमडे य साई, बुद्धे य होइ बोद्धव्वे ।
भावी तित्थयराणं, णामाइं पुव्वभवियाइं ।। ८४॥

भावार्थ – इन चौबीस तीर्थङ्करों के पूर्वभव के चौबीस नाम थे, यथा – १. श्रेणिक, २. सुपार्श्व, ३. उदय, ४. पोटिल्ल, ५. दृढायु, ६. कार्तिक, ७. शंख, ८. नन्द, ९. सुनन्द, १०. शतक, ११. देवकी, १२. सत्यकी, १३. वासुदेव अर्थात् कृष्ण वासुदेव १४. बलदेव, १५. रोहिणी, १६. सुलसा, १७. रेवती, १८. शताली, १९. मयाली (भयाली), २०. द्वीपायन, २१. कृष्ण, २२. नारद, २३. दारुमृत अंबड २४. स्वाति बुद्ध। ये भावी तीर्थङ्करों के पूर्वभव के नाम थे ।। ८१-८४॥

आगामी चौबीस तीर्थंकरों के माता पिता आदि के नाम

एएसिं णं चउव्वीसाए तित्थयराणं चउव्वीसं पियरो भविस्संति, चउव्वीसं मायरो भविस्संति, चउव्वीसं पढमसीसा भविस्संति, चउव्वीसं पढम सिस्सणीओ भविस्संति, चउव्वीसं पढमभिक्खा दायगा भविस्संति, चउव्वीसं चेइय रुक्खा भविस्संति।

भावार्थ – इन चौबीस तीर्थङ्करों के चौबीस पिता होंगे, चौबीस माताएं होंगी, चौबीस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम शिष्य होंगे, चौबीस प्रथम शिष्याएं होंगी, चौबीस प्रथम भिक्षा देने वाले होंगे, चौबीस चैत्य वृक्ष अर्थात् केवलज्ञानोत्पत्ति के वृक्ष होंगे ।

भावी चक्रवर्ती पद

आगामी बारह चक्रवर्तियों के नाम

जंबूद्दीवे णं दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए बारस चक्कवट्टिणो भविस्संति, तंजहा -

भरहे य दीहदंते, गूढदंते य सुद्धदंते य।
सिरिउत्ते सिरिभूई, सिरिसोमे य सत्तमे ।। ८५॥
पउमे य महापउमे, विमलवाहणे विपुलवाहणे चेव।
वरिट्ठे बारसमे वुत्ते, आगमिस्सा भरहाहिवा ।। ८६॥

एएसिं णं बारसण्हं चक्कवट्टीणं बारस पियरो भविस्संति, बारस मायरो भविस्संति, बारस इत्थी रयणा भविस्संति ।

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी काल में बारह चक्रवर्ती होंगे, उनके नाम इस प्रकार होंगे - १. भरत, २. दीर्घदन्त, ३. गूढदंत, ४. शुद्धदंत, ५. श्रीपुत्र, ६. श्रीभूति, ७. श्रीसोम, ८. पद्म, ९. महापद्म, १०. विमलवाहन, ११. विपुलवाहन, १२. वरिष्ठ या रिष्ट, ये आगामी उत्सर्पिणी काल में भरत क्षेत्र के अधिपति चक्रवर्ती होंगे ।। ८५-८६॥

इन बारह चक्रवर्तियों के बारह पिता होंगे, बारह माताएं होंगी, बारह स्त्रीरत्न होंगे ।

भावी बलदेव वासुदेव पद

आगामी बलदेव, वासुदेवों के माता-पिता आदि के नाम

जंबूद्दीवे णं दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए णव बलदेव वासुदेव पियरो भविस्संति, णव वासुदेव मायरो भविस्संति, णव बलदेव मायरो भविस्संति, णव दसारमंडला भविस्संति, तंजहा - उत्तमपुरिसा, मज्झिमपुरिसा, पहाणपुरिसा, ओयंसी, तेयंसी एवं सो चेव वण्णओ भाणियव्वो जाव णीलग पीयग वसणा दुवे दुवे राम केसवा भायरो भविस्संति, तंजहा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णंदे य णंदमित्ते, दीहबाहू तहा महाबाहू ।
अइबले महाबले, बलभद्दे य सत्तमे ।। ८७।।
दुविट्ठू य तिविट्ठू य, आगमिस्साण वण्हिणो ।
जयंते विजए भद्दे, सुप्पभे य सुदंसणे ।
आणंदे णंदणे पउमे, संकरिसणे य अपच्छिमे ।। ८८।।

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी काल में बलदेव वासुदेवों के नौ पिता होंगे, वासुदेवों की नौ माताएं होंगी, बलदेवों की नौ माताएं होंगी, नौ दशार्ह मण्डल होंगे अर्थात् बलदेवों वासुदेवों की युगल जोड़ी होंगी, उनके गुणों का वर्णन इस प्रकार हैं - त्रेसठ श्लाघ्य पुरुषों में गिनती होने से ये उत्तम पुरुष हैं, त्रेसठ श्लाघ्य पुरुषों में इनकी गिनती मध्य में - बीच में आती है इसलिए मध्यमपुरुष हैं अथवा बल की अपेक्षा ये तीर्थङ्कर चक्रवर्तियों से हीन - नीचे होते हैं और प्रतिवासुदेवों से बल में अधिक होते हैं, इस प्रकार बल की अपेक्षा दोनों के बीच में होने से ये मध्यम पुरुष हैं। अपने समय में ये बल में सब से अधिक होते हैं, इसलिए ये प्रधान पुरुष कहलाते हैं। ये मानसिक बल से युक्त होने से ओजस्वी हैं, दीप्त शरीर होने से तेजस्वी हैं, इस प्रकार जो वर्णन पहले कहा है वह सारा यहां भी कह देना चाहिए । यावत् बलदेव नीले रंग के रेशमी वस्त्र पहनते हैं और वासुदेव पीले रंग के रेशमी वस्त्र पहनते हैं, ऐसे वे दो दो बलदेव और वासुदेव भाई भाई होंगे, यथा - उनके नाम - १. नन्दन, २. नन्दमित्र, ३. दीर्घबाहु, ४. महाबाहु, ५. अतिबल, ६. महाबल, ७. बलभद्र, ८. द्विपृष्ठ ९. त्रिपृष्ठ, ये आगामी उत्सर्पिणी के वासुदेवों के नाम होंगे ।

अब बलदेवों के नाम कहे जाते हैं - १. जयन्त, २. विजय, ३. भद्र, ४. सुप्रभ, ५. सुदर्शन, ६. आनन्द, ७. नन्दन, ८. पद्म, ९. संकर्षण । ये आगामी उत्सर्पिणी के बलदेवों के नाम हैं।। ८७-८८ ।।

बलदेव और वासुदेवों के पूर्वभवों के नाम तथा निदान भूमि कारण आदि

एएसिं णं णवण्हं बलदेव वासुदेवाणं पुव्वभविया णव णामधेज्जा भविस्संति, णव धम्मायरिया भविस्संति, णव णियाणभूमीओ भविस्संति, णव णियाणकारणा भविस्संति, णव पडिसत्तू भविस्संति, तंजहा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिलए य लोहजंघे, वइरजंघे य केसरी पहराए ।
अपराइए य भीमे, महाभीमे य सुग्गीवे ।। ८९॥
एए खलु पडिसत्तू, कित्तिपुरिसाणं वासुदेवाणं ।
सव्वे वि चक्कजोही, हम्मिहिंति सचक्केहिं ।। ९०॥

भावार्थ - इन नौ बलदेव वासुदेवों के पूर्वभव के नौ नाम होंगे, नौ धर्माचार्य होंगे, वासुदेवों के नियाण करने की नौ नगरियां होंगी, नियाणा करने के नौ कारण होंगे, नौ प्रतिशत्रु यानी प्रतिवासुदेव होंगे, उनके नाम - १. तिलक, २. लोहजंघ, ३. वज्रजंघ, ४. केशरी, ५. प्रभराज, ६. अपराजित, ७. भीम, ८. महाभीम, ९. सुग्रीव । ये कीर्तिवन्त वासुदेवों के प्रतिशत्रु - प्रतिवासुदेव होंगे । ये सब चक्र से युद्ध करेंगे और अपने ही चक्र से मारे जावेंगे ।। ८९-९०॥

ऐरवत भावी तीर्थंकर पद

ऐरवत क्षेत्र के आगामी तीर्थङ्करों के नाम

जंबूद्दीवे णं दीवे एरवए वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए चउव्वीसं तित्थयरा भविस्संति, तंजहा -

सुमंगले य सिद्धत्थे, णिव्वाणे य महाजसे ।
धम्मज्झए य अरहा, आगमिस्साण होक्खइ ।। ९१॥
सिरिचंदे पुप्फकेऊ, महाचंदे य केवली ।
सुयसागरे य अरहा, आगमिस्साण होक्खइ ।। ९२॥
सिद्धत्थे पुण्णघोसे य, महाघोसे य केवली ।
सच्चसेणे य अरहा, आगमिस्साण होक्खइ ।। ९३॥
सूरसेणे य अरहा, महासेणे य केवली ।
सव्वाणंदे य अरहा, देवउत्ते य होक्खइ ।। ९४॥
सुपासे सुव्वए अरहा, अरहे य सुकोसले ।
अरहा अणंत विजए, आगमिस्साण होक्खइ ।। ९५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विमल उत्तरे अरहा, अरहा य महाबले ।
देवाणंदे य अरहा, आगमिस्साण होक्खइ ।। ९६ ॥
एए वुत्ता चउव्वीसं, एरवयम्मि केवली ।
आगमिस्साण होक्खंति, धम्मतित्थस्स देसगा ।। ९७॥

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी काल में चौबीस तीर्थङ्कर होंगे, उनके नाम इस प्रकार होंगे - १. सुमंगल, २. सिद्धार्थ अथवा अर्थसिद्ध, ३. निर्वाण, ४.महायश, ५. धर्मध्वज, ६. श्रीचन्द्र, ७. पुष्पकेतु, ८. महाचन्द्र, ९. श्रुतसागर, १०. सिद्धार्थ अथवा अर्थसिद्ध, ११. पूर्णघोष, १२. महाघोष, १३. सत्यसेन, १४. सूर्यसेन, १५. महासेन, १६. सर्वानन्द, १७. देवपुत्र, १८. सुव्रत सुपार्श्व, १९. सुकौशल, २०. अनन्त विजय, २१. विमल, २२. उत्तर, २३. महाबल, २४. देवानन्द, ये धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले और धर्मोपदेशक ऐरवत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी काल में तीर्थङ्कर होवेंगे ।। ९१-९७॥

ऐरवत क्षेत्र में भावी चक्रवती, बलदेव, वासुदेव पद

जंबूहीवे णं दीवे एरवए वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए बारस चक्कवट्टिणो भविस्संति, बारस चक्कवट्टि पियरो भविस्संति, बारस चक्कवट्टि मायरो भविस्संति, बारस इत्थी रयणा भविस्संति। णव बलदेव वासुदेव पियरो भविस्संति, णव वासुदेव मायरो भविस्संति, णव बलदेव मायरो भविस्संति, णव दसार मंडला भविस्संति, उत्तरपुरिसा, मज्झिमपुरिसा, पहाणपुरिसा जाव दुवे दुवे राम केसवा भायरो भविस्संति, णव पडिसत्तू भविस्संति, णव पुव्वभव णामधेज्जा, णव धम्मायरिया, णव णियाण भूमीओ, णव णियाण कारणा भविस्संति, आयाए एरवए आगमिस्साए भाणियव्वा, एवं दोसु वि आगमिस्साए भाणियव्वा ।।

भावार्थ - ऐरवत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी काल में बारह चक्रवर्ती होंगे। चक्रवर्तियों के बारह पिता होंगे, बारह माताएं होंगी, बारह स्त्री रत्न होंगे। बलदेव और वासुदेवों के नौ पिता होंगे, वासुदेवों की नौ माताएं होंगी, बलदेवों की नौ माताएं होंगी, नौ दशार्ह मण्डल होंगे, वे उत्तमपुरुष, मध्यमपुरुष और प्रधानपुरुष यावत् दो दो बलदेव वासुदेव भाई होंगे। नौ प्रतिशत्रु यानी प्रतिवासुदेव होंगे, इनके पूर्वभव के नौ नाम, पूर्वभव के नौ धर्माचार्य, नियाणा करने की नौ नगरियाँ, नियाणा करने के नौ कारण होंगे। ये सब आगामी उत्सर्पिणी काल में ऐरवत क्षेत्र में होंगे। यह सारा अधिकार कह देना चाहिए। इस प्रकार भरत और ऐरवत दोनों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्षेत्रों में आगामी उत्सर्पिणी सम्बन्धी सारा अधिकार कह देना चाहिए।

इच्चेयं एवमाहिज्जइ, तंजहा - कुलगर वंसेइ य एवं तित्थयर वंसेइ य, चक्कवट्टि वंसेइ य, दसार वंसेइ वा, गणधर वंसेइ य, इसि वंसेइ य, जइ वंसेइ य, मुणिवंसेइ य, सुएइ वा, सुअंगे वा, सुय समासेइ वा, सुय खंधेइ वा, समवाएइ वा, संखेइ वा, सम्मत्तमंगमक्खायं अज्झयणं ।। त्तिबेमि ।।

।। इति समवायं चउत्थमंगं समत्तं ।।

कठिन शब्दार्थ - **एवमाहिज्जइ** - इन नामों से भी कहा जाता है, **कुलगर वंसेइ** - कुलकर वंश, **इसि वंसेइ** - ऋषि वंश, **जइ वंसेइ** - यति वंश, **सुअंगे** - श्रुतांग, **सुय समासेइ** - श्रुत समास, **सुय खंधेइ**- श्रुतस्कंध, **समवाएइ** - समवाय, **समत्तं** - समस्त-सम्पूर्ण, **अङ्गं** - अङ्ग-आचाराङ्ग समवायाङ्ग आदि, **अक्खायं** - कहा है।

भावार्थ - यह समवायाङ्ग सूत्र इन नामों से भी कहा जाता है, जैसे कि - कुलकरों का इस सूत्र में वर्णन है इसलिए इस सूत्र का नाम 'कुलकर वंश' है। इसी प्रकार इस सूत्र में तीर्थङ्करों का और उनके परिवार एवं उनकी परम्परा का वर्णन होने से इसका नाम 'तीर्थङ्कर वंश' है। इस सूत्र में चक्रवर्तियों का तथा उनके परिवार का वर्णन होने से इस सूत्र का नाम 'चक्रवर्ती वंश' है । इस सूत्र में दशार्ह-मण्डल, गणधर, ऋषि, यति, मुनि और इनके परिवार का वर्णन होने से इस सूत्र का नाम दशार्ह-वंश, गणधर वंश, ऋषि वंश, यति वंश और मुनि वंश है। श्रुतज्ञान का प्रतिपादक होने से इस सूत्र का नाम 'श्रुत' है। श्रुतरूपी पुरुष का यह अङ्ग अवयव है, इसलिए इस सूत्र का नाम 'श्रुताङ्ग' है। सब सूत्रों का इसमें संक्षेप से वर्णन है, इसलिए इस सूत्र का नाम 'श्रुत समास' है। श्रुत समुदाय का प्रतिपादक होने से इस सूत्र का नाम 'श्रुतस्कंध' है। इसमें समस्त जीवादि पदार्थों का वर्णन होने से इस सूत्र का नाम 'समवाय' है। इस सूत्र में एक दो तीन इत्यादि संख्या के क्रम से जीवादि तत्त्वों का वर्णन होने से इस सूत्र का नाम 'संख्या' है। भगवान् ने इसको एक सम्पूर्ण अङ्ग कहा है, किन्तु आचाराङ्ग सूत्र की तरह इसमें दो श्रुतस्कन्ध नहीं है। यह सारा सूत्र एक अध्ययन रूप है, इसमें उद्देशक आदि नहीं हैं।

श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बूस्वामी से कहते हैं कि - हे आयुष्मन् जम्बू ! मैंने जैसा श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से सुना है वैसा ही मैंने तुम्हें कहा है।

।। इति चौथा अंग समवाय सूत्र सम्पूर्णम् ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णिग्गंथं पावयणं सच्चं

जो उवमिज्जइ सययं, तं संघ गुणायरं वंदे

श्री अ.भा.सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ जोधपुर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org